ऐसे जीयें

□

प्रवचनकार

आचार्य श्री नानेश

□

सम्पादक

मुनि ज्ञान

□

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

[आचार्य प्रवर श्री नानेश के आचार्य पद के पच्चीसवें वर्ष के उपलक्ष्य में]

ऐसे जीयें

- प्रवचनकार

  आचार्य श्री नानेश

- सम्पादक

  मुनि ज्ञान

- प्रकाशक

  श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
  समता भवन, रामपुरिया मार्ग
  बीकानेर–३३४ ००१ (राजस्थान)

- प्रथम संस्करण : १९८६

- मूल्य : बीस रुपये (लागत मूल्य का दो तिहाई)

- मुद्रक :

  फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
  जौहरी बाजार, जयपुर–३०२ ००३

प्रकाशकीय

दुग्ध के साथ धवलता कब से चली आ रही है ? अग्नि के साथ उष्णता का सम्बन्ध कब से है ? इन विषयों की प्रादुर्भूति के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता । जब से दुग्ध है, तभी से उसकी धवलता है । जब से अग्नि है तभी से उसके साथ उष्णता का सम्बन्ध बना हुआ है । ठीक इसी प्रकार जब से भू, तोय, अनल, अनिल आदि प्राणी समूह एवं जड़ तत्त्व चले आ रहे हैं, तभी से धर्म एवं संस्कृति भी चली आ रही है । साधुमार्ग का इतिहास भी उतनी ही प्राचीनता को लिये हुए है ।

साधुमार्ग की इस पवित्र पावन-धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बड़े-बड़े आचार्यों ने अपना-अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । भगवान् महावीर के बाद अनेक बार आगमिक-धरातल पर क्रान्ति का प्रसंग आया है । इस क्रांति के द्वारा श्रमण संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयास किया जाता रहा । ऐसी क्रान्ति की धारा में क्रियोद्धारक महान् आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. का नाम विशेष रूप से उभर कर सामने आता है । तत्कालीन युग मे जहाँ शिथिलाचार व्यापक तौर पर फैलता जा रहा था, शुद्ध साधुत्व की स्थिति विरल ही परिलक्षित होती थी । बड़े-बडे साधु भी मठों की तरह उपाश्रयो में अपना स्थान जमाए हुए थे । चेलों के पीछे साधुता बिखरती चली जा रही थी । ऐसे युग मे आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० ने उपदेशों से ही नही अपितु अपने विशुद्ध एव उत्कृष्ट संयममय जीवन से जनमानस को प्रभावित किया था । तप के साथ क्षमा एवं उत्कृष्ट संयम के साथ उत्कृष्ट सम्यक्ज्ञान का संयोग दुर्लभ ही देखने को मिलता है । किन्तु आचार्य प्रवर मे ऐसे दुर्लभ संयोग सहज सुलभ थे । आपके जीवन का ही प्रभाव था कि हजारों स्त्री-पुरुष आपके चरण सान्निध्य को पाने के लिए लालायित रहने लगे । तब "तिन्नाणं तारयाणं" के आदर्श आचार्यप्रवर ने योग्य मुमुक्षुओं को दीक्षित किया,

और जो देशव्रती बनना चाहते थे उन्हें, देशव्रती बनाया। इस प्रकार सहज रूप से ही चर्तुविध संघ का प्रवर्तन हो गया।

समुद्र में जिस प्रकार दूर तक गंगा का पाट दिखलाई देता है वैसे ही जैन धर्म के समुद्र में आचार्य प्रवर की यह धारा एकदम अलग-थलग सी परिलक्षित होने लगी। यहाँ से फिर साधुमार्ग में एक क्रान्ति घटित हुई। जिस क्रान्ति की धारा को पश्चातवर्ती आचार्यो ने निरन्तर आगे बढ़ाया। आज हमें परम प्रसन्नता है कि समता विभूति विद्वद् शिरोमणि, जिन शासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य में साधुमार्ग की वह धारा विकसित रूप में उभर कर आ रही है। संघ के एकमात्र अनुशास्ता आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य मे हुई एक साथ २५ दीक्षाओं ने सैंकड़ों वर्षो के अतीत के इतिहास को प्रत्यक्ष कर दिखाया है। ऐसी एक नही अनेक क्रान्तियाँ आचार्य-प्रवर के सान्निध्य में घटित हो रही है। संयम पालन के साथ हर साधु-साध्वी वर्ग ने आचार्य प्रवर के सान्निध्य को पाकर सम्यक् ज्ञान की दिशा में भी आश्चर्यजनक विकास किया है।

"ऐसे जीये" नामक प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य प्रवर के घाटकोपर, बम्बई के ५२ प्रवचनों का संकलन किया गया है। दिनाक १६-८-८५ को पर्युषण के चतुर्थ दिवस पर आचार्य श्री अस्वस्थता के कारण प्रवचन नही दे सके, अतः उस दिन के प्रवचन का समावेश नहीं किया जा सका है। 'जी' तो सभी रहे है पर 'जीना' किस प्रकार चाहिये, मानव की इस ज्वलन्त समस्या का समाधान आचार्य प्रवर ने अपने प्रस्तुत प्रवचनो में बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। इन प्रवचनों का सुन्दर सम्पादन आचार्य प्रवर के ही अन्तेवासी सुशिष्य विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी म० सा० ने किया है। घाटकोपर के प्रवचनों को किसी शॉर्ट-हैण्ड लिपिकार ने संकलित नही किया था, बल्कि शासन प्रभाविका विदुषी महासती श्री इन्द्रकंवरजी म० सा० के समीपस्थ तपस्विनी विदुपी महासती श्री अजना श्रीजी म० सा० एवं विदुषी महासती श्री सुलोचना श्रीजी म० सा० ने संकलित करने का अच्छा प्रयास किया है। महासतीवर्ग आचार्य प्रवर के प्रवचनो को सुनने के साथ अपने उपयोग के लिये संकलित भी कर लेती है। घाटकोपर के इन सकलित प्रवचनो का विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी म० सा० द्वारा सम्पादन हो जाने पर पांडुलिपि बनाने का कार्य प्रतिभा-सम्पन्न वैराग्यवती बहिन प्रिया एवं पद्मा ने किया है।

हमारा संघ सत्साहित्य एवं जीवन विकासोन्मुखी कृतियों के प्रकाशन के लिए कृत संकल्प है ।

शान्त-क्रान्ति के अग्रदूत स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० की स्मृति में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार की स्थापना की । ज्ञान भण्डार में अनेकानेक प्रकाशित एवं हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह हुआ है । हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थों का संचयन कर उन्हें श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन साहित्य समिति सर्वजनहितार्थ प्रकाशन कर रही है । इसी संकल्प की क्रियान्विति में इस कृति को भी श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार से प्राप्त कर प्रकाशित करने में संघ हार्दिक आत्म-संतुष्टि का अनुभव कर रहा है ।

प्रस्तुत पुस्तक के हमारे प्रमुख अर्थ सहयोगी है—श्री अखिल भारत-वर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के नव निर्वाचित अध्यक्ष उदारमना श्रेष्ठीवर्य श्री चुन्नीलालजी सा० मेहता, जिन्होंने अनेक प्रवृत्तियों, संस्थाओं में उदारता से अर्थ सहयोग कर अपनी दानवीरता का सराहनीय परिचय दिया है । संघ को आपसे अनेक आशाएँ है ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन-सम्बन्धित प्रबन्धन-सम्पादन में डॉ० नरेन्द्र भानावत ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, उसके लिए हम उनका हृदय से आभार मानते है ।

—गुमानमल चौरड़िया

संयोजक

श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन साहित्य समिति

प्रमुख अर्थ-सहयोगी
सहृदय समाजसेवी
श्री चुन्नीलालजी मेहता, बम्बई

आपका जन्म ३१ जुलाई, १९२६ को सोजत (राजस्थान) में हुआ। आपने अपना व्यवसाय बेलगांव, अहमदाबाद एवं बम्बई में आरंभ किया। लगन, निष्ठा, साहस, परिश्रम एवं ईमानदारीपूर्वक सतत कर्तव्यशील बने रहने के कारण आपने शीघ्र ही देश के प्रमुख व्यवसायियों मे अपना उल्लेखनीय स्थान बना लिया।

अर्जित सम्पत्ति का समाज-सेवा में अधिकाधिक सदुपयोग करना आपका स्वभाव है। आप अपनी सहृदयता, करुणशीलता एवं दानवीरता के लिए प्रसिद्ध है। आपके कार्यालय में रोजाना सुबह से शाम तक दीन दुखियारे रोगियों, असहाय वृद्धों, नेत्रहीनों आदि की लाइन लगी रहती है जिन्हे आप मुक्त हस्त से दान देते रहते हैं, अन्न, वस्त्र और औषध वितरण करते रहते है। आप राष्ट्रीय विचारधारा के प्रगतिशील सामाजिक कार्यकर्ता एवं कर्मठ समाजसेवी हैं। शिक्षा, चिकित्सा, वाणिज्य-व्यवसाय, राष्ट्र-एकता, सामाजिक उत्कर्ष सम्बन्धी सैकड़ों संस्थाओं से आप सक्रिय रूप से जुड़े हुए है। समता-विभूति आचार्य श्री नानेश के आप अनन्य भक्त एवं निष्ठावान श्रावक है। आचार्य श्री का बोरीवली-बम्बई का चातुर्मास कराने में आपका विशेष योगदान रहा। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के आप अध्यक्ष है। संघ की धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों को अधिकाधिक गतिशील एवं सुदृढ़ करने में आप निरन्तर सजग एवं सचेष्ट हैं। सत् साहित्य के प्रकाशन मे आपके प्रशस्त और उदात्त सहयोग के लिए हार्दिक आभार।

□□

कैसे जीयें ?

यह अखिल विश्व, अनन्तानन्त प्राणियों से संकुलित है। जिस प्रकार काजल की डिबिया में काजल भरा रहता है, उसी प्रकार पूरे विश्व में आत्माएँ खचाखच भरी हुई है। वे सभी आत्माएँ, अपने-अपने रूप में जीवन जी रही है। क्योंकि जिसने भी जन्म लिया है, वह जब तक मृत्यु को प्राप्त न करे, तब तक जीता है और मृत्यु प्राप्त करके भी अन्य भव में जाकर, वहां भी जीता है। अत: जीने की स्थिति तो निरन्तर चल ही रही है, पर जिया कैसे जाय, जिससे आत्मा को परम शांति एवं सुख की उपलब्धि हो सके, यह समस्या प्राय: सभी प्राणियों के सामने खड़ी है। जब तक इस समस्या का सही रूप में समाधान नही होता, तब तक जीवन की प्रणालिका सही रूप में नहीं चल सकती। बिना सही प्रणाली के वास्तविक सुख की उपलब्धि नही हो सकती। अनन्तानन्त प्राणियों में जो अमनस्क प्राणी है, वे तो इस तथ्य को समझ ही नहीं पाते और जो समनस्क प्राणी है, उन्हे भी ऐसा ज्ञान प्राप्त करने का संयोग बहुत कम मिलता है। पशु-पक्षी भी समनस्क प्राणी है, पर उन्हें ऐसा सयोग कहाँ मिलता है ? नारकी के नैरियक समनस्क होते हुए भी प्रतिक्षण दु:ख से इतने अधिक संतप्त होते है कि उन्हें दूसरी बात सोचने का अवकाश ही कहाँ मिलता है। देवताओं के पास जीवन जीने की कला का वोध पाने की क्षमता तो है पर वे अपने जीवन को सही रूप में अध्यात्म-जागरण के लिए नियोजित नहीं कर पाते।

एक मानव ही ऐसा प्राणी है कि वह अपने मस्तिष्क से सही ज्ञान करके अपने जीवन को उसी रूप में नियोजित भी कर सकता है, पर आज तो वह जीवन को सही रूप में जीने के लिए अपनी मनकल्पित बातों को लेकर ही चल रहा है। वह चाहता अवश्य है कि मै सही रूप में जीऊँ, उसके लिए वह विभिन्न तरीके से पुरुषार्थ भी कर रहा है। जीवन को सही ढंग से जीने की कला को पाने के लिए मानव निरन्तर पुरुषार्थ कर रहा है। अतीत के इतिहास को देखते हुए ज्ञात होता है कि मानव ने भौतिक दृष्टि से अचिन्त्य विकास किया है। कहाँ तो मानव के पास खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान भी नही था और कहाँ आज के मानव की स्थिति है। उसके पास खाने के लिए अच्छा से अच्छा स्वादिष्ट। पकवान है पहनने के लिए तरह-तरह के कीमती वस्त्र (वेश) है और रहने के लिए सुविधापूर्ण बंगले हैं। यही नहीं आकाश मे उडने के लिए भी उसके पास हवाई जहाज हैं, तो समुद्र में पैठ करने के लिए बड़े-वड़े स्टीमर है। आज के मानव ने ऐसे-ऐसे साधनों को ईजाद कर लिया है कि जिसकी सैकड़ो वर्ष पूर्व कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इतना

सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी मानव को न तो जीने की सही कला ही आयी है और न ही यथार्थ शांति की उपलब्धि ही हो पाई है। वल्कि इन भौतिक साधनो को प्राप्त करने के बाद उसका मन और अधिक अशान्त एव उद्विग्न बनता चला गया है। शांति के स्थान पर अशान्ति वढी है। सुख के स्थान पर दुःख बढ़ा है।

विचार आता है कि मानव जब इतना पुरुषार्थ कर रहा है। रात-दिन सुख पाने के लिए बेचैन हो रहा है फिर भी सुख को प्राप्त नही कर पा रहा है तो इसका कुछ न कुछ कारण अवश्य होना चाहिये। लगता है कि कही मूल मे ही भूल हो रही है। जब तक मूल की भूल का सुधार नहीं होगा, तव तक जीवन को सही रूप मे नही जीया जा सकेगा और जीवन को सही रूप में जीये विना सुख की प्राप्ति नही हो सकती। जिस प्रकार भोजन बनाने वाली बहिन भोजन-सामग्री बहुत ही सुन्दर रीति से तैयार करती है, किन्तु उसके द्वारा एक ही भूल हो जाती है, कि सब्जी में नमक के स्थान पर शक्कर और मिठाई मे शक्कर के स्थान पर नमक डाल देती है। बस, यह मूलभूत—भूल ही उसके सारे भोजन को बिगाड़ देती है। ठीक इसी प्रकार आज का मानव भी पुरुषार्थ बहुत कर रहा है, बहुत प्रयत्न कर रहा है, पर वह कही न कही ऐसी भूल अवश्य कर रहा है कि जिससे उसका सारा पुरुषार्थ सुख के स्थान पर दुःख की ही अभिवृद्धि करने वाला हो रहा है।

आज के युग में प्रायः सभी मानवों के पास यही बहुत बडी समस्या खड़ी है कि हम कैसे जीयें ताकि सुख-शांति का उपवन महक उठे। इसी समस्या का मौलिक समाधान समता विभूति, समीक्षण ध्यान योगी, विद्वद् शिरोमणि आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री नानालालजी म० सा० ने घाटकोपर, बम्बई के प्रवचनों में विभिन्न रूप से आगमिक धरातल पर अत्यन्त ही समीचीन रीति से प्रस्तुत किया है जिसमे मानव की मूलभूत समस्याओ का समाधान देकर मानसिक, वाचिक एव आध्यात्मिक कायिक रूप से किस प्रकार जीना चाहिये, इसका संयुक्तिक ढंग से विधान किया है।

इन प्रवचनों के सम्पादन में आचार्य प्रवर की भाव-भाषा को अक्षुण्ण वनाये रखने का विशेप ख्याल रखा गया है ताकि अध्येता आचार्य प्रवर की वाणी का साक्षात् रसास्वादन कर अपनी मूलभूत समस्याओं का समाधान कर सके। इसी शुभ मंगलमय भावना के साथ।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, वम्बई
५-९-८५, गुरुवार

—मुनि ज्ञान

अनुक्रमणिका

☐ **सम्यक्त्व के लक्षण—प्रशांत जीवन जीने की कला**

१— चातुर्मास स्वय के लिए उपयोगी बने १
२— जिनवाणी को समझें और स्वीकारें ६
३— ऐसे जीयें १३
४— वेग हो सवेग का १८
५— आत्मा ही आत्मा का कर्ता और भोक्ता २१
६— वेग हो निर्वेद का २५
७— परम शांति का महाद्वार—सम्यग्-दर्शन २९
८— आस्था का सुमेरु ३३
९— एकनिष्ठ आस्था का चमत्कारिक प्रभाव ३७
१०— प्रभु के प्रति सर्वात्मना समर्पण हो ४०
११— समर्पणा हो नवकार के प्रति ४४

☐ **सम्यक् दर्शन—जीवन जीने की सुदृढ़ नींव**

१२— निःशंक समर्पणा बने - जिनवाणी पर (सम्यक्दर्शन का प्रथम आचार) ४९
१३— निःशंक और निकांक्ष बनें (सम्यक्दर्शन का द्वितीय आचार) ५४
१४— मूल्यांकन करो वर्तमान का ५८
१५— स्याद्वाद और विचिकित्सा (सम्यक्दर्शन का तृतीय आचार) ६२
१६— अमूढ-दृष्टि (सम्क्दर्शन का चतुर्थ आचार) ६६
१७— उववूह (सम्यक्दर्शन का पांचवां आचार) ७१
१८— यात्रा अगम-देश की ७८
१९— स्थिरीकरण (सम्यक्दर्शन का छट्ठा आचार) ८२
२०— स्वधर्मी-वात्सल्य (सम्यक्दर्शन का सप्तम आचार) ८७
२१— भौतिकता से हटो—आत्मलक्ष्यी बनो ९१
२२— प्रभावना (सम्यक् दर्शन का आठवां आचार) ९७
२३— आराधना और प्रभावना १०४
२४— स्नात करें आत्मा को, ज्ञानालोक से १०८

☐ **सम्यक् ज्ञान—वैचारिक जीवन जीने की कला**

२५— कालाचार (सम्यक् ज्ञान का प्रथम आचार) ११३
२६— ज्ञान हो पर अनुभूति के साथ ११७
२७— महाप्रयाण (महासती श्री नगीनाकवरजी म. सा.) १२२
२८— मृत्यु भी महोत्सव है (७२ दिन के संथारे के साथ महासती श्री वल्लभकंवरजी म. सा. का महाप्रयाण) १२६
२९— ज्ञान का ज्ञान हो १३१
३०— विनयाचार-बहुमानाचार (सम्यक्ज्ञान का द्वितीय-तृतीय आचार) १३८
३१— उपधानाचार (सम्यक्-ज्ञान का चतुर्थ आचार) १४८
३२— अनिह्लवाचार (सम्यक्-ज्ञान का पांचवां आचार) १५७
३३— व्यंजन, अर्थ, तदुभय (सम्यक्-ज्ञान का छट्ठा, सातवां, आठवां आचार) १६२

☐ **सम्यक् चरित्र— जीवन के विशुद्ध आचारण की विधि**

३५— देखो स्वयं को स्वयं के आइने में (चारित्राचार के आठ आचार) १६९
३६— चारित्राचार के साथ ध्यान योग का समन्वय १७६
३७— मित्रता हो सभी आत्माओं पर १८२
३८— समिति-गुप्ति की साधना करें १९०
३९— जीवन जीने की कला १९४
४०— मूल्यांकन करो समय का २००
४१— योग का सही प्रयोग २०७
४२— माइक और मुनि धर्म २१४

☐ **साधना ऐसे करें**

४३— योगों का संशोधन हो २२७
४४— वाहर से हटें, भीतर मे झांकें (पर्युषण का प्रथम दिवस) २३३
४५— विचारों को परिष्कृत करे (पर्युषण का द्वितीय दिवस) २४१
४६— स्वतन्त्रता ऊपरी नही, वास्तविक हो (पर्युषण का तृतीय दिवस) २५१
४७— सम्यक्त्वी का आचार कैसा हो (पर्युषण पर्व पंचम दिवस) २५८
४८— आत्मा को हलकी वनावें (पर्युषण पर्व का छट्ठा दिवस) २६३
४९— प्रतिस्रोतगामी वने (पर्युषण का सप्तम दिवस) २७१
५०— माफी मागो और माफी दो (पर्युषण का आठवां दिवस सवत्सरी) २७८
५१— तप से सिंचित करो—जीवन को २९१
५२— सेवा कैसे की जाय ? २९८
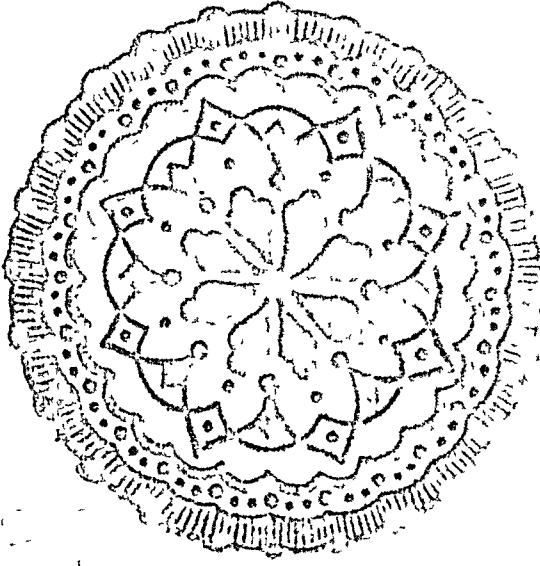
सम्यक्त्व के लक्षण

(प्रशांत जीवन जीने की कला)

- सम
- संवेग
- निर्वेद
- अनुकम्पा
- आस्था

१ चातुर्मास स्वयं के लिए उपयोगी बने

इस विराट् विश्व में यदि कोई श्रेष्ठतम मार्ग है तो वह है, सम्यक्‌दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्ष मार्ग। इस मार्ग पर चलकर आत्मा ऐसे स्थान पर पहुँच सकती है जहाँ वह अनन्त-अनन्त सुख मे तल्लीन हो जाती है। इस मार्ग का अतीव सरस-वर्णन तीर्थंकर महापुरुषों ने अपनी अमृतोपम वाचा के माध्यम से किया था। अनन्त उपकारी गणधारों ने उसे सूत्र रूप में गूंथा और वह आचार्यो की परम्परा से सुरक्षित रहा।

आज हमारा अहोभाग्य है कि हमें वही अमूल्य वाणी श्रवण करने को मिल रही है, पर हम सिर्फ उस वाणी के श्रवण तक ही सीमित न रहें, बल्कि गहन चितन मनन की स्थिति से उस आनन्ददायिनी सरिता मे अवगाहन करने की कोशिश करे। शास्त्रो में जो वाक्यावलियां होती है, वे गहन अर्थ से परिपूरित होती है। शास्त्रीय शब्दों को याद कर लेना एक वात है, और उसके अर्थ में अवगाहन करते हुए अपनी आचरण भूमि को सम्यक् वनाना, आत्म गुणों में अपने आपको रमण करना दूसरी वात है।

आनन्द रस प्रवाहिनी वीतराग वाणी का महत्त्व यदि जानना है, तो श्रुति को अनुभूति का रूप प्रदान करें। शास्त्रीय वाक्यार्थ को जीवन में उतारे। आपने कभी गन्ना चूसा होगा, गन्ना चूसते समय आप रस-रस तो चूस लेते है, और निस्सार को फेंक देते है, ठीक इसी प्रकार शास्त्र में हेय, ज्ञेय, उपादेय तीनों ही विषयों का प्रतिपादन होता है, आप ज्ञेय की जानकारी करें, हेय को निस्सार समझ कर छोड़ दें, और उपादेय रूपी मधुर रस को जीवन में उतार ले, तो आपका जीवन अतीव मधुर बन सकता है।

मै शास्त्रीय विषय के साथ-साथ कुछ बातें आध्यात्मिक जीवन सम्बन्धी भी कहना चाह रहा हूँ। अध्यात्म क्या है? भीतर की प्रकृति का अवलोकन करे कि मेरे जीवन में अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की वृत्ति है, या इससे विपरीत वृत्तियाँ मेरे जीवन में उभर रही है। जिसके जीवन में राग-द्वेष की वृत्तियाँ उभर रही है, तो उसका जीवन पशु से भी वदतर है। पशु में कम समझ होने से वह इतना खतरनाक कभी नही हो सकता जितना कि मनुष्य वन जाता है। मनुष्य यह विचार करे कि मै पशु से निम्न

स्थिति में हूँ या उच्च स्थिति में ? चिन्तन करने की यह धारा जव सम्यक् दिशा में गतिशील बनेगी, तव यह स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी प्रत्येक की आत्मा अरिहन्त सिद्ध के समान है। इस प्रकार सम्यक् वोध होने के बाद प्रत्येक मनुष्य के अन्तर में "मुझे अरिहन्त और सिद्ध तुल्य वनना है" यह दिव्य भावना जागृत हो एवं तदनुरूप साधना में उसका जीवन समर्पित वने, तव अशांति की स्थिति उसके जीवन में कभी भी प्रवेश नही कर सकेगी।

अशांति के झूले में झूलते हुए अधिकांश व्यक्ति शांति प्राप्ति के उपाय के खोजी बने हुए है, वे चाहते है कि हमें कोई ऐसा मंत्र मिल जाय, जिसको आजमाने से हमारा जीवन शांतिमय बन जाय, पर वे नही जानते कि शांति का सृजन करने वाला मंत्र कौनसा है ? दुनिया का सर्वश्रेष्ठ मंत्र नवकार है। पर यह ध्यान रखना है कि अन्दर में यदि विषय-कषाय की आग जलती रहे, और ऊपर से मंत्र का जाप करते रहें, तो उससे कभी शांति नही मिल सकेगी।

एक रूपक है—एक भाई महाराज के पास गया, और अपनी समस्या का समाधान करने के लिए कहा, तब महाराज ने कहा भाई ! तुम जिस समस्या का समाधान चाह रहे हो, मै उसका समाधान कर सकता हूँ। लेकिन मै पूछता हूँ कि इस समस्या के समाधान के बाद कोई दूसरी समस्या तो नही उठेगी। तो वह बोला, उठेगी और फिर उसका समाधान करने के लिए आऊँगा ! तब योगी ने समझाया इससे तो अच्छा है कि तुम सभी समस्याओं का समाधान कैसे किया जाय, यही जानलो तो फिर तुम अपनी समस्याओं का समाधान स्वय ही कर सकोगे। अंधे को एक स्थान से दूसरे स्थान से जाने के लिये बार-बार सहारा देने की बजाय उसके आँखे लगादी जाय तो वह स्वतः ही चल लेगा। वैसे ही तुम समस्या के समाधान का मूल ही पकड़ लो और वह है शरीर के भीतर में रहने वाली आत्मा की सम्यक् निर्णायक शक्ति।

अध्यात्म जीवन में अपना चरण क्षेप करो, यह मानकर चलो कि हर आत्मा में अनन्त ज्ञान शक्ति है, पर वह ज्ञान चेतना ज्ञानावरणीय कर्म से आवृत्त है। इससे ही वह अपनी ज्ञान शक्ति का रसपान नही कर पा रहा है, पर जैन दर्शन मानता है कि वन्धन की निर्मात्री आत्मा है तो वन्धन को तोड़ने वाली भी आत्मा ही है। अतः आत्मा सत्पुरुपार्थ के माध्यम से वन्धन से मुक्ति की प्रक्रिया को समझकर अपने आवृत्त ज्ञान को अनावृत्त करने का प्रयास करती है, तो उसके जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान हो सकता है। वह अनन्त शांति की अभिव्यक्ति कर सकती है, कारण कि केवलज्ञान पाने की क्षमता प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा मे है।

प्रभु महावीर का गरिमामय जैन धर्म हमें वता रहा है कि हमारे भीतर भी महावीरत्व छिपा हुआ है। उसे सद्प्रयत्नों से, संयम निष्ठ आचरण से

उजागर कर सकते हैं, उस महावीरत्व को उजागर करने में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान माता, पिता एवं गुरु का होता है, पर आज के माता-पिताओं की स्थिति बड़ी विचित्र होती जा रही है । जब मैं अमरावती से राजस्थान की ओर विहार कर रहा था, तब बीच रास्ते में एक ऐसा गाँव आया, जहाँ—गोचरी के घर बहुत कम होने से ज्यादा रुकने का प्रसंग नहीं बना, वहाँ से जल्दी ही विहार कर दिया, जो लोग पहुँचाने के लिये आये थे उनमें एक १२, १३ वर्षीय बालक भी था, जिसके पिताजी ने कहा—म० सा० इस बालक को आप अपने साथ ले जाओ और दीक्षा दे दो । तब मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ सोचा और पूछा कि आप इतने उदार कैसे बन रहे है, जिससे इस नन्हे से बच्चे को दीक्षा देने के लिये तैयार हो गये ? तब उन्होंने कहा कि यह लड़का बड़ा नटखट उद्दण्ड एवं चंचल है, कभी तो मेरे ऊपर और कभी अपनी माँ के ऊपर भी यह हाथ उठा लेता है । तब मैने पूछा कि—कभी आप पति-पत्नी में भी लड़ाई होती है क्या ? तब वह बोला हाँ कभी-कभी हो जाती है । तब मैंने कहा आपके ही संस्कारों का परिणाम है कि बच्चा उद्दंड बन गया है । जब तक माता-पिता नही सुधरेंगे, तब तक बच्चे को सुधारना व्यर्थ है । शिशु जीवन को सौम्य बनाने के लिये माता-पिता के सुन्दर कर्तव्य ही बच्चों में संस्कार का रूप लेते है । **जीवन दीप की ज्योति प्रज्वलित रखने के लिये संस्कार स्नेह (तेल) का कार्य करता है ।** शिशु जीवन में पड़े सुन्दर या असुन्दर प्रभाव उसके पूरे जीवन को बनाने या बिगाड़ने के उत्तरदायी होते हैं । **संस्कार बीज है जीवन वृक्ष को पल्लवित करने के लिये ।** बालक को जन्म देने मात्र से ही माता-पिता के कर्तव्य की इतिश्री नही हो जाती, वरन् उसके जीवन को सुसंस्कारित बनाने का उत्तर-दायित्व भी उन्ही पर है । शैशव में ही उदारता, वीरता, विनम्रता, धार्मिकता का गुण उसे माता के दूध के साथ मिलते रहना चाहिये । माता चाहे तो अपने बालक को कर्ण या भामाशाह बना सकती है । बालक को महावीर या भरत बनाना भी माता के हाथ में ही है । और चूहे की खड़खड़ाहट में घर छोड़कर भाग जाने वाला बुजदिल बनाना भी माता के हाथ में है । ब्रह्मचर्य के प्रज्ञापुंज से दीप्तिमान भीष्म भी उसे माता बना सकती है, और रावण बनाना भी उसी के हाथ है । बालक के जीवन पर एक सुशिक्षिता माता जो प्रभाव डाल सकती है, वहाँ सौ मास्टरों का प्रयास भी उसमें असफल रहेगा । माता का वीरत्व बालक को विश्व-विजयी बना सकता है । बन्धुओ ! जो बात मैं आपको बतला रहा था, उस नटखट बालक को दीक्षा देने के लिये कहने वाले पिता को मैने कहा कि "ऐसे बच्चे को आप हमें देना चाहते है, यह यहाँ आकर भी क्या करेगा, कही गुस्से मे आकर हमारे पात्र फोड़ बैठेगा ।" तो वह बोला—आप तो उसे सुधार सकते है । तो मैने कहा सुधार सकते है, पर कठिनाई यह है कि साधना के लिए तो सबसे पहले स्वभाव में सौम्यता आना जरूरी है ।

साधना में बढने वाले जिज्ञासुओं को चाहिये कि आज से वे अपनी आत्म

साधना में विशेष रूप से तल्लीन बन जायं। आत्मा के कर्म कलिमल को प्रक्षालित करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हो गया है। संत-सतियों का समागम एव वीर-वाणी का अनवरत प्रवाह पुण्यशाली पुरुषो को ही मिलता है, ऐसे दुर्लभ अवसर को सार्थक बनाना है।

आज चातुर्मासिक पक्खी के प्रसग से सत-सतियाँ जिन विशेप नियमो में आबद्ध हो जायेगे, उनका चातुर्मास पर्यन्त पालन करेंगे। पक्खी की दृष्टि से आपको यह चितन करना चाहिये कि संत-सती वर्ग तो वर्षा ऋतु के कारण अपनी सारी प्रवृत्तियो मे कितनी यतना बरतते है, अपने संयमी-जीवन को सुरक्षित रखने के लिये। वहाँ आप श्रावक-श्राविकाओ को भी "अहिसा परमोधर्म" का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये। रात्रि भोजन करने वाला व्यक्ति कभी-कभी अपने जीवन को भी समाप्त कर देता है। अतः रात्रि भोजन नही करना चाहिये। कच्चा पानी, जिसके अंदर सात प्रकार के जीवो की नियमा बताई है। वे सात प्रकार के जीव ये है—पानी का मूल जीव, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय, लीलन फूलन के जीव तथा समुर्च्छिम का जीव अतः पीने के प्रसग से कच्चा पानी चातुर्मास मे काम मे नही लाना चाहिये। धोवन पानी पिये जो हर क्षेत्र मे सुलभता से मिल सकता है। सिर्फ विवेक रखने की आवश्यकता है! सचित पदार्थो का भी बनती कोशिश त्याग करना चाहिये। इस चातुर्मासिक अवधि में ब्रह्मचर्य व्रत का सद् अनुष्ठान जीवन मे अपनाना चाहिये तथा परिग्रह वृत्ति का सकोच करना चाहिये। पुद्गलों से ममता हटाकर आत्मोन्मुखी बनें। क्रोधादि चार कषाय, अनन्त संसार वर्धक है। शास्त्रकारो ने कहा है।

"सिचन्ति मूलाइ पुणब्भवस्स"

ये कषाय भव-भवान्तरों के मूल का सिचन करने वाले है। इनको जितनी मात्रा मे जीतने का प्रयास करेंगे, उतनी ही आत्मिक शक्तियों का अभिवर्धन होगा। वनती कोशिश असत्य वचनों का प्रयोग नही करना, किसी को धोखा नही देना। अपनी श्रद्धा कैसी है? इसका विचार करना और सुश्रद्धा को मजवूत वनाना। इन चन्द वातों को आप चिन्तन मनन के साथ आत्मलक्ष्यी वनकर जीवन मे अपनावे तो आपके लिए चातुर्मास की सार्थकता सिद्ध होगी।

चातुर्मास काल मे साधु-साध्वी वर्ग को एक स्थान पर रहने का यही उद्देश्य है कि जीवो की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए आत्म आराधना में तन्मय वनकर आध्यात्मिक जीवन की साधना सम्यक् रूपेण कर सके। आध्यात्मिक जीवन की धार्मिक खेती को पनपाने का यह सौम्य प्रसंग है, आध्यात्मिक जीवन की खेती अच्छी तरह करने के लिये आप कटिवद्ध वन जायं। चाहे कोई आपको कितना ही उत्तेजित करे, पर आप अपने क्षमा गुण से विचलित न होवे। चाँटा

का उत्तर चाँटे से नही देवे, यह बात आपके जीवन को आदर्शमय बनाने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है । रतलाम मे चातुर्मास का प्रसंग आया, वहा सुनने को मिला कि व्याख्यान मंडप मे व्यवस्था करने वाले भाई कन्हैयालालजी सा. बोथरा, जिनको एक भाई ने आवेश मे आकर भरी सभा के बीच चाटा मार दिया। हालांकि वे स्वय स्वभाव के तेज बतलाते हैं, पर आध्यात्मिक वायु मंडल का अनुपम प्रभाव कि उन्होंने किसी भी रूप से कुछ भी प्रतिकार नहीं करते हुए हाथ जोड़कर अपने क्षमा गुण का परिचय दिया । जीवन को सही ढग से जीने के लिये इस क्षमा को अपनावे ।

बन्धुओ ! क्षमा से बढकर अपेक्षा से कोई तप नही है । आप अन्य कुछ भी नही कर सके तो कम-से-कम क्षमा-वृत्ति का अधिकाधिक अपने जीवन मे विकास करने का लक्ष्य बनावे । क्रोध का निमित्त उपस्थित होने पर क्षमा के गुणो का चितन करने से क्रोध का निग्रह हो सकता है । क्षमा अमृत की धारा है जो क्रोध के विष को समाप्त कर देती है, अन्त:करण को शांति से आप्लावित कर देती है। हमारी चित्तवृत्तियो को स्वस्थ बनाये रखती है । अत: इस गरिमामय चातुर्मासिक अवधि को क्षमा गुण के विकास के साथ सुसफल बनावे, इन्ही मगलमय शुभ भावनाओ के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

चातुर्मासिक चतुर्दशी
१-७-८५, सोमवार

२ | जिनवाणी को समझें और स्वीकारें

आत्म-पवित्रता के लिए वीतराग देव का स्मरण मनो-मस्तिष्क में लेकर उनके द्वारा प्रवाहित ज्ञान-गंगा मे अवगाहन करने का सुप्रसंग चल रहा है। यह अमूल्य जीवन और दुर्लभ मानव जन्म, आत्म स्वरूप की अवाप्ति के लिए अत्युत्तम है।

लक्ष्य निर्धारण करके लक्ष्य को साधने के लिए साधना के मार्ग विषयक चिन्तन, अतीव अपेक्षणीय है। साध्य का स्वरूप समझने हेतु प्रभु ने नय और निक्षेप का विधान किया है। साध्य ही नही वरन् साधना मे प्रगति हेतु भी नय और निक्षेपों का विधान अति आवश्यक है। नयों के मूल सात भेद है—जैसे १—नैगम नय, २—सग्रह नय, ३—व्यवहार नय, ४—ऋजु सूत्र नय, ५—शब्द नय, ६—समभिरूढ नय एवं ७—भूत नय, ये दार्शनिक दृष्टिकोण से है। संक्षिप्त में नय के दो ही भेद बताये है—निश्चय नय, व्यवहार नय, अर्थात्—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। उनमें प्रारम्भ के तीन नय द्रव्यार्थिक नय की कोटि में लिये जाते है, अवशेष चार नय पर्यायार्थिक की कोटि में गिने जाते है, द्रव्यार्थिक नय में जो संग्रहनय है, उसे अपेक्षा से निश्चय नय भी कहते है और व्यवहार नय को व्यवहार नय में से लिया जाता है। आगे के नय पर्यायार्थिक नय मे आ जाते है, यह एक अपेक्षा है। दूसरी अपेक्षा से सातो नय व्यवहार भी है और निश्चय नय भी है, क्योकि गुणपर्यायवद् द्रव्य को सभी नय ग्रहण करते है। जो गुण-पर्यायवद् द्रव्य है, वह शाश्वत है, अतएव वह निश्चित ही नित्य है। इस दृष्टि से सातों सुनय निश्चय नय माने जाते है, और उसका जब पर्याय की दृष्टि से विवेचन किया जाता है तब उस विवेचना में सातो नयों को व्यवहार नय के साथ वतलाया जाता है। जिससे सातो नय व्यवहार नय मे भी कहे जाते है।

जिस प्रकार विश्व की प्रत्येक वस्तु द्रव्य और पर्याय से युक्त होती है, वस्तु मे से द्रव्य और पर्याय को त्रिकाल मे भी अलग नही किया जा सकता, उसी प्रकार वस्तु के यथा तथ्य विवेचन करने में निश्चय नय और व्यवहार नय को अलग-अलग नही किया जा सकता, जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलू होते है, उसी प्रकार हर वस्तु की विवेचना मे निश्चय नय और व्यवहार नय दोनों पहलू अनिवार्य है। आज के कई बुद्धिवादी कहलाने वाले व्यक्ति केवल निश्चय को ही लेकर चलते है, उनकी अवधारणा है कि व्यवहार की कोई आवश्यकता नही है।

निश्चय ही वस्तु के यथातथ्य स्वरूप को स्पष्ट करता है, उनका यह मानना सत्य नही है । जिस प्रकार एक ही तरफ से मुद्राकित सिक्का खोटा माना जाता है और बाजार में नही चलता है, उसी प्रकार केवल निश्चय नय से मुद्रांकित नय का सिक्का खोटा होता है और विश्व की वस्तु विवेचना में यथार्थ रूप में खरा नही उतरता ।

जिस प्रकार रथ के दो पहिये होने पर रथ चलता है, दिन रात से समय का विभाग किया जाता है, उसी प्रकार निश्चय और व्यवहार से वस्तु स्वरूप की विवेत्रना की जाती है । इसी प्रकार सातों नय भी परस्पर सापेक्ष है, उसमें किसी भी एक नय को निरपेक्ष करने पर और दूसरे नय को मान लेने पर वे सुनय न रहकर दुर्नय हो जाते है । इन दोनों में से किसी एक का आग्रह करना दुर्नय है । और वह मिथ्यात्व की कोटि में आ जाता है । अब मै निश्चय और व्यवहार का विस्तृत विवेचन न कर संक्षेप में इतना ही कहना चाहूँगा कि ये दोनों नय, वाणी से सत्य की किस प्रकार अभिव्यक्ति हो सकती है, इसका विधान करते है । प्रत्येक वस्तु अनत धर्मात्मक है, उन्हे किसी एक पहलू से नहीं समझा जा सकता । एकांगी दृष्टि वस्तु को सही रूप मे देखने में असमर्थ है, इसलिये जैन दर्शन में नयों का विवेचन है । जैन दर्शन के नयवाद को ठीक ढंग से समझ लेने पर समस्त विवादों का समाधान हो जाता है । नयवाद की यही उपयोगिता है ।

अनेकान्तमय जैन दर्शन की आधारशिला इस नयवाद को, सम्यक् रूपेण समझने के लिये सम्यग्दर्शन की नितान्त आवश्यकता है । बन्धुओ ! **"सद्धा परम दुल्लहा"** महामूल्यवान श्रद्धारूपी रत्न बहुत दुर्लभ है । जो वस्तु दुर्लभ होती है वह अनमोल एवं महत्त्वपूर्ण होती है । नवतत्त्व प्रकरण में बताया है कि "जो जीवादि तत्त्वों का यथार्थ में ज्ञाता होता है, उसे सम्यक्त्व होती है । कदाचित् क्षयोपशम की तरतमता से कोई पूर्णरूप से उन तत्त्वों को नही जानता है, किन्तु उसको "तंचेव सच्चं नीशंकंजं जिणेहि पवेययं" जो जिनेश्वर देव ने कहा है, वही सत्य है । जिनेश्वर भगवन्तों के वचन अन्यथा कदापि नहीं होते, ऐसी दृढ़ आस्था जिसको प्राप्त है, उसका सम्यक्त्व निश्चल है ।"

जो आत्मा अन्तर्मुहूर्त भाव के लिए भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लेती है । उसका अनन्त संसार परिभ्रमण परिमित हो जाता है, अपार्ध पुद्गल परावर्तन से अधिक वह संसार में परिभ्रमण नही करता, उसकी मुक्ति सुनिश्चित हो जाती है ।

इस महिमामय सम्यक्त्व का प्रथम लक्षण "सम" है । जो गुण सम्यग्दृष्टि आत्मा में अवश्य पाये जाते हैं, वे गुण सम्यक्त्व के लक्षण कहलाते है । सम्यग्दृष्टि

आत्मा "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की दृष्टि को अपने जीवन में प्रमुख रूप से स्थान देकर चलती है। वह यह मानती है कि जैसे सुख दुःख की अनुभूतियों का मैं अनुभव कर रहा हूँ वैसे ही सभी संसारी आत्माएँ सुख दुःख की अनुभूतियाँ करती है। अतः जो दूसरों का व्यवहार मुझे अपने लिए अच्छा नही लगता है, वैसा व्यवहार मै अन्यो के साथ कभी नही करूं। 'सम' लक्षण जब अन्तर चेतना में विकसित हो जाता है तो जीवन समुज्ज्वल बनते कोई देरी नही लगती।

सम्यक्त्व का दूसरा लक्षण है 'संवेग' जिसका तात्पर्य है, सम पूर्वक वेग अर्थात् गति। अपने जीवन की गति को सौम्य बनाना चाहते हो तो सर्व प्रथम अपने जीवन में समता भावों का सृजन करे। मन ड्राईवर है, शरीर रूपी गाडी हांकने के लिये। मन से गति हो रही है, पर यह विचारना है कि मन की यह गति समभाव से हो रही है या विषम भाव से हो रही है ?

जब मैं सवाईमाधोपुर में गया, वहाँ लगभग सवा सौ घर थे, बहुत से सामायिक, पौषध वगैरह हुए। व्याख्यान के प्रसंग से मैंने जब वहाँ 'सम' शब्द की व्याख्या की, तब एक परिवार जहाँ देवरानी, जेठानी के बीच झगड़ा हो रहा था, मेरे कहने से भाई तो परस्पर झगड़ा समाप्त करने के लिए तैयार थे, पर उनकी पत्नियाँ सहमत नही हो रही थी, जब मैंने उन बहिनो को समझाया तब जेठानी ने कहा कि मै तेले की, अठाई की तपस्या कर सकती हूँ, पर देवरानी के घर नही जाऊँगी। तब मैंने समझाया कि तुम तेला क्या मासखमण भी करलो, परन्तु जब तक प्रत्येक आत्मा को अपनी आत्मा के समान देखने की भावना व सम्यक्त्व का भाव नही बनेगा, तब तक तुम्हारी तपस्या का विशेष कुछ भी फल नही मिलने वाला है। 'उत्तराध्यन' सूत्र मे प्रभु महावीर ने बताया है कि—

"मासे मासे जो बालो, कुसग्गेणं तुभुंजई।
न सो सुयक्खाय धम्मरस, कलं अग्घइ सोलसि ॥"

अर्थात् "जो बालक अर्थात् अज्ञानी जीव प्रति मास तपश्चर्या करके पारणे मे कुशाग्र-मात्र आहार करता है, वह तीर्थंकर देव के कहे हुए सुविख्यात धर्म की सोलहवी कला को भी प्राप्त नही होता है।"

सम्यक्त्व विहीन तपस्या का कुछ भी महत्त्व नही है। और समभाव की सर्जना के बिना सम्यक्त्व की स्थिति जीवन मे नही रह पाती है। यह सुनकर वह बहिन जल्दी से सरल भावो के साथ सारा झगड़ा समेट लेती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक समभाव की वृत्ति जीवन मे नही आयेगी, तब तक सम्यक् वेग की स्थिति भी जीवन में प्राप्त नही कर सकोगे। आत्म शक्ति, जो तीन योग मे सम्बन्धित है। जब मन, वचन और काया मे सम्यक् वेग आजाएगा

तो आत्म-शक्ति की अनूठी अपूर्व उपलब्धि हो जायेगी। मिथ्यात्व को जड़ मूल से उखाड़ने के लिए संवेग अति आवश्यक है। विभाव वृत्तियों से जितनी विषमता जीवन मे व्याप्त है, उसे स्वभाव वृत्तियों में आकर समता में बदलने का यह दुर्लभ मनुष्य जन्म का भव्य प्रसंग मिला है।

जिसमें ज्ञान नही, उपयोग नहीं वह जड़ तत्त्व है, जो जड़ है, उसमें चेतना नही होने से राग-द्वेषादि कुछ भी वृत्तियाँ नही होती है, राग-द्वेष सकल्प-विकल्प की स्थितियाँ चैतन्य में बनती है। वह चैतन्य अपने-अपने निज स्वरूप को छोड़कर राग-द्वेषादि विभाव वृत्तियों में वह रहा है। उसे विभाव से हटाकर स्वभाव मे लाना है। जब आत्मा स्वरूप मे पूर्ण विकसित हो जाती है, अर्थात् वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी वन जाती है, उस अवस्था में, उसमें, राग-द्वेष नही रहते हैं। वह चेतना राग-द्वेष रहित बन जाती है। वर्तमान में इस संसार में रह रहे व्यक्ति वंध से जकडे हुए है और दुःख भोग रहे है।

यह चतुर्गति रूप ससार एक तरह से जेल ही है। जहाँ यह जीवात्मा कर्म बेड़ियो में वंधी विविध यातनाएँ सहन कर रही है, पर आज भौतिक-ऐश्वर्य-विलास को प्राप्त मानव कहाँ मान रहा है कि मै जेल में हूँ? यही नही अनन्त शक्तिमय आत्म स्वरूप से अनभिज्ञ बन, राग द्वेष आदि वृत्तियों को विकसित करता हुआ इस पवित्र आत्मा को संसार रूपी जेल में लम्वी स्थिति तक रखने का कार्य कर रहा है। यह मानकर चलिये कि राग, द्वेष, आसक्ति, मोह आदि-आदि जो आत्मा को मलिन बनाने वाली विभाव-वृत्तियाँ है, उनसे यह आत्मा जितनी-जितनी परे हटती है—उतनी-उतनी अपने निजी आनन्दमय स्वरूप की अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। जितनी-जितनी त्याग वृत्ति जीवन में पनपती है, उतनी-उतनी बंधन से आत्मा मुक्त होती है।

तपश्चर्या शरीर से ममत्व हटाने पर ही हो सकती है। जब तक शरीर पर मूर्च्छा भाव है, तब तक आप तपश्चर्या में अपना कदम आगे नही बढ़ा सकोगे। आज कई व्यक्ति स्वयं तो आसक्ति को नही छोड़ते पर जो अन्य आसक्ति छोड़कर तपोमार्ग मे आगे बढ़ना चाहते है, उसमें भी बाधक बनते है। मै आपसे यही कहना चाहूँगा कि आप तपस्या न भी कर सकें, तो कोई बात नही, पर अन्य-अन्य भी वहुत सी ऐसी बातें है, जिनसे आसक्ति हटाकर अपनी आत्मा को कर्म से हल्का बना सकते है। जैसे व्याख्यान स्थल में हों तो जीमन की आसक्ति को छोड़े, स्वधर्मी अन्य भाइयों को भी वैठने का बराबर स्थान देवें, किसी के द्वारा धक्का लग जाय तो क्षमा गुण प्रगट करे।

आज के लोग, किसको महत्त्व दे रहे हैं, भौतिक सम्पत्ति को या आध्यात्मिक सम्पत्ति को? पैसों का मूल्यांकन करना है, अथवा भगवान् की आज्ञा का

मूल्यांकन करना है ? यदि आज आपके आमदनी ज्यादा होने वाली है और आप धार्मिक स्थल में आने के समय में अर्थात् व्याख्यान में आने के समय में भी दुकान में बैठे हों तो किसका आप मूल्यांकन कर रहे है ? पैसों का या आत्मिक भाव की आराधना का ? आपकी आत्मा ऐसी वीर बन जाय कि पैसों से, भौतिकता से, आसक्ति छोड़ संवेग की स्थिति से मोक्ष प्राप्ति के तीव्र अभिलाषी बनकर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो जाय।

•

आत्म रमण रूप सामायिक का महत्त्व भी समझे। आपको ज्ञात होगा कि जब राजा श्रेणिक ने पूर्व निबद्ध नरक के आयुष्य को विफल करने का उपाय पूछा तब भगवान ने कहा कि--यदि तुम श्रमणोपासक पूणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद सको तो नरक से अपना बचाव कर सकते हो। दूसरे दिन प्रातःकाल ही राजा श्रेणिक पूणिया श्रावक के आंगन में पहुँचा। राजा का बिना किसी कारण और बिना निमन्त्रण अपने आंगन में देख पूणिया श्रावक हर्ष विभोर हो उठा। प्रसन्नता के साथ राजा के आगमन को प्रश्न चिह्न बनाये खड़ा रहा। पूणिया श्रावक की प्रश्नायित आँखों पर गौरव और याचना भरी एक निगाह डालते हुए श्रेणिक महाराज ने पूछा "क्या तुम प्रतिदिन सामायिक करते हो ?" पूणिया श्रावक ने प्रत्युत्तर दिया कि—हाँ राजन् ! **सामायिक मेरी जीवन यात्रा का प्रथम चरण है।**

तब श्रेणिक महाराज ने कहा—तुमने तो बहुत सामायिकें की हैं और कर रहे हो। क्या तुम मुझे अपनी एक सामायिक दे सकते हो ? यह सुनकर पूणिया श्रावक कहने लगा— स्वामिन्। मेरे पास जो कुछ है, वह आपका ही है, मै आपके किसी काम आ सकूं तो उससे बढ़कर और क्या बात होगी ? और जब श्रेणिक महाराज एवं पूणिया श्रावक लेने देने के लिए तत्पर हो गये। तब भगवान् महावीर से सामायिक की कीमत पूछी, तो भगवान् ने फरमाया कि—राजन् ! तुम्हारे भण्डार में कितनी सम्पत्ति है ? सम्राट् ने प्रत्युत्तर दिया—भगवन् ! वावन डूंगरियां खड़ी हो जाय इतनी सम्पत्ति है, तब भगवान् ने कहा कि—राजन् ! आपकी यह सम्पत्ति तो पूणिया श्रावक की सामायिक की दलाली के लिये भी पर्याप्त नही है। तो फिर सामायिक का मूल्य कहां से दोगे ?

वन्धुओ ! सामायिक की दलाली का महत्त्व तो आप समझ ही गये होगे, तो फिर विचार करिये कि सामायिक का कितना क्या महत्त्व है ? आप स्वयं अनुमान लगा सकते है। आप सामायिक की आराधना करते हुए वीतराग वाणी का श्रवण करे, और इस वात का ज्ञान करे कि भगवान् की किस विषय में क्या-क्या आज्ञाएँ हैं और उसका मूल्यांकन कितना कर रहे हैं ?

भगवान् ने 'स्थानाङ्ग' सूत्र में वताया है कि संयमी वस्त्र क्यों रखता है ? इसके तीन कारण हैं, जैसे कि इस विपयक मूल पाठ है—

"तिहिं ठाणेहि वत्थं घरेज्जा, तंजहा हिरिवत्तियं,
दुगुंछावत्तियं, परिसहवत्तियं"

अर्थात् तीन कारणो से साधु साध्वी वस्त्र को धारण करें, जैसे—
१. लज्जा के कारण, २. लोग जुगुप्सा न करें इसलिए तथा ३. शीत आदि परिषहों को रोकने के लिये। (स्थानाङ्ग सूत्र, तीसरा स्थान, तीसरा उद्देशक)

बन्धुओ! साधु जो वस्त्र ग्रहण करता है, उसमें मैल तो हो ही जाता है, और यदि उसमें जूं पड जाय तो उसकी सुरक्षा करना, खून पिलाना इत्यादि सारी यातना की वृत्ति भगवान् ने बताई है, पर जूं आदि न पड़े इसके लिये वस्त्र धोवन का, वह वस्त्र किन पात्रों मे धोये इसके लिए साधु को विवेक बताया है। साधु को वस्त्र लेने के तीन कारणो में से एक कारण—न दुगुंछा, जुगुप्सा न करें, यह भी बतलाया है, जब जुगुप्सा मिटाने के लिए वस्त्र का विधान प्रभु ने किया, तो जो वस्त्र पहना जा रहा हो यदि वह इतना मलिन एवं दुर्गन्धमय हो जाय कि जिससे जूंए पड़ने लग जाय। प्रथम महाव्रत में दोष का प्रसंग आ जाय, लोग दुगुंछा करने लगे तो फिर क्या यह भगवान् की आज्ञा होगी? नही। अतः वस्त्र भी ऐसा हो कि न लोग दुगुंछा करें और न ही वह चाक चिक्य से युक्त हो। ऐसा वस्त्र पहनना भगवान् की आज्ञा में है, इस आज्ञा को पालने के लिए यदि वस्त्र इतना मलिन हो रहा हो कि उसमें फूलन या जूंए पड़ने की सम्भावना है तो साधु विवेक के साथ उसे धो ले, ताकि प्रथम महाव्रत की सुरक्षापूर्वक भगवान् की आज्ञा का भी पालन हो जाय।

महाप्रभु ने साधु को तीन तरह के पात्र रखने का भी विधान किया है।

"कप्पइ णिग्गंथाणं वा, णिग्गंथीणं वा तओ पत्याइं, धारित्तए वा,
परिहस्तिए वा, तंजहा लाडयपाए वा दारुयपाए वा महियापाए वा॥"

अर्थात् साधु और साध्वियों को तुम्बी के, काष्ट के और मिट्टी के बने हुए तीन प्रकार के पात्रों को ही ग्रहण करना और उनका उपयोग करना कल्पता है। (स्थानाङ्ग सूत्र, तीसरा स्थान, तीसरा उद्देशक)

अतः मिट्टी का वर्तन जो पुराना है, गृहस्थों के अव काम का नही है, उसे लेकर वस्त्र धोवन योग्य बना कर उसमें साधु यदि विवेक के साथ वस्त्र धोता है, तो वह भगवान् की आज्ञा की आराधना करता है।

यह तो आपको जानकारी के लिए साधु जीवन सम्वन्धी वात भी वतला गया हूँ। अगर आप लोगों को पूर्ण आत्म-प्रकाश उजागर करना है तो जैसे—आप लोग शरीर की वाह्य मिट्टी को हटाने के लिए स्नान करते हो, साबुन लगाते हो, उसी प्रकार आत्मा को साफ करने के लिये सामायिक की स्नान

करिये। ध्यान का साबुन लगाइये। यह स्नान महत्त्वपूर्ण है। इससे आपको आत्मा की उज्ज्वलता प्राप्त हो सकती है। आप यह हर समय ध्यान रखे कि मैं इस प्रकार के चिन्तन के साथ सम्यक् श्रद्धा में मजबूत रहते हुए जितना तप, त्याग, तिविहार, चौविहार, सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, ध्यान कर सकूँ करूँ, इस प्रकार करने से आपकी आत्मा पवित्र बनेगी, जीवन सफल बनेगा।

बन्धन से मुक्त होने के लिए स्वदार-मर्यादा और परदार का त्याग एवं परिग्रह वृत्ति को संकुचित करिये। सम्पत्ति की मर्यादा कर विवेकपूर्वक उस प्रतिज्ञा की परिपालना करना। कषाय पतला करने में यत्नशील रहना, दान, शील, तप, भावना में अधिक से अधिक अपनी आत्मा को जोड़ना। उत्तेजना वाचक शब्दों को सुनकर भी क्षमाशील बन क्षमा गुण का विकास करना, आत्मपोषक है, इसके लिए विशेष रूप से आप सभी को चेतावनी है।

चातुर्मास काल में प्रत्येक भाई बहिनों को अत्यधिक उदारता का व्यवहार करना चाहिये। मेघकुमार के पूर्व भव का जीव हाथी, शशक का उदाहरण समक्ष रखकर हर आत्मा को साता पहुँचाये। ज्ञान, दर्शन चारित्र की वृद्धि के लिए चातुर्मास काल प्रारम्भ हो चुका है। अतः रत्नत्रय की आराधना में संलग्न हो जायें।

प्रत्येक आत्मा निश्चय और व्यवहार दोनों नयों को सम्बन्धित करके अपनी आत्मोन्नति का लक्ष्य प्रमुख रूप से निर्धारित कर वीतराग भगवान् की आज्ञा की आराधना करेगी तो अवश्यमेव उस आत्मा के लिए वर्षावास के ये दिन सार्थक बनेंगे।

मोटा उपाश्रय २-७-८५
घाटकोपर, वम्बई मंगलवार

३ | ऐसे जियें

जिन आत्माओं ने, अनादि अनन्त कारण से आ रहे कर्मप्रवाह को अपुनर्भाव से व्यवच्छिन्न कर दिया है। विभाव में भटक रही आत्मा के स्वभाव को अभिव्यक्त कर दिया है। चेतना का भौतिक स्वरूप प्रकट कर दिया है। जिनके ज्ञान में लोकालोक हस्तामलकवत् स्पष्ट परिलक्षित होते है। जिनके किसी भी प्रकार का राग-द्वेष अवशेष नही रहा है। मोह की दुर्भेद जड़ों को जिन्होंने जड़ मूल से उखाड़कर फेक दिया है। विचारों के प्रवाह को सर्वथा रूप से संशोधित कर दिया है। ऐसी वीतराग दशा प्राप्त आत्मा का, भव्यात्माओं को प्रति समय स्मरण करते रहना चाहिये।

यह स्पष्ट सत्य है कि जिसका आकार मन में बसाया जाता है, वह आदमी भी एक दिन उसी रूप में बन सकता है। जिस प्रकार दर्पण के सामने जैसा बिम्ब होगा वैसा ही उसमें प्रतिबिम्ब पड़ता है। यदि सामने राक्षस का बिम्ब होगा तो दर्पण में भी राक्षस का ही प्रतिबिम्ब पड़ेगा। इसी प्रकार जिस व्यक्ति का मन जिसके प्रति सर्वथा रूप से अनुरक्त होता है तो उससे उस व्यक्ति की आत्मा प्रभावित हुए बिना नही रहती है। ध्यान साधना का महत्त्व भी इसलिए है कि जिस साध्य को हमें पाना है उसका मन में ध्यान किया जाय, मन को वह साध्य पाने के लिए मजबूत किया जाय, यदि मन उस साध्य को पाने के लिए मजबूत हो जाता है तो आत्मा की शक्ति मन से प्रवाहित हो मजबूत होकर वचन और काया मे भी परिणत होने लग जाती है। इसका आप व्यावहारिक अनुभव कर सकते है। कोई भी कार्य यदि आपको करना है तो उसका नक्शा पहले मन में तैयार होगा। जब मन में अच्छी तरह नक्शा जम जायेगा, तभी अस्खलित रूप से, उसी मन के विचारों के अनुरूप वचन प्रयोग होगा और वही काया में भी परिणित होने लगेगा।

जब आज के वैज्ञानिक मन की कोशिश से हजारों मील दूर रहने वाले व्यक्ति को प्रभावित कर सकते है तो क्या उस शक्ति से आत्मा प्रभावित नहीं होती ? वल्कि यों कहना चाहिए कि दूसरा व्यक्ति वाद मे प्रभावित होगा, पहले उसकी खुद की आत्मा प्रभावित होगी। जिस मालिक के लिए नौकर फूल तोड़कर ले जा रहा है, वह मालिक तो फूल को हाथ में आने पर ही सूंघ सकेगा, पर उसके पहले वह नौकर सुगन्ध को ले लेता है। वैसे ही हमारे विचारों

से सबसे पहले हम ही प्रभावित होते है। यदि हमारे विचार अच्छे होंगे तो हमारा चैतन्य देव भी पवित्र रहेगा और हमारे विचार बुरे होंगे तो हमारी चेतना भी बुरी होगी।

जिस प्रकार क्रोध करने वाला व्यक्ति जिस पर क्रोध कर रहा है, गुस्से में उबल कर अनर्गल बोल रहा है। वह व्यक्ति उस सामने वाले व्यक्ति के क्रोध को शांत भाव से सहन कर लेता है, तो उसका तो कुछ नही बिकता, बल्कि उसके तो शक्ति संचित होती है पर क्रोध करने वाले व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी तरफ से हानि होती है।

आज के युग में मन की धारणाओं से होने वाले अनेक प्रयोग सामने आ चुके हैं। वैज्ञानिकों ने प्रत्यक्ष कर दिखला दिया है कि मन के प्रयोग से कैसे विचित्र कार्य संघटित किये जा सकते है। चेकोस्लावाकिया की राजधानी प्राह के अन्दर घटित वेटिस्लावकापका का घटनाक्रम पढ़ने को मिला था। उसमें बतलाया गया है कि वह 'प्राह' के बाहर बैठकर संकल्प करके वृक्ष पर बैठे पक्षियों को नीचे गिराकर खत्म कर देता था। जिसके इस प्रयोग को देखने व जानने के लिए योरोप के लगभग २०० वैज्ञानिक उसके पास आये थे। उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था, खोजने पर ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति अपनी संकल्प शक्ति से उन पक्षियों की प्राण ऊर्जा को खेंच लेता था, इस प्रकार उन्हे खत्म कर देता था। संकल्प शक्ति के ऐसे अनेक परिणाम सामने आये है।

आगम के धरातल पर तो मन के विचारो का प्रभाव किस प्रकार पडता है, यह स्पष्ट हो है। प्रसन्नचंद्र राजर्षि के विचारों द्वारा आने वाला उतार-चढाव इसका पुष्ट प्रमाण है। तदुलमत्स्य द्वारा हिसक मनोवृत्ति से होने वाली सातवीं नरक के बंधन की स्थिति भी विचारों के परिणाम को स्पष्ट करती है। इस प्रकार जब अशुभ विचार अपनी आत्मा को एवं बाहरी आत्माओं को प्रभावित करने में इतने समर्थ हैं तो शुभ विचार अपनी आत्मा को शुभ रूप में प्रभावित करने में कैसे नहीं समर्थ होंगे ? अवश्य समर्थ होंगे।

बन्धुओ ! इसलिए मैं प्रार्थना के माध्यम से अपने आप में प्रभु का स्मरण करने के लिए कह रहा था। जब स्वयं की संकल्प शक्ति, महाप्रभु के स्वरूप की ओर नियोजित होगी और उधर ही निरन्तर लगती जायेगी तो एक न एक दिन वह परम स्वरूप को प्राप्त करने के लिए भी समर्थ हो जायेगी। जैसा कि नीतिकार कहते है कि—

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"

जैसी जिसकी भावना होती है, उसी रूप में सिद्ध भी होती है। किन्तु जो आत्माएं महाप्रभु के स्वरूप को स्मरण न कर इन्द्रियो की आसक्ति में रत

रहती हैं, भौतिक तत्त्वों को ही महत्त्वपूर्ण समझ कर चलती है। ऐसी आत्माएं कभी भी अपने आत्मिक स्वरूप को निखार नही पाती है। और जब तक आत्मा का भौतिक स्वरूप नही निखरता तब तक वह सही रूप में सुखी भी नही बन सकती।

जीवन तो सभी जी रहे है पर जीना कैसे चाहिये इसका बहुत कम लोगों को भान होता है। वे तो केवल एक हेबिट से जी रहे है। खाना, खाना है, इसलिए खा लेते है, पानी, पीना है इसलिए पी लेते है, सोना है इसलिए सो लेते हैं किन्तु इन सब कार्यो को किस प्रकार किया जाय, इसे करते हुए मनोयोग की स्थिति कैसी होनी चाहिये। इन सब बातों की ओर आज के मानव का ध्यान बहुत कम जाता है। इसी का परिणाम यह है कि वह शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक किसी भी ढंग से सुख की वास्तविक खोज नहीं कर पाता।

सुख से जीने के लिए सबसे पहले अपने विचारों को परिष्कृत करने की नितान्त आवश्यकता है। जब पानी की टंकी में रहने वाला पानी फिल्टर होगा, तभी नलों के माध्यम से आने वाला पानी भी साफ स्वच्छ आयेगा। यदि टंकी का पानी साफ नही है तो नलों में आने वाले पानी में तो स्वच्छता आ ही नहीं सकती। क्योकि नलों में वही पानी आता है, जो टंकी में है। ठीक इसी प्रकार जब मानसिक जीवन स्वच्छ, नैतिक एवं धार्मिक नही बनता तब तक व्यावहारिक जीवन में नैतिकता, प्रामाणिकता एव सुख की वास्तविक स्थिति नहीं आ सकती। यदि ऊपरी सुख की स्थिति परिलक्षित भी हो तो वह चमकता हुआ कांच का टुकड़ा जो हीरे का आभास करा देता है, उसी रूप मे ही वह बाह्य स्थिति, सुख का आभास कराने वाली होगी। इसलिए भव्यात्माओं को ऐसी बाहरी सजावट से हटकर अन्तर की सजावट को करने के लिए प्रयास करना चाहिये। सुख से जीने के लिए सबसे पहले मानसिक संतुलन आवश्यक है।

आज के कई भाई सुख पाने के लिए धन-संपत्ति को महत्त्वपूर्ण समझते है, वे धन से ही सुखपूर्वक जीने का प्रयास करते है। पर उनका यह मानना निरीह भ्रान्ति भूल है। केवल धन से कोई भी व्यक्ति सुख से जी नही सकता। एक पशु जिसे यह ज्ञात है कि इस जमीन के नीचे करोड़ों की सम्पत्ति है। वह उसका संरक्षण करके भी चलता है। ध्यान भी रखता है कि कोई उसे उठाकर न ले जाय। किन्तु क्या वह पशु उस धन से सुख पा सकता है। शांति से जी सकता है ? कदापि नही। बल्कि उसके संरक्षण के लिए चिन्तित होने से और अधिक दु खी बन जाता है। यही हाल मानव का भी हो रहा है। वह भी धन-दौलत के पीछे बेतहाशा भागता हुआ नजर आ रहा है। उसे यही लग रहा है मैं धन पाकर शांति से जी सकूंगा। पर जब पा लेता है तो उसे ज्ञात होता है कि जो मैं सोच रहा था, वह बिल्कुल गलत साबित हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि धन से सुख पाने के लिए भी मन को साफ करना होगा।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में जाकर जीने का प्रयास किया जाय, सभी जगह यह आवश्यक है कि मन का प्रयोग सही रूप में हो। कहते है कि एक संन्यासी थे। जो सुबह शाम भोजन करते थे और दिन में हल चलाया करते थे। ध्यान जप आदि वे कभी नही करते थे। उनकी यह स्थिति देखकर एक सुज्ञ व्यक्ति ने उनसे यह पूछ ही लिया कि आप यह सब क्या करते है? सुबह-शाम भोजन कर लेते है और पूरे दिन खेत में हल चलाते है। तो फिर आप संन्यासी कैसे? यह सब तो गृहस्थ के कार्य है और वे ही आप करते है तो आप और हमारे में अन्तर ही क्या रह जाता है।

संन्यासी उसकी बात को सुनकर मुस्कराये और शांत भाव से बोले—हाँ भाई! बाहरी दृष्टि से कोई अन्तर नही है और आत्मा की मौलिक दृष्टि से भी कोई अन्तर नही है, मै भी भोजन करता हूँ और तुम भी भोजन करते हो, लेकिन मै जब भोजन कर रहा होता हूँ तब मै केवल भोजन ही करता हूँ और कुछ कार्य नही करता और जब मैं हल चला रहा होता हूँ तो मै केवल हल चला रहा होता हूँ इसके अलावा और कुछ कार्य नही करता और जब मै सो रहा होता हूँ तब केवल सोता हूँ, इसके अलावा कुछ भी कार्य नही करता हूँ।

तब वह सुज्ञ व्यक्ति बोला– हम भी तो यही करते है, दूसरे कार्य हम भी उस समय कहाँ करते है?

तब सन्यासी ने कहा—विचार करो, जिस समय तुम भोजन कर रहे हो, उस समय जब तुम्हारा हाथ रोटी से साग को लेने के लिए कटोरी में जाता है उस समय तुम्हारा ध्यान कहाँ जाता है? और जब तुम उस ग्रास को मुँह में रखकर चबाते हो तब तुम्हारा ध्यान कहाँ जाता है? और जब तुम उसे पेट में उतारते हो उस समय क्या सोचते हो?

यह सुनकर वह बोला—यह सब तो हमें ध्यान में भी नही रहता कि कब रोटी तोडी, कव चबाई और कब पेट मे उतारी।

संन्यासी ने कहा वस यही तो अन्तर आता है। तुम्हारा ध्यान, जिस कार्य को तुम करने जा रहे हो उस और नही रह पाता। इसीलिए तुम साधना भी नही कर पाते।

साधना करने वालो को सवसे पहले व्यावहारिक जीवन को जीने के लिए अपना ध्यान व्यावहारिक कार्यो मे केन्द्रित करना होता है।

यह तो रूपक है, यह इस बात को भलीभाँति स्पष्ट करता है कि आप साधना का परिपूर्ण स्वरूप जो जीवन के लिए आवश्यक है, वह नहीं अपना सकते तो कम से कम गृहस्थ जीवन मे भी सही ढग से जीने के लिए मन मस्तिष्क

को सब से पहले तीव्र रोष अभिमान, छल-छद्म, लोभ आदि से हटाने का प्रयास करें। मस्तिष्क का संतुलन किसी भी हालत में न खोयें। जो भी काम करें, चाहे वह छोटा से छोटा भी क्यों न हो, उसे मनोयोग पूर्वक संपन्न करने का प्रयास करें, जिससे कि आपको सही ढंग से जीने की कला प्राप्त हो सके।

मनोयोग से किये जाने वाला कार्य अच्छा होगा और साथ ही मन की साधना भी सधेगी और एक दिन वह इस जीवन और पर जीवन दोनों को पवित्र बनाने में भी समर्थ हो जायेगी।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

३–७–८५
बुधवार

४ | वेग हो संवेग का

सकल विश्व में श्रेष्ठतम परम सिद्ध स्वरूप, यदि किसी का है तो वह परमात्मा का ही है । **परमश्चासौ आत्मा-परमात्मा** । सबसे ऊँची आत्मा अर्थात् गुणों से जो परिपूर्ण हो गई है, परम पद को प्राप्त हो गई है, वह आत्मा परमात्मा है । ज्ञानीजन सम्बोधित कर रहे है कि तुम मनुष्य जीवन में रहकर ऐसी शक्ति प्राप्त करो कि तुम भी सत्पुरुषार्थ से अपनी आत्मा को परमात्मा बना सको । प्रत्येक आत्मा यही इच्छा रखती है कि मुझे परमात्मा पद मिले । परमात्मा का पद, भक्त को कोई प्राप्त करा सके ऐसी शक्ति किसी संसारी प्राणी में नही है । भक्त स्वयं ही स्व पुरुषार्थ से महान् बन सकता है । प्रत्येक मनुष्य को ऐसे महान् पद की प्राप्ति हेतु सद्पुरुषार्थ अपनाना अतिआवश्यक है । वह सबसे पहले इस जीवन मे समता की भूमिका अपनाकर वेग अर्थात् मन मे उत्साह पैदा करके परम पद पाने के लिए सत्पुरुषार्थ में लग जाय । अपने जीवन से सम्बन्धित जितनी भी क्रियाये है । उन सबमें विवेक रखकर आगे बढ़ता जाए ।

गौतम स्वामी ने प्रभु से पूछा—सवेगेणं भंते जीवे कि जणयई ? इस प्रश्न के उत्तर मे प्रभु ने यह सकेत दिया कि—**संवेगेणं अणुत्तरं धम्मं सद्धं जणयई ।** सवेग से अनुत्तर धर्म की अवाप्ति होती है । जैसे—राष्ट्रपति के सिहासन पर बैठने की कोई इच्छा करता है, तो उसके योग्य पुरुषार्थ करना पड़ता है, जनता की सेवा करनी पड़ती है । तब कही जाकर उसे राष्ट्रपति पद मिलता है । वैसे ही आध्यात्मिक जीवन का राष्ट्रपति पद परमात्म पद है । उसे सत्पुरुषार्थ जगाकर तदनुरूप साधना करके ही प्राप्त किया जा सकता है । मन की क्रिया का हमारे पुरुषार्थ के साथ बहुत सम्बन्ध है । कभी-कभी रोष में आकर भी मन की प्रतिक्रिया होती है, और कभी शांत मन से भी । जैसे कि कभी-कभी रोष में आकर कोई व्यक्ति भूखा रह जाता है । तो उसमे तपश्चर्या का नाम भले दे दिया जाय पर वह क्रिया संसारवर्द्धक होती है । वैज्ञानिकों का अनुमान है कि एक बार के क्रोध से दो पौंड खून जल जाता है तथा अवशेष खून में पॉइजन उत्पन्न हो जाता है । जिस पॉइजन का प्रयोग करने पर अनुमानत: ८० व्यक्तियों का खात्मा भी हो सकता है । क्रोध के आवेश मे कभी-कभी मनुष्य के ज्ञान तन्तु भी फट जाते है, जिससे वह लकवा जैसी भयंकर व मरणात बीमारियों का भी शिकार हो जाता है, इस प्रकार शारीरिक हानि तो होती है पर मानसिक हानि भी कुछ कम नही होती है । क्रोध के आवेग से मन की कोमलता नष्ट हो जाती

है और वह कठोर बन जाता है। पर यदि मन का वह आवेग सवेग में बदल जाय तो वही आत्मा अपना संसार परिमित कर लेती है। शास्त्रकारों का कहना है कि—

"कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिचंति मूलाइं पुणब्भवस्सा ।।"

क्रोध, मान, माया और लोभ का जब तक सम्यक् निग्रह का प्रयत्न नही किया, तब तक सारी क्रियायें संसार वर्धक ही होंगी। पर संवेग की प्रवृत्ति जीवन में आ जाये तो अनन्तानुबन्धी आदि अतिशय संसार वर्धक कषाय का निग्रह सरलता से किया जा सकता है।

अपनी आत्मा को साधने के लिए जो क्रिया की जाती है, वह अध्यात्म है और जो चारों गति को साधने के लिए क्रिया की जा रही है, वह अध्यात्म नही है। जरा आप विचार करे, राम, सीता, लक्ष्मण ये तीनों वन में थे। उस समय राम अन्य की भलाई की प्रवृत्ति में सलग्न थे। लक्ष्मण भी उन्ही का अनुकरण कर रहे थे, और सीता जो कि पतिव्रता नारी थी, जिसकी पतिव्रता की भावना से ही क्रियायें चल रही थीं। उस समय रावण की भी क्रिया हो रही थी। वह सोच रहा था कि महारानी सीता मेरी रानी बन जाय, यह उसकी मन की क्रिया थी। वह विचार कर रहा था कि सीता धार्मिक प्रवृत्ति वाली है। मैं इसे जगल से उठाकर लाऊँ पर लाऊँ कैसे ? उसके मन में मेरे प्रति जब तक अनुराग न हो तब तक वह मेरी होने वाली नही है। अतः मुझे क्या करना चाहिये ? उसके मन में उस समय विषम वेग था, विचार करते-करते उसके मन मे यह भावना हुई कि सीता आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाली है। उसे धार्मिक पोशाक से, धार्मिक अभिनय करके ही लाया जा सकता है। बताते है, उसने योगी की पोशाक बनाई। संसार बढ़ाने वाली इस क्रिया का आश्रय लेकर कपट वेश से सीता के नजदीक पहुँचा। तब सीता को बहुत प्रफुल्लता हुई, पर विचार आया कि यह योगी एकांकी कैसे ? फिर भी शिष्टाचार वश उसे सत्कार देने की भावना से सीताजी कहने लगीं—लो, मै आपको दान देती हूँ। लगभग ऐसा वर्णन तुलसीकृत रामायण मे मिलता है। जब वह कार (मर्यादा) के भीतर रहकर दान देने लगी—तब रावण ने कहा कि कार से बाहर आकर दान दो और जब वह बाहर आयी तो रावण उसे उठाकर ले गया। यह तुलसीकृत रामायण की बात शिक्षा दे रही है कि इस कलियुग में ऐसा रावण न हो, जो जोगी के वेष में आकर तुम्हारी सीता को उठाकर ले जाये। अर्थात् एकाकी फिरने वालों से सावधान रहने की आवश्यकता है। साधु जीवन की चर्या का पूरा ज्ञान आपको रखना है। आध्यात्मिक वेष पहनकर धोखा देने वालों से सावधान रहना है। ध्यान और साधना के नाम से अनर्गल प्रलाप करने वाले तथाकथित साधुओ से भी सावधान रहना अत्यावश्यक है।

एक दिन मदोदरी रावण से कहने लगी कि—आप इस महान् सती नारी को उठाकर ले आये हो, पर इसका परिणाम बहुत खराब होगा। आप इस अनीति का परित्याग करो। जाओ, राम से क्षमा मांगलो, जिससे आपके जीवन में चार चॉद लग जायेंगे, और सारी कपट क्रियाओं से आपको मुक्ति मिल जायेगी। पर बार-बार कहने पर भी रावण ने मना कर दिया। रावण के यह तीव्र कषाय मोह की स्थिति थी। इसलिए अपराध की माफी मागने के लिए तैयार नहीं हुआ। गल्ती होने के बाद गल्ती को गल्ती मानकर क्षमा मांग लेना श्रेष्ठ मानव का काम है।

गांव में झगड़ा हुआ, झगडे का कारण मामूली सा था। एक व्यक्ति के कारण झगड़ा शान्त नही हो रहा था, वह व्यक्ति बीमार था। मै दर्शन देने के लिए गया तब मैने कहा कि यह आयुष्य अब कितने समय का है, कौन जानता? तुम क्षमायाचना करलो, पर उस मनुष्य के मन में ऐसी अनन्तानुबन्धी कषाय की स्थिति थी, कि उसने कितनी ही प्रेरणा देने पर खमत खामणा नहीं किया, उसकी गति तो क्या हुई यह तो ज्ञानी की दृष्टि मे है, पर रावण की गति तो आप जान रहे है। बात-बात मे कषाय करने वाले का जीवन कभी भी अध्यात्म की स्थिति में प्रवेश नही कर सकता है। अतः कषाय को वशीभूत कर लेना चाहिये। इससे कोई कमी नहीं आती है। गंगाशहर, भीनासर की घटना है, दो भाई प्रमुख समाजसेवी थे, जीवराजजी और झूमरमलजी, पर दोनो भाई कभी परस्पर नही मिलते थे। चातुर्मास समाप्ति का प्रसंग आया, मैने प्रवचन में सामान्य रूप से वैर-विरोध विसारने की भिक्षा मांगी कि किसी में भी वैर-विरोध है, तो वह मेरी झोली में डाल दे। व्याख्यान उठने के बाद दोनों भाई मेरे पास अलग-अलग आये और कहने लगे कि म. सा मै जा रहा हूँ। बस इतना कहकर चले गये। बडे भाई के पास कार थी, छोटा भाई पैदल जा रहा था। वड़ा भाई छोटे भाई के घर पहले ही पहुँच गया। बड़े प्रेम से नाश्ता, पानी कर सारा वैर-विरोध विसराया, क्षमा याचना करते हुए प्रेम स्नेह की गगा वहा दी।

वन्धुओ! अग्नि सम मन का वेग ससार को बढाने वाला होता है, जव कपाय सीमा से अधिक समय तक रह जाती है, तो उससे सम्यक्त्व गुण का नाश हो जाता है। साधु में यदि परस्पर कुछ हो जाय तो उसे वीतराग देव ने आज्ञा दी कि जव तक क्षमायाचना नहीं करो तव तक थूंक भी गले से नीचे मत उतारो। श्रावक भी साधु के छोटे भाई हैं. भगवान के वचनों का आपको भी खयाल रखना है। यदि आप अपने जीवन में संयम की स्थिति अपनाओगे और विपमवेग को दूर हटाओगे तो आपका जीवन जरूर मंगलमय वन जायेगा। इन्ही शुभ भावनाओं के साथ!

मोटा उपाश्रय ४–७–८५
घाटकोपर, वम्बई गुरुवार

५ आत्मा ही आत्मा का कर्त्ता और भोक्ता

अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर की वाणी श्रोतागण 'सुखविपाक' के माध्यम से सुन रहे है। इस 'सुखविपाक' विषयक वर्णन से बहुत प्रेरणा मिलती है। मनुष्य का जीवन कैसा होना चाहिये ? इस मनुष्य जीवन रूपी रत्न का उपयोग किस रीति से करना चाहिये ?

'सुखविपाक' सूत्र में गौतम स्वामी प्रभु महावीर से पूछते है कि सुबाहु कुमार ने यह जीवन कैसे प्राप्त किया ? उसने पूर्वभव में क्या-क्या ऐसे सुकार्य किये, आदि इसी प्रकार के बहुत से प्रश्न पूछे।

जिन मनुष्यो को वीतराग वाणी श्रवण करने को बहुत कम मिलती अथवा मिलती ही नही है। वे प्राय: किसी रूपवान, गुणवान आत्मा को देखकर यह कह देते है कि भगवान् ने इसे कैसा सौम्य रूप प्रदान किया है। पर गौतम स्वामी ज्ञानवान थे, उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि भगवान् ने इनको यह रूप सम्पदा प्रदान की। प्रभु महावीर से प्रश्न करके यह ज्ञान दृष्टि दी कि तुम्हारी आत्म सम्पदा स्व में ही स्वतन्त्र रूप से रही हुई है। तुम जैसा पुरुषार्थ करोगे, वैसा ही फल तुम प्राप्त करोगे। शारीरिक सौन्दर्य भी आत्म पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त होता है। इस आत्मा को सारा अधिकार प्राप्त है। पर यह आत्मा अपने स्वरूप को न जानने से दीन-हीन बनी हुई है। अपने आपको कठपुतली सम मानती है। जिस प्रकार कठपुतलियाँ अन्य के जरिये नाचती है। पर खयाल रखिये कठ-पुतलियाँ तो निर्जीव है। वे परतन्त्र है। पर चेतना निर्जीव नही है। अत: जागृत बनें। जीवन की बागडोर हमारे ही हाथ में है। हमें नचाने वाला अन्य कोई दूसरा नहीं है। हमारी आत्मा ही कर्त्ता और भोक्ता है। वह स्वतन्त्र है। जैसा कर्म करती है, वैसा ही फल उसी के द्वारा उसको प्राप्त होता है। मेरी आत्मा को सुखी-दु:खी बनाने वाला मै स्वयं ही हूँ। मेरे स्वयं के विचार ही मुझे सुखी-दु.खी बनाते है। यह ज्ञान जब किसी को हो जाये तो फिर क्यों वह अपनी आत्मा को दु.खी बनायेगा ? कहा भी है—

"बोवोगे जैसा बीज, तरु वैसा ही लहरायेगा ।
जैसा करोगे वैसा ही, फल आगे आयेगा ।।
कुए में एक बार. कुछ भी बोल देखिये ।
जैसा कहोगे वैसा ही, वह भी सुनायेगा ।।"

बन्धुओ ! जीवन में जैसा बीज बोओगे, वैसा ही फल प्राप्त होगा । आम बोने से आम और बबूल बोने से बबूल ही प्राप्त होगा । इसलिये आप ऐसा ही बीज बोये जिससे आपका यह भव भी सुखी बन जाये और आगे के लिये भी पुण्य की जहाज तैयार कर लें । भगवान् महावीर के आप मेहमान बनकर आये हो और मेरी इच्छा हो रही है कि मै आपको अच्छा से अच्छा पकवान परोसूँ । वर्तमान मे जो शुभाशुभ कार्य किये जाते है उनसे जो कर्म-बन्ध का प्रसग आता है, अथवा आत्मशुद्धि का प्रसग बनता है । उसका भूत-भविष्य दोनो ही स्थितियो मे प्रभाव पड़ता है । यदि हम अच्छा अनुष्ठान कर रहे है तो भूतकाल मे वे पाप यदि निकाचित नही है तो वे पाप अच्छे अनुष्ठानो को करने से पुण्य में परिवर्तित हो जाते है और भविष्य उज्ज्वल बन जाता है । प्रसन्न चन्द्र राजर्षि का उदाहरण मिलता है कि प्रसन्न चन्द्र राजर्षि को जब निर्वेद की भावना बनी, तब विचार करने लगे कि ये तो ससार के कार्य है, चलते रहेंगे । मुझे तो अपनी आत्म शुद्धि की ऐसी करणी करनी है जिससे इस जन्म मे ही अमित सुख की उपलब्धि कर सकूँ । तब पत्नी अपने नन्हे पुत्र को सम्मुख करके कर्त्तव्य का बोध कराती हुई मना करने लगी । तब राजन् कहने लगे—प्रिये ! तुम मेरी धर्मपत्नी हो । धर्म सहायिका हो । तुम मुझे धर्म में सहायता प्रदान करो । पुत्र के विषय मे कह रही हो सो यह पुत्र स्वयं पुण्यवान है । जिसके पिता बचपन मे ही गुजर जाये, विचार करो, उसका लालन-पालन कौन करता है ? यही नहीं अपना पुत्र स्वयं पुण्यवानी लेकर आया है । अतः इसकी चिन्ता मत करो । फिर इसकी सुरक्षा हेतु ५०० मंत्री इसकी सेवा में रहेगे ।

भगवान् महावीर ने कहा कि शक्ति रहते हुए सद्नुष्ठान मे प्रवृत्ति करें । अतः मै अभी ही आत्मानुष्ठान मे प्रवृत्त होना चाहता हूँ । इस प्रकार समझा कर सारे ससारी कार्य से निवृत्त होकर प्रभु महावीर के चरणो में दीक्षित होकर विशेष पराक्रम करने की दृष्टि से प्रभु की आज्ञा लेकर समवसरण भूमिका से कुछ दूर जाकर दोनों हाथ ऊपर करके सूर्याभिमुख हो ध्यानावस्था मे खडे हो गए । इधर राजा श्रेणिक अपनी चतुरङ्गिनी सेना से प्रभु महावीर के दर्शनार्थ जा रहे थे ।

दो मनुष्य सुमुख और दुर्मुख रास्ते की सफाई का ध्यान रखते हुए उस चतुरगिनी सेना के आगे चल रहे थे । वे परस्पर वातचीत कर रहे थे । सुमुख ने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की भूरि-भूरि प्रशसा की तो दुर्मुख ने उनकी निन्दा की । मुनि ध्यान में दोनो की वाते सुन रहे थे । सुमुख मुनि की प्रशसा करता हुआ कहता है कि धन्य है ये मुनिराज जो सब कुछ वैभव का त्याग कर संयम अंगीकार कर चुके है । तव दुर्मुख ने कहा कि अरे क्या कहते हो तुम, यह तो कायर है । अपने पुत्र का भी पालन नही कर सका । उसे पाँच सौ मंत्रियो के हाथ मे सौंप कर चला आया है । पर मत्री उसे मारने का षडयंत्र वना रहे है ।

ये शब्द जब प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के कानों में पड़े तो वे विचारने लगे कि क्या मेरे मंत्री नमकहराम हो गये हैं ? क्या वे मेरे बच्चे को मार कर राज्य हथिया लेंगे ? विचारों का वेग तीव्रता के साथ बढ़ने लगा। वे भूल गये कि मै तो साधु बन चुका हूँ। उसे तो 'समो निदा पसंसासु' अर्थात् हर समय निंदा और प्रशंसा में समभाव रखना चाहिये।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के विचार इतने ओजस् हो गये कि वे खड़े तो ध्यान मे थे पर अन्दर में विचारों से ही मंत्रियों से युद्ध करने लगे और ४९९ मंत्रियों को मार गिराया। एक मंत्री बच गया। इसे मारने के लिये उनके पास कोई वैचारिक तीर नही बचा, तो वे सोचने लगे कि इसे कैसे मारा जाये। फिर सोचा—मेरे मुकुट है। मै मुकुट को भी इस तरह फेंकूँ कि वह मर जाये। इधर तो प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के विचारो में इतनी हिसात्मक उत्तेजना आई हुई थी और उधर उसी समय श्रेणिक महाराज महाप्रभु के समवसरण में पहुँचकर महाप्रभु से पूछने लगे—भगवन् ! आपके अन्तेवासी शिष्य जो शहर के बाहर ध्यानस्थ है। वे यदि इस समय कालधर्म को प्राप्त हों तो कहाँ जाय ? महाप्रभु ने स्पष्ट फरमाया कि श्रेणिक ! यदि वह इस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो सातवी नरक मे जायेगा।

इसे सुनकर राजा श्रेणिक विचार करने लगे कि—अहो ! इतने बड़े योगी की भी यह गति हो सकती है ? उधर जब प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का हाथ मस्तक पर पहुँचा और उन्हें ज्ञात हुआ कि मुकुट कहाँ है ? सिर तो मुँडा हुआ है। मै तो साधु हो चुका हूँ। मुझे संसार से क्या मतलब ? विचारों ने मोड़ खाया और वे अपने इस कुकृत्य के प्रति 'निदामि, गर्हामि अप्पाणं वोसिरामि' करने लगे। ठीक इसी समय इधर फिर श्रेणिक ने पूछा यह कैसे हो सकता है भगवन्। तो भगवान् ने फरमाया कि यदि वह मुनिराज इस समय मृत्यु को प्राप्त हो तो स्वर्ग मे जाये। इससे श्रेणिक की जिज्ञासा और बढ़ गई। इधर राजर्षि के विचारों में समीक्षणता आई और वे निरन्तर ऊर्ध्वता की ओर बढ़ने लगे। थोड़े ही समय के बाद सभी घनघातिक कर्म क्षय करके केवली भी हो गये। देवदुंदुभि का निनाद हुआ और महाप्रभु ने श्रेणिक को बताया कि वे ही मुनिराज सर्वज्ञ हो गये है। तो सम्राट को बहुत आश्चर्य हुआ। पर सर्व संशय हर्ता महाप्रभु ने उसका समाधान कर दिया।

बन्धुओ ! यह तो एक रूपक है। जिसके भाव मै आपको बतला गया हूँ। इस रूपक को सुनकर विचार करें कि विचारों का यह परिवर्तन जीवन में कितना मोड़ ला सकता है ? जब विचारों को कार्य रूप में परिणत करने की शक्ति आ जाती है तो उसी प्रकार के कर्म बन्धन हो जाते है। शुभ-भावनाएँ व्यक्ति को उन्नत बनाने वाली है तो अशुभ भावनाएँ गिराने वाली होती हैं।

उन्नति और अवनति दोनों उसी के हाथ में है। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक छोटा सा रूपक और देता हूँ।

एक व्यापारी जिसे सेव की आवश्यकता थी। उसने जाकर कदोई से कहा कि मेरे यहाँ विवाह का प्रसंग है और बहुत सारी सेव की आवश्यकता है तो उस कंदोई ने बहुत सारा बेसन लिया और उसको घोलकर उसमें नमक व मिर्च डालने वाला ही था कि एक दूसरा व्यापारी आया और कहने लगा कि मुझे जल्दी से जल्दी बेसन की चक्कियाँ चाहिये, मै तुझे दुगुने पैसे दूँगा तो उसने उस बेसन में नमक मिर्च की जगह बेसन की प्रक्रिया करके चासनी डाल कर चक्कियाँ बना दी। ठीक वैसे ही पाप-अनुष्ठान मे प्रवृत्त व्यक्ति घोलन जैसी अनिकाचित कर्मो की स्थिति तक सम्भल जाये तो वह उस पाप रूपी घोल से पुण्य रूपी चक्कियाँ प्राप्त कर सकता है।

मोटा उपाश्रय, ५–७–८५
घाटकोपर, बम्बई शुक्रवार

६ वेद हो निर्वेद का

अनंत स्वरूप वाले प्रशांत रस में निमग्न वीतराग प्रभु को नमन करके उनके सिद्धान्त का चिन्तन किया जा रहा है, मोक्ष का प्रथम सोपान सम्यक्त्व है।

जब आत्मा अपने स्वरूप को क्षायिक सम्यक्त्व के साथ जान लेती हैं, और एक बार भी उसे आत्मशक्ति की अनुभूति हो जाती है, आत्मरस में वह अवगाहन कर लेती है, तब वह तीन काल में भी अपने आत्मिक स्वरूप को भूल नहीं सकती है।

आत्मा-परमात्मा का वर्णन कर लेना एक बात है, और उसकी अनुभूति करना दूसरी बात है। शरीर में अनेक तत्त्व है, उनमें अनन्त ज्ञान राशि भी भरी हुई है जो कि इसी शरीर पिंड में विद्यमान आत्मा में है। शरीर तो एक मात्र माध्यम है। पर सारी शक्तियां आत्मा की स्व की है। अनुभूति का आनन्द जुदा होता है, अनुभूतियों से ही निज स्वरूप की अभिव्यक्ति सम्यक् रूपेण हो सकती है।

एक जंगली मनुष्य बड़े शहर में पहुँचा, वम्बई शहर जैसा, उसकी हवेलियाँ वगैरह देखकर आश्चर्य करने लगा। वहाँ की सर्वश्रेष्ठ मिठाई का स्वाद लिया, और पुनः जंगल में गया तब किसी ने पूछा कि वम्बई कैसी है, तो वह वृक्षादि की उपमा से बम्बई की हवेलियों की मोटाई वताने लगा तो कोई उसकी वात पर विश्वास नही करता, यही नही मिठाई का स्वाद लोगों द्वारा पूछने पर भी उसका स्वाद कैसा है, यह वह नही वतला पाता, लेकिन यहाँ के मनुष्य जिन्हे अपनी हवेलियाँ और खाई हुई मिठाई वगैरह के स्वाद की भलीभाँति अनुभूति होने से क्या वैसे लोगों को सम्यक् प्रकार से वता सकते हैं। उत्तर होगा, नही क्योकि अन्यो को वैसी अनुभूति नही है, और यह अवस्था अनुभूतिगम्य ही हो सकती है।

मैं जो आपको सम्यक्त्व के लक्षण वता रहा था, कि सम्यक्त्व के पांच लक्षण है, सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा एव आस्था। वास्तव मे अपने आप में सम्यक्त्व है या नही, इसकी पहचान, ये पूर्वोक्त पॉच लक्षण करा देते हैं। सम और संवेग की संक्षिप्त विवेचना हो चुकी है, अब निर्वेद का प्रसग चल रहा है।

एन्द्रियक विषयों से उदासीन होकर सिर्फ आत्मानन्द की प्राप्ति की तीव्र उत्कंठा होना निर्वेद है, निर्वेद की स्थिति में भी जब तक आत्मा संसार में रहती है, तब तक जल कमलवत् निर्लिप्त रूप मे रहती है। जैसे 'उत्तराध्ययन' सूत्र के २९ वें अध्याय में बतलाया है।

"निव्वेदेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? निव्वेदेणं दिव्व माणुस तेरिच्छि-एसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरम्भपरिच्चायं करेई। आरम्भपरिच्चायं करेमाणे संसारमग्गे वोच्छिन्दई सिद्धिमग्गं पडिवन्ने य हवई।"

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! निर्वेद भाव से जीव क्या प्राप्त करता है ?

भगवान् ने फरमाया—गौतम ! निर्वेद भाव से जीव, देव, मानव एव तिर्यचं संबंधी विषयों से शीघ्र ही निर्वेद प्राप्त हो जाता है। सभी विषयों में विरक्त हो जाता है, सभी विषयो से विरक्त होता हुआ आरम्भादि से भी विरक्त हो जाता है, आरम्भादि का त्याग करता है, संसार व्यवच्छित कर लेता है, और एक दिन सिद्धि मार्ग को प्राप्त हो जाता है।

संसार से कितनी मात्रा में उदासीनता आयी है, इसका मापदण्ड कैसे किया जाय, इसके लिए एक उदाहरण देता हूँ।

एक मनुष्य को जहरीले सर्प ने डंक मारा और जहर उस व्यक्ति को भरपूर चढ़ गया, तब वह मंत्र जानने वाले के पास गया, और जहर उतारने के लिए कहा तब वह कड़वे नीम के पत्ते उसे खिलाता है, उस समय उस व्यक्ति को वे कड़वे पत्ते भी मीठे लगते है, तब उसने यह जाना कि इसको जहर काफी मात्रा में चढा हुआ है। तब उसने जहर उतारने का प्रयत्न प्रारम्भ किया, जैसे-जैसे प्रयत्न सफल होता है, जहर उतरते जाता है, वैसे-वैसे उसको नीम के पत्ते कड़वे लगने लग जाते है। इसी तरह निर्वेद आपके जीवन में है या नही, इसका परीक्षण करने की विधि अपनाये कि सांसारिक पांच इन्द्रियों का विषय जब तक आपको मधुर-मधुर महसूस होता है, तब तक समझना चाहिये कि अभी मोह रूपी सर्प का डक पूरे जोर से आपके भीतर में विष व्याप्त कर रहा है, पर यह वीतराग वाणी रूपी मंत्र उस जहर को उतारने में सक्षम है।

इस वीतरागवाणी रूपी मंत्र श्रवण से, पांचों इन्द्रियों का कटुक फल अतीव विपाक रूप में महसूस हो रहा है और आप संसार के प्रपचों से उदासोन वन रहे है, तो समझना चाहिये कि मोह रूपी सर्प के डंक से व्याप्त विप उतर रहा है, और आप अपने निज स्वरूप में प्रवेश कर रहे है। आप जरा सोचिये—कितना लम्वा समय हो गया है कि यह मोह का पॉइजन आपकी आत्म-शक्तियों

पर छाया हुआ है, अतः जो भी क्रिया करें, वह सभी आत्म-स्वरूप की अवाप्ति के लिए ही हो। जब लड़का माता के गर्भ से बाहर आता है, तब वह रोता है, और संकेत करता है कि मै भूखा हूँ, मुझे दूध पिलाओ, जब उसकी क्षुधा की पूर्ति हो जाती है तो वह संतुष्ट हो जाता है। इसके बाद जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, वंसे-वैसे वह माता के दूध से निर्वेद को पाकर अपनी आवश्यकतानुसार क्रिया करता रहता है। उसी प्रकार जब भव्य पुरुष संसार में निर्वेद को पा जाते है, तब वे विषयादि से निरपेक्ष होकर शाश्वत शांति की ओर प्रगति करने लगते है। प्रायः प्रत्येक मानव पुण्य-पाप दोनों का उपार्जन करता रहता है। जैसा कि वतलाया है कि वह सात-आठ कर्म का बंधन प्रति समय करता रहता है। अब आप चाहें कि हमारी पुण्यवानी ही अधिक से अधिक बढ़ती रहे, पर यह चाहने मात्र से पुण्यवानी प्राप्त नही हो सकती है। गौतम स्वामी ने जो यह प्रश्न पूछा कि—भगवन्! सुबाहुकुमार ने क्या खाया?

यह प्रश्न क्यों और किस लिए किया गया है? चिंतन करने पर आप जान पायेंगे कि—यह प्रश्न भी आत्म-चिंतन की खुराक दे रहा है। क्योंकि भोजन करते समय में भी पुण्यवानी बांध सकते हैं। आप भोजन करते समय यही आत्म चिंतन करें।

मैं भोजन सिर्फ धर्म साधन में निमित्त इस शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित और तन्दुरस्त रखने के लिए कर रहा हूँ ताकि यह शरीर मुझे आत्म-साधना में सहायक बन सके। इस प्रकार के प्रशस्त चिंतन से जो भोजन करता है, वीतराग भगवान् ने बताया कि वह खाता-खाता भी सात-आठ कर्मो को तोड़ सकता है।

आप ज्यादा-ज्यादा संसार का वैभव चाहते हो या आत्मा का वैभव? यदि आत्म-वैभव की इच्छा रखते हों और प्रयत्नरत रहते हों, तो आत्म वैभव के साथ संसार का वैभव तो आपको मिल ही जायेगा। गृहस्थ हो या साधु, जो भी प्रशस्त आत्म चिंतन की स्थिति से भव्य भावना भाते-भाते भोजन करते है तो अष्ट कर्म बंधन से हल्के वन जाते है।

"नमो अरिहंताणं" इस पद का उच्चारण करते हुए चिंतन करें कि अरिहंत प्रभु भी भोजन करते थे। प्रभु महावीर को जव तीन दिन के वासी वाकुले चन्दनवाला ने वहराये। तो महाप्रभु ने उन्हें समभाव के साथ ग्रहण किया था। इसी प्रकार की समभाव की स्थिति लाने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।

साधु-साध्वियों का संयोग मिलने पर विशुद्ध भावों के साथ उन्हें प्रति-पालित भी करना चाहिये। कभी-कभी भावों की विशुद्धि नही होने पर महा-

पुरुषों को बहराते-दान देने से भी आत्म शुद्धि नही होती और भावों की विशुद्धि होने पर बहराने का निमित्त न मिलने पर भी आत्म शुद्धि का प्रसंग बन जाता है ।

जीर्ण सेठ जो चार माह पर्यन्त प्रभु को आहार बहराने की भावना भा रहा था । भगवान् के चार माह की तपश्चर्या थी । पारणे के दिवस पर भावना भाते-भाते जो पुण्यवानी जीर्ण सेठ ने बांधी, जो प्रशस्त निर्जरा की, वह तो उनके चालू ही थी, पर प्रभु महावीर जब पूरण सेठ, जो कृपण था, उसके द्वार पर पहुँचे और दासी के हाथ से बाकला बहर कर पारणा किया, पारणा होते ही देव दुंदुभी बजी, देव दुंदुभी बजते ही जीर्ण सेठ की भव्य भावना पर ब्रेक लग गया । क्योंकि उसे यह ज्ञात हो गया कि अब भगवान मेरे यहाँ नहीं पधारने वाले है । फिर भी भावना भाता-भाता देवलोक की पुण्यवली बांध ली । किन्तु पूरण सेठ अपनी गलत भावना के कारण दान देकर भी विशिष्ट पुण्यवानी नही बांध सके ।

पुण्य-पाप हर आत्मा बांध रही है, पर पाप को पुण्य मे और पुण्य को परिवर्तन करने की स्थितियाँ कैसी क्या जीवन मे बनती है, इसे आप शनैः-शनैः सम्यक् प्रकार से जानते हुए सम्यक्त्व के लक्षणों का बोध प्राप्त कर उन्हे क्रियान्वयन की दृष्टि से जीवन में स्थान देते हुए आगे बढें तो निश्चय ही जीवन मंगलमय बनेगा । इसी मंगलमय शुभ भावना के साथ ।

मोटा उपाश्रय   ६–७–८५
घाटकोपर, बम्बई   शनिवार

७ परम शांति का महाद्वार—सम्यग् दर्शन

परम पवित्र परमात्मा का स्वरूप, अपनी आत्मा को पवित्र करने के लिए स्मृति पटल पर उभारने का प्रयास करना है, क्योंकि आज के लोगों की आत्माएँ प्रायः कर्मों से आबद्ध होकर हिताहित के विवेक से विकल बन रही है, इस विकलता से विलग होने के लिए वीतराग वाणी को सुनने एव जीवन में उतारने का प्रसंग प्राप्त हो रहा है। यह वीतराग देव की वाणी किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित न होकर सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिए है। जिस प्रकार पानी किसी व्यक्ति विशेष का न होकर सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिए होता है, वह सभी की प्यास बुझाता है, उसी प्रकार वीतराग वाणी भी सभी भव्यात्माओं की अन्तर की आत्मिक प्यास बुझाने में समर्थ है, किन्तु आज के मानव इस वाणी को उपेक्षित कर एक बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं, इस भूल के कारण ही वे आज तक ससार में भटकते आ रहे है। इस भूल को हटाने के लिए सम्यग्दर्शन की अत्यन्त आवश्यकता है।

सम्यग्दर्शन के बिना ससार में अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। जिस प्रकार कि हॉल में सभी प्रकार की वस्तुएँ होते हुए भी बिना प्रकाश कुछ भी दिखाई नही देता है, वैसे ही सम्यग्दर्शन रूप प्रकाश के बिना ससार को वस्तुओं का यथातथ्य ज्ञान नही हो सकता। इस सम्यग्दर्शन का महत्त्व बतलाने के लिए आचार्य उमास्वाति ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' के पहले अध्ययन के प्रथम सूत्र में कहा है **"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि-मोक्षमार्गः"** इस सम्यग्दर्शन का ज्ञान केवल मस्तिष्क से कर लेने मात्र से आत्मशुद्धि नही हो सकती। आत्म विशुद्धि हेतु उसका ज्ञान हृदय से करना तथा आचरण की भूमिका पर उस ज्ञान को रूपांतरित करना अतीव आवश्यक है। जैसे—विक्षेप, आवरण व्यक्ति के सद् विवेक को लुप्त कर देते है, उसी प्रकार मिथ्यात्व का आवरण भी व्यक्ति के अन्तरंग ज्ञान को विलुप्त कर देता है। जैसे विक्षेप से मन चंचल बनता है, वैसे ही मिथ्यात्व के कारण मन रूप सरोवर मे चचलता की तरंगे उठने लगती है। जैसे कि लखपति, अरबपति बनने की और अरबपति, खरबपति बनने की भावना रखता है। इसी भावना के वर्द्धन में, धन के संरक्षण मे ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। यह तो एक देशीय भावना का रूपक है, किन्तु ऐसी अनेक भौतिकी भावनाओं को लेकर चलने वाले प्राणियों का जीवन बीच में ही समाप्त हो जाता

है। और वह आत्मज्ञान किंवा अध्यात्म सुख से वंचित रह जाता है। अपने अमूल्य जीवन को निरर्थक खो बैठता है तथा जन्ममरण की लम्बी परम्परा में भटक जाता है।

स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मै एक प्रचलित रूपक सुना देता हूँ। एक अरबपति सेठ के मन मे आया कि मेरे पास मे कितनी सम्पत्ति है। इसकी जरा लिस्ट बनवा कर देखूं ? मुनीमो को आदेश दिया गया, पाच मुनीमों ने मिलकर लिस्ट बनाई और कहा कि "आठ पीढ़ी खाये, इतना धन आपकी तिजोरी में है।" यह सुनकर सेठ के मन में प्रसन्नता तो नही आई, किन्तु और अधिक चिन्ता व्याप्त हो गई कि आठ पीढी तक तो खाने के लिए सम्पत्ति है, पर नवी पीढ़ी क्या खायेगी ? यही चिन्ता उन्हे सताने लगी, वे दुःखी हो गये। और चित्त विक्षेप से दिन प्रतिदिन रुग्णता को प्राप्त होते गये। डॉक्टर, वैद्य, हकीम आने लगे, किन्तु इस मानसिक रोग को मिटाने के लिये कोई भी समर्थ नही हुआ।

एक दिन एक मानसिक चिकित्सक आया और उसने मनोवैज्ञानिक ढंग से सेठ के मन की बात भॉप ली तथा उनके मुँह से यह बात कहलवा दी कि आठ पीढी खाये इतना धन तो मेरे पास है। पर नवी पीढी का क्या होगा ? बस मुझे यही चिता खा रही है। तब मनोवैज्ञानिक ने कहा कि पहले मुझे तुम यह बताओ कि तुम्हारे लड़के कितने है। तो सेठ कहने लगा कि—लड़का तो मेरे एक भी नहीं है, और अब होने की आशा भी नही है, तब उस चिकित्सक ने कहा कि तो फिर तुम किसकी चिन्ता कर रहे हो ? कहाॅ नवी पीढी आने वाली है ? जबकि तुम्हारे बाद भी तुम्हारे इतने धन का उपभोग करने वाला कोई नही है। सेठ के बात समझ में आ गई, उसकी सारी बीमारी नौ दो ग्यारह हो गई। तो बन्धुओ, यह विचारने की बात है। आज का व्यक्ति भी क्या सोच रहा है, बस एक अपनी इच्छापूर्ति में संलग्न बना भौतिकता में रमण करता हुआ, भौतिकता मे ही भटकता हुआ सम्यग्दर्शन को भी खो बैठता है और जिन्दगी को विनाश के कगार पर ला खड़ा कर देता है।

जीवन को शांतिमय बनाने के लिये सम्यग्दर्शन के गुणों को अपनाना ही होगा, इन गुणों में महत्त्वपूर्ण गुण है—अनुकम्पा का "अनुकूलं कम्पनं इति अनुकम्पा" दूसरे के दु.ख को अपना दु.ख समझ कर आत्मीय भावना से उसे दूर करने की अतीव तीव्र [उत्कट्] भावना अनुकम्पा है। भाई-भाई के साथ, प्राणी प्राणी के साथ आत्मीय भावना रखी जाय, "आत्मन्: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" आत्मा से प्रतिकूल आचरण दूसरो के लिए नही करना सम्यग्दर्शन का मूल है।

सज्जनो ! आज के इस आधुनिक युग में क्या-क्या देखने को मिल रहा है, देखिये इस वम्बई शहर को ही, जहाँ वर्षा की वाढ में हजारों प्राणी बेघरबार

हो रहे है और इधर वे रईस लोग अपनी इम्पोर्टेड (Imported) कारों को लेकर वर्षा का मौसम देखने के लिए फाइव-स्टार होटलों में ऐश करने के लिए हजारों-लाखों रुपये खर्च कर रहे है। कहाँ है आज के लोगों में अनुकम्पा ? कहाँ है आज साधर्मी भाइयों के प्रति वात्सल्य ? अधिकांश लोग अपने स्वार्थ में डूबे है। जहाँ हजारों लोग मर रहे हैं, वहाँ चन्द लोग गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और यह सोचते है "मरे वो दूजा हम करायें पूजा" लेकिन यह कब तक चलने वाला है ? आत्मीयता के प्रतिकूल यह आचरण कितना भयानक, घातक परिणाम दिखला सकता है, शाति पाने के लिए सम्यग्दर्शन का विशिष्ट लक्षण अनुकम्पा को जीवन में उतारना होगा।

जिसे आप अनार्य देश समझते है, उस अमेरिका के प्रेसिडेट (president) अब्राहम लिकन की बात सुनी होगी, जब वे एसेम्बली (S. M L.) जा रहे थे, उस समय रास्ते में उन्होंने कीचड़ में एक सुअर को छटपटाते देखा तो उनके मन में अनुकम्पा जागृत हुई। और वे स्वयं ही बग्घी से नीचे उतरे तथा उस कीचड़ में से सुअर को निकालने का प्रयत्न करने लगे। सुअर के पैर पछाड़ने से उनके कपड़े खराव होने लगे तो भी वे अपने कपड़ों की चिन्ता किए बिना उस सुअर को निकालने में प्रयत्नशील रहे। आखिर उन्होंने उसे बाहर निकाल ही दिया। एसेम्बली का टाईम हो जाने से, वे टाईम के पक्के, अब्राहम लिकन उन्ही कपड़ों में एसेम्वली पहुँच गये। सभी को उनके कपडे देखकर आश्चर्य हुआ। लोगो ने उनसे पूछने का तो साहस नही किया, पर उनके नौकर से पूछा—तब उनके नौकर ने सारी घटना सुना दी।

एसेम्वली के सदस्यों का मस्तिष्क लिकन के प्रति श्रद्धा से झुक गया, किन्तु लिकन ने तो यह साफ कहा कि यह तो मैंने किसी पर उपकार नही किया है। मैंने तो मेरी तड़फन ही मिटाई थी। देखिये, एक तो लिकन की भावना और एक आज के संस्कृति निष्ठ भारत में रहने वाले साधन सम्पन्न श्रेष्ठियों का रूप। मै सव की वात तो नही कहता, किन्तु अधिकांश लोग तो सुअर के छट-पटाने की वात तो जाने दो, आदमियों के प्राण छटपटा रहे होंगे तो भी उस ओर देखने का भी प्रयास नही करते।

एक भाई जहां साधन सम्पन्न है तो वह भी अपने सावनहीन विपन्न भाई की ओर भी देखने की कोशिश नही करता। यदि ऐसी ही स्थिति वनी रही तो आत्मिक शांति मिलने वाली नही है, सुख पाने के लिए सम्यक् दर्शन के लक्षणों को जीवन में अपनाना ही होगा।

कई वार मेरे भाई विचार करते हैं कि हम इतनी वार यानी वर्षो तक प्रवचन सुनते आ रहे हैं, किन्तु जीवन में तो परिवर्तन नही आया। इसमें बाधकता क्या है ? क्या प्रवचन में ही कुछ कमी है ? बन्धुओ! यहां पर विचारने

की बात यह है कि जिस घड़े को उल्टा रख छोड़ा है, उसमें पानी भरने के लिए कितना ही पानी उंडेला जाय, पर घड़े मे एक बूंद भी पानी नही आता, क्योंकि घड़ा उल्टा पड़ा है। ठीक इसी प्रकार यदि श्रोता अपने हृदय के कपाट को बन्द करके सुनता है, तो उसमें गल्ती उसकी है। वीतराग वाणी तो निरन्तर प्रवाहित हो रही है, किन्तु यदि हार्दिक भावों के साथ न सुनी जाए तो परिवर्तन नही आ सकता। इस बड़ी गल्ती को सुधारा जाय। हृदय के पट को खोलकर सुना जाय। मै यह तो नही कहता कि सभी श्रोता लोग अपने हृदय के पट को बंद करके ही सुनते है। किन्तु जिन व्यक्तियों के जीवन मे वर्षो से परिवर्तन नही आया है, जिनका शरीर बदल गया है, किन्तु उनकी आत्मा नही वदली, उनके लिए यह मानना होगा कि वे अपने हृदय के पट को वंद करके सुन रहे है।

अन्त में यही कहना है—जीवन को साफ और स्वच्छ बनाने के लिए, सम्यग्दर्शन के लक्षणों को समझपूर्वक जीवन मे उतारने के लिए हृदय पट को खोलकर वीतराग वाणी सुनी जाय, अवश्य ही जीवन मे परिवर्तन आएगा।

मोटा उपाश्रय   ७-७-८५
घाटकोपर, बम्बई   रविवार

८ आस्था का सुमेरु

अनंत-२ उपकृति के केन्द्र वीतराग भगवान् और उनकी परम्परा को सुरक्षित रखने वाले महापुरुषों ने मोक्षगामी भव्यों के लिये अतीव उपकार किया है। वीतराग भगवान् के द्वारा प्रतिपादित जो सिद्धान्त है, उपदेश है, उस पर प्रगाढ आस्था बन जाय, विश्वास हो जाय, तो हमारी आत्मोन्नति का द्वार खुल सकता है। सिर्फ जानकारी ही न हो वरन् सम्यक्त्व का लक्षण जिन वचनों के प्रति, अचल आस्था निरन्तर उसकी प्रवाहित बनती रहे। सम्यग्दृष्टि जीव को जीव, अजीव, नवतत्त्व, पच्चीस क्रिया का ज्ञान भी होना चाहिये तथा वह यह ज्ञान भी करे कि हमारी आत्मा किन-२ कारणों से बंधन को प्राप्त हो रही है, और किन-२ क्रियाओं से, किन-२ उपायों से बन्धन से मुक्त हो सकती है।

क्रिया शुभाशुभ दोनों प्रकार की, पुण्य पाप कर्म बाँधनेवाली होती है। पुण्य-पाप ये दोनों तत्त्व है। पुण्य के उदय से आत्मा की कैसी दशा होती है, और पाप के उदय से कैसी होती है? इसके कई उदाहरण शास्त्रों में आते है। जो इस विषयक अपनी रुचि रखता है, जिन वचनों पर आस्था रखता है, वह ज्ञान हासिल कर अपने को पाप से पृथक् कर पुण्य के जहाज में बैठ सकता है।

एक पौराणिक आख्यान है—एक व्यक्ति जिसने वहुत अधिक पुण्यवानी का संचय किया, और मृत्यु के प्रसग पर यम के समक्ष यह श्रवण करने को मिला कि तुम्हारे पुण्य का संचय अत्यधिक है, और पाप वहुत कम है, अतः किसका उपभोग पहले करना है, तव कर्म फिलोसोफी से अनभिज्ञ वह कहने लगा कि पहले मुझे पाप का उपभोग करना है, क्योंकि पाप भोग लूंगा तो वाद में सारी पुण्यवानी ही अवशेष रह जायेगी। तो यम ने उसे एक प्रकार के गिरगिट की अवस्था प्रदान करा दी, वह वहाँ पाप का उपभोग करते-२ अपनी अज्ञानता से, वहुत सारी हिंसात्मक मनोवृत्ति से पाप का संचय कर गया, और अनिकाचित पुण्य प्रकृति को भी पाप में परिवर्तित कर दी। यह तो एक दृष्टान्त है, पर आज कौन ऐसा मनुष्य होगा जो पाप का उपभोग करना चाहेगा? पर वीतराग भगवान् की वाणी है कि जो पाप करता है, उसका फल उसको ही भोगना पड़ता है, अन्य उसे नही भोग सकते है। एक नन्हा वालक मिर्ची का वीज खाता

है तो मुँह भी उसी का जलने लगता है, ठीक इसी प्रकार पाप के बीज मोह के अधीन हो जो बोता है, तो उसका फल समय आने पर उसे ही भोगना पड़ता है, पुण्य-पाप का फल भुगतने के लिए कोई अन्य ईश्वर आदि की कल्पना उपयुक्त नही, जो कर्त्ता है, वही भोक्ता भी है। जैसे कि—

एक डॉक्टर, किसी रोगी के पास पहुँचा और देखा कि उस रोगी के शरीर में कई प्रकार के रोग के कीटाणु कार्य कर रहे थे। अतः डॉक्टर ने कहा कि मै सभी प्रकार के रोगों की गोलियाँ देता हूँ। मलेरिया, टाइफाइड, नमोनिया तथा सन्निपात सभी की गोलियाँ डॉक्टर ने दी, और मरीज ने सभी गोलियाँ पेट में डाल दी। अब आप बताओ कि अन्दर कौन बैठा है, जो उन गोलियों का अलग-२ रोग पर अलग-२ असर कराता है। इसी प्रकार व्यक्ति शुभाशुभ कर्म करता है, जिससे कर्म वर्गणा आती रहती है, और अलग-२ रूप में उनका स्वभाव भीतर बनता रहता है, और अलग-२ फल देने की शक्ति उनमें उत्पन्न हो जाती है, इन सबमें मुख्य कार्यकारी शक्ति आत्मा ही है। यह विषय अत्यधिक सूक्ष्मता से, गहराई से जो भव्य मनुष्य जान लेता है तो वह पाप का क्षय कर पुण्य का बन्ध कर निर्जरा के प्रशस्त मार्ग पर आगे बढ सकता है। इसके लिये धैर्य और साहसादि आत्मिक गुणो के विकास की अति आवश्यकता है। चाहे गृहस्थाश्रम मे हो या साधुता की साधना पर आरूढ़ हो, सभी को धर्म करणी करते हुए धैर्य और आस्था अतीव अपेक्षित है, कर्म सिद्धान्त का आत्मा पर कैसे प्रभाव पड़ता है ? इसका भावात्मक अध्ययन करने के लिये भगवान् ने चार अनुयोग का स्वरूप बतलाया है। उसमें चरितानुयोग से हर गूढ तत्त्व को समझने में सहूलियत रहती है। एक रूपक है—

एक चित्रकार एक रंगीन डिब्बिया लेकर बालकों को कहे कि इसमें हाथी, घोड़ा, हवाईजहाज आदि है। इस प्रकार कहने पर क्या कोई विश्वास कर सकता है ? पर जब वह सलाई लेकर उसी रंग से चित्र चित्रित कर दे तो उसे सब ही मान लेते है। वैसे ही आत्मा में भी सब प्रकार की शक्तियाँ समाहित है, आवश्यकता है सत्पुरुषार्थ द्वारा उन्हे जागृत करने की। धैर्य और साहस का मधुर फल इसी जीवन मे और अगले जीवन मे दोनों ही जीवन मे मिलता है।

वह पुरुषार्थ आगमानुसार है या नही ? यहाँ यह भी जान लेना योग्य है। आगम मे सभी तरह का विषय आता है। उसमें हेय, ज्ञेय, उपादेय तीनो ही तरह के विषय आते है। उन सभी विषयो मे जो विशेष रूप मे उपयोग योग्य बतलाया जाता है, वह पालनीय होता है। वैसे शास्त्रो मे द्रौपदी का कथन भी आया है और उसके पाँच पति भी बतलाये है। इस पर कोई यह सोचते हो कि द्रौपदी ने पाँच पति किये तो अच्छा किया है और वह सती कहलाती है तो हम भी ऐसा

करे, तो वह सही नही होगा। द्रौपदी को पॉच पति होने से सती नही कहा है। अपितु पातिव्रत धर्म पर एकनिष्ठ होने से तथा दीक्षित होने से महासती कहा है। पॉच का प्रसंग उसके पूर्व कर्मोदय का परिणाम था, जो सभी के लिए ग्राह्य नही हो सकता। यह ज्ञेय विषय है, उपादेय नही। पुराण मे द्रौपदी को लेकर उसके सतीत्व की अवस्था बतलाते हुए एक रूपक दिया है—

एक बार श्रीकृष्ण के साथ पाँचों पाण्डव और सती द्रौपदी एक बगीचे में जा रहे थे, प्रवेश के साथ ही सबको फल तोडने का निषेध कर दिया गया था, पर सब तो आगे-२ चल रहे थे, और भीम जो भारी शरीर के कारण पीछे चल रहा था, उसने देखा कि वृक्ष पर एक सुन्दर फल लगा है तो उसे देखकर मन चलायमान होने से भीम ने फल तोड़ लिया और श्रीकृष्ण ने उसे देख लिया। तब श्रीकृष्ण ने उसे प्रायश्चित करने के लिये कहा—प्रायश्चित कर लेने पर ही आगे बढ़ेगे। घर में जितने सदस्य होते है, और जो पाप घर मे होता है, उसके भागी घर के सभी सदस्य होते है। श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम सभी इस भीम के द्वारा कृत पाप के भागीरत हो, अत. धर्मराज तुम सर्वप्रथम प्रायश्चित करो कि "आज दिन तक मेरा जीवन पवित्र रहा हो, अन्य स्त्री की तरफ मेरी भावना नही गई हो तो हे फल तू मेरी पवित्र स्थिति के बलबूते से पुन: डाली पर लग जा। "कृष्ण महाराज के कहने के अनुसार, धर्मराज के कहने पर फल एक हाथ ऊपर उठ गया। इसी प्रकार सभी भाइयो ने कहा और वह फल एक हाथ ऊपर चढता गया। जब द्रौपदी ने कहा कि यदि मैने अन्य पुरुष की आकांक्षा नही की हो तो फल तुरन्त डाली के ऊपर लग जा। तो हुआ क्या? वह फल जो पॉच हाथ ऊपर उठा हुआ था, धडाम से पृथ्वी पर गिर गया। द्रौपदी लज्जाशील बनी, एकदम मूक बन गयी, पाण्डवों को भी आश्चर्य हुआ। तब कृष्ण ने कहा कि तुमने पूरा प्रायश्चित नही किया। तब द्रौपदी ने अपने सारे जीवन का प्रत्यावलोकन कर अपना प्रायश्चित किया और कहा कि जब मै एक बार व्यायामशाला के पास मे होकर जा रही थी, उस समय कर्ण को व्यायाम करते देखकर मेरे मन मे विचार आया कि क्या ही अच्छा होता पॉच पाण्डवो के साथ कर्ण भी होता तो मेरे पॉच पति के साथ छः पति हो जाते, बस इस भावना के अलावा मेरे मन मे कोई भावना नही आयी थी। अतः हे फलराज! मेरी इस अभिवृत्ति मे कुछ भी कमी न हो तो शीघ्रता से वृक्ष पर लग जाओ, इतना कहते ही फल झट से डाली पर लग गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि भव्यात्माओ! सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति अविचल श्रद्धा होनी चाहिये, इसी के साथ वीतराग प्ररूपित आगमों पर भी आस्था हो लेकिन उन वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तों को वह समझे और छोड़ने योग्य को छोड़कर उपादेय को ही ग्रहण करे और उपादेय में भी कभी दोष लग

जाय तो द्रौपदी की तरह आलोचना कर शुद्धि करलें ।

शास्त्र मे तो पुण्य का भी वर्णन आता है तो पाप का भी आता है। इसका मतलब पाप उपादेय नहीं हो जाता, पाप तो सर्वथा त्याज्य ही होता है।

आगमों पर आस्था रखकर क्षीर-नीर विवेक बुद्धि के साथ भव्यात्माएँ आगे बढ़ें, तो मंगलमय दशा को प्राप्त कर सकेंगी। इसी मंगलमय शुभ भावना के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

८-७-८५
सोमवार

९ एकनिष्ठ आस्था का चमत्कारिक प्रभाव

अनिर्वचनीय उपकार करने वाले तीर्थंकर भगवान् ने अपनी आन्तरिक शुद्धि से जो उपदेश प्रदान किया, वह उपदेश आज के भव्य मुमुक्षुओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कारण कि वर्तमान में जो जोवन प्राप्त है, उस जीवन की सार्थकता एवं विकासशीलता उस उपदेश से ही उपलब्ध हो सकती है। प्रत्येक आत्मा सुख की अभिलाषिणी है, पर सुख किस रीति से प्राप्त हो सकता है? इसका ज्ञान बहुत कम मनुष्यों को है, जैसे—पानी-पानी की रट लगाने वाला पानी का स्वरूप न समझने के कारण अन्य घासतेल आदि-आदि तरल पदार्थ यदि पी लेता है, तो उससे उसकी प्यास बुझ नही सकती। ठीक, इसी प्रकार अन्तरनाद को मिटाने में यह भौतिकता, यह पंच विषयों मे प्रवृत्ति समर्थ नही है, यदि इनसे अन्तर लालसा की पूर्ति होती तो फिर मनुष्य सुख की दौड़ में इधर-उधर नही भटकता। क्योंकि यह तो आज के युग में प्रचुर है, फिर भी इन भौतिक तत्त्वो से शांति प्राप्त नही हो पा रही है।

आत्मा की सच्ची तृषा भौतिकता से त्रिकाल में भी न कभी बुझी है, न बुझेगी। आत्म-शाति पाने के लिए, आत्मा को पहचानने के लिए जो प्रयत्नशील बनता है वह उसमें विद्यमान शुद्ध पर्याय को जानकर उसे प्राप्त करने मे पुरुषार्थरत हो सकता है। अपने स्वरूप को जानने के लिये हमेशा स्वाध्याय के साथ-साथ स्व का अध्ययन भी करना चाहिये। पुस्तक से जो स्वाध्याय होता है, वह तो श्रुतज्ञान में आता है, पर उसकी गहराइयो मे उतरने के लिये तथा आगे बढने के लिये वीतराग वाणी के रहस्य को जानना आवश्यक है।

आत्म पुस्तक से श्रोता को जो ज्ञान होता है, वह जीवन्त ज्ञान है। केवल पुस्तकों से आन्तरिक अनुभव प्राप्त नही हो सकता। अनुभवो की उपलब्धि कराने वाला हमारा ही चैतन्य है।

मगध सम्राट ने जब बगीचे में आन्तरिक अनुभूतियों से ओतप्रोत अनाथी-मुनि का आभा-मंडल देखा तो वह आश्चर्यचकित सुख की अनुभूति करने लगा। जब सम्राट श्रेणिक ने अनाथीमुनि से सनाथ-अनाथ को लेकर चर्चा की तो अनाथीमुनि ने बतलाया कि सनाथ-अनाथ का स्वरूप बाहरी उपाधियो एवं परिधियो से नही समझा जा सकता है, इसके लिए आत्मिक धरातल पर आन्तरिक अनुभूति होना आवश्यक है। क्योंकि वही विशेष लाभदायक है।

बन्धुओ ! यह स्पष्ट है कि जगत् के सभी प्राणियों के साथ आन्तरिक अनुभूति एक-दूसरे के साथ अनुरजित हो । सहृदयता रखते हुए एक-दूसरे के सहयोग एव उनकी अनुभूतियों से अपने जीवन का विकास करने का यदि प्रयत्न किया जाय, तो सफलता श्रीचरणो में चेरी बनकर खड़ी रह सकती है ।

एक पतिव्रत धर्म को लेकर चलने वाली सती में भी कितनी शक्ति आ सकती है, यह गांधारी के उदाहरण से समझा जा सकता है तो परिपूर्ण आत्माराधना करने वाले में कितनी शक्ति आयेगी ? यह अवक्तव्य है ।

महाभारत का युद्ध, जिसमें युद्ध करते-करते कौरव पक्ष जो कि प्रायः समाप्त सा होने लग गया, तब दुर्योधन मन मे विचार करने लगा कि मै कितनी-कितनी भावना लेकर चल रहा था, पर वह सब मटियामेट होने जा रही है । अब अंतिम समय युद्ध भीम के साथ सम्पन्न होने वाला है । उसी से विजय का निर्णय होने वाला है । अब मैं क्या करूँ ? किसके पास जाऊँ ? किससे ऐसा उपाय प्राप्त करूँ ? चाहे मै कितनी ही नीति शास्त्रो की बाते पढलूँ, पर मक्खन निकालने की सक्षमता मुझमे नही आ सकेगी ? मै क्यों न चैतन्य देव की चौपडी से इसका हल निकाल लूँ ? चैतन्य देव की चौपड़ी युधिष्ठर धर्मराज है । हालाकि वे मेरे प्रतिपक्षी है, फिर भी उनका व्यवहार बहुत तटस्थ है । वे सत्यनिष्ठ है । अतः दुर्योधन को यह बात जॅच गई कि मै युधिष्ठर के पास जाऊँ और उनसे हल पूछूँ, जरूर मुझे हल मिलेगा और मेरा सारा कार्य सिद्ध हो जायेगा । देखिये—शत्रु पर अटल विश्वास कर दुर्योधन जहाँ युधिष्ठर थे, वहाँ पहुँचे । पूर्व के युद्धों मे नैतिकता की स्थिति रहती थी, जब युद्ध का समय पूर्ण हो जाता था, तब एक-दूसरे के नजदीक जाकर उनकी सारसभाल करते थे । दुर्योधन ने जाकर धर्मराज को नमस्कार किया, धर्मराज बड़े प्रेम से उनकी तरफ दृष्टि डालते है और मधुर शब्दो से सत्कार-सम्मान करते है । बहुत प्रसन्न भावो से धर्मराज ने दुर्योधन से आगमन विषयक कारण पूछा, तब दुर्योधन ने कहा कि अब मेरा भीम के साथ गदा युद्ध होगा, इसमे मै कैसे विजय प्राप्त करूँ, इस समस्या का हल प्राप्त करने के लिये आपके पास आया हूँ । अतः कृपा करके मुझे वह उपाय बताओ ।

बन्धुओ ! यदि आपके समक्ष ऐसा प्रसंग आ जाय तो आप क्या करोगे ? आप अपने शत्रु का हित चाहे या न चाहे, पर धर्मराज विचार करने लगे कि "इनकी विजय से पाडवों की हार होगी, पर जो मुझसे सलाह लेने मेरे द्वार आया है तो मुझे इसे अनुभूति के आधार से सही उपाय ही बताना है", वे कहने लगे कि "दुर्योधन ! तुम्हारे घर मे ही इसका उपाय विद्यमान है जिससे तुम अपना शरीर वज्रमय बना सकते हो, इसका उपाय तुम्हारी माँ गांधारी है, जो शुद्ध शीलवती पतिव्रता नारी है, उसके पास जाकर तुम नम्रतापूर्वक निवेदन

करो, यदि वह तुम्हारे सारे शरीर पर माँ की ममता भरी दृष्टि प्रक्षेप करे तो तुम्हारा सारा शरीर वज्रमय बन जायेगा।" दुर्योधन फूला नही समाया और धर्मराज से स्वीकृति प्राप्त कर बाहर निकलने लगा, पर इधर कृष्ण महाराज को पता चल गया था। अतः उन्होंने आगे-पीछे की सारी बात का ख्याल करके दुर्योधन से कहा कि तुम अपनी जीत के लिये धर्मराज के पास गये थे ना, उन्होंने क्या उपाय बताया, देखो मुझसे मत छिपाना, मुझसे कुछ भी छिपा हुआ नही है, तब दुर्योधन ने सारी हकीकत कह दी। तब कृष्ण महाराज ने सलाह दी कि तुम इतने वड़े राजनपतिराजा होकर अपनी माँ के सामने सारा बदन खुला कर कैसे जाओगे, कम से कम गोपनीय स्थान पर वस्त्र रखकर जाना, गदा का प्रहार वहाँ तो होगा नहीं, तब दुर्योधन इस बात को स्वीकार कर, उसी तरह माँ के सामने आकर खड़ा हुआ। माँ की जहाँ-जहाँ दृष्टि पड़ी वह भाग तो वज्रमय बन गया, लेकिन वस्त्र से अनावृत अंग कच्चा रह गया। खैर यह कहानी तो बहुत बड़ी है, मै जो सम्यक्त्व की बात कह रहा था, और इस कथा भाग से हमें बहुत तरह से पुष्टि मिल रही है, यदि आप निर्मल दृष्टा है तो आपकी दृष्टि में वह तेज प्राप्त हो सकता है। चेतना में इतनी शक्ति है कि हमारी सारी समस्याओं का हल हमारी चेतना से, हमारी सम्यक्त्व स्थिति से ही हो सकता है।

जब पति के प्रति एकनिष्ठा प्राप्त हो जाने पर गाधारी में भी दुर्योधन को वज्रमय बनाने की शक्ति आ सकती है, तो जो भव्यात्मा परमपिता परमात्मा के प्रति अचल आस्था एवं एकनिष्ठा रखती है उसमे कितनी शक्ति आ सकती है ? यह चिन्तन करिये। यह आस्था सम्यक्त्व से ही आ सकती है। दृढ़ सम्यक्त्वी के सामने मानव की तो बात जाने दो, देवता भी झुक जाते है। उनकी शक्ति भी सम्यक्त्वी के सामने फीकी पड़ जाती है। उदाहरण के रूप में "ज्ञाताधर्मकथाङ्ग" सूत्र मे वर्णित अरणक श्रावक की धर्म-निष्ठा के सामने देव झुक गया था। श्रेणिक राजा की अचल आस्था के सामने भी देव प्रणत हो गया था। अतः यह स्पष्ट है कि दृढ सम्यक्त्वी में सम्यक्त्व तेज से विशेषता आ जाती है।

आत्म शक्ति को जागृत करने के लिये सवसे पहले सम्यक्त्व का जागरण आवश्यक है। वह सम्यक्त्व का जागरण गांधारी की तरह, वीतराग देव के प्रति एकनिष्ठ वने। इसके लिए सम्यक्त्व के आठ आचार हैं। उनका ज्ञान होना भी अतीव आवश्यक है।

मोटा उपाश्रय ९-७-८५
घाटकोपर, वम्बई मंगलवार

□ □ □

१०

प्रभु के प्रति सर्वात्मना समर्पण हो

वीतराग देव ने जो आध्यात्मिक ज्ञान का प्रवाह प्रवाहित किया था, वही ज्ञान का प्रवाह आज भी भव्यात्मा तक पहुँच रहा है। ज्ञान ज्ञानी के पास ही जाता है। आकाश से जैसे पानी बरसता है तो वह खेती को सरसब्ज बनाता हुआ, लोगों की प्यास बुझाता हुआ आखिर समुद्र में ही जाकर मिलता है। ठीक इसी प्रकार तीर्थकरों ने जो ज्ञान प्रवाह प्रवाहित किया वह गणधरो के कर्ण कुहरों में समाहित होता हुआ और उनके जरिये से जो निर्झर फूटा, उससे आज हम सभी लाभान्वित हो रहे है।

जो ज्ञान आज हमे मिल रहा है उसे हमे हृदयस्थ करना है। यदि हम परिपूर्ण समर्पणा के साथ ज्ञान को आत्मस्थ बनाने के लिए तत्पर बन जायं तो वह ज्ञान हमारी सुषुप्त चेतना को जागृत कर सकता है। आत्मा के सर्वांगीण विकास के लिए प्रभु के प्रति परिपूर्ण समर्पणा अति आवश्यक है। जैसे माता के गर्भ से जिस सन्तान का जन्म होता है, वह सन्तान जन्म लेने के साथ ही साथ माता के प्रति अपने आपका समर्पण कर देती है, तभी वह बालकपन से यौवनवय को प्राप्त होता है। बिना माँ के प्रति समर्पणा हुए उस बच्चे का सर्वांगीण विकास सम्भव नही है। यह समर्पणा भी अपनत्व जहाँ होता है, वही परिपूर्ण-रूपेण बनती है। पिता की अपेक्षा माता का अपनत्व सन्तान पर विशेष होता है। इसलिये सन्तान का पिता की अपेक्षा माँ के प्रति विशेष आकर्षण होता है। छोटे बच्चे को माता के कहने का परिपालन करते हुए देख हम यह सचोट कह सकते है कि बच्चे की माँ के प्रति इतनी अधिक समर्पणा माँ के अपनत्व के कारण ही होती है।

मेरे स्वयं के वचपन का एक प्रसग है—बचपन मे मुझे जब माताजी (चेचक—ओली माता निकली) हो गये थे, तब मुझे मेरी माताजी रोटी के साथ पतासा लगाकर प्रतिदिन खिलाया करती ताकि रोटी कडवी नही लगे। एक दिन किसी काम से वे नही खिला सकी और पिताजी खिलाने लगे तो मैने मना कर दिया कि मै आपसे नही खाता। तव पिताजी कहने लगे कि "मै तुझे जहर तो नही खिला रहा हूँ?" फिर भी मैने नही खाई और जव माताजी ने आकर खिलाई तो जल्दी से खाली। कहने का तात्पर्य यह है कि माँ के प्रति वच्चे की जितनी समर्पणा होती है, उतनी अन्य किसी के प्रति नही। लोग कहते है कि सृष्टि का कर्ता ईश्वर है पर जैन दर्शन की दृष्टि से मै यह कह

सकता हूँ कि बालक की सृष्टि का कर्ता माँ है। उसमें वह ईश्वरीय शक्ति है कि वह कुम्भकारवत् अपने बच्चे को संस्कारित कर अपने मनोभावो के अनुरूप बना सकती है। महाराजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित जिसे माता तारा के ऐसे सुसंस्कार मिले कि वह देव के प्रलोभन में आकर भी अपनी क्षुधा शांत करने को तैयार नही हुआ, कारण उसकी अपनी ममतामयी माता के प्रति परिपूर्ण-रूपेण समर्पणा थी और उस समर्पणा का ही पुण्य प्रसाद था कि उसका जीवन बचपन से सुसस्कारित, उच्च कुल का प्रतीक था। इसी प्रकार वीतराग के मार्ग पर वीतराग की आज्ञाओं पर यदि परिपूर्णरूपेण समर्पणा हमारी हो जाती है तो हमारी आत्मा का विकास परिपूर्णरूपेण सम्भवित है। यदि हमें वीतराग की आज्ञा का सम्यक् बोध नही है और हम चारों तरफ के तथाकथित धर्मो को अपना कर संसार के प्रवाह मे बह रहे है, तो जैसे कहावत है कि "सात मामा का भाणजा भूखा ही रह जाता है"—वही हालत हमारी हो सकती है। अतएव वीतराग की आज्ञाओं का सम्यक् बोध करके उसी पर परिपूर्ण समर्पणा, कृष्ण के प्रति रुक्मणी की तरह हमारी प्रभु के प्रति बन जाय तो जैसे कृष्ण महाराज रुक्मणी की सर्वतोभावेन समर्पणा से उसे संप्राप्त हो गये, ठीक वैसे ही वीतराग की आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्णरूपेण समर्पणा से हमे अपनी आत्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती है।

कई शांति इच्छुक लोग मंत्र के विषय में प्रश्न करते है और जब नवकार मंत्र उनको बताया जाता है तो वे उसके महत्त्व को नही पहचान पाते है और अन्य मन्त्रों को जानने की आकांक्षा करते रहते है, पर आप नवकार मंत्र के प्रति समर्पणा और उस समर्पणा से होने वाली उपलब्धि को समझने के लिए एक छोटा सा रूपक ध्यान में लें। जैसे कि एक व्यक्ति राष्ट्रपति के प्रति समर्पित है और एक व्यक्ति साधारण सिपाही के प्रति। जो राष्ट्रपति के प्रति समर्पित होकर उसकी उपासना करने वाला व्यक्ति है, वह यदि ठोकर खाकर कही गिर जाता है तो उसकी सारसंभाल करने वाले कितने उपस्थित हो जायेगे ? जबकि सिपाही की उपासना करने वाले की यह स्थिति बनने पर अर्थात् ठोकर खाकर गिर जाने पर उसकी सारसंभाल करने वाले कितने लोग उपस्थित होंगे ? यदि मान लो उसका इष्ट वह सिपाही उसको सहायता दे भी दे तो भी अन्य सिपाही उसमे बाधक भी बन सकते है। ठीक इसी प्रकार ६४ इन्द्रों से वंदनीय नमस्कार मंत्र है और सिपाही की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान अन्य मंत्र हैं। नमस्कार मंत्र की उपासना, जो व्यक्ति परिपूर्ण समर्पणा के साथ करते हैं उनकी उपासना राष्ट्रपति की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान हर समय, हर परिस्थिति में कामयाब हो सकती है। आपत्ति से हमें उबारने के लिए आत्मबल प्रदान करने में समर्थ हो सकती है। पर अन्य मंत्रों पर समर्पणा जिनकी होती है उनकी उपासना सिपाही की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान ही होती है। अर्थात् अन्य मंत्रों के अधिष्ठातृ देव-देवियाँ हैं वे भले ही अपनी स्तुतिपरक मंत्र

से प्रसन्न हो जाय और अपना कार्य सिद्ध कर दें पर उनके द्वारा होने वाली कार्य सिद्धि में भी भजना है क्योंकि उनका कोई विरोधी देव है तो वह उस समय बाधक बन सकता है। जैसे जो व्यक्ति राष्ट्रपति को प्रसन्न कर लेता है उसका कोई बाधक नही बन सकता है, ठीक वैसे ही नमस्कार मंत्र की आराधना करने वाला नमस्कार मत्र में जिनको नमन किया जा रहा है उन परमात्मा एवं महानात्माओं की सेवा में तत्पर रहने वाले जो सम्यग्दृष्टि ६४ इन्द्र देवादि है उनको प्रसन्न कर लेता है अथवा वे इन्द्रादि ही जब उस नमस्कार मंत्र की आराधना, साधना करने वाले व्यक्ति के प्रति प्रसन्न हो जाते हैं अथवा प्रभावित हो जाते है तो उस साधक के कार्य सिद्ध होने में कोई देरी नही हो सकती है और उन चौसठ इन्द्रों के अधीनस्थ सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि कोई भी देव क्यों न हो, वह उस कार्य सिद्धि में बाधक नहीं बन सकता है।

समर्पणा के लिए एक रूपक और ले सकते है। अपने घर में जन्मे हुए लडके और जन्मी हुई लड़की इन दोनों में घर का मालिक कौन होता है? उत्तर होगा लडका। इसका कारण लड़की की पिता के प्रति समर्पणा, उस घर के प्रति समर्पणा नही होती है और लड़के की अपने पिता के और अपने घर के प्रति परिपूर्ण समर्पणा होती है, अतः वह उस घर का मालिक बन जाता है। उसी प्रकार वीतराग देव के घर का मालिक यदि हमें बनना है तो परमपिता महाप्रभु की आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्ण समर्पणा होनी चाहिये और परिपूर्ण समर्पणा के लिये आत्मिक गुणो का विकास भी अति आवश्यक है—आत्मिक गुण, सयमानुरंजित धैर्य और साहस से अपने जीवन मे जो मनुष्य गतिशील है, उसका जीवन निरन्तर सुसफल बनता जाता है। और वीतरागदेव की आज्ञा का अन्तरंग स्थिति के साथ परिपूर्ण समर्पणा के साथ पालन करने का आत्म पुरुषार्थ जागृत होकर अन्त में परमात्म स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है। महाप्रभु के प्रति हमारी समर्पणा, निःस्वार्थ होती है तो वह निश्चय ही प्रभावशाली बनती है। स्वार्थ युक्त समर्पणा विशेष प्रभावशाली नही बनती। इसके ऊपर एक छोटा सा आख्यान है—एक राजा तीव्र वेगगामी घोड़े पर बैठकर जंगल में शिकार खेलने गया तथा सभी साथियों से बिछुड़कर किसी कृषक के कुए पर पहुँच गया। वहाँ एक वुढिया बैठी हुई थी, उसने उस राजा का हृदय से सत्कार किया, उसे चटाई पर बिठाया और गन्ने के खेत में जाकर एक गन्ने को लाई और उसका एक लोटा रस निकालकर उसे पिलाया बड़े स्नेहभावपूर्वक, उस राजा की भूख और प्यास दोनो ही शांत हो गई। तव राजा विचार करने लगा कि यह वुढिया वहुत शक्तिशाली है। शक्तिशाली क्यों न हो? इतना विस्तृत गन्ने का खेत है, कितना गुड़ वनता होगा? इस पर मुझे जरूर अधिक कर लगाना चाहिए। ऐसा विचार कर वह राजा उस वुढिया के आदर सत्कार को लेकर रवाना हुआ और राज्य में जाकर उसके गन्ने के जितने भी खेत थे उन सव पर कर लगा दिया। कुछ अर्से वाद पुनः कुछ ऐसा प्रसंग वना कि वह

राजा उसी बुढ़िया के आंगन में गया और उसका वही पूर्ववत् आदर सत्कार हुआ। बुढ़िया जब गन्ने का रस लायी तो उसने देखा कि पाँच-छः गन्ने का रस निकालने पर भी उसका लोटा नही भरा तो राजा ने स्वाभाविक रूप से पूछ लिया कि पहले तो सिर्फ एक गन्ने से ही लोटा रस से लबालब भर गया और आज पाँच-छः गन्ने के रस से भी यह लोटा क्यों नही भर पाया ? तब बुढिया जो कि अनभिज्ञ थी कहने लगी कि 'यही मेरा राजा है' और यहाँ का राजा इतना निष्ठुर बन गया है कि उसने कृषकों के खेत पर बहुत अधिक कर लगा दिये हैं। इसी निष्ठुरता का परिणाम आप देख ही रहे है 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत यहाँ प्रचलित है।

जैसे राजा की निष्ठुरता ने गन्ने के रस पर अपना प्रभाव दर्शाया क्योंकि राजा के निजी जीवन का, व्यावहारिक धरातल का प्रजा पर प्रभाव पड़ता है। ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार की हमारी प्रभु के प्रति समर्पणा होती है, उसी प्रकार का प्रभाव हमारी आत्मा को जागृत करने में सहयोगी बनता है। यदि राग-द्वेष मुक्त निःस्वार्थ हमारी समर्पणा है तो हमारी आत्मा भी समर्पणा के अनुरूप बनने मे सक्षम बन जाती है।

आचरण युक्त समर्पणा ही आत्मिक शुद्धि में विशेष प्रभावी होती है। आचरण शून्य जीवन का जनमानस पर भी विशेष प्रभाव नही पड़ता। इसके लिये एक छोटा सा रूपक और दे देता हूँ। एक बार एक त्यागी महात्मा के पास एक बहिन आई और कहने लगी कि मुझे गुड का त्याग करा दो तो उन्होंने पहली बार तो नही कराया, दूसरी बार पुनः आई तो त्याग करा दिया। जब उस बहिन ने इसका कारण पूछा कि मुझे उस दिन त्याग क्यों नही कराया और आज करा दिया इसका क्या कारण है ? तो महात्मा ने कहा कि उस दिन मैंने स्वयं ने गुड़ खाया था। अतः तुझे प्रत्याख्यान नही कराया और अब मैंने खाना बन्द कर दिया अतः प्रत्याख्यान करा दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि आचार युक्त कथन का ही प्रभाव पड़ता है। जब हमारे जीवन की समर्पणा भी जीवन मे आचार-प्रणाली को महाप्रभु की आराधना के अनुरूप बनाकर ही होती है, तब ही उसका विशेष प्रभाव पड़ सकता है। हम मुख से तो वीतराग प्रभु के प्रति समर्पणा के गीत अलापें और जीवन का व्यवहार, हमारा ठीक उससे विपरीत हो तो ऐसी समर्पणा से कुछ भी नही होने वाला है। यह तो मात्र एक प्रवंचना ही होगी, जो संसार घटाने के स्थान पर संसार बढा देगी।

अतः आत्म-जिज्ञासु साधक निज में परमात्म स्वरूप की अभिव्यक्ति करना चाहे तो उसके लिए प्रभु के प्रति सर्वात्मना समर्पण आवश्यक है।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१०-७-८५
बुधवार

११ समर्पणा हो नवकार के प्रति

अनिर्वचनीय शांति के सागर, शांति के आकाश महाप्रभु वीतराग देव है। आकाश जिसका कभी अन्त नही आता है। सागर जिसकी हम थाह नही प्राप्त कर सकते है। वैसे ही तीर्थकर भगवान् ने साधना कर जिस अगाध अमाप शाति की प्राप्ति की है, जिसकी कोई थाह नही, सीमा नही है। उस शाति में अनन्तानन्त ज्ञान का खजाना भरा पडा है। उस ज्ञान खजाने मे से कुछ ज्ञान भी यदि मनुष्य ले लेता है, तो वह एक न एक दिन स्वय सम्पूर्ण ज्ञान का खजाना भी प्राप्त कर सकता है।

लोक मे भी देखते है कि सेठ के नीचे रहने वाला नौकर भी अपने पुरुषार्थ से एक-न-एक दिन सेठ बन जाता है, वैसे ही वीतराग भगवान् की साधना को निरन्तर अपनाने वाले वीतराग बन जाते है। इसमे कुछ भी आश्चर्य नही है।

हमारा कितना अहोभाग्य है कि हमे यह अमूल्य वीतराग वाणी श्रवण करने को मिल रही है। जब जीवन मे वीतराग वाणी के प्रति हमारी समर्पणा होती है, तभी वीतराग वाणी का श्रवण हमारे लिये समुचित रूप से सफलीभूत वन सकता है। जैसे कि जो विद्यार्थी स्कूल मे जाकर अध्यापक के प्रति समर्पणा करके चलता है, उनके द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं को अचल विश्वास एव विनय श्रद्धा के साथ ग्रहण करता है तो उसका समुज्ज्वल विकास सभवित हो सकता है, अन्यथा नही। जहाँ वाह्य क्षेत्र मे भी समर्पणा की इतनी आवश्यकता है अर्थात् अक्षरीय ज्ञान उपलब्ध करने मे भी समर्पणा आवश्यक है तो आत्मोन्नति की आकाक्षा लेकर चलने वालो की वीतराग वाणी के प्रति कितनी निष्ठा, समर्पणा एव श्रद्धा की आवश्यकता रहती है ? यह विचारणीय है। यदि हमारी वीतराग वाणी के प्रति, नमस्कार मन्त्र के प्रति परिपूर्णरूपेण समर्पणा वन जाये तो आत्मा की अनन्त शक्तियो का अनुभव होते देर नही लगेगी।

समर्पणा का यह सूत्र सर्व प्रथम माता-पिता के द्वारा वचपन मे ही प्रदत्त नमस्कारों मे जीवन मे पनपता है। यदि वचपन मे माता-पिता के प्रति जो वालक समर्पित होता है, वह अपनी समर्पणा की सच्ची फलानुभूति जीवन मे करता हुआ इस समर्पणा का हर क्षेत्र मे विस्तार कर अपने जीवन मे निर्धारित

लक्ष्य की ग्रावाप्ति में सुसफल बन सकता है। बचपन में माता-पिता के प्रति बच्चे की समर्पणा कैसी होनी चाहिये ग्रौर उसका उत्तरदायित्व किसके ऊपर है ये सारी बाते चिन्तन की स्थिति मे लेते हुए यदि माता-पिता ग्रपने ग्रगाध ग्रपनत्व को निभाते हुए बच्चे की सच्ची समर्पणा को प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त करे ग्रौर बच्चे माता-पिता के साथ सच्ची समर्पणा रखे तो ग्राज के युग में वहुताश रूप से जो माता-पिता का सन्तान के साथ ग्रौर सन्तान का माता-पिता के साथ ग्रपने-ग्रपने उत्तरदायित्व से परे व्यवहार चल रहा है, वह समाप्त हो जायेगा। ग्राज तो तन, मन से सेवा करना तो दूर रहा, पुत्र मा-बाप को मारने के लिये भी तत्पर हो जाता है तो वहाँ पुत्र की समर्पणा के सुसस्कारों का ग्रभाव नही तो ग्रौर क्या है ? मै क्या कहूँ—ग्रमरावती का एक प्रसग है—ग्रमेरिका जाकर ग्राया हुग्रा डॉक्टर ग्रपनी बूढी मां की बीमार ग्रवस्था में सेवा न कर उसे पोयजन (Poison) का इंजेक्शन देने को तैयार हो गया था। ग्रत: माता का कर्तव्य है कि बचपन से ही ग्रपना यथोचित्त उत्तरदायित्व निभाती हुई ग्रपनत्व एव वात्सल्य भावों के साथ ग्रपनी सन्तान मे समर्पणा के सुसंस्कार, समर्पणा की सजीवनी, धार्मिक पुट के साथ समर्पणा का बीज वपित करे, ताकि भविष्य मे कभी ग्रपनी सन्तान के प्रति कठोर व्यवहार की ग्रधिकारिणी वह नही बने, बचपन से ही समर्पणा के सुसंस्कारों में पलने वाली ग्रात्मा ग्रध्यापक ग्रादि के साथ समर्पणा का पार्ट ग्रदा करती हुई यदि वीतराग देव की ग्राज्ञा के प्रति निष्ठा पूर्वक समर्पित हो जाती है तो ऐसी ग्रात्मा स्व के साथ ग्रन्य ग्रात्मा का भी उद्धार कर सकती है।

एक ग्राख्यान सुनने को मिलता है—एक चोर जिसे फांसी की सजा मिली थी उसे देखने के लिये वड़ी सख्या में जनता एकत्रित हुई। फांसी लगने से पूर्व उस चोर को बहुत जोर से प्यास लगी, पर राजा के प्रति, राजा की ग्राज्ञा के प्रति समर्पित वह जनता, वह प्रजा, उसका एक भी सदस्य उसे पानी पिलाने के लिए तैयार नही हुग्रा, पर उसी भीड़ मे वीतराग भगवान् की ग्राज्ञा में समर्पित जिनदास सेठ जो कि सम्यग्दृष्टिपने का ग्राराधक था। ग्रनुकम्पा बुद्धि से वह चोर के नजदीक पहुँचा, ग्रौर कहने लगा कि तुम्हारे मृत्यु के क्षण नजदीक ग्रा चुके है पर भाई यदि प्यास से छटपटाते हुए पानी-पानी की रट लगाते हुए ग्रार्त्तध्यान (ग्रपध्यान) करते हुए मरोगे तो पानी के ग्रन्दर ही जीव रूप से उत्पन्न हो जाग्रोगे ग्रौर यदि फांसी देने वाले पर रोष करोगे, ग्रौर यदि तुम्हारे विचारो मे द्वेष की उत्कृष्ट रसायन ग्रा जायेगी तो रौद्र नरकों में जन्म लेना पड़ेगा जहां घोरातिघोर दु:ख हैं। ग्रत: भाई तुम—ग्रपने पाप का पश्चाताप करते हुए नमस्कार मन्त्र का जाप शुरू कर दो, इधर मैं तुम्हारी प्यास बुझाने के लिए पानी लाता हूँ। यदि मैं पहुँचू उससे पहले तुम्हारी मृत्यु हो जाय तो इस मन्त्र का जाप, इसके प्रति पूर्ण समर्पणा रख कर उच्चारण

करते रहना, इससे तुम्हारी सुगति हो जायेगी, तुम्हारे सारे पाप एक-न-एक भव में भस्मीभूत हो जायेंगे ।

उस सेठ की बात को वह अत्यन्त श्रद्धा से सुन रहा था, आचारवान उस श्रावक की वाणी का अद्‌भुत प्रभाव पड़ा, उस चोर ने नवकार मन्त्र कौनसा है जानने की जिज्ञासा की, और नवकार मन्त्र का श्रवण कर उसका श्रद्धा के साथ जाप चालू कर दिया । किन्तु मृत्यु का भयानक आतंक सामने होने से चोर, मन्त्र याद नहीं रख सका पर वह शुद्ध भाव से इतना ही उच्चारण कर पाया कि—"आणू-ताणू कुछ नही जाणू सेठ वचन परमाणू" अर्थात् जिन वीतराग वचनों पर सेठ समर्पित है मै भी उन्ही वचनों पर समर्पित हूँ । उसके मुँह से, भीतर में, श्रद्धा मे अवगाहन करती हुई वचन वर्गणा से निसृत शब्द, पूर्ण श्रद्धा के साथ थे ।

नवकार मन्त्र के प्रति अतिम घड़ियो में चोर की जो आन्तरिक समर्पणा बनी इससे उसको देवलोक की संप्राप्ति हुई । निष्कर्ष यह निकलता है कि वीतराग भगवन्तों की वाणी के प्रति जो समर्पणा बन जाती है तो उसके, सुमधुर फल से पुण्यात्म का सम्यक् रूपेण उद्धार होता ही है पर पापात्म भी उन भावनाओं से आत्म शुद्धि करता हुआ पुण्यार्जन के साथ-साथ निर्जरा के प्रशस्त मार्ग पर आगे बढ जाता है । और अज्ञानतावश बान्धी हुई अनिकाचित् अशुभ पाप प्रकृतियो को शुभ पुण्य प्रकृतियो मे परिवर्तन कर लेता है ।

अन्त में निष्कर्ष यही है—कि पहली समर्पणा माता-पिता, दूसरी समर्पणा अध्यापक के प्रति, तीसरी समर्पणा वीतराग भगवान् की आज्ञा के प्रति होनी चाहिये । यदि दो प्रकार की समर्पणा जीवन मे है पर वीतराग भगवान् की आज्ञा के प्रति समर्पणा जब तक नही होती है, तब तक सच्चो शान्ति प्राप्त नही कर सकते है, जीवन का सही रूपेण विकास नही कर सकते है । अतः शाश्वत शांति के लिए वीतराग देव के प्रति समर्पणा आवश्यक है ।

मोटा उपाश्रय   ११-७-८५
घाटकोपर, वम्बई   गुरुवार
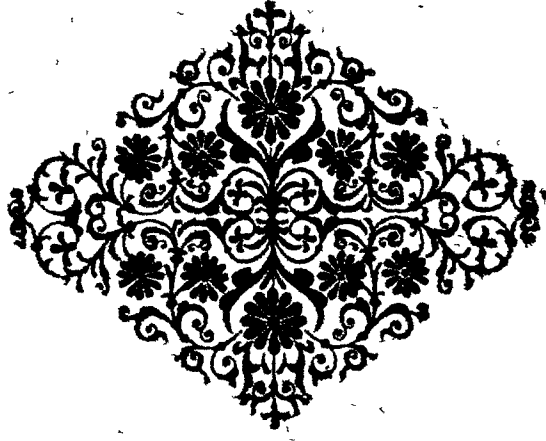
सम्यक्-दर्शन

(जीवन जीने की सुदृढ़ नींव)

आठ-आचार

- निःशंकित
- निःकांक्षित
- निर्विचिकित्सा
- अमूढ़-दृष्टि
- उपबृंहन
- स्थिरीकरण
- वात्सल्य
- प्रभावना

१२ निःशंक समर्पणा बने—जिनवाणी पर

अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर की अमोघ वाचना का प्रसंग यहाँ चल रहा है। जिस वाणी में आत्मा की समग्र ऋद्धि-समृद्धि का अखूट खजाना भरा हुआ है, उस वाणी में से यदि उस शाश्वत सुख और आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना है तो ग्रहण करने के लिए दत्तचित्त बन जाना है। दत्तचित्त का तात्पर्य है कि श्रेष्ठ वस्तु को ग्रहण करने में एकाग्रता के साथ विनम्र भाव रखना है। वीतराग वाणी के ग्रहण में विनम्रता अति आवश्यक है। आप सन्तों के ज्ञान दर्शन और चारित्र को वंदन करते है, उस समय भावना यही बनती है कि आप महान् है, गुणों के भण्डार हैं, आप जैसे गुण मुझमें भी आ जायें, अतएव मै आपको अन्तर समर्पणा के साथ हार्दिक भाव से वन्दन करता हूँ। आप मुनियों के पैर मे अपना मस्तक लगाते है, कारण कि मुनि के समग्र शरीर में गुण व्याप्त है अतः चरण में व्याप्त गुण ही यदि मुझमे आ जायं तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। यही आपकी भावना बनती है।

दशवैकालिक सूत्र में कहा है कि "हत्थ संजए, पाय संजए, वाय संजए" इत्यादि सूत्र से यह ज्ञात होता है कि संयमी आत्मा के समग्र अवयव उनके हाथ, उनके पैर, उनकी वाणी, आत्म गुणों से, संयम से परिपूरित होती है। अतः हम समर्पणा की भावना से उन गुणों को विनय भाव से वन्दन करते हुए अपने में भी उजागर कर सकते है।

समर्पणा दो तरह की है—एक तो सांसारिक कृत्यों के प्रति समर्पणा बनती है। जैसे माता-पिता के प्रति, अध्यापक के प्रति आदि-२ और दूसरी आध्यात्म के प्रति समर्पणा। जो सम्यग्दर्शन के प्रति समर्पित हो जाता है उसको आध्यात्म के प्रति समर्पणा भली-भाँति सम्यक्रूपेण बन जाती है। कोई व्यक्ति किसी के यहाँ नौकरी करता है तो उसे सेठ के प्रति नम्र होकर रहना पड़ता है। नेताओ के अधीनस्थ रहने वालों को नेताओं के प्रति समर्पित होकर रहना पड़ता है तभी उनका काम चलता है। तो आध्यात्म साधना के लिए अपने जीवन में सुषुप्त आध्यात्मिक लक्ष्मी को जागृत करना है तो वीतराग प्रभु की अमोघ वाग् धारा के प्रति, उनकी आत्म हितैषी आज्ञाओ के प्रति निःशंक समर्पित होकर चलना अतीव आवश्यक है। सम्यग्दर्शन के आठ आचार जो प्रभु ने बतलाए है, उनमें भी समर्पणा की बात, समर्पणा की शर्त समाहित है।

सम्यक्त्व के आठ आचारों के प्रति हमारा जीवन सर्वतोभावेन समर्पित बन जाय तो आत्म वैभव का अखूट खजाना प्राप्त होते कोई देरी नही लगे ।

सम्यग्दर्शन जिसके आठ आचार—उनमें सर्वप्रथम आचार है निशकित वीतराग भगवान के वचनों में किसी प्रकार की शका नही करना, इससे निशंकित आचार की परिपालना होती है । जैसा कि शास्त्र का वाक्य है—"तमेव सच्चं णीसंकं, जं जिणेहि पवेइय" वही सत्य निशंक है, जो जिनेश्वरों द्वारा प्रवेचित है, ऐसा विश्वास बने । उसमे कुतर्क-वितर्क नही करना, इससे वीतराग वाणी के प्रति समर्पणा उत्पन्न होती है और अन्तर की शक्ति ऊर्ध्वगामी बनती है । जो सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के राकेट मे बैठ जाते है, और सम्यक् उड़ान भरते है तो उन भव्यात्माओं को सिर्फ एक समय लगता है, अपने अष्ट कर्म क्षय होने के बाद, मुक्तिपुरी मे पहुँचने के लिए । अतः हमें धर्म करणी करते हुए उसके शुभ फल की प्राप्ति तत्काल यदि न भी हो, तो भी कभी भी जिन बचनों मे, धर्म की अनन्त शक्ति में शका नही करनी चाहिये । प्राप्त दुःख को निकाचित कर्मो का उपभोग समझकर अन्तर ज्ञान के चक्षु उद्घाटित करते हुए कर्म फिलोसोफी का ज्ञान समकक्ष रखकर, शांत भावों से सहन करना चाहिये, ताकि पूर्वबद्ध कर्म निर्जरित हो जायेगे और धर्मकरणी का, प्रशस्त भावनाओ का, सुफल शब्द द्वारा अकथनीय अनुभवगम्य आत्मऋद्धि के रूप में उपलब्ध होगा ।

आपने कई बार सुना होगा कि—गौतम स्वामी जिनको आत्मा विषयक शंका थी कि "आत्मा है या नही" ? पर कुछ बनाव ऐसा बना जिससे वे जब प्रभु महावीर के नजदीक पहुँचे और सर्वज्ञ सर्वदर्शी, घट-२ के अन्तर्यामी प्रभु महावीर के द्वारा यह पूछने पर कि "गौतम ! क्या तुमको यह शका है कि—आत्मा है या नही ?" सिर्फ इतने से शब्दों को श्रवण करते ही, सत्यदृष्टा केवलज्ञानी के वचन वर्गणाओं का, वचन शक्ति का, अद्भुत प्रभाव पड़ा कि गौतम स्वामी की अन्तर आत्मा जागृत हो गई और अभिमान के शिखर से उतरकर वे श्रद्धाभिभूत हृदय से, गद्‌गद भावों के साथ प्रभु महावीर के चरणों में समर्पित हो गये । इतने अधिक विनम्र वन गये कि उतना प्रशान्त विनय आज के साधकों के लिए आदर्श दर्पण वन गया और उसी विनय गुण की स्थिति से, प्रभु महावीर के प्रति, उन तीर्थेश्वर के वचनों के प्रति, सर्वतोभावेन समर्पणा के कारण ही गौतम स्वामी ने सिर्फ त्रिपदी "उप्पेइवा विगमेइवा धुवेइवा" सुनकर द्वादशागी का ज्ञान प्राप्त कर लिया प्रथम गणधर की पदवी संप्राप्त करली और सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक लक्ष्मी का वरण कर मोक्षगामी वन गये । उन महापुरुषों के जीवन विषयक शास्त्रीय आख्यानो का श्रवण करते हुए यह विचारना है कि संत मुनिराजों द्वारा कथित वीतराग वचनो के प्रति अर्थात् सम्यक्-दर्शन के प्रति हमारी समर्पणा है या नही ? यदि नही है तो सम्यक् दर्शन का प्रथम आचार हमारे जीवन की पृष्ठभूमि पर नही उतर सकता ।

वीतराग वचन के प्रति दृढ़ आस्था रूप श्रद्धान करो, पर कैसे ? इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझिये – एक बहुत बड़े सेठ थे, जिनके पास करोड़ो की सम्पत्ति थी। साथ ही उनके जीवन में यह बहुत बड़ा सद्गुण भी था कि वे नित्य प्रतिदिन संत-संगति किया करते थे। ये विचार उनके मानस मे उभरते रहते थे कि मेरे पास तो यह भौतिक सम्पत्ति है पर इन महान् आत्माओं के पास जो आध्यात्मिक सम्पत्ति है, क्या ही अच्छा हो कि मैं भी इस नश्वर भौतिकता से परे हटकर आध्यात्मिक लक्ष्मी का मालिक बनूँ। उन्ही शुभ भावों से उनके जीवन में महात्माओं के प्रति अन्तर में समर्पणा बनी। बिना समर्पणा के तो कुछ भी उपलब्ध नही होता है। जैसे—गाय के बछड़े की गाय के प्रति समर्पणा होती है इसलिए वह गाय अपने मालिक को तब तक दूध नही निकालने देती जब तक कि अपने बछड़े को दूध नही पिला देती है, और यदि वह छूटकर गाय के पास कभी पहुँच जाता है, तो गाय उसे पूरा का पूरा दूध पिला देती है। इसी प्रकार तुम भी वीतराग भगवान के ज्ञान खजाने के प्रति गाय के बछड़े की तरह दत्तचित्त होकर सर्मपित हो जाओगे तो तुम्हें पूरा का पूरा ज्ञान खजाना मिल जायेगा।

समर्पणा से उस सेठ को एक सन्यासी से मंत्र की उपलब्धि हुई। मंत्र की साधना विषयक प्रश्न पूछने पर बताया कि—घर में बैठकर तो साधना नहीं हो सकती है, अत: जंगल में जाकर एक वृक्ष की डाली पर कच्चे धागे से छीका बाँध दो और नीचे चूल्हे को खोदकर उस पर कड़ाह रखकर तेल गर्म करने के लिये रख दो, जब तेल बहुत उबलने लग जाय तब तक तुम उस छीके पर बैठकर मंत्र पढते-२ क्रमश: एक-२ धागा तोड़कर नीचे डालते रहो। इस क्रम से सब धागे टूटने के साथ तुम्हारी मंत्र की परिपूर्णरूपेण साधना सफल होते ही तुम आकाश मे उड़ने की विद्या प्राप्त कर लोगे और उसी क्षण आकाश में उड़ भी जाओगे। पर सेठ के मन में शंका हुई कि कही मेरी साधना सफल नही हुई और मैं आकाश में उड़ने के बजाय इस उबलते तेल से लबालब भरे गर्म कड़ाह में गिर गया तो प्राणों से भी हाथ धोना पडेगा। अत: उसने वह मन्त्र नही साधा वरन् उस मन्त्र को तिजोरी मे सुरक्षित रख दिया और उसके साथ उस संन्यासी के द्वारा बताई गई सारी मन्त्र साधने की विधि भी लिखकर रखदी, कुछ समय बाद सेठ तो काल कर गये और उनका पुत्र जो पिता की पदवी प्राप्त कर सेठ बना उसे पिताजी की चौपड़ियों (बहियों) में वही मन्त्र और उसको पाने की सारी विधि लिखी हुई मिली। उसे पढकर लड़के की इच्छा उस मन्त्र को साधने की हुई। वह विधि के अनुरूप जंगल में जाकर वृक्ष के नीचे चूल्हा खोदकर कड़ाह रखकर तेल उबालने के लिए उसमें डाल दिया तथा डाली पर कच्चे सूत का छीका लटका दिया, जैसे-२ तेल उबलने लगा वैसे-२ उनके मन में डाली पर चढ़ने की तत्परता तो हुई पर मन ही मन शंका भी हुई कि मेरी यह साधना सफल होगी या नहीं ? कहीं मैं कड़ाह मे गिर गया तो····। इस अविश्वास के

कारण वह बार-२ डाली पर चढ़ने की हिम्मत करता, और पुनः-२ संकल्प से डिगायमान हो जाता ।

उसकी इस चर्या के बीच ही क्या हुआ कि एक चोर जो कि राजा के यहाँ से चोरी करता हुआ पकड़ा गया, पर कोतवाल उसे कैद नही कर पाया और वह दौड़ता-२ उसी जंगल मे पहुँचा जहाँ वह सेठ का लड़का मन्त्र की तैयारी कर मन्त्र के प्रति पूर्ण समर्पणा के अभाव में संशय उत्पन्न हो जाने से छीके पर चढ़ूं अथवा नही चढ़ूं ? ऐसा विचार कर रहा था, कारण कि प्राणों का व्यामोह जो उसे था और संन्यासी के वचनों पर पूर्ण विश्वास नही हो पा रहा था । ज्योंहि उस चोर की दृष्टि उस सेठ के लड़के पर पड़ी और उसने उससे सारी जानकारी चाही कि तुम यहाँ इस स्थिति में कैसे खड़े हो ? तब सेठ के लड़के ने आद्योपांत सारा वृत्तान्त उस चोर को कह सुनाया, यह सुनकर चोर ने सोचा कि कोतवाल मुझे पकड़ने के लिए मेरा पीछा कर रहा है, चोरी मेरी पकड़ी गयी है, अतः मुझे प्राणदंड तो मिलेगा ही, क्यों न मैं इस लड़के को चुराये हुए दोनो रत्नों के डिब्बे देकर, इस मन्त्र को प्राप्त करलूं ? यह विचार कर चोर ने अपने मन में सोचा हुआ प्रस्ताव सेठ के लड़के के सामने रख दिया । चोर के प्रस्ताव को सुनकर मन्त्र साधना की सफलता पर संदिग्ध बना वह सेठ का लड़का दोनों रत्नों के डिब्बे को लेकर उसके बदले उस चोर को मन्त्र साधने की सारी विधि बतलाकर वहाँ से रवाना हो गया ।

चोर जिसे अब मरने की तो कोई परवाह थी नही, क्योंकि प्राण संकट में तो पहले से ही पड़े हुए थे, अतः यह सोचकर कि कदाचित् बच जाऊँ तो मन्त्र सिद्ध हो जाने पर आकाश में उड़ जाऊँगा । ऐसा दृढ़ विश्वास कर वह उस कच्चे धागे के छीके में बैठ गया और मन्त्र पढ़ता हुआ एक-२ धागा तोड़कर नीचे डालने लगा, ज्योंहि पूरा छीका टूटा कि वह आकाशगामी विद्या को प्राप्त कर आकाश में उड़ गया । इधर वह सेठ का लड़का दोनों रत्नों के डिब्बे को लेकर घर की ओर जा रहा था और बीच रास्ते में राजा के द्वारा प्रेषित कोतवाल के द्वारा पकड़ा गया, चोरी के माल उसके पास देखकर उसे प्राण दंड दिया गया । विचारा वेमौत मारा गया ।

इस दृष्टान्त से ज्ञानी जनों ने यह समझाया कि हमारी वीतराग भगवान की आज्ञा के प्रति श्रद्धा है या नही ? नमस्कार मन्त्र के प्रति श्रद्धा है या नही यानी परिपूर्ण समर्पणा है या नही ? वह सेठ का लड़का जिसने मन्त्र की साधना की सफलता पर अविश्वास किया तो उसकी क्या स्थिति बनी ? और चोर मन्त्र की साधना के प्रति प्राणों की परवाह न करके पूर्णतया समर्पित हो गया तो उसने प्राण सुरक्षा के साथ सफलता हासिल करली । इसी प्रकार यदि हम वीतराग भगवान के वचनो पर निःशंक समर्पित हो जायं और अपने लक्ष्य

के प्रति समर्पित होकर चलें, चाहे कितनी भी आपदाएँ आ जायें तो भी अपने लक्ष्य से विचलित न हों, तीर्थंकर भगवन्तों की आज्ञाओं में बिना किसी प्रकार की शंका के परिपूर्ण रूपेण समर्पणा बनाए रखें और तदनुरूप हमारी जीवन-चर्याओं को गतिशील बनाये रखें तो इस सम्यक्त्व के प्रथम आचार "निशंकित" से एक न एक दिन अपनी सम्पूर्ण आत्म ऋद्धि को प्रकट कर सकने में सक्षम बन जायेंगे।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१२-७-८५
शुक्रवार

१३ निःशंक और निःकांक्ष बनें

(सम्यक्त्व का द्वितीय आचार)

जीवन की इस भव्य बेला मे जब शुभ काम करने का प्रसंग आता है, तब उस शुभ काम मे विघ्न न आने पावे, इसके लिये मंगलाचरण करने की आवश्यकता है। वह मंगल, तीर्थङ्कर देव का पवित्र नाम और उनके द्वारा प्रतिपादित अहिसा, संयम, तप रूप धर्म है, जो आत्मा के साथ स्वभाव से सम्बन्धित है। यही मंगल सभी मंगलों मे प्रधान है। अन्य-अन्य मंगलों का लोक रूढि में जो प्रयोग किया जाता है, वे विघ्नों का नाश करने में सक्षम नहीं हैं। जैसे चावल, कुंकुम, लच्छा इत्यादि, इन वस्तुओं को स्वयं को यह मालूम नही है कि हम मंगल रूप है तो फिर ये दूसरो का मंगल कैसे कर सकती है। अतः जिन्हें इतना ज्ञान है कि विघ्नों का नाश किस विधि से ठीक तरह (प्रकार) से हो सकता है? कौनसा मंगल उसमें कामयाब हो सकता है? वही मंगल, मगलाचरण रूप मे प्रस्तुत करना उचित है और वह मगल है सम्पूर्ण मंगलों के स्थानभूत तीर्थकर प्रभु का नाम-स्मरण और उनके अनन्त स्वरूप की स्तुति।

जो वस्तुतः दर्शनीय होता है उसके दर्शन करने ही चाहिये और ऐसा दर्शनीय तत्त्व हमारी आत्मा ही है। क्योंकि वह त्रिकालवर्ती अखण्ड, अमर, अजर है। जो क्षण-क्षण मे विनष्ट हो रहा है, वह पदार्थ दर्शनीय नही हो सकता है। आप देख रहे है, यह पाट जो कि लकडी का बना हुआ है, वह कुछ दिनों के वाद किस प्रकार परिवर्तन को प्राप्त हो जाता है। जो तत्त्व स्थायी नही रहता है, जिसमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र नही है, आत्मिक गुण नही है, त्रिकालवर्ती नही है, वह यथार्थ में दर्शनीय भी नही है। अतः जो दर्शनीय तत्त्व हमारी आत्मा है। उसके सौम्य स्वरूप को जानने के लिए सभी को प्रयत्नशील बनना है। यह चिन्तन करे कि वास्तव मे अनन्त सुख स्वरूपी मेरी आत्मा की वर्तमान मे कैसी दशा वनी हुई है? जैसा कि कविता की कड़ियो मे वतलाया गया है:—

वहु पुण्य केरा पुंज थी, शुभ देह मानव नो मल्यो।
तो ए अरे भवचक्रनो, आंटो नही एके टल्यो ।। टेर ।।

सुख प्राप्त करता, सुख टले छे,
लेश ए लक्ष्ये लहो।
क्षण-क्षण भयंकर भाव मरणे, कां अहो राची रह्यो ।। १ ।।

अनन्त पुण्यवानी का अर्जन करने के बाद तो यह नर तन और शास्त्र श्रवण आदि दुर्लभ अंग मिले है। फिर भी भव चक्र का जो आंटा-फेरा है, वह अब तक दूर नही हुआ है, तो क्यों नही दूर हुआ है? इस विषय में विचार करें। विचार करने पर वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जायेगी कि अब तक सही रूप में अध्यात्म की ओर कदम नहीं बढाए है। शाश्वत सुख और शान्ति पाने के लिये आवश्यकता है—वास्तविक धर्म को जीवन मे समाहित कर आत्यंतिक और एकान्त मंगल करने की।

आज प्रत्येक मनुष्य सुख प्राप्त करना चाह रहा है, पर सुख का मूल स्रोत नही जानने से भौतिकता के पीछे पड़कर सुख के बजाय दुःख की उपलब्धि करता जा रहा है।

सम्यक्त्व के आठ आचार जिसका प्रतिपादन आपके सामने चल रहा है—उसमें प्रथम आचार है निशंकिय—अर्थात् जिन वचन में शंका नहीं करना। कभी कदाचित् वीतराग वाणी का कोई गूढ तत्त्व, गूढ रहस्य समझ में नहीं आये तो भी हमारे भीतर इतनी श्रद्धा (मजबूत, अगाध) हो, कि हमें देव, दानव भी जिनवाणी रूप अर्हत् धर्म की निष्ठा से विचलित न कर सकें। आपने ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र में वर्णित अर्हन्नक श्रावक का वर्णन सुना होगा। जिसकी दृढ धर्मिता, दृढ निष्ठा की स्वयं इन्द्र ने देवलोक मे प्रशसा की थी जिसे सुनकर एक मिथ्यात्वी देव, अर्हन्नक श्रावक की परीक्षा लेने के लिए विकराल रूप बनाकर नाव में बैठे अर्हन्नक के सामने आ खडा हुआ था। जिसकी विकरालता इतनी भयानक थी कि देखने वालो के रोएँ-रोएँ काँप उठे किन्तु आस्था का अविचल सुमेरु अर्हन्नक निर्भय बना रहा।

देवरूप विकराल राक्षस ने अर्हन्नक को बहुत प्रकार से समझाने की चेष्टा की, उसे मारने तक की धमकी दी कि तू धर्म की श्रद्धा से विचलित हो जा किन्तु क्या मजाल, कि अर्हन्नक श्रावक डिग जाय। आखिर देव की ही हार हुई और वह अपने देवरूप मे आकर श्रमणोपासक अर्हन्नक के चरणो मे झुक गया।

धम्मो मंगल मुक्किठं अहिसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमं सन्ति जस्स धम्मे सया मणो॥

दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा का सार (संक्षेप) यह स्पष्ट करता है कि जिसका मन, उत्कृष्ट धर्मरूप मंगल-अहिंसा, संयम, तप मे निरन्तर लगा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

अतः भव्य आत्माओ की श्रद्धा, जिनवाणी पर अविचल निश्चल होनी चाहिये। जो तत्त्व हमे समझ मे न आवे उसके लिए हमारे मुंह से यही शब्द

निकलें कि मेरी अभी बुद्धि इतनी निर्मल नही है कि मैं वीतराग देव की इतनी गहरी वाणी को बराबर समझ पाऊँ, भले ही आज मै उसमें पूर्णरूपेण अवगाहन नहीं कर पा रहा हूं, पर यह मुझे अटल विश्वास है कि वीतराग भगवान के जो वचन हैं वे सत्य तथ्य है। उसमें शंका करने की किंचित् मात्र भी गुंजाइश नहीं है। जब मेरी बुद्धि कर्म निर्जरा के प्रशस्त पथ पर बढ़ते हुए निर्मल बन जायेगी, तब मैं वीतराग भगवान के सारे तत्त्वों को सरलतया समझ सकूँगा।

वीतराग वाणी की कई बातें आज भौतिक विज्ञान जगत् में भी प्रत्यक्ष हो रही हैं, जैसे कि अन्तिम तीर्थंकर प्रभु महावीर ने बताया है कि जो शब्द हम बोल रहे है वे द्रव्य-वर्गणा है, पुद्गल वर्गणा है, गेन्द की तरह उन्हें इधर-उधर संप्रेषित किया जा सकता है। मनुष्य जिन शब्दों को बोलता है, उसके लिए वह तद् योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हे शब्द रूप में परिणमित कर फिर बाहर निकालता है। यह बात संकेत रूप में प्रज्ञापना सूत्र के ग्यारहवे भाषा पद में मिलती है। उनमें जिनकी बुद्धि निर्मल नही थी वे यह कहते थे कि जो हमारी दृष्टि में आये वही सत्य है और जो नही आये, उसे हम नहीं मानते। अन्य दर्शनकारों ने भी कहा है कि "शब्द, आकाश का गुण है, हम उसे द्रव्य नही मानते।" कई वैज्ञानिक लोग भी यह बात नहीं मानते थे कि शब्द पुद्गल द्रव्य है। पर जब उन्होंने कुछ वर्षो पूर्व इसका प्रयोग किया, तब उन्हे यह मानना पड़ा कि यह शब्द मेटर (Matter) है और यह चारों दिशा में फैल सकता है, लोक के अन्तिम किनारे तक पहुँच सकता है। जैसे पानी मे पत्थर डालने से उसकी तरंगे चारों ओर फैलती है, उसी प्रकार शब्द की पुद्गल वर्गणा, बोलने के साथ चारों दिशा में विस्तारित होकर वायु मण्डल को प्रभावित करती है। इसी का परिणाम है कि आज आप रेडियो, टेलिविजन, ट्रासमीटर, वायरलेस आदि अनेक साधनों से हजारों मील दूर के शब्द सुन लेते है। यह बारीक रहस्य की बात प्रभु महावीर के समय और उसके बाद भी कई-कई नही मानते थे, पर आज प्रभु महावीर का यह शब्द विषयक विज्ञान इतना विस्तृत हो गया है कि एक सामान्य व्यक्ति भी इस बात को बिना किसी गम्भीरता की अपेक्षा के सरलता से स्वीकार कर लेता है कि हम बोलते है, वह आवाज दूर-दूर तक पहुँच सकती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो तत्त्व कभी समझ मे नही आये, वही तत्त्व बुद्धि की निर्मलता से विचार करने पर गहराई मे पैठने पर समझ मे आ सकते हैं। अतः हम कभी भी जिन वचनों पर शंका नही करें।

सम्यक्दर्शन का दूसरा आचार है निर्कांक्षा अर्थात् हमारे जीवन की स्थिति काक्षा रहित हो। हम सही धर्म के सच्चे स्वरूप को जानकर अन्य जड़ धर्मो से प्रभावित नही होवे। आप जब प्रातःकालीन वेला मे दर्पण के सामने

खड़े रहते हो और अपने रूप को निहारते हो तब मन में कैसी-कैसी विचार-धाराएँ उत्पन्न होती है, क्या कभी रूप को विनश्वरता पर आपको विचार नही आतां है ? अरे ये पांच इन्द्रियों के विषय-सुख कपूर की टिकिया की तरह क्षणिक है । पांच इन्द्रियों के विषय मे आसक्त बनी यह अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा अपने निजी स्वरूप को भूल जाता है । इन्द्रिय-रामी बनकर संसार में ही भटकता रहता है । आत्मा रामी वही बन सकता है जो इन्द्रियासक्ति से निरपेक्ष बनता हुआ आत्मचिन्तन करे ।

सम्यक्त्व के दिव्य आचार का कथन करते हुए मैं आपसे यही कहना चाह रहा हूँ कि पॉच इन्द्रियों के विषय में रमण कराने वाला जो धर्म है उससे प्रभावित होकर कभी भी आत्म स्वरूप की पहचान कराने वाले, वीतराग धर्म से विमुख नही बनें ।

बन्धुओ ! जरा विचार करो कि सम्यक्दर्शन जो कि बहुत गहरा दर्शन है । उस दर्शन की भूमिका यदि शुद्ध नही बनती है तो वह वीतराग प्रभु के अन्य गूढ तत्त्वों को भी नहीं समझ सकता । अत: मै घूम फिर कर इस विशाल व्यापक सम्यक्त्व का स्वरूप बताना चाह रहा हूँ और कहना चाह रहा हूँ कि सम्यक्त्व की भूमिका हमारी तभी शुद्ध बन सकती है, जब हम सम्यक्त्व के आठों आचारो की स्थिति को जीवन मे सम्यक् रुपेण विकसित करले ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१३-७-८५
शनिवार

• □ •

१४ मूल्यांकन करो वर्तमान का

वर्तमान का समय ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अतीत का समय बीत चुका है, इसलिये उसका कोई अस्तित्व नहीं रह गया है और भविष्य का समय अभी आया नहीं है और वह अपने लिए इस रूप में आएगा भी या नही, यह भी निश्चित नही है। अतः महत्त्वपूर्ण समय है तो वह वर्तमान का समय ही है।

वर्तमान का समय 'देहली दीपक न्याय' से भूत एव भविष्य के समय को भी प्रकाशित करने में समर्थ हो जाता है। यद्यपि अतीत का समय बीत चुका है। बीते हुए समय का अब क्या परिवर्तन होना है, किन्तु फिर भी बीता हुआ जीवन परिवर्तित हो सकता है। उदाहरण के रूप में, क्यों न किसी व्यक्ति का अतीत का जीवन अन्याय, अनीति, अविवेक और कषाय के साथ बीता हो, लेकिन वही व्यक्ति जब संयम जीवन स्वीकार कर लेता है तो वह बीते हुए जीवन की विकृति को धोने के साथ भविष्य में आने वाले अन्धकारमय जीवन को भी शुभ प्रकाश से आलोकित कर लेता है।

आपने शास्त्र अन्तकृद्दशांग-सूत्र के माध्यम से एक बार नही, अपितु अनेक बार अर्जुनमाली के जीवन को सुना होगा, जो प्रतिदिन छः पुरुष और एक स्त्री को मारने वाला हत्यारा बन गया था। जिसका यह कार्य एक-दो दिन नही अपितु महीनों तक चला था। लेकिन जब उसे सुदर्शन श्रमणोपासक के साथ ही महाप्रभु का सान्निध्य प्राप्त हुआ कि उसके जीवन में हठात् परिवर्तन आया।

जिसके विचार कषायों एवं हिसक वृत्ति से भरे रहते थे, वे परिपूर्णतः अहिसक वन गए। जिसके हाथ में हर समय लोहमय भारी मुग्द्र रहता था जीवों को हनन करने के लिए, उसी के हाथ में अहिसा का प्रतीक जीवो की रक्षा करने वाला रजोहरण आ गया। जिसके मुख से हिसा की हुंकार निकलती थी, जिसके कारण चरिन्दे और परिन्दे भी कॉप उठते थे। और तो और राजगृह नगर के मुख्य द्वार वद करवा दिये गये थे, लोगों का आवागमन वंद करवा दिया गया था। सम्राट श्रेणिक भी उसका कुछ नही कर सका था। उसके मुख पर वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए भी मुखवस्त्रिका सुशोभित होने लगी थी। उसका आमूल-चूल जीवन वदल गया।

उस अर्जुनमाली की इस साधना ने उसके अतीत के जीवन को साफ करना प्रारम्भ किया और भविष्य के लिये सम्बद्ध हुए कर्म बन्धन को भी धोना प्रारम्भ कर दिया। अर्जुनमाली की कुछेक महिनों की साधना ने ही उसकी आत्मा को इस तरह से झकझोर दिया कि उसकी आत्मा का सारा का सारा कर्म कलिमस दूर हो गया और वह महाप्रभु से पहले ही मुक्ति में जा विराजे।

वन्धुओ! यह है समय का सदुपयोग। जो आत्मा वर्तमान समय को पहचान कर अपने जीवन को शुभ कार्यो में नियोजित कर देती है तो उसका जीवन सफल वन जाता है, अतीत में चाहे जो कुछ अन्याय-अनीति, अधर्म आदि कार्य किये हों, किन्तु जब उसकी आत्मा उन सब कुछ को हेय समझकर उन्हे छोड़कर अहिसक कार्यो में लग जाती है, अपने वर्तमान जीवन को सजा-संवार लेती है तो उसका भविष्य का जीवन भी सज-संवर जाता है।

'आचारांग' सूत्र में महाप्रभु ने उन भव्यात्माओं को यह स्पष्ट संकेत दिया है कि "खणं जाणाहि पंडिए" हे भव्य पुरुष तुम समय को पहचानो। जब तक समय के महत्त्व को नहीं समझोगे, तब तक अपने जीवन को सफल नहीं बना सकोगे। वर्तमान में ऐसे अनेक भाई-बहिन देखने को मिलते है, जिन्हें समझाया जाता है कि आप अपने जीवन के महत्त्व पूर्ण क्षणों को समझें और उन्हें सार्थक करने का प्रयास करें। जो समय व्यतीत हो चुका है वह पुनः लाख प्रयत्न करने पर भी आने वाला नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र में वतलाया है :—

"जा जा वच्चइ रयणी न सापडिनियत्तइ।"

जो-जो समय व्यतीत हो चुका है, वह पुनः आने वाला नहीं है। जो व्यक्ति धर्म कर लेता है वह अपनी व्यतीत हो रही दिन और रात्रियों को सफल वना लेता है, जो व्यक्ति अधर्म करता है, वह व्यक्ति उन्हें खो देता है।

महाप्रभु के इस शाश्वत सत्य उपदेश को सुन करके भी कई भाई-वहिन यह कहते हुए पाये जाते है—कि महाराज साहव! अभी तो जवानी है, कुछ मौज करले, जब वुढ़ापा आयेगा तव धर्म ध्यान कर लेंगे। लेकिन मैं उनको पूछता हूँ कि क्या वुढापा आयेगा? यह निश्चित है कि एक घण्टे वाद में क्या होने वाला है, यह भी निश्चित नही है तो वुढ़ापा निश्चित कैसे हो सकता है और वुढापा आ भी जाय तो क्या उस समय अच्छी तरह धर्म ध्यान हो सकेगा। जिस वुढ़ापे में आप भौतिक सुख सुविधाएं भी अच्छी तरह नही भोग सकते, उस वुढ़ापे में अच्छी तरह धर्म-ध्यान साधना भी कैसे हो सकती है। इसीलिए शास्त्रकारो ने कहा है—

"जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायई, ताव धम्मं समायरे॥"

वन्धुओ! जव तक वुढ़ापा न आवे। शरीर में किसी तरह की व्याधि न

आवे । इन्द्रियाएं क्षीण न हों, तब तक धर्म का आचरण करलो । क्योंकि अगर शरीर में रोग भी आ गया तो फिर साधना सही ढंग से नहीं हो सकेगी ।

इन सब अवस्थाओं को देखते हुए वर्तमान के इन अमूल्य क्षणों को सार्थक करना आवश्यक है । जो बीत गया है, उसे भूल जाइये और जो भविष्य में आ सकता है, उसके ताने-बाने बुनना छोड़ दीजिये । इसमें समय न लगाकर वर्तमान में क्या करना है, इस ओर अपने जीवन की सारी शक्ति को लगा देना आवश्यक है । शास्त्रकारों ने 'समय' को समझने वाले को पंडित कहा है, जो समय को न समझे और केवल पुस्तकीय ज्ञान को लेकर चले वह पंडित नहीं हो सकता । समय की स्थिति को समझने के लिए बड़े-बड़े योगियों ने गुफाओं में जाकर ध्यान लगाया था । लेकिन सभी साधक उसमें सफल नही हो सके । समय को सफल बनाने के लिए सबसे पहले अपने मन को परिष्कृत करना आवश्यक है । यदि मन मिथ्यात्व से अनुरंजित है तो उसका जीवन कभी भी सफल नहीं हो सकता । मिथ्यात्व अनुरंजित भले वह कितनी कठोर से कठोर साधना करले पर वह अपने जीवन को सफल नही बना सकता । सबसे पहले आत्मा में सम्यक्त्व की स्थिति आना आवश्यक है, सम्यक्त्व की स्वरूप व्याख्या तो आप लोग समझ ही गये होंगे । जैसे कि शास्त्रकार बतलाते है :—

अरहंतो महदेवो, जावज्जीवाए, सुसाहूणो गुरूणो ।
जिण पण्णत्तं तत्तं, इह सम्मत्त मए गहियं ॥

सुदेव अरिहंत, गुरु निग्रन्थ, सुधर्म अहिंसामय या निश्चित श्रद्धान होना सम्यक्त्व है ।

जब सम्यक्त्व की स्थिति जीवन में आ जाती है तब उसका किया गया धार्मिक अनुष्ठान फलदायी होता है । वह जीवन को समुन्नत बनाने वाला होता है । कई वार ऐसा होता है कि अन्यतीर्थियों के सावद्य आडम्बर देखकर कई भद्रिक भाई-बहिनों का उस ओर ध्यान आकर्षित हो जाता है । वे अपना मौलिक धर्म भूल-कर उस तरफ अनुरक्त हो जाते है, लेकिन इन सावद्य कार्यो में आसक्त होने वाले व्यक्ति हिंसात्मक वृत्ति को प्रोत्साहन देने वाले होते है, वे अपने जीवन को कभी सुसफल नही वना सकते । कुछ दिनों से आपके समक्ष सम्यक्त्व के आठ आचारों का वर्णन चल रहा है । जीवन की नीव को मजबूत बनाने के लिए इन आचारों का स्वरूप समझ कर उन्हें जीवन में उतारना आवश्यक है ।

जो व्यक्ति सम्यक्त्व की स्थिति के साथ दृढता के साथ आगे वढ़ता है, उसकी विजय निश्चित होती है । ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र में आठवे अध्याय मे अरणक श्रावक का वर्णन आया है, जिसे विचलित करने के लिए, धर्म को झूठा साबित करने के लिए, देव ने विविध प्रयास किये । उसे डराया, धमकाया ।

लेकिन अरणक श्रावक ने समय को समझा था । वह जानता था कि वर्तमान समय को किस प्रकार महत्वपूर्ण बनाना, अपने जीवन को सफल कैसे बनाना । वह देव के इन कष्टों से घबराया नही । सब कुछ दृढ़ता के साथ सह गया । आखिर देव को झुकना पड़ा । देव ने एक श्रावक को नमस्कार किया था । अतः जीवन के इन वर्तमान क्षणों को शांति से जीने के लिए सम्यक्त्व को भूमिका पर आरूढ़ होना आवश्यक है ।

जीवन को सही ढंग से जीने के लिए सम्यक् दर्शन के ये आचार अत्यन्त उपयोगी हैं । महाप्रभु ने जीने को कला बहुत ही संक्षिप्त सार रूप में बतला दी है । सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र के राजमार्ग पर अपने जीवन दशा को आगे बढ़ाया जाय । जब तक इस राज मार्ग पर जीव रक्षा सही ढंग से आगे बढ़ता रहेगा । तब तक वह आत्मा की सुषुप्त शक्तियों को जागृत करता हुआ लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ता जाएगा ।

जिस किसी भी व्यक्ति ने अपने जीवन को शांति से जिया है, तो वह इसी पथ पर बढ़कर ही अतः आप भी आगे बढ़ने का प्रयास करेंगे तो मंगल मय दशा प्राप्त कर सकेंगे ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१४-७-८५
रविवार

• • •

१५ स्याद्वाद और विचिकित्सा

(सम्यक्त्व का तृतीय आचार)

आत्मा की अत्यन्त पवित्र दशा को प्राप्त करने के लिये वीतराग देव के सिद्धान्त को शास्त्रीय वाणी के माध्यम से सुनें। स्थूल रूप से तो सभी जान रहे है कि वीतराग देव, जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर जो सिद्धान्त बताये है, वे हमारे जीवन को सरस बनाने वाले एवं बड़े उपयोगी है, पर वे सिद्धान्त किस रूप में जीवन में उतारे जाएँ, कैसे उनकी गहराई में हम उतर सकें, इस विषयक पात्रता अर्जित करना अति आवश्यक है।

वैसे एक आत्मा के स्वरूप में सभी आत्माओं के स्वरूप का समावेश हो जाता है। इसीलिये ठाणांग सूत्र में प्रभु महावीर ने कहा कि "एगे आया" अर्थात् सभी आत्माओं का आत्मीय स्वरूप एक समान है, पर विभाव पर्याय से आत्मा की जुदी-जुदी अवस्थाएँ है। जैसे एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि तथा नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता आदि-आदि। एक स्वरूप में स्थित जीवों के अनन्त पर्याय है। अस्तित्व की दृष्टि से सभी आत्माओं का अस्तित्व अलग-अलग होने से, आत्माएँ अनन्तानन्त है। सभी स्थिति में सभी में आत्मा अलग-अलग है तो प्रश्न उपस्थित होता है कि अनन्त आत्माओं को एक कैसे कहा ? ऐसी बातों को समझाने के लिये प्रभु ने नयों का स्वरूप बताया है। अलग-अलग अपेक्षाओं का कथन किया है। उनसे जो वस्तु जैसी है, उसे उसी रूप में समझा जा सकता है। ऐसे विधान से ही नयों का स्वरूप हमारे समक्ष आ सकता है। "आत्मा एक है" यह संग्रह नय की अपेक्षा से कथन है, पर "एक" कहने से समग्र जाति का बोध नही हो सकता है। अतः "आत्मा एक भी है, आत्मा अनेक भी है" इन दोनों वाक्यों को स्याद्वाद अथवा नयवाद का सहारा लेकर ही समझा जा सकता है। मनुष्य जाति मे जो कृत्रिम अनेक जातियाँ है, उनका तथा मानव-मानव का पृथक्-पृथक् रूप समझने के लिये व्यवहार नय की अपेक्षा रखनी पड़ती है और सभी का एक स्वरूप समझने के लिये निश्चय नय का सहारा लेना पड़ता है। जैसे—एक ही पुरुप अपने लड़के की अपेक्षा पिता और अपने पिता की अपेक्षा पुत्र कहलाता है। तो यहाँ पर वस्तु स्वरूप को समझने के लिये नय का सहारा लेना अति आवश्यक है। द्रव्यार्थ से पुरुप एक ही है, पर पर्यायार्थ से वही पुरुप अलग-अलग धर्मो से अनेक रूपो मे हमारे सामने आता है।

"जैन धर्म का सिद्धान्त वैज्ञानिक सिद्धान्त है" इसका तात्पर्य यह नहो कि विज्ञान ने इन सिद्धान्तों को प्ररूपित किया, वरन् केवलज्ञान द्वारा जो सिद्धान्त प्ररूपित किये गये, वे वैज्ञानिक प्रयोगों में भी सौ टंच खरे उतरते है।

स्याद्वाद को समझने के लिये रूपक सामने रखिये—जैसे–जब बिलौना किया जाता है, तब एक रस्सी को खीचकर दूसरी रस्सी को ढीली छोड़नी पड़ती है, पर उस ढीली छोड़ी हुई रस्सी को हाथ में पकड़े रहना पड़ता है, तभी मक्खन निकल सकता है। इसी प्रकार प्रभु महावीर के सिद्धान्त जो स्याद्वाद रूप है, अनेकान्तवाद को लिये हुए हैं, उनमे, जिसका जब कथन किया जाता है, वह उस समय मुख्य रूप से रहता है और अन्य भी सभी उस समय उसमें विद्यमान रहते है, पर ढीली छोड़ी हुई रस्सी के समान गौण रूप में। हर वस्तु में हर धर्म, पृथक्-पृथक् समय में अलग-अलग रूप से कथित होते रहते है, पर सत्ता रूप से विद्यमान सभी धर्म उसमे एक साथ रह सकते है।

जब तक नय का स्वरूप समझ में नही आता, वहाँ तक किसी का भी स्वरूप समझ मे नही आ सकता। व्यवहार नय से भिन्न-भिन्न सभी जातियो का संग्रह हो जाता है। सम्यग्दर्शन का, आत्म स्वरूप का मक्खन यदि जैन दर्शन के सिद्धान्तों का बिलौना करते हुए हमे निकालना है तो नय रूपी रस्सी लेकर ही निकाला जा सकेगा और वह भी बिलौने की विधि से नयों का बिलौना करते हुए ही निकाल सकेगे। एक ही नय की रस्सी को खीचने से काम नहीं चलेगा। आज कई विद्वान् मुक्त कंठ से प्रशंसा करते है, अपनी श्रुतियों के अनुरूप, अनुभूतियो के आधार पर, कि जैन धर्म से भिन्न अन्य कोई भी धर्म श्रेष्ठ नहीं है। आचार्य विनोबा के कथन का भाव है कि मैंने जैन धर्म का अध्ययन किया, तब मुझे आत्म संतुष्टि हुई। और अंतिम समय मे उन्होने जैन विधि की तरह संथारा ग्रहण किया था।

नोखामंडी मे एक बार का प्रसंग है—राजस्थान के मुख्य मंत्री हरिदेव जोशी व्याख्यान में उपस्थित हुए थे और व्याख्यान सुनने के पश्चात् कहने लगे कि "दुनिया मे जितने भी धर्म है, उनमें से सर्वश्रेष्ठ धर्म स्याद्वादी जैन धर्म है।" एक दृष्टान्त उन्होने दिया कि एक सेठ के पास एक आगन्तुक भाई आया और पूछा कि सेठ साहब कहां हैं? कर्मचारी से उत्तर मिला कि सेठ साहब ऊपर है। ऊपर गया तो उत्तर मिला कि सेठ सा० नीचे है। नीचे आया तो सेठ सा० वहां नहीं थे। उसके मन में उथल पुथल मच गई कि बात क्या है? मुझे नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे क्यों भेजा जा रहा है? वह खीझ उठा और पूछने लगा कि यह क्या बात है? कोई कहता है सेठ सा० नीचे है और कोई कहता है कि सेठ सा० ऊपर है। पर सेठ सा० तो दोनो जगह में से कहीं नहीं है। तब किसी सूझ व्यक्ति ने उनके ध्यान को ठीक करते हुए [illegible] बिलकुल सुन्दर कहा

कि भाई ! दोनों की बात सही है। कारण कि सेठ सा० बीच वाली मंजिल में हैं। वह मंजिल नीचे की अपेक्षा ऊपर और ऊपर की अपेक्षा नीचे है। इसी प्रकार स्याद्वाद का रूपक सामने रखकर वे कहने लगे कि वस्तुतः ऐसा धर्म अन्यत्र कही नहीं है। परन्तु जैन-धर्म के अनुयायी आज क्या कर रहे हैं ? यह थोड़ा विचारणीय प्रश्न है। यदि आज जैन-धर्म को पालने वाले, सम्यक्त्वी कहलाने वाले इस स्याद्वाद की दृष्टि को अपनाकर प्रत्येक तत्त्व की गहराई मे पहुँचे तो वीतराग देव के प्रत्येक सिद्धान्त की गहराई, उनकी थाह, वे पा सकते है।

मै जो सम्यक्त्व के आठ आचार बता रहा था, उसमें तीसरा आचार "निर्विचिकित्सा" है। अर्थात् धर्म करणी के फल में संदेह नही करना।

मनुष्य की चिंतन की शक्ति का केन्द्र मस्तिष्क है। अतः अपनी बुद्धि को निर्मल बनाकर, अन्तर्मुखी बनाकर हम सोचे कि जो धर्म क्रिया करते है, वह किसलिये करते है ? क्या संसार के लिये करते है अथवा निज स्वरूप को साधने के लिये क्रिया करते है ? क्रिया मन से भी होती है, वचन से भी होती है और काया से भी क्रिया होती है। पर ये सारी क्रियाये हमारे निज स्वरूप को साधने के लिये ही हों। फल की कभी आकांक्षा मत करो। आप आध्यात्मिक साधना के लिये क्रिया कर रहे है तो जरूर आपको आध्यात्मिक फल प्राप्त होगा, शांति मिलेगी। आत्मा की अनूठी शक्तियों की उपलब्धि होगी। पर कभी भी धर्म क्रिया करते हुए फल की आकांक्षा नहीं करनी चाहिये एवं कभी भी फल अवाप्ति विषयक शंका भी नही करनी चाहिये।

ज्ञाता सूत्र में दो साथियों का रूपक आया है। दो साथी घूमने के लिए जंगल में गये। वहाँ देखा कि दो मयूर नृत्य कर रहे थे। उनका नृत्य देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। सोचा कि क्या ही अच्छा हो, यदि ये मयूर अपने घर में हो और इनका नृत्य हमें प्रतिदिन देखने को मिले। ऐसा सोच ही रहे थे, तभी उन्हे समीपस्थ स्थल में मयूर के दो अण्डे पड़े हुए दिखाई दिये। उन्हे देखकर दोनों वड़े हर्षित हुए और उन्हें लेकर अपने घर आ गये तथा एक-एक अण्डे की दोनो अपने-अपने घर मे प्रतिपालना करने लगे। उन दोनों मे से एक साथी सोच रहा था कि इस अण्डे की मै सावधानीपूर्वक परिपालना करूँगा तो एक दिन जरूर इसमें से मयूर का जन्म होगा और उसका पालन कर मैं नित्य प्रतिदिन उसका मनोहारी रूप देखा करूँगा। लेकिन दूसरा मित्र जो वडा चचल और उत्सुक था, वह हमेशा उसे उठाता और घूमता, फिरता देखता कि अण्डा जीवित है या नही ? वार-वार हाथ में लेने से वह अण्डा समय से पहले फूट जाता है और जिस मयूर के जन्म के लिये वह लालायित बना हुआ था, उस मयूर का जन्म न होने से शंकाग्रस्त बन जाता है और विचारने लगता है कि "अरे—रे !

मैं ठगा गया, यह अण्डा तो मयूर का नही था, अन्यथा क्या मुझे मयूर की प्राप्ति नही होती ? उधर दूसरे मित्र ने पूर्ण विश्वास के साथ सम्यक् रूपेण उस मयूरनी के अण्डे की परिपालना की और समय आने पर मयूर का जन्म उसके आंगन में हुआ, उस मयूर को पाकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ, प्रफुल्लित बना, उसे दाना-पानी खिला-पिलाकर बड़ा किया और उससे अपनी इच्छापूर्ति करने लगा।

एक दिन, जब वह दूसरा साथी उसके घर आया और वहाँ मयूर को नृत्य करते हुए देखकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ और सारी हकीकत पूछी, पूछने पर जाना कि वह अण्डा मयूर का ही था, पर चंचलता और उत्सुकता के कारण ही नष्ट हो गया। यह ज्ञातकर उसे बहुत पश्चाताप हुआ।

बन्धुओ ! यह तो एक रूपक है, चाहे वह शास्त्र में किसी भी रूप में आया हो। पर इससे यह शिक्षा लेनी है कि धर्म करणी करते हुए पहली बात तो यह है—कि हम कभी भी फल की आकांक्षा नही करें तथा दूसरी बात—फल के विषय मे कभी शंकाशील नही बनें। जैसे कि मैं अमुक धर्म-कार्य कर रहा हूँ, उसका फल मुझे मिलेगा या नहीं ?

मैं जब पढता था, तब का एक प्रसंग है—एक दिन मेरे सामने ऐसा जटिल प्रश्न आया, जिसका मैं हल नही कर पा रहा था। तब मैंने सहज ही उपवास किया, उपवास वाले दिन तो शरीर शिथिल बना रहा, पर पारणे के दिन एकाएक जटिल प्रश्न का समाधान हो गया। एक उपवास में भी आत्मा इतनी निर्मल बन सकती है तो फिर लम्बी तपश्चर्या के द्वारा कितना अधिक फल प्राप्त होता है ? अतः इस विषय में कभी शंका नही करनी चाहिये और न ही उसके फल के विषय मे संदेह ही करना चाहिये। तप आदि सभी क्रियाओं का फल अवश्य प्राप्त होता है। जिसका सम्यग्दर्शन भलीभाँति निर्मल है, वह कभी भी धर्म-कार्य करता हुआ न तो फल की आकांक्षा करता है और न ही उसके फल मे शंकाशील बनता है। इस प्रकार वह अपने सम्यक्त्व के तीसरे आचार का सम्यक् रूपेण परिपालन करता है। कहने का सार यही है कि इस "निर्विचिकित्सा आचार" से यह शिक्षा जीवन मे ग्रहण करें कि आपकी प्रत्येक धर्म-क्रिया, आत्म-शुद्धि के हेतु ही हो, और यह सुनिश्चित है कि उसका सुमधुर फल अवश्य ही अवाप्त होगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१५-७-८५
सोमवार

१६ सम्यक्त्व का चतुर्थ आचार-अमूढ़दृष्टि

वीतरागता से परिपूर्ण केवली भगवान् जिन कहलाते हैं। और उनके भी इन्द्र "जिनेन्द्र" कहलाते है। इस जिनेन्द्र शब्द से तीर्थंकर भगवान् का ग्रहण होता है। तीर्थंकर देव चतुर्विध संघ की स्थापना करके भव्यों के कल्याणार्थ मार्ग प्रशस्त बनाते है। तीर्थंकर भगवान् के अमृतोमय उपदेश सागरवत् गहन एवं विस्तृत है, उन्हे गागर मे भरने तुल्य ग्यारह अग और बारह उपांग आदि शास्त्र है।

ग्यारह अंग मे सूचित, कथन मान्य है, अत: ग्यारह अंग कसौटी है। जैसे सोना कसौटी पर खरा उतरता है, ठीक वैसे ही ग्यारह अंग की कसौटी पर जितना भी कथन लेखन खरा हो, वह सभी मान्य है, जो कि आत्मकल्याणकारी होता है।

भगवती सूत्र बहुत बड़ा शास्त्र है, इसमें सक्षिप्त से साधना का स्वरूप रत्नत्रय की आराधना बताई है, उसी रत्नत्रयाराधना को समझकर हम संयम-भाव की आराधना मे लगे हुए है। उस आराधना मे सम्यक्ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीन रत्न समाहित है। उत्तराध्यान सूत्र के मोक्षमार्ग अध्ययन मे "णाणं च दंसण चेव, चरित्तं च तवो तहा" कहा है। यहा सम्यक्ज्ञान पहले बताया है, कई ग्रंथों मे पहले सम्यक्दर्शन बताया है, जैसे कि तत्त्वार्थ सूत्र में पहले सम्यक्दर्शन का कथन किया है, यथा—"सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग:"। यहा विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता है कि पहले ज्ञान को समझे या पहले दर्शन को ? शास्त्र मे जब ज्ञान को पहला नम्बर दिया है तो पहले ज्ञान ही मानना उपयुक्त होगा। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है "णाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए। रागस्स दोसस्स य सखाएण, एगन्तसोक्खंसमुवेई मोक्ख ॥ आत्मा की जो अवस्था है, उस अवस्था मे ज्ञान आत्मा का गुण है। गुण, गुणी, अभेद सम्वन्ध से चलते है, ज्ञान आत्मा के साथ रहता है, पर संसारी आत्मा को जव तक मोक्षमार्ग का ज्ञान नही होता, तव तक वह अज्ञान अवस्था मे रहती है, ज्ञान, अज्ञान के अलग-अलग भेद वताये है। यहाँ आत्मा के मूल गुण की दृष्टि से ज्ञान का नम्वर पहला है और दर्शन का नम्वर वाद मे है, क्योंकि पुत्र पैदा होने के वाद ही सुपुत्र-कुपुत्र का निर्णय होता है। ज्ञान आत्मा का पुत्र है, जव वह ज्ञान आगे वढता है, प्रगति करता है, तव

सम्यग्दर्शन की स्थिति जीवन में प्राप्त होती है, उसी से सुज्ञान तथा कुज्ञान का भेद स्पष्ट होता है, क्योंकि पुत्रोत्पत्ति के साथ ही उसके कुपुत्र-सुपुत्र का निर्णय नही होता, यह निर्णय तो उसके आचरण से होता है, वैसे ही ज्ञान की उत्पत्ति पहले होती है, उसके वाद ही उसके आचरण से सम्यक्दर्शन या मिथ्यादर्शन की प्राप्ति होने पर सुज्ञान-कुज्ञान का निर्णय होता है। इस सुज्ञान से सुश्रद्धा आती है। अज्ञान जब तक रहता है, तब तक मिथ्या श्रद्धा (कुश्रद्धा) रहती है। ज्ञान को सुज्ञान बताने वाला सम्यग्दर्शन है। अत: उमास्वाति ने दर्शन को पहले कहा, इसमें भी कोई विरोध नही है, अपेक्षा भेद को लेकर नयवाद के सहारे से ही पहले और पीछे का कथन है, अतः इस विषयक अविरोध को समझने के लिए नय दृष्टि को समझें।

वीतराग देवों के वचनों पर श्रद्धा आ गयी तो दुनिया भर का सारा ज्ञान-विज्ञान सम्यक् हो जायेगा। यदि दुनिया भर का वाहरी ज्ञान है, सारे शास्त्र कण्ठस्थ कर लिये पर सब कुछ होते हुए भी वीतराग देव के वचनो पर एक निष्ठा- आस्था नही है, तो उसका ज्ञान सुज्ञान नही कहला सकता। अभवी भी वाहरी रूप में साधु बन सकता है, गौतम स्वामी जैसी करणी कर सकता है, फिर भी वह कुज्ञानी है, यद्यपि वह अपने उपदेश से कई भव्य मुमुक्षुओं को प्रतिवोधित भी कर देता है, कई आत्माएँ उसके निमित्त से मोक्ष भी प्राप्त कर लेती है, पर वह खुद मोक्ष नही जा सकता है, इसका कारण है कि उसकी वीतराग वाणी पर सच्ची श्रद्धा नही है। वीतराग वाणी को, शास्त्र के सिद्धान्त को ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही सुन सकते है, दोनों पढ सकते है पर पढने-पढने में सुनने-सुनने में अन्तर है। जो अटूट श्रद्धा के साथ अनन्य भाव से शंका आदि पांचों दोषों को टालकर, शुद्ध भावना के साथ चाहे कम पढे, कम सुने या ज्यादा पढे, ज्यादा सुने वह सम्यग्दृष्टि है। इसके विपरीत आचरण करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

बहुत से भाई कहते हैं कि हम अज्ञानी है। अरे आप श्रावक है, आपको भगवान् की वाणी पर अचल आस्था है, अटूट श्रद्धा है तो फिर आप अज्ञानी कैसे ? अज्ञान-अंधकार है और भगवान् की वाणी के प्रति श्रद्धा यह प्रकाश है। मात्रा कम ज्यादा हो सकती है, पर प्रकाश के सामने अंधकार टिक नही सकता। श्रावक लोग यदि स्वय अपने को अज्ञानी बनायेंगे तो कुछ लोग आपकी मखौल उड़ायेंगे। लघुता की दृष्टि से यदि कहना ही है तो यह कहा जा सकता है, कि मेरे में विशेष ज्ञान कहाँ है, मैं तो वीतराग वाणी पर श्रद्धा लेकर चल रहा हूँ। विशेष ज्ञानी महापुरुष मेरे से भी अधिक बहुत है।

सम्यक्त्व के आठ आचार जिनमें आज चतुर्थ आचार का मैं आपके समक्ष वर्णन करना चाह रहा हूँ, वह है अमूढ दृष्टि— [illegible]

सम्यग्दृष्टि किसी भी अवस्था में मूढ नही बने, आपद्ग्रस्त अवस्था मे भी किकर्त्तव्य विमूढ नही बने। वीतराग देव के आध्यात्मिक रस को लेकर भव्य प्राणी चल रहे है तो कभी भी उनके प्रकाशमय जीवन में अज्ञान अंधकार का प्रवेश नही होता, वैसे भी अंधकार और प्रकाश का कभी मेल ही नही होता।

एक दृष्टान्त है—वैदिक संस्कृति की बात है। एक बार अंधकार, तथा-कथित भगवान के पास गया और प्रार्थना करने लगा—भगवन् ! आप रक्षक है, दयालु है, मेरी रक्षा करे। तथाकथित भगवान् ने पूछा—भाई तुम्हे कौन मार रहा है ? अंधकार ने कहा—और तो कोई नही, पर यह प्रकाश मुझे छिन्न-भिन्न कर देता है। भगवान् ने प्रकाश को बुलाया और कारण पूछा तो प्रकाश ने कहा कि अंधकार कौन है ? मै तो उसे जानता ही नही ? कभी मैने उसे देखा भी नही तो मै उसे कहाँ मार रहा हूँ और मार भी कैसे सकता हूँ ? आप उसे मेरे सामने बुलवाये, अंधकार को जब सूचना करवायी कि तुम आओ फैसला करें, पर अंधकार ने आने से मना कर दिया, तब फैसला कैसे हो ? देखिये प्रकाश के सामने अंधकार टिक ही नही पाता है। इसी प्रकार आप में भगवान् के वचन पर अटूट अडिग श्रद्धा है, तो आप ज्ञानी है, अतः भूलकर भी ऐसा मत कहना कि हम अज्ञानी है, क्योंकि ये शब्द सम्यग्दृष्टि श्रावक के लिए अनुपयुक्त है। क्योंकि सम्यक्त्वी के सामने अज्ञान टिक ही नही सकता।

जिसके पास छोटासा भी दीपक है, वह भले ही तेज प्रकाश न भी करे, पर है प्रकाश का ही पुंज। हम अमूढदृष्टि कैसे बने, इसके लिए हमें दृढ़ता लानी अति अपेक्षित है। शास्त्र में वर्णन आता है कि अम्बडजी संन्यासी की पौशाक मे थे, लेकिन भगवान् महावीर के अनुयायी और बारह व्रतधारी श्रावक थे। उत्कृष्ट श्रावक वर्ग के आराधक वीतराग वाणी पर अटूट श्रद्धा रखने वाले थे। लब्धि सम्पन्न भी थे, जिसके जरिये से जंगल की जगह नगर और नगर की जगह जंगल दिखाने में समर्थ थे। वे अम्बड संन्यासी एक वक्त भगवान् महावीर से पूछते है कि आपने जिस प्रकार मोक्ष मार्ग बताया और जिस प्रकार सुश्रद्धा का रूप बताया, ऐसी सुश्रद्धा को पालने वाले अभी कौन है ? तब प्रभु महावीर ने फर-माया कि सुलसा नामक श्राविका जो भले नारी जाति मे है, पर उसके जीवन मे सम्यक्त्व इतना प्रगाढ है कि उसकी दृष्टि को कोई भी विमूढ नही बना सकता। वह किसी के प्रभाव मे नही आती। अम्बडजी के जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि क्या नारी जाति में इतनी ठोसता हो सकती है ? जबकि नारी की प्रकृति चंचल, कोमल और जिज्ञासुवृत्ति को लिये हुए होती है, अतः मुझे सुलसा की दृढ़ता की परीक्षा करनी चाहिये। जहाँ सुलसा रहती थी, उस नगरी मे अम्बडजी पहुँचे। वैक्रिय लब्धि से ब्रह्मा का रूप बनाया, नगर मे हो हल्ला मच गया, लोग देखने के लिए उत्सुक हो उठे। सब गये पर वह श्राविका सुलसा नही गयी। कई

बहिनों ने उसको आग्रह भी किया कि देख तो लो, देखने में क्या हर्ज है, पर उसने कहा--यह इन्द्रियों का विषय है इसे क्या देखना ? मुझे तो आत्मा को देखना है, उसका समीक्षण करना है, आत्म सौन्दर्य के दर्शन करने है। अम्बडजी ने जब सुलसा को नही देखा तो दूसरे दिन अम्बडजी ने विष्णु का रूप बनाया, दुनिया उलट पड़ी, पर वह नही गई। तब अम्बडजी ने सोचा इसका श्रद्धान तीर्थंकर देवो के प्रति है। अतः मै तीर्थंकर का रूप बनालूँ, तीर्थंकर का रूप बनाया, २५वें तीर्थंकर के रूप में मशहूर हो गये पर सुलसा दृढ़ रही। इस अवसर्पिणी काल मे तीर्थंकर २४ ही होते है। ऐसी वीतराग वाणी है, और वीतराग वाणी के प्रति मेरी अचल आस्था है। अतः वह २५वें तीर्थंकर के दर्शन करने नही गई। अम्बडजी के तीर्थंकर रूप बनाने पर भी सुलसा दर्शन करने नही गई, तब उन्हे विचार आया। ओह ! कितनी निष्ठा है, कितनी दृढ आस्था है। अब भी विमूढ नही बनी। मुझे उसके दर्शन करने चाहिये। वे सन्यासी के रूप में उसके घर पहुँचे, श्रावकोचित आचार का पालन करते हुए, निस्सिही-निस्सिही शब्द का उच्चारण किया। सुलसा चौकी, सोचा कोई श्रावकजी मेरे आगन में पधारे है। साधर्मी भाई का स्वागत-सत्कार, सम्मान करना मेरा फर्ज है। वात्सल्य भाव दर्शाना मेरे सम्यग्दृष्टिपने का आचार है। वह उठी और बाहर आयी पर संन्यासी को देखकर रुक गई और सोचा—मानवता के नाते मुझे सत्कार अवश्य करना है, पर श्रावक का सम्बन्ध लेकर श्रावकोचित विनय की बुद्धि से नहीं। अम्बडजी इधर विचारने लगे कि मेरी वेशभूषा को देखकर उसे कुछ संशय हो रहा है। अतः उसके संशय का परिहार करते हुए अम्बडजी ने भगवान् महावीर के द्वारा कही हुई सारी हकीकत उसके सामने स्पष्ट की और कहा—मै तुम्हारे दर्शन करके धन्य हुआ। श्रावक की कितनी धर्म वत्सलता है। पर आज क्या स्थिति है ? कही इससे विपरीत तो नही है ?

सवाईमाधोपुर के पास एक छोटासा गाँव है, जैन श्रावकों के घर है। वहा पर जब स्वर्गीय आचार्य श्री जी पधारे तो जयपुर के बड़े-बड़े जौहरी लोग वहा आये. गांव वाले इतने खुश हुए कि उन लोगों की इतनी अधिक आवभगत की कि जयपुर वाले मोटे-मोटे सेठ सभी बाग-बाग हो गये, और आचार्य भगवन् के समक्ष उनकी साधर्मी वात्सल्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा की पर उस छोटे मे गांव वाले जब जयपुर आये तो उन सेठो ने क्या सत्कार-सम्मान किया ? यह बहुत विचारणीय स्थिति है। सत्कार-सम्मान करना तो दूर रहा पर उन सेठ लोगों ने आंख उठाकर भी उनकी तरफ नही देखा होगा। कहाँ है सम्यग्दृष्टि भाव ? कहां है साधर्मी वात्सल्यता ? उन्होने जो उन सेठो का अपूर्व सत्कार सम्मान किया, उसे भी वे भूल बैठे। आज क्या कुछ स्थितियाँ बन रही है—यह सामने है। भेदभाव की नीति ने पैर जमा दिये है। यह जो पानी यहां बरस रहा है वह पहाड़ पर भी उतना ही बरसता है, चट्टानों पर भी, मरुस्थली द्रव पर भी। यह दृष्टि भेदभाव नही रखती। वास्तव मे यही सच्चा सम्यग्दृष्टि भाव है।

सम्यग्दृष्टि किसी भी अवस्था में मूढ नही बने, आपद्ग्रस्त अवस्था में भी किंकर्त्तव्य विमूढ नही बने। वीतराग देव के आध्यात्मिक रस को लेकर भव्य प्राणी चल रहे है तो कभी भी उनके प्रकाशमय जीवन में अज्ञान अंधकार का प्रवेश नहीं होता, वैसे भी अंधकार और प्रकाश का कभी मेल ही नही होता।

एक दृष्टान्त है—वैदिक संस्कृति की बात है। एक बार अंधकार, तथाकथित भगवान के पास गया और प्रार्थना करने लगा—भगवन्! आप रक्षक है, दयालु है, मेरी रक्षा करें। तथाकथित भगवान् ने पूछा—भाई तुम्हे कौन मार रहा है? अंधकार ने कहा—और तो कोई नही, पर यह प्रकाश मुझे छिन्न-भिन्न कर देता है। भगवान् ने प्रकाश को बुलाया और कारण पूछा तो प्रकाश ने कहा कि अंधकार कौन है? मै तो उसे जानता ही नही? कभी मैने उसे देखा भी नही तो मै उसे कहाँ मार रहा हूँ और मार भी कैसे सकता हूँ? आप उसे मेरे सामने बुलवाये, अधकार को जब सूचना करवायी कि तुम आओ फैसला करें, पर अंधकार ने आने से मना कर दिया, तब फैसला कैसे हो? देखिये प्रकाश के सामने अंधकार टिक ही नही पाता है। इसी प्रकार आप में भगवान् के वचन पर अटूट अडिग श्रद्धा है, तो आप ज्ञानी है, अतः भूलकर भी ऐसा मत कहना कि हम अज्ञानी है, क्योंकि ये शब्द सम्यग्दृष्टि श्रावक के लिए अनुपयुक्त है। क्योकि सम्यक्त्वी के सामने अज्ञान टिक ही नही सकता।

जिसके पास छोटासा भी दीपक है, वह भले ही तेज प्रकाश न भी करे, पर है प्रकाश का ही पुंज। हम अमूढदृष्टि कैसे बने, इसके लिए हमें दृढ़ता लानी अति अपेक्षित है। शास्त्र में वर्णन आता है कि अम्बडजी संन्यासी की पौशाक मे थे, लेकिन भगवान् महावीर के अनुयायी और बारह व्रतधारी श्रावक थे। उत्कृष्ट श्रावक वर्ग के आराधक वीतराग वाणी पर अटूट श्रद्धा रखने वाले थे। लब्धि सम्पन्न भी थे, जिसके जरिये से जंगल की जगह नगर और नगर की जगह जंगल दिखाने में समर्थ थे। वे अम्बड संन्यासी एक वक्त भगवान् महावीर से पूछते है कि आपने जिस प्रकार मोक्ष मार्ग बताया और जिस प्रकार सुश्रद्धा का रूप बताया, ऐसी सुश्रद्धा को पालने वाले अभी कौन है? तब प्रभु महावीर ने फरमाया कि सुलसा नामक श्राविका जो भले नारी जाति मे है, पर उसके जीवन मे सम्यक्त्व इतना प्रगाढ है कि उसकी दृष्टि को कोई भी विमूढ नही बना सकता। वह किसी के प्रभाव मे नही आती। अम्बडजी के जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि क्या नारी जाति में इतनी ठोसता हो सकती है? जबकि नारी की प्रकृति चचल, कोमल और जिज्ञासुवृत्ति को लिये हुए होती है, अतः मुझे सुलसा की दृढता की परीक्षा करनी चाहिये। जहाँ सुलसा रहती थी, उस नगरी में अम्बडजी पहुँचे। वैक्रिय लब्धि से ब्रह्मा का रूप बनाया, नगर मे हो हल्ला मच गया, लोग देखने के लिए उत्सुक हो उठे। सब गये पर वह श्राविका सुलसा नही गयी। कई

वहिनों ने उसको आग्रह भी किया कि देख तो लो, देखने मे क्या हर्ज है, पर उसने कहा--यह इन्द्रियों का विषय है उसे क्या देखना ? मुझे तो आत्मा को देखना है, उसका समीक्षण करना है, आत्म सौन्दर्य के दर्शन करने है। अम्बडजी ने जब सुलसा को नही देखा तो दूसरे दिन अम्बडजी ने विष्णु का रूप बनाया, दुनिया उलट पड़ी, पर वह नही गई। तब अम्बडजी ने सोचा इसका श्रद्धान तीर्थंकर देवों के प्रति है। अतः मैं तीर्थंकर का रूप बनाऊँ, तीर्थंकर का रूप बनाया, २५वे तीर्थंकर के रूप में मशहूर हो गये पर सुलसा दृढ रही। इस अवसर्पिणी काल में तीर्थंकर २४ ही होते है। ऐसी वीतराग वाणी है, और वीतराग वाणी के प्रति मेरी अचल आस्था है। अतः वह २५वे तीर्थंकर के दर्शन करने नही गई। अम्बडजी के तीर्थंकर रूप बनाने पर भी सुलसा दर्शन करने नही गई, तब उन्हे विचार आया। ओह ! कितनी निष्ठा है, कितनी दृढ आस्था है। अब भी विमूढ नही बनी। मुझे उसके दर्शन करने चाहिये। वे सन्यासी के रूप मे उसके घर पहुँचे, श्रावकोचित आचार का पालन करते हुए, निस्सिही-निस्सिही शब्द का उच्चारण किया। सुलसा चौंकी, सोचा कोई श्रावकजी मेरे आंगन मे पधारे है। साधर्मी भाई का स्वागत-सत्कार, सम्मान करना मेरा फर्ज है। वात्सल्य भाव दर्शाना मेरे सम्यग्दृष्टिपने का आचार है। वह उठी और वाहर आयी पर सन्यासी को देखकर रुक गई और सोचा—मानवता के नाते मुझे सत्कार अवश्य करना है, पर श्रावक का सम्बन्ध लेकर श्रावकोचित विनय की वुद्धि से नही। अम्बडजी इधर विचारने लगे कि मेरी वेशभूषा को देखकर उसे कुछ संशय हो रहा है। अतः उसके संशय का परिहार करते हुए अम्बडजी ने भगवान् महावीर के द्वारा कही हुई सारी हकीकत उसके सामने स्पष्ट की और कहा—मैं तुम्हारे दर्शन करके धन्य हुआ। श्रावक की कितनी धर्म वत्सलता है। पर आज क्या स्थिति है ? कही इससे विपरीत तो नहीं है ?

सवाईमाधोपुर के पास एक छोटासा गाँव है, जैन श्रावकों के घर है। वहाँ पर जब स्वर्गीय आचार्य श्री जी पधारे तो जयपुर के वड़े-वड़े जौहरी लोग वहाँ आये, गांव वाले इतने खुश हुए कि उन लोगों की इतनी अधिक आवभगत की कि जयपुर वाले मोटे-मोटे सेठ सभी वाग-वाग हो गये, और आचार्य भगवन् के समक्ष उनकी साधर्मी वात्सल्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा की पर उस छोटे से गाँव वाले जब जयपुर आये तो उन सेठो ने क्या सत्कार-सम्मान किया ? यह वहुत विचारणीय स्थिति है। सत्कार-सम्मान करना तो दूर रहा पर उन सेठ लोगों ने आँख उठाकर भी उनकी तरफ नही देखा होगा। कहाँ है सम्यग्दृष्टि भाव ? कहाँ है साधर्मी वात्सल्यता ? उन्होने जो उन सेठों का अपूर्व सत्कार सम्मान किया, उसे भी वे भूल बैठे। आज क्या कुछ स्थितियाँ वन रही है—यह सामने है। भेदभाव की नीति ने पैर जमा दिये है। यह जो पानी यहाँ बरस रहा है, वह पहाड पर भी उतना ही बरसता है, चट्टानों पर भी, मखमली दूब पर भी। यह वृष्टि भेदभाव नही रखती। वास्तव मे यही सच्चा सम्यग्दृष्टि भाव है।

प्राकृतिक दृश्यों से भी शिक्षा मिल रही है कि समभाव रखा जाय, दृष्टि को समीक्षण बनाई जाय। सुलसा में जैसा सम्यग्दर्शन था, वैसा हजारों लाखों में भी नही मिल सकता। सुलसा अम्बडजी को नमस्कार करने लगी, पर उन्होने सुलसा को मना कर दिया और स्वयं श्रद्धा विभोर भावों के साथ झुक गये और स्व को धन्य-धन्य कृत्य-कृत्य महसूस करने लगे। आप सभी अपने सम्यग्दृष्टि भाव पर चितन, मनन करें और सम्यक्त्व की नींव को सुलसावत् मजबूत बनाने का आत्म साहस, आत्म पुरुषार्थ जागृत करें। जरूर हमारा जीवन भी मंगलमय बनेगा। इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ............।

मोटा उपाश्रय   १६-७-८५
घाटकोपर, बम्बई   मंगलवार

□ □ □

१७

उववूह
(सम्यक्त्व का पाँचवां आचार)

वीतराग देव द्वारा दिया गया जो पवित्र उपदेश है, उसकी तुलना करने योग्य, इस विश्व मे कोई उपदेश नही है, कारण कि उन्होने अपूर्ण अवस्था में न कोई विशेष उपदेश दिया एव न चारतीर्थ की स्थापना की। तीर्थंकर देव स्वतंत्र रूप से साधना पथ पर अवतीर्ण होते है, एवं साधना की परिपक्वता होने पर केवल ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सम्पन्न वन जाते हैं। तदनन्तर भव्यों के उद्धार हेतु निस्पृह होकर केवलालोक की अनुभूतिपूर्वक उपदेश प्रदान करते हैं। वह उपदेश त्रिकाल अवाधित एव शाश्वत स्वरुप अभिव्यक्त करने वाला होता है।

अनन्त प्रकाश स्वभावी तीर्थकरों के द्वारा अमृतोपम आध्यात्मिक निर्झर का प्रवाह प्रवाहित हुआ, गौतमादि गणधरो ने उसे ग्रहण किया एवं सुधर्मास्वामी आदि पवित्र आचार्य परम्पराओं से आज भी वह आत्मकल्याण हेतु पर्याप्त मात्रा में समुपलब्ध है। आवश्यकता है, उसे आत्मसात् करने की। यह तभी सम्भव है, जवकि वीतराग देव द्वारा प्ररूपित तत्त्वो पर अटूट आस्था के साथ श्रुत धर्म एवं चारित्र धर्म को जीवन मे साकार रूप दें। श्रुत धर्म में सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान का समावेश है। चारित्र धर्म में सम्यग्चारित्र एवं सम्यग्तप का समावेश है।

सम्यक्दर्शन जीवन की एक ऐसी पवित्र भूमिका है कि जिस पर आसीन होकर ऊर्ध्वगामी वनने का स्वर्णिम अवसर समुपलब्ध हो सकता है। उसी सम्यक्-दर्शन का प्रकरण चल रहा है। सम्यग्दर्शन भी अपने सम्यक्लक्षणादि के साथ आचार संहिता से व्यवस्थित जीवन में अभिव्यक्त हो सकता है।

यहाँ आचार सहिता का तात्पर्य–सम्यक्दर्शन से सम्वन्धित आठ आचारो से है। उनमे से चार आचारो के विषय में पूर्व के दिनो मे कुछ विवेचन प्रस्तुत किया गया, आज पाँचवाँ आचार का प्रसग समुपस्थित है, पाँचवाँ आचार है-- उववूह। जिसे उपवृंहण भी कहा जा सकता है। उपवृंहण अर्थात् गुणवान पुरुषो के गुणों का प्रगटीकरण करना। गुणी पुरुषो के विद्यमान गुणो का कथन करने से सद्गुणों की अभिवृद्धि होती है। व्यक्ति मे जब तक अपूर्ण अवस्था रहती है, तव तक गुण व अवगुण न्यूनाधिक मात्रा में यथास्थान प्राय: पाये जाते है। उनके गुणो को सन्मुख रखकर कथन करने पर जिस व्यक्ति के गुणों का कथन किया

जा रहा है, उसमें अपने गुणो को अधिक वढाने की स्फुरणा पैदा होती है, और वह उसी कार्य में सतत प्रयास करने लगता हे, एवं स्वयं के आइने में स्वयं को देखने लगता है, जिससे स्वय के दुर्गुण उससे प्राय: अविदित नही रह पाते और वह उन दुर्गुणों को स्वय देख-देख करके खिन्नता का अनुभव करता है, और अपने आपको गुणमय वनाने का भरसक प्रयत्न करता है। यह सम्यग्दृष्टि का पाँचवाँ आचार गुणो को वढ़ाने मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

कई सज्जन सामायिक करके बैठते है, और अपनी शक्ति तथा अनुभव एव ज्ञान की मात्रा के अनुसार सामायिक की परिपालना करने की भावना रखते है। किन्तु वे जितनी मात्रा में सामायिक का स्वरूप अभिव्यक्त करना चाहिये, उतनी मात्रा मे कर नही पाते। न उतनी मात्रा मे जीवन में रूपान्तरण ही ला पाते है। उनके इस व्यवहार को देख कर कई पुरुप समालोचना करने लगते है, उनमे रहने वाले कुछ दोषो का उद्भावन कर यह प्रगट करना चाहते है कि ऐसी सामायिकादि मे क्या पडा ? ये सामायिक करने वाले लम्वे समय से सामायिक कर रहे है, किन्तु अपने जीवन को संस्कारित नही कर पाये, इनके जीवन में कुछ रूपान्तरण नही आया, इसकी अपेक्षा हम अच्छे है, जो सामायिक का प्रदर्शन न रचकर जीवन को ठीक रखते है, ऐसा कथन करने वाले पुरुष सम्यक्त्व के आचार को नही जानने वाले होते है, और इस पाँचवे आचार के अभाव मे वे सामायिक करने वालो के दुर्गुणों को ही अभिव्यक्त करते हुए उनको खिन्न करना चाहते है। इससे गुणो की वृद्धि का प्रसंग तो नही रहता, किन्तु अवगुणों को ही प्रश्रय मिलता है, अन्य भी कोई पुरुष इस प्रकार के कथन को श्रवण करता है तो वह जो सद्गुण प्राप्ति के लिये सामायिकादि साधना को प्रारम्भ की भावना रखता था, वह भी अपनी भावना को गौण करके वैसे ही निन्दा करने वाले व्यक्ति की मंडली में अपने आपको सलग्न कर लेता है, और जिन पुरुषों ने कुछ साधना प्रारम्भ की है, उसमे भी कई कच्चे मस्तिष्क वाले व्यक्ति छोड़ बैठते है। दुर्गुणो का कथन करने से दुर्गुणमय वातावरण बनता है, जो कि प्राणियो के लिए अकल्याणकारी अहित-स्वरूप होता है, दुर्गुण का कथन करने वाला व्यक्ति सही सम्यक्त्व आचार के बोध के अभाव में अपनी स्वय की कमजोरी को आच्छादित करने के लिये ऐसा कथन करता है, वह अपनी कमजोरी को सरलतापूर्वक स्वीकार करने मे स्वयं के अहं को ठेस पहुँचाना समझता है और दुनिया मे जो अपवाद है कि ये सामायिकादि धर्म-ध्यान नही करते, उस अपवाद को मिटाने के लिए धर्म-ध्यान करने वालो पर दोषो का प्रगटीकरण करता है। यह मानव जीवन की वहुत वडी कमजोरी है, जिसको निकालना प्रत्येक व्यक्ति के वूते की वात नही है, कोई विशिष्ट महानुभाव ही स्वयं की त्रुटि को स्वीकार करता हुआ, अन्यो के सद्गुणो का कथन कर सद्वायु मण्डल का निर्माण करता हुआ, साधना पथ पर अग्रसर न होने वाले पुरुषो को भी अग्रसर होने की

प्रकारान्तर से प्रेरणा प्रदान करता है। यह कार्य सम्यक्त्व के इस पाँचवे आचार का जीवन में भलीभांति स्थान देने वाले ही कर सकते हैं।

चतुर्विध संघ के प्रत्येक सदस्य का परस्पर किसी न किसी रूप में धार्मिक सम्बन्ध रहा हुआ है, एक-दूसरे का एक-दूसरे पर विचार-विमर्श, देने-लेने का प्रसंग भी यदा-कदा आ सकता है। उस समय एक-दूसरे के दिल को गुणों की ओर वढाने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिये कि जिससे सुनने वाले का हृदय प्रसन्न हो जाय एवं वह भी यह महसूस करने लगे कि चतुर्विध संघ के इस सदस्य ने मेरे विद्यमान गुण का कथन करते हुए अपने मधुर वचनों से आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। मैं भी अब ऐसा प्रयत्न करूँ कि जो मेरे जीवन मे आलस्य प्रमादादि के कारण दुर्गुण प्रवेश करते है, उन दुर्गुणों को जीवन से दूर करूँ एवं ऐसा सत्पुरुषार्थ करूँ कि जिससे मेरे जीवन में खोजने पर भी दुर्गुण न मिले, और मै भी अन्य सदस्यों को इसी प्रकार सम्वोधित कर उनके गुणों को आगे बढ़ाऊँ। कदाचित् मुझे लगे कि अमुक सदस्य कई वर्षो से सामायिक, पौषधादि क्रियाएँ कर रहा है, किन्तु उसके जीवन में कोई परिवर्तन दृष्टिगत नही हो रहा है, बल्कि दिन-प्रतिदिन उसकी प्रमादादि वृत्तियाँ बढती जा रही है। उसका व्यवहार भी अन्य के साथ अच्छा नही रह पा रहा है। उन सबकी यदि मैं समालोचना करूँगा तो उनके दोषों को प्रकटीकरण कर उनको खिस्ट करने की चेष्टा करूँगा तो उससे उनके जीवन में कोई भी परिवर्तन नही आ पायेगा, बल्कि वे क्रोधित होकर लड़ने लगेंगे। जिससे भी कषाय कभी न कभी भड़क सकती है और वातावरण दूषित होगा, यदि मुझे उनके जीवन में परिवर्तन लाना है, और वस्तुत: मैं इनका हितचिंतक हूँ तो मुझे चाहिये कि इनके साथ में रहकर इनके यत्किंचित विद्यमान गुणों का कथन करूँ एवं कहूँ कि "आप कितने सौभाग्यशाली है कि संसार के प्रपंचो में से अपने आपको अलग करके धर्म स्थान मे पहुँचते है। जितने समय तक सावद्य योगों का त्याग करके चलते है उतने समय तक निर्जरा एवं पुण्य का बध करते है। कई पुरुष ऐसे हैं कि बाजारों में बैठे हुए व्यर्थ में गपशप करते रहते है, व्यर्थ ही कर्म बंधन का कार्य करते रहते है। क्या ही अच्छा हो कि वे भी धर्म स्थान में पहुँचकर यथाशक्ति धर्माराधना करें, पर उनमें से कई ऐसा नही कर पाते, किन्तु आप कर रहे है, यह हमारे लिए प्रेरणा का प्रसग है।" इस प्रकार उनके छोटे से छोटे गुण का कथन करके फिर उन्हें प्रेम से समझाया जाय कि आप इतना सब कुछ करते है, अत: थोड़ी इस भूल को सुधार ले तो सोना में सुहागा आ जाय। इस प्रकार कहने पर वे श्रावक भी अपनी गलती महसूस करेंगे और उसे निकालने के लिए भी प्रयत्न करेंगे। वह सफल साधना करने वाला व्यक्ति सामायिक, संवरादि क्रियाएँ करता हुआ अपने जीवन में वास्तविक परिवर्तन लावे। क्योंकि ऐसा करने में उसे कोई रोक तो नहीं रहा है, उसकी साधना उसके अधीन है।

साथ रहकर भी उनके जीवन का प्रमाद आलस्य अपने जीवन में न आने दे, बनती कोशिश साधना की मर्यादा में रहते हुए उनकी यथाशक्ति सेवादि परिचर्या करता रहे एवं अपने जीवन को आदर्श बनावे। इससे कथन की अपेक्षा सद्-व्यवहार से वे अपने आप प्रभावित हो जायेंगे और वे भी अपने जीवन में परि-वर्तन ले आयेंगे। परिवर्तन लाये या न लायें ये उनके अधीन की बात है, उसे तो अपनी आत्म-शुद्धि के लिए ही वास्तविक जीवन निर्माण कर लेना चाहिये। जो यह सोचता है कि मै अपने जीवन मे गुण ही गुण देखना चाहता हूँ तो वह तब ही देख पायेगा जबकि वह सभी के सदगुण देखता रहे और उन सद्गुणों को बढाने के लिये कथन करता रहे। जिससे सम्यक्त्व का यह पाँचवाँ आचार भली-भांति जीवन में प्रगट हो जाय। सदा गुण का ही चितन करने से दुर्गुण स्वतः क्षोण होते हुए चले जायेंगे एव एक न एक दिन अपने जीवन को वह गुणों की असीम अभिव्यक्ति से भर लेगा। ऐसा करने से सद्गुण का वायुमंडल एवं क्लेश कंकाश समाप्त होगे, राग-द्वेष की वृत्ति मंद होगी और मोक्ष के रास्ते पर अग्रसर होने का प्रसंग आयेगा। इस प्रकार इस पाँचवे आचार को श्रावक अपने जीवन में स्थान दे तो अनेक भव्यो का परिवर्तन होते हुए व्यक्ति, परिवार एव समाज मे भव्य वातावरण बन सकेगा।

पूर्व के ऐतिहासिक प्रसंगो से ऐसे पुरुषों का वृतान्त भी उपलब्ध हो सकता है। सुना गया है कि बीकानेर मे मालूजी थे, वे शास्त्रों के अच्छे जानकार भी थे एवं धार्मिक आदि क्रियाओ में पीछे रहने वाले नही थे, आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न एव लब्ध प्रतिष्ठित थे। वे समय पर धर्म स्थान में पहुँच जाते, वहाँ सामायिक, स्वाध्यायादि करते रहते और छोटे-से-छोटे सन्त या सती व्याख्यान वाचते तो सबसे पहले जाकर बैठते, बड़े ध्यान से सुनते और सुनने के पश्चात् एकान्त में सन्त या सती के पास बैठकर विनय भाव से नम्रतापूर्वक कहते कि "आपने व्याख्यान अच्छा बाचा, आपका उच्चारण भी अच्छा है, भाषा मे माधुर्य है, वचन मे ओज है, आप इसी तरह से बांचते रहो, आगे तरक्की करो, लोगो के कुछ कहने से अपने मन मे अभिमान मत आने दो, और सदा प्रमाद छोड़कर सत्पुरुपार्थ मे लगे रहो।" इस प्रकार उन छोटे संत-सतियोजी के सद्गुणों का प्रकटीकरण करते हुए उनको आगे वढाने में सहायक बनते। जिन संत सतियो का व्याख्यान कदाचित् ठीक तरह से नही होता, कुछ गल्तियाँ हो जाती तो उनको भी सभा के वीच कुछ भी न कहते हुए एकान्त में नम्रतापूर्वक निवेदन करते कि आपने वाकी तो सव अच्छा वोला, किन्तु अमुक-अमुक विपय का सही प्रतिपादन नही हो पाया, उस विपय मे जिन शब्दो का आपने प्रयोग किया, वे भी शास्त्र सम्मत मालूम नही हुए, ऐसा करते हुए शास्त्र का पाठ भी वतलाने का प्रयास करते और कहते आप वाकी सव अच्छे वोलते हो, ऐसे ही वोलते रहना चाहिये। उनमे जो विपय शास्त्रीय हो, उस विपय को कहने के पूर्व

शास्त्रीय स्थल अच्छी तरह से देख लेना चाहिये । इस प्रकार करते हुए उनके गुणों का ही मुख्यतया प्रतिपादन करते और उनके उत्साह को बढ़ाते ।

व्याख्यान उठने के अनन्तर भी पैसे वालों की तरफ उनकी दृष्टि कम जाती, किन्तु जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होते, उनके पास जाकर स्वयं जय-जिनेन्द्र करते । वे कमजोर भाई नतमस्तक हो जाते, फिर उनके कन्धे पर हाथ रखकर एक तरफ ले जाते, उनके सुख-दुःख की बातें पूछते, वे भी उनकी गुण-ग्राह्यता व हार्दिक प्रेम देखकर दिल खोलकर सभी बातें रख देते । उसमें जो बातें गुणप्रद होती उन बातों को लेकर उनका उत्साह बढाते और आत्मीय भावना से कहते कि मै भी आपका भाई हूँ । साधर्मिक भाई के नाते आप कभी-कभी तो घर पर पधारा करो । किसी बात का संकोच मत करो, मेरे घर में भैंसें है, छाछादि पर्याप्त मात्रा में होती है, कभी बच्चों को छाछादि लाने के लिये भी नहीं भेजते, ऐसा क्यों ? तब खुलकर वे कह देते--सेठ साहब ! आपकी गुणग्राही दयालु भावना का ज्ञान आज ही हो पाया है, आप ऐसे गुणीजनों के गुण को बढ़ाने वाले है एवं आत्मीय भावना से गरीब-अमीर के भेद को दूर करने का प्रयास करते है, ऐसी भावना सर्वत्र नहीं पाई जाती । इतने दिनों तक हम यही सोचते थे कि "गरीबी अवस्था में धन वालों के यहाँ कोई वस्तु लाने के लिये जाना या किसी को भेजना योग्य नही रहता, क्योकि धनवान लोग गरीबों की उपेक्षा करते है, उनके विद्यमान गुणों को ध्यान मे नही रखकर कर्मो से दबे हुए उन गरीबो को और दबाने की चेष्टा करते है, जिससे उनके अन्दर जो साहस, धैर्य आदि गुण होते है, उनका भी विलुप्त होने का प्रसग आ जाता है एवं सहानु-भूतिपूर्वक कोई वस्तु देना तो दूर रहा, वे ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिससे अपने आपको अपमानित होना पड़ता है । कदाचित् कोई ऐसा नहीं भी करते है, किन्तु माँगी जाने वाली वस्तु सड़ी-गली बाहर फैंकने योग्य होती है उन्हें देने की कोशिश करते है, साथ ही देते हुए अपना अहसास बतलाने की चेष्टा भी करते है । कदाचित् साधारण वस्तु छाछ भी वहाँ से लाने का प्रसंग आता है तो वह भी भेदभावपूर्वक देते है, अन्यों को तो ओरिजनल छाछ देते हैं, किन्तु गरीबों को उसी ओरिजनल छाछ में अधिक पानी मिलाकर देते हैं, जिससे आत्मग्लानि होना स्वाभाविक है, अन्तराय कर्म के उदय से हमारे अर्थ की कमी हो सकती है, किन्तु आत्मीय गौरव का अवमूल्यन करना हम नहीं चाहते हैं । इसी कोटि में आपको भी समझ रखा था, इसीलिये आपके यहाँ छाछ के लिये भी बच्चों को नहीं भेजते, किन्तु आज मेरी भ्रान्ति दूर हुई कि सभी एक जैसे नहीं होते हैं, आपके उदार एवं स्नेही हृदय को आज मैं जान पाया हूँ । अब मुझे आपके यहाँ आना या बच्चों को भेजने में कोई संकोच नहीं होगा ।"

इस प्रकार वे आर्थिक दृष्टि से कमजोर स्थिति वाले जब अपने बच्चों को [illegible] छाछ लेने के लिए सेठजी के यहाँ भेजते, तब मामूली छाछ का [illegible]

की थैली अपने पास लेकर बैठते, जब कभी बच्चे आते तो उनके पास में से बर्तन लेकर किसी बहाने से उनको अन्दर भेज देते, पीछे से मुट्ठी भरकर के रुपये उस बर्तन में रख देते और ऊपर से छाछ भर देते तथा बर्तन देते हुए कहते कि छाछ का यह बर्तन तुम्हारे माता या पिता को ही देना, अन्य को नही।

छाछ का बर्तन लेकर बच्चे अपने-अपने घर पहुँचते, जब वह छाछ का बर्तन उनके माता-पिता लेकर उसे अन्य बर्तन में खाली करते, तब रुपये निकलते। उन रुपयों को लेकर वे कभी मालूजी के पास पहुँचते और उनसे कहते कि ये रुपये छाछ में से निकले है, तो मालूजी कहते कि "बोलो मत। इनको भी काम में लो। जब आपकी स्थिति ठीक हो जाय तब देने की सोचना, अन्यथा कोई बात नही।" इस प्रकार उनके गुणों की वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक स्थिति में भी सहायक होते। इस प्रकार वे कभी किसी को कभी किसी को आर्थिक सहायता देते हुए उनके गुणादि की अभिवृद्धि करते हुए पाँचवे आचार का समीचीनतया पालन करते थे।

उन लोगों ने पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० के पास जाकर मालूजी के जीवन का वृतान्त सुनाया। जब एक रोज आचार्य श्री श्रीलालजी म० सा० के पास स्वयं मालूजी बैठे हुए थे तब प्रसंगोपात आचार्य श्री श्रीलालजी म० सा० ने फरमाया कि "मालूजी आप तो मानव जीवन को सार्थक करते हुए अन्य सार्धमिक भाइयों के विद्यमान गुणों की अभिवृद्धि करते हुए उनके जीवन को भी प्रशस्त बना रहे है। इस प्रकार सम्यक्त्व के पाँचवें आचार की मुख्यतया पुष्टि करते हुए अन्य आचारों को भी प्राणवान बना रहे हो। इसी प्रकार सब सम्यग्दृष्टि एवं श्रावकवर्ग अपने जीवन को बना लें तो श्रावक समाज की समीचीन व्यवस्था हो सकती है।"

आचार्य देव के मुखारविन्द से इन शब्दो को श्रवण कर मालूजी कहने लगे—"भगवन्! आप ऐसा न फरमाये। मै क्या कुछ कर सकता हूँ, जिनशासन में अन्य भी बहुत से गुणीजन विद्यमान है। मै तो यत्किंचित कुछ करने का प्रयत्न करता हूँ। यह कचरा बहुत बढ़ता है, जैसे-जैसे मै संवितरण करता हूँ वैसे-वैसे बढता जाता है।"

यह श्रावक समाज को लेकर पाँचवे आचार का विषय बतलाया गया है। क्या ही अच्छा हो कि शासन मे रहने वाले संत-सती वर्ग भी सम्यक्त्व के पाँचवें आचार को प्रमुखता देते हुए अन्य सभी आचारो को यथास्थान जीवन मे स्थान दें एवं एक-दूसरे सत-सतीवर्ग के साथ विद्यमान गुणो को वढाते हुए सौहार्दपूर्ण संव्यवहार करने लगे तो सुनिश्चित है, श्रमण श्रमणी वर्ग मे भी एक हर्षोल्लास तथा आनन्द की लहर व्याप्त हो सकती है।

मेरे कहने का मतलब यह नही है कि सत-सती वर्ग दुर्गुणी है या महाव्रतों का पालन नही करते । आप देख ही रहे है कि ये संत-सती वर्ग किस प्रकार सुन्दर तरीके से संयम मर्यादाओं का पालन करते हुए स्नेह सौहार्द के साथ रह रहे हैं, लेकिन कभी किसी में छद्मस्थावश कोई दोष आ जाय तो प्रत्येक संत सतीवर्ग किसी भी संत सतीवर्ग की कमजोरी शासन नायक के अतिरिक्त किसी के सामने कुछ भी नही कहे एवं चतुर्विध संघ के सामने गुण प्रधानता से एक-दूसरे के गुणों को वृद्धिगत करते हुए कहें कि सब मोतियों की माला है, किसमें क्या गुण है ? ये सब प्रभु महावीर के एवं रत्नत्रय की अभिवृद्धि करने हेतु क्रान्ति के पगलिये उठाने वाले पूर्वाचार्यो के विविध पुष्पफलों से सुशोभित भव्य एवं सुन्दर चतुर्विध सघ की बगिया है। इस बगिया की सुवास कोई भी लेता है तो उसकी आभ्यन्तर एवं बाह्य दुर्गुण रूपी दुर्गन्ध समाप्त होती है । आप गुणों से सुरभित अपने जीवन को बनावें जिससे आप परम शांति के मार्ग पर अग्रसर होते हुए वर्तमान में हो रही मस्तिष्क सम्बन्धी उलझनों को समाप्त कर सकते है । यह उपबृंहन का पाँचवाँ आचार सभी के लिये पालन करने योग्य है ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१७–७–८५
बुधवार

□ □ □

१८ यात्रा अगम देश की

परम पावन वीतराग दशा प्राप्त, अगाध शक्ति के धारक महाप्रभु का स्मरण करने के अनन्तर उनके द्वारा प्रवाहित जन-कल्याणी अमृतमयी देशना में अवगाहन कर, चिन्तन-मनन का यह भव्य प्रसंग उपस्थित हो गया है।

वीतराग देव के प्रति एक निष्ठा होगी, एकात्मक-भाव होगा, तभी उनकी वाणी का रस प्राप्त हो सकेगा। बिना निष्ठा के उनकी वाणी से आने वाला अनुपम रस प्राप्त नही हो सकेगा और जिनवाणी के रस की प्राप्ति के बिना मन एकाग्र नही हो सकता।

मन की एकाग्रता बनाए रखने के लिए भौतिक आकर्षणो से हटकर शक्ति का नियोजन एक ही दिशा में करना होगा। आज के व्यक्ति साधना भी करना चाहते है, मन को स्थिर करना चाहते है, और भौतिक तत्त्वों की आसक्ति भी छोड़ना नही चाहते है। एन्द्रियक सुखो को भी भोगना चाहते है। ऐसे व्यक्ति कभी भी साधना मे सफल नही हो सकते। जिस प्रकार एक विशाल लम्बी पाइप लाइन है, जिसके माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रों मे पर्याप्त पानी पहुंचता है, लेकिन उसी पाइप लाइन के मध्य में स्थान-स्थान पर छेद कर दिये जायं और उसमें पानी बाहर रिसता रहे तो क्या ऐसी दशा में उस पाइप लाइन से पानी दूरस्थ क्षेत्रो तक पहुच सकेगा ? उत्तर होगा—नही। क्योंकि उसकी शक्ति रास्ते मे ही खत्म हो जाती है। ठीक इसी प्रकार आत्मा की शक्ति भी मन रूप पाइप के माध्यम से अगम क्षेत्र की यात्रा करती हुई परमात्मा तक पहुंच सकती है। किन्तु उस पाइप लाइन के बीच मे बहुत बड़े-बड़े छेद कर दिये है, जिसके कारण आत्मा की शक्ति परमात्मा तक पहुच ही नही पा रही है। वे छिद्र है इन्द्रियों की आसक्ति के। आज का व्यक्ति कभी श्रोतेन्द्रिय के माध्यम से अपनी आत्मिक शक्ति को खर्च कर रहा है तो कभी चक्षुरिन्द्रिय के माध्यम से खर्च कर रहा है। अर्थात् वह अच्छे-अच्छे फिलमी गाने सुन रहा है। अपनी प्रशंसा किये जाने से खुश हो रहा है। निंदा किये जाने पर रुष्ट हो रहा है। कान के माध्यम से मन के द्वारा आत्मा में अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प पैदा कर उसकी शक्ति को खर्च कर रहा है। इसी प्रकार नेत्र से वह अनेक भले-बुरे चित्र देख रहा है। अच्छे चित्र पर मोहित हो रहा है तो कभी विकारी भावनाओं से अपनी आत्मा को दूषित बना रहा है तो कभी बुरे चित्र को देखकर घृणा

कर रहा है। जैसा कि कभी सुनने को मिलता है कि किसी ने प्रातः किसी व्यक्ति का मुँह देख लिया जो कि उसे पसंद नही है तो वह यह कहता हुआ पाया जाता है कि सुवह-सुवह किस कलमुंहे का मुंह देख लिया। पर यह नहीं सोचता कि किसी का भी मुख देखने से होता क्या है ? होगा वही जो स्वय के कर्मों में रहा है।

इस प्रकार कान, नेत्र की ही वात नही है, अपितु अन्य नाक, मुख, स्पर्श आदि इन्द्रियो के माध्यम से भी वह अपने मन की पाइप लाइन मे जाने वाली आत्मिक शक्ति को रास्ते में ही खर्च कर डालता है, इस प्रकार का व्यक्ति कभी भी अगम देश की यात्रा कर परमात्म रूप को प्राप्त नही कर सकता।

परम शांति एवं परम सुख को पाने के लिए अगम देश की यात्रा को एक निष्ठा के साथ करनी होगी। इन्द्रियों के माध्यम से हो रही आत्म शक्ति के व्यय को रोकना होगा।

आप देखते है कि आज के युग में वैज्ञानिक लोग जब छोटी-मोटी वस्तु का आविष्कार करते है, तब भी मन को किस प्रकार उसमें लगा रखते है। सब कुछ भूल जाते है उस समय। खाने-पीने का भी ध्यान उन्हें नहीं रहता है। बस रात-दिन खोज करने में ही लगे रहते है। तव कही जाकर वे किसी वस्तु का आविष्कार कर पाते है। तो बधुओ ! आपको हमको तो इन भौतिक वस्तुओं का आविष्कार न कर इन सबकी आविष्कारक मौलिक शक्ति आत्मा को जागृत करना है। अब आप विचार कर सकते है कि उसे जागृत करने के लिए कितनी अवधानता—एकाग्रता की अपेक्षा होती है।

बड़े-बड़े योगी-महायोगी, एकनिष्ठ साधना करने के लिए सब कुछ छोड़-छाड़कर जंगलों में, गुफाओं में चले जाते हैं। और साधना करने मे लग जाते है। तथापि कई साधक साधना से विचलित भी हो जाते है। अपने शास्त्रों में भी चरम शरीर रहनेमि का उदाहरण आता है कि जो गुफा मे एक निष्ठ हो साधना कर रहे थे। किन्तु राजमति साध्वी का निमित्त पाकर साधना से विचलित हो गये थे। पर राजमति के संयोग से वे पुनः स्थिर भी हो गये थे। साधना में अस्थिरता के कई उदाहरण वैदिक संस्कृति में भी मिलते है। जैसे कि कोई संन्यासी साधना कर रहा था किन्तु उसके सामने स्वर्गलोक की उर्वशी—मेनका आकर नृत्य करने लगी तो जो संन्यासी अगम लोक की यात्रा पर था, वह रास्ते में ही विचलित हो गया।

इन सब उदाहरणों को मै इसलिए बतला रहा हूँ कि आप चाहे कि हम भौतिक वस्तुओं में आसक्त रहते हुए ही साधना में सफल हो जायं तो वह केवल कल्पना ही होगी। साधना में सफल होने के लिए इन्द्रियों के माध्यम से जो वाहर

में शक्ति खर्च हो रही है उसे रोककर मन के पाइप लाइन मे प्रवाहित आत्मा की शक्ति को सीधी परमात्म-अभिव्यक्ति तक पहुँचाना होगा।

इन्द्रियों के ही नही मन के भी अनेक छिद्र है। जिनसे विचार सरणि बिखरती है, उन्हें भी प्रयत्न विशेष से बन्द करना होगा।

उन सब छिद्रों को बन्द कर आगे बढने के लिए सबसे पहले मिथ्यात्व को हटाकर सम्यक्त्व की अभिव्यक्ति आवश्यक है। कुछ दिनों से आपके समक्ष सम्यक्त्व को लेकर विचार-विमर्श चल रहा है। सम्यक्त्व वह अमूल्य तत्त्व है जो आत्मा के पराङ्मुखी प्रचार को स्वोन्मुखी बनाता है और जब तक प्रवाह स्वोन्मुखी नही बनता है तब तक किया गया सारा का सारा पुरुषार्थ व्यर्थ चला जाता है। सम्यक्त्व शांति से जीने का सबसे अनिवार्य अग है। सम्यक्त्व में रहने वाली आत्मा ज्ञान पूर्वक चलती हुई भयंकर से भयंकर दु.ख की स्थिति मे सुखी रह सकती है।

सम्यक्त्व को जीवन में सही ढंग से अपनाने के लिए महाप्रभु के आठ आचारों का बहुत ही सुन्दर ढग से विवेचन किया है। जिन आचारों के माध्यम से शांति का अभिप्सु–इच्छुक अपने आन्तरिक एवं व्यावहारिक जीवन को निर्मल बना सकता है।

सम्यक्त्व की प्राप्ति पर ही वीतराग देव की एक निष्ठ साधना सध सकती है – कृष्ण वासुदेव एवं श्रेणिक सम्राट इस बात के आदर्श है जिन्होंने सम्यक्त्व की विशिष्ट आराधना करके जोवन को सही ढंग से जीया था। श्रेणिक सम्राट जब वीतराग देव के एक निष्ठ उपासक नही बने थे, मिथ्यात्वावस्था मे रहकर हिसादि प्रवृत्तियो में अनुरक्त थे, तब नरकायु का बंधन कर चुके थे। किन्तु जब उन्हें महाप्रभु का सान्निध्य प्राप्त हुआ और उनसे धर्म का सही स्वरूप समझा। तब से उनके जीवन में एकदम रूपान्तरण आ गया और उनकी वीतराग देव के प्रति इतनी गहरी निष्ठा बनी कि परिणामस्वरूप वे आगामी चौबीसी के पहले तीर्थंकर होगे। इसी प्रकार कृष्ण वासुदेव भी आगामी चौबीसी के बारहवें तीर्थंकर होगे।

जीवन का सही रूप अभिव्यक्त करने के लिए सम्यक्त्व की नितान्त आवश्यकता है। उववूह–उपबृंहन का वर्णन आपके सामने आ ही रहा है। अर्थात् दूसरे के गुणों का उद्भावन करना। दूसरो के गुणो को बतलाने से स्वय के गुणो का विकास होता है। दूसरो के अवगुणो को प्रकट किया जायेगा तो स्वयं के अवगुणो की वृद्धि होगी। क्योंकि दूसरे के ऊपर कीचड़ उछालने से पहले स्वयं के हाथ कीचड़ मे भरते हैं।

आज के लोगो की जो सबसे बड़ी समस्या स्वयं के जीवन को जीने की हो रही है। जिस समस्या का कइयों के पास समाधान न होने से वे अपघात तक कर बैठे है। मानसिक कुठाओं से ग्रस्त हो जाते है, तो कई अनेक व्याधियों से पीड़ित हो जाते है। इन सबका एक ही कारण है कि उन्हें जीना नही आया है।

मै आप सबसे यही कहूँगा कि आप प्रभु द्वारा प्रतिपादित जीने की कला सीखे। उसे सीखकर तदनुसार चलेगे तो अगम देश की सही यात्रा होगी और अवश्य ही आपके जीवन मे शांति का उपवन महक उठेगा……।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, वम्वई

१८–७–८५
गुरुवार

१६ स्थिरीकरण

(सम्यक्त्व का छट्ठा आचार)

आज के मानव-समुदाय के जीवन का जो व्यवहार चल रहा है, उसमें बहुत से मनुष्य जीवन की समस्याओं में उलझे हुए है। जीवन को किस ओर ले जाना, क्या कार्य करना, किस प्रकार जीवन का व्यवहार रखना, ये सब बाते मनुष्य के जीवन में, मानवीय मस्तिष्क मे हलचल मचा रही है, इस सभी बातो की उलझन को मिटाने के लिए वीतराग सिद्धान्त है।

वीतराग देव ने जो सिद्धान्त व समाधान दिये है उन सिद्धान्तो को जीवन मे रमाकर प्रत्येक मनुष्य यदि अपने जीवन की समस्याओं का हल करे तो उसकी सारी समस्याएँ हल हो सकती है। वह अतीव शाति का अनुभव कर सकता है। जो अशांति की अनुभूतियाँ वह कर रहा है, उसका निर्माता वह स्वयं है। वह यदि स्वय के निजी स्वरूप को सम्यक् रूप से समझ लेता है तो उसको ज्ञात हो सकता है कि दुनिया मे सुख-दुःख उत्पन्न करने वाला कोई दूसरा नही है। वह स्वयं ही स्वय के सुख-दु.ख का कर्त्ता है। दूसरे तो निमित्त मात्र है। जैसी कि प्रभु की वाणी है—

> अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
> अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥

यह अडोल आस्था जिनके जीवन मे है, सम्यक्त्व की भूमिका पर आरूढ होकर वीतराग देव की वाणी में अवगाहन करते हुए सम्यक्त्व के आचारों का सम्यक्रूपेण अपने जीवन मे निर्वाह कर सकते है। सम्यक्त्व का छठवाँ आचार है स्थिरीकरण ।

अपने जीवन मे यह समीक्षण करना है कि हम वीतराग वाणी में स्थिर है या अस्थिर ? यदि हम सुदृढ रूप से स्थिर है तो हम अन्य को भी स्थिर कर सकते है। जो स्वयं को सम्भालने में सक्षम है, वही दूसरों को सम्भाल सकता है। यह संसार वैतरणी नदी है और इसका तट सम्यक्त्व की आचार भूमि है। जो मनुष्य स्वयं तट पर सुरक्षित अवस्था में खड़ा रहने में समर्थ बन चुका है, वही, अन्य जो प्राणी संसार रूपी वैतरणी नदी मे गिर रहे है, वह रहे है, उन्हे भी गिरने से, वहने से बचा सकता है।

संसार से तिरने हेतु जो आगे वढ़ने का पुरुपार्थ करते है, उनको जो वाधक वन कर रोकते है, सांसारिक, भौतिक पदार्थो का प्रलोभन देते हैं, उनकी धर्म के प्रति निष्ठा को हटाते है, वे मिथ्यादृष्टि हैं और महा मोहनीय कर्म को वांध कर अनन्त संसार को वढा लेते हैं। वे स्वयं भी डूव रहे है, और दूसरों को भी डुबोने का प्रयास करते हुए अनन्त संसार वढ़ा रहे हैं।

प्रभु महावीर का अमृतोपम उपदेश है कि—

"परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सव्व बले य हायई, समयं गोयम मा पमायए।।

अर्थात्—शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे हैं, सभी इन्द्रियों का बल घट रहा है, अतएव हे गौतम! समय-मात्र का भी प्रमाद मत करो। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक कर्म करने की शक्ति है, तभी तक धर्म भी हो सकता है। कहावत भी है कि—

"जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।"

अतः सम्यक् दृष्टि का यह कर्त्तव्य है कि जो संसार में गिर रहे है, संसार वढा रहे है, उन्हें समझावे और सांसारिक कुकृत्यों से उदासीन बनावे, उन्हें धर्म के सम्मुख करे, धर्म में स्थिर करे। ऐसा करता हुआ वह महान् निर्जरा की स्थिति मे आगे बढ सकता है, दूसरों को तिराता हुआ स्वयं तिर जाता है। पर खेद होता है कि आज के अधिकांश मनुष्य जिन परिस्थितियों में बह रहे है, उससे वे इतने बोझिल बने हुए हैं कि स्वयं के निजी स्वरूप को पहचानने की किञ्चित् मात्र फुर्सत भी उन्हें नहीं है। धर्म के प्रति रुचि न होने से वे स्वयं धर्म नही कर पाते है और अन्य करने वालों के लिये भी समझ न होने से येन-केन-प्रकारेण बाधक बन जाते है।

धर्म पर स्थिरता-अस्थिरता एवं श्रावक सम्यग्दृष्टि के कर्त्तव्यों को समझने के लिए जमाली का उदाहरण दे देता हूँ। प्रभु महावीर की अमृतोपम वाणी जब जमाली के मन में प्रविष्ट हुई, तब उसने विचार किया कि प्रभु महावीर मेरे अनन्त उपकारी है। जब प्रियदर्शना के साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा, तब मैने यही विचार किया कि प्रभु महावीर की असीम कृपा से मुझे इस प्रियदर्शना का बहुत अच्छा संयोग मिला, पर आज मुझे वास्तविक लक्ष्मी के साथ संयोग कराने के लिए प्रभु महावीर ने कैसा अच्छा मुझे प्रतिबोध दिया और ऐसा प्रतिबोध पा वह जमाली जामाता अपने पाँच सौ साथियों के साथ दीक्षित हो गया। पर दीक्षित होने के वाद भगवान् से अलग विचरण की अनुमति माँगी, तब प्रभु मौन रहे, दो-तीन बार पूछने पर भी जवाव नही दिया तो उस जमाली अणगार ने

बिना भगवान् की आज्ञा के अलग विचरण करना प्रारम्भ कर दिया। विचरण करते हुए एक स्थान पर अशाता वेदनीय कर्म के उदय से शरीर में तीव्र व्याधि हो गई। अतः सोने के लिये शिष्यों को शय्या बिछाने का निर्देश दिया। शय्या बिछाने में देरी होने के कारण इस निमित्त मात्र से उनकी विचारधारा वीतराग वाणी के प्रतिकूल बनी और वह मिथ्या दृष्टि हो गया।

घटना इस प्रकार घटी कि जब शिष्यों से पूछा गया कि मेरी शय्या बिछ गई ? तब शिष्यों ने कहा कि हाँ ! बिछ गयी है। किन्तु जब जमाली ने देखा कि शय्या अभी तक बिछी नही है, फिर भी ये कैसे कह रहे है कि "शय्या बिछ गई।" ये भगवान् के सिद्धान्त का अनुसरण करके कह रहे है। पर आज मै यह प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि भगवान् का यह सिद्धान्त सर्वथा गलत है। जो कार्य पूरा नही हुआ है, उसे पूरा हुआ कैसे कह रहे है। इस गलत मान्यता का आग्रह सिर्फ जमाली ने ही नही पकड़कर रखा वरन् उसके साथ वाले साथी और महासती प्रियदर्शना भी उस गलत मान्यता के आग्रह को लेकर विचरने लगी।

एक बार का प्रसंग है। प्रियदर्शना विचरती हुई ढक श्रावक के यहाँ पर पहुँची। वह जाति से कुम्भकार था, पर प्रभु महावीर का पक्का श्रावक था। जिनवाणी का रसिक, प्रभु महावीर के सिद्धान्तों का जानकार, सुज्ञ और गम्भीर था। उसने जब यह जाना कि, जमाली प्रभु महावीर के सिद्धान्तो से विरुद्ध प्ररूपणा करके विचर रहा है तथा यह प्रियदर्शना भी मूढ मति को प्राप्त हो जमाली के द्वारा प्ररूपित गलत सिद्धान्त को स्वीकार कर प्ररूपणा कर रही है कि—"जो कार्य अभी तक पूरा नही हुआ, उसे पूरा हो गया–ऐसा नही कहना।" कुम्भकार ढंक श्रावक अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से एक उपाय ढूँढ निकालता है और वीतराग वचन से अस्थिर बनी साध्वी प्रियदर्शना को पुनः वीतराग वचनों पर स्थिर कर देता है, जैसा कि उसने यह प्रयोगात्मक कार्य किया। बर्तन पकाने के स्थल से अंगारा लेकर उस साध्वी की चादर के एक किनारे पर डाल दिया। तब वह साध्वी बोल उठी—"अरे ! यह क्या किया ? मेरी चादर जला दी।" तब कुम्भकार ने कहा कि तुम्हारी चादर अभी पूरी कहाँ जली है ? सिर्फ एक किनारा ही तो जला है। तुम्हारा तो सिद्धान्त है कि जब तक कोई वस्तु पूरी नही जल जाय, तब तक उसे जला हुआ नही कहना। तीर ठीक निशाने पर लगा। वह हलुकर्मी आत्मा साध्वी प्रियदर्शना तुरन्त समझ गयी कि प्रभु महावीर का जो सिद्धान्त है—"चलमाणे चलिए इत्यादि" वह सही है और मै जो वर्तमान मे प्ररूपणा करने के लिये तत्पर हुई हूँ, वह सर्वथा गलत है। तब साध्वी प्रियदर्शना अपने साध्वी परिवार के साथ महाप्रभु के सान्निध्य में आलोचना-प्रतिक्रमण कर पुनः सम्मिलित हो गई। महाप्रभु का सत्य सिद्धान्त समझाया गया तो कितने ही सन्त, जमाली अणगार को छोड़कर महाप्रभु के सान्निध्य मे चले आए। किन्तु जमाली अपने मिथ्या-सिद्धान्त पर डटा रहा और अन्त तक मिथ्यादृष्टि ही बना रहा।

इस प्रकार अन्य भी उदाहरण है धर्म से, संयम से अस्थिर होते हुए को पुनः धर्म में, संयम मे स्थिर करने विषयक। जैसे—जब अरिष्टनेमि भगवान् के छोटे भाई रथनेमि साधना में स्थित, गुफा में ध्यान कर रहे थे और इधर साध्वी राजमति प्रभु अरिष्टनेमि के दर्शन करने के लिये उसी रास्ते से साध्वी-समुदाय के साथ जा रही थी, पर बीच में भयंकर आँधी-बरसात के कारण सभी साध्वियाँ इधर-उधर हो गयी। संयोग की बात है, राजमति उस स्थिति में अपने वस्त्र सुखाने की दृष्टि से उसी गुफा में चली गयी. जिसमें रथनेमि थे। बाहर प्रकाश से आने के कारण उसे मालूम न हुआ कि भीतर में कोई है। अतः वह तो अपने वस्त्र यतनापूर्वक सुखाने की दृष्टि से शरीर से पृथक् कर रही थी और उधर उन रथनेमि अणगार की दृष्टि ज्यों ही महासती पर पड़ी, वे मोहग्रस्त बन उसके सौन्दर्य को निहारने लगे, वैषयिक आमन्त्रण देने लगे। पर वह संयमनिष्ठ साध्वी राजमति सिंहनी की तरह उसे ललकार कर कहने लगी—

"धिरत्थु तेऽजसं'कामी, जो तं जीवियकारणा ।
वन्तं इच्छसि आवेउ, सेयं ते मरणं भवे ॥"

"हे अपयशकामी रथनेमि! तुझे धिक्कार है, जो तू असंयम रूप जीवन के लिये वमन किये हुए को पुनः ग्रहण करना चाहता है। इस असंयम रूप जीवन से तो तेरा असयम को प्राप्त होने से पूर्व ही मर जाना ही श्रेष्ठ होगा।" इस प्रकार उस संयमव्रती साध्वी के उपर्युक्त सुभाषित वचनों को श्रवण कर वे चरम शरीरी रथनेमि अणगार सयम मे उसी प्रकार स्थित हो गये, जिस प्रकार अकुश से हाथी वश मे हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एकान्त स्थान मे साधना करते हुए बड़े-बडे योगी भी कदाचित् मोहनीय कर्म के उदय हो जाने से धर्म से, सयम से विचलित हो जाएँ तो सम्यग्दृष्टि आत्मा का कर्त्तव्य है कि वे उन्हें पुनः धर्म का दिव्य स्वरूप समझाकर धर्म में, संयम में स्थिर करे। अपने सम्यक्त्व के छट्ठे आचार का परिपालन करे।

प्रभु महावीर ने कहा है—यह अब्रह्मचर्य जीवन को गहरे पतन मे ले जाने वाला है। चरम शरीरी रथनेमि भी, जब ब्रह्मचर्य की स्थिति से विचलित हो गये, तो सामान्य साधकों का तो कहना ही क्या? प्रभु महावीर ने तो इतनी तक मर्यादा बनाई है कि ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए जहाँ नारी आदि का आवास हो, वहाँ साधु को और जहाँ पुरुषों का आवास हो, वहाँ साध्वी को नही रहना तथा विकाल में साध्वी के स्थान पर पुरुष और साधु के स्थान पर स्त्री नही आवे। जिस प्रकार साधु-साध्वी के लिए महाप्रभु ने सकेत किया, उसी प्रकार ब्रह्मचारी श्रावक-श्राविकाओं को भी इस विषय में विवेक रखने की आवश्यकता रहती है। जब श्रावक-श्राविका पौषध करते है, सामायिक करते है, संवर आदि धर्म क्रिया करते है, तब ब्रह्मचर्य का अनुपालन किया जाता है, उस

समय उन्हें भी साधुओं के नियमों की तरह सूर्योदय होने के पहले व सूर्योदय के पश्चात् श्राविकाओं के धर्मस्थान में श्रावकों को और श्रावकों के धर्म स्थान में श्राविकाओं का रहना प्रतिक्रमण, धर्मचर्चा, प्रार्थना आदि करना मर्यादा से प्रतिकूल है। कभी-कभी इन प्रक्रियाओं से श्रावक-श्राविकाओं की धर्म के प्रति स्थिरता तो दूर रही, धर्म के प्रति अस्थिरता आ जाती है। लोगों को उनके चारित्र पर शंका हो जाती है। कई स्थलों पर श्रावक-श्राविकाओं के विकाल में धर्म थानक पर रहने से अस्थिरता के दुष्परिणाम आये है। अतः इस विषय मे श्रावक-श्राविकाओं को भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। तीर्थेश मल्लिनाथ भगवान्, जो स्त्रीलिगी थे, वे भी रात्रि में आभ्यन्तर परिषद् के साथ रहते थे, जबकि वे कल्पातीत थे, उनका कुछ भी बिगड़ने वाला नही था। फिर भी उन्होने लोक व्यवहार का ख्याल रखा।

इस प्रकार स्थिरीकरण आचार की पुष्टि करने वाले अन्य भी बहुत से उदाहरण है। उन सबसे यही शिक्षा ग्रहण करे कि आप भी अपनी निजी अनन्त शक्तियों का, अपने आत्मबल का विकास करे। जीवन में सम्यग्दृष्टिपने के बल-बूते से, आत्मीय गुणो में रमण करते हुए, निष्ठापूर्वक अपने व्रतो का परिपालन करते हुए स्वरूप का विकास करें और फिर अन्य जो धर्म से विमुख बने हुए हैं, उन्हे भी धर्म में स्थिर कर कर्म निर्जरा का पथ प्रशस्त करे।

मोटा उपाश्रय, १६–७–८५
घाटकोपर, बम्बई शुक्रवार

२०
स्वधर्मी वात्सल्य
(सम्यक्त्व का सप्तम आचार)

वीतराग दशा को प्राप्त तीर्थंकर देवों के परम पावन उपदेश का निष्कर्ष जीवन में प्राप्त करने हेतु जिन वीतराग देव की स्तुतिपरक गाथाओं का उच्चारण किया है, उन्हे चिन्तन में लेने की नितान्त आवश्यकता है ।

आज मनुष्यों की जो दयनीय दशा बन रही है, वे किनकी शरण में जाएँ ? दु:ख से निवृत्ति लेने हेतु, जो परिपूर्ण सुखी है, उनकी शरण लेने से ही वे सुखी बन सकते है । पर दु:खी व्यक्ति के पास जाने से वे अपने दु:खों से निवृत्ति नही प्राप्त कर सकते है । जैसे—एक भिखमंगा दूसरे भिखमगे से भूख-निवारण करने हेतु कहे, तो क्या वह भिखारी उस भिखमंगे की भूख मिटा सकता है ? उत्तर होगा—नहीं । ठीक इसी प्रकार ससार में सभी व्यक्ति दु:खी है । उनके पास जाने से दु.ख की निवृत्ति नही हो सकती है । इसी प्रकार भौतिक पदार्थो की याचना करने वाले, भौतिक पदार्थो में आसक्त संसारियों को भिखमंगे की उपमा दे दी जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी । क्योंकि प्राय: सभी संसारी, तृष्णा के आवेग में बहते हुए भिखमंगे के रूपक को ही धारण किये हुए है । यही नही देव, जो अमित ऐश्वर्य के स्वामी है, उनकी भी तृष्णा का अन्त नही है । बड़ी विचारणीय स्थिति है कि निजी स्वरूप को छोड़कर जीव पर-स्वरूप मे रमण कर रहा है, उनमे ममत्व रख रहा है । ऐसी तृष्णा वाले चाहे लखपति, करोड़पति भी क्यों न हों, दूसरों के दु:ख दूर करने में समर्थ नही हो सकते है । पर जो पर-पदार्थो के व्यामोह में न पड़कर साधना के बलबूते पर आध्यात्मिक सम्पत्ति के स्वामी बन चुके है, उनका सान्निध्य, उनकी शरण ग्रहण करने से ही दु.खो से छुटकारा पाया जा सकता है । शांतिनाथ भगवान् जब चक्रवर्ती थे, तब उनके पास छ: खण्ड की ऋद्धि थी, फिर भी आध्यात्मिक सुख की अपेक्षा रखने वाले, आध्यात्मिक लक्ष्मी को प्राप्त करने हेतु छ: ही खण्डो का राज्य उन्होने छोड दिया । उन्होने सोचा कि आत्मिक ऋद्धि अभी तक मुझे मिली नही है । यदि इस भौतिक ऋद्धि मे ही खुशी मनाता रहा तो मै भिखारी ही रहूँगा । अत: छ: खण्ड का राज्य छोड़कर वे अणगार बन गये । जैसा कि 'उत्तराध्ययन' सूत्र में यह बतलाया गया है कि—

"चइत्ता भारहं वास, चक्कवट्टी महड्ढिओ ।
'सन्ती' सन्तिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरम् ।।"

अर्थात्—शांति देने वाले शांतिनाथ नामक महासमृद्धिशाली चक्रवर्ती इस लोक में भरत क्षेत्र के, छः खंड के राज्य को छोड़कर अर्थात् अतीव रमणीय कामभोगों का परित्याग करके प्रधान गति मोक्ष को प्राप्त हुए। जिनके ज्ञान में, जिनके हृदय में संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति अपूर्व वात्सल्य-भाव था, ऐसे भाव के स्वामी, सभी के कल्याण का पथ प्रशस्त करने वाले वीतराग देव बन गये। यदि हमारी आत्मा कर्म प्रवाह से ससार रूपी वैतरणी में वहती हुई वीतराग भगवान् के वचनों पर दृढ आस्थावान् हो जाय, जो कि सम्यक्त्व का लक्षण है, उस लक्षण पर इतनी दृढीभूत हो जाय कि सम्यक्त्व के सभी आचारों का भलीभाँति अपने जीवन में निर्वाह करती हुई एक दिन उस आध्यात्मिक शक्ति रूप श्री का वरण कर सके और उस प्रधान गति मोक्ष को प्राप्त कर सके।

आचरण करने योग्य आठ सम्यक्त्व के आचारों को भव्यात्माओं को आन्तरिक जीवन में ओत-प्रोत कर लेना चाहिये। सातवे स्थान पर जिस आचार का वर्णन आया है, वह है वात्सल्य। माता का पुत्र के प्रति अद्वितीय वात्सल्य रहता है, वह पुत्र के लिए सब कुछ सहन कर लेती है, अनन्य भाव से उसका परिपालन करती है। यह सारी चर्या उस माँ की वात्सल्य भावना का प्रतीक है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी पर सम्यक् दृष्टि का निःस्वार्थ वात्सल्य बन जाय तो प्रत्येक आत्मा के साथ अनन्य भाव पैदा किये जा सकते है। प्रत्येक के साथ आत्मवत् व्यवहार की स्थिति प्राप्त होती है। रूपक है—बिल्ली स्वय की सन्तान को जन्म देने के बाद उन्हे अपने दाँतों के बीच में दबाकर सात घरों तक फिराती है, तब उन बच्चों की आँखे खुलती है—ऐसा कहा जाता है। पर जब वह सात घरों तक बच्चे को दांतों के बीच में दबाकर घूमती है, तब अपने बच्चे को जरा भी आँच नही आने देती। लेकिन यदि किसी पक्षी का बच्चा उसके मुख में आ जाय तो वह उसको खा जाती है। यह तो अज्ञानवश पशु जाति की मोह अवस्था है, पर जो मानव चिन्तनशील है, वह अपने वात्सल्य भाव का विस्तार करना सीखे। स्व-पर का भेद भूलकर सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करे। बच्चा जन्म लेता है और माता के स्तन मे से दूध एकाएक आने लगता है, यह बच्चे के प्रति माता की वात्सल्यता का ही परिणाम है। जब भगवान् महावीर को चण्ड-कौशिक ने डक मारा, तो भगवान् के पैर के अंगुष्ठ से दूधवत् धारा छूट पड़ी। यह उनकी प्रत्येक आत्मा के प्रति अपूर्व आत्मीयता, अद्वितीय वात्सल्यता का प्रतीक थी। यह माता के जीवन से भी वढकर भगवान् के जीवन का वात्सल्य भाव था। डक मारने वाले के प्रति भी वह निःस्वार्थ वात्सल्य भावना दूध की धवलता के रूप मे निर्झरित हुई। प्रतिवोधित कर दिया उस चडकौशिक को। पर आज कहाँ है नि.स्वार्थ वात्सल्य भावना? कहाँ है वह सम्यग्दृष्टि का आचार? कहाँ है सावर्मी के प्रति सहयोग की भावना?

एक समय का प्रसग है। दुष्काल का समय था। तव कई सम्पन्न स्थिति वालो ने अन्न खरीद लिया और अपने परिवार वालों का पोपण करने लगे। पर

कई गरीब लोग क्षुधा से तड़फडाते हुए मरने लगे। ऐसी परिस्थिति में "बहुरत्ना वसुन्धरा" इस कहावत को चरितार्थ करने वाला एक सुदत्त नामक सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रभु महावीर का अनुयायी विचार करने लगा कि मेरी यह सम्पत्ति यदि मैं साधर्मी भाइयों की मदद में नियोजित कर दूँ, तो इससे बढ़कर इस नश्वर सम्पत्ति का और क्या सदुपयोग होगा। ऐसा विचार कर खुले दिल से वह साधर्मी भाइयों के लिये हर तरह से साधन जुटाने लगा, बड़ी हवेली बना कर सब अनाथों का, गरीबों का पोषण करने लगा, बड़ी विनम्रता और आत्मीय भावना के साथ। तीन साल तक बराबर उनका परिपालन कर उन लोगों का भी धर्म के प्रति अहोभाव उत्पन्न किया।

समय परिवर्तनशील है। समय ने पलटा खाया, दुष्काल जब सुकाल में परिवर्तित हुआ तो सभी दुष्काल पीड़ित भाई-बहिन अपनी विनम्रता, कृतज्ञता जतलाते हुए बड़े विनम्र भावों के साथ उन सेठ सा. को कहने लगे कि—"महानुभाव ! आपने हमारी बहुत सुरक्षा की। आपने वात्सल्य भाव का बहुत सुन्दर अनूठा रूपक जगत् के सामने रखा। हम आपके बहुत आभारी है। अब हमें छुट्टी दीजिये। हम अपने घर जाना चाहते है।" तब सेठ कहने लगा कि यह तो आपने मुझे स्वर्णिम चान्स दिया। मेरा अहोभाग्य है कि मुझे आपकी सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आपने मेरे पर बहुत उपकार किया।

ख्याल करिये कि उपकार किया सेठ ने उन लोगों पर, पर कह क्या रहा है कि "आपने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया।" कितनी विनम्रता थी, सेठ के जीवन में। सेठ ने यथार्थ में प्रभु महावीर के सिद्धान्तों का रसपान किया था। सम्यक् दृष्टि के आचारो का भली-भांति ज्ञान कर दृढता से उसका पालन किया था।

आज के युग मे तो देखने को मिलता है कि प्रथम तो कोई ऐसा स्वधर्मी वात्सल्य का व्यवहार ही नही करते है। यदि कही करते भी है तो उसके पीछे नाम कमाने की, यश फैलाने की भावना अधिक काम करती है। काम कम, नाम अधिक होना चाहिये। इस बात को मानने वाले व्यक्ति कभी भी स्वधर्मी वत्सलता का पूरा-पूरा लाभ नही प्राप्त कर सकते। वह सेठ, ऐसे लोगों में से नही था। वह दिये गये दान को भूमि मे गये बीज की तरह गुप्त और सुरक्षित रखने वाला था।

जब सुकाल हुआ और लोग जाने की तैयारी करने लगे तो सेठ ने उन्हें एक निवेदन किया कि एक प्रतिभोज और देना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे संतुष्ट कीजिये। लोगों ने बात मान ली। प्रीतिभोज की जोरदार तैयारियाँ की जाने लगी। सभी को वह अपने हाथ से परोसकर जिमाने लगे। देखिये स्वधर्मी सेवा !

मुझे इसी बीच स्वर्गीय गुरुदेव के समय का प्रसंग याद आ रहा है।

गुरुदेव का जब बगड़ी चातुर्मास था, तब चातुर्मास कराने वाले सेठ लक्ष्मीचंदजी धाड़ीवाल स्वयं स्वधर्मी भाइयों की सराहनीय सेवा करते थे। भोजनादि सभी कार्यों में स्वयं भाग लेते थे। एक बार का प्रसंग है—कुछ भाई भोजन में अपनी खुराक का ध्यान नहीं रख पाये, जिससे उन्हें हैजे की शिकायत हो गयी। चेप की बीमारी होने से उनकी सेवा करने में नौकर-चाकर भी संकोच करने लगे। तो सेठ-सेठानी ने स्वयं ने उनको सम्भाला, उनकी सभी प्रकार से सेवा की और उन्हें स्वस्थ कर विदा किया। यह है साधर्मी के प्रति नि.स्वार्थ वात्सल्य भाव।

हाँ! तो उस सेठ की बात कह रहा था मै, जो सेठजी सभी को परोस रहे थे, उस समय उनके लड़के ने कहा—"पिताजी! मैं भी परोसूँगा।" तो उसे सहर्ष अनुमति दी गयी। वह लड़का जब परोस रहा था तो एक बहिन ने, जिसे किसी चीज की जरूरत थी, उसे माँगने हेतु उसने उस लड़के के वस्त्र को पकड़ कर कहा—"यहाँ भी परोसते जाइये।" पर वह नादान, वात्सल्य भावना से अनभिज्ञ, बोल उठा कि तीन-तीन साल हो गये, यहाँ टुकड़े खाते-खाते फिर भी अभी तक तृप्ति नही हुई क्या? पल्ला पकड़ते नही छूटा? बन्धुओ! ये कठोर शब्द, उस बहिन को क्या! जीमने वाले सभी भाई-बहिनों को इतनी ठेस पहुँचाने वाले हुए कि सबके सब एक साथ उठ गये, बिना पूरा भोजन किये ही रवाना होने लगे। जब सेठजी ने यह दृश्य देखा तो विचार करने लगे कि तीन साल तक जो वात्सल्य भावना का स्रोत मैने बहाया, उस पर लड़के ने थोड़े से कठोर शब्द कहकर पानी फेर दिया। सेठजी उन लोगों को हाथ जोड़कर, पैरों में गिरकर माफी माँगने लगे। कहने लगे कि लड़के ने नादानी कर दी, आप उसे क्षमा कर दें। सभी सेठ की अपूर्व वात्सल्यता, विनम्रता से गद्गद् हो उठे। सेठ का पूरा सत्कार ग्रहण करके, सेठ को अन्तर आशीष देते हुए विदा हुए। अस्तु!

वात्सल्य भावना तो अन्तर की होती है। प्रभु महावीर ने कहा कि—"हे आत्मन्! तू सम्पूर्ण विश्व के साथ वात्सल्य भाव रख। यदि इतना न हो सके तो कम से कम परिवार वालो के प्रति और साधर्मी भाइयों के प्रति तो अपनी वात्सल्य भावना का विस्तार होना चाहिये। वात्सल्य भाव करने वालों को सबक लेना है कि समाज में रहते हुए कभी कुछ बोलने अथवा सुनने का प्रसंग आ जाए तो भी अपने क्षमा गुण का विकास कर, आत्मवत् व्यवहार का ख्याल कर अपने वात्सल्य का निर्झर वहाते रहे। अपने जीवन मे समागत समूल दु.खों से निवृत्ति पाने हेतु वीतराग वाणी मे अवगाहन करते हुए सम्यक्त्व के सातवे आचार को जीवन में स्थान देगे तो जीवन अतीव मंगलमय वन जाएगा। इन्ही शुभ भावों के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, वम्बई

२०-७-८५
शनिवार

२१ भौतिकता से हटो— आत्मलक्ष्यी बनो

वीतराग देव का परम पावन स्वरूप, जन-जन की अन्तर चेतना को उल्लसित करनेवाला है। उस उपदिष्ट मार्ग का, उनकी देशना का चिन्तन-मनन करने का यह भव्य अवसर है।

मनुष्य जन्म, आर्यभूमि, संत-समागम और वीतराग-वाणी का श्रवण जिसे उपलब्ध होता है, उसका मनुष्य जीवन अनंत पुण्यवानी के उदय का शुभ फल एवं अंतराय कर्म का क्षयोपशम समझना चाहिये।

वर्तमान की पर्याय वर्तमानस्वरूप ही रहती है। वैसी पर्याय भूत और भविष्य की भी होती है। पर्याय का तात्पर्य परिवर्तन से है। यह तीनों काल में होता रहता है। सम्यग्दृष्टि भाव यह विवेक देता है कि जिस समय जो पर्याय वरत (चल) रही है, उस समय उसी पर्याय का कथन करो। भविष्य में आप आत्मा की शुद्ध पर्याय को प्राप्त कर सकते है, पर वर्तमान में उस पर्याय का एकान्त आरोप करना सम्यक् नही है। जैसे— वर्तमान में मनुष्य चोले को लेकर चल रहा है और उसे सिद्ध कहें तो अनुचित है। नय की दृष्टि को लेकर हम कह सकते है कि हमारी आत्मा सिद्ध जैसी है, पर वर्तमान में उसे सिद्ध नहीं कहा जा सकता। यदि वर्तमान की पर्याय को, हम भविष्य में प्राप्त होने वाली पर्याय मान लेते है, तो इसमें मिथ्यात्व की स्थिति बन सकती है। जैसे—आप वर्तमान में भोजन कर रहे है और यह कह दें कि मैं व्यापार कर रहा हूँ तो आपका यह कथन गलत है भले ही आप भविष्य में व्यापार करेंगे ठीक वैसे ही वर्तमान में जिस पर्याय में आप चल रहे है और अतीत या भविष्य की किसी पर्याय का आरोप वर्तमान में करते है तो यह अनुचित होगा।

संयमी जीवन भी एक पर्याय है। वह पर्याय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सीमा में सार्वभौम होती है। उस पर्याय को किसी भी प्रान्त या काल की परिधि में ही मान लेना गलत होगा। प्रभु महावीर की संयमीय पर्याय सार्वभौमता से प्रारंभ हुई और जब घनघाती कर्म क्षय कर उनकी पर्याय केवलज्ञानादि की पर्याय में परिणित हुई तब वे महाप्रभु सारी सीमाओं को पार कर असीम बन गये थे। असीम बनने के बाद उन्होंने जन कल्याण के लिये जो आध्यात्मिक उपदेश दिया, वह उपदेश प्राणीमात्र के लिये था। जैसा कि प्रश्नव्याकरण सूत्र

मे कहा गया है—"सव्व जग जीव रक्खण-दयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं" जगत् के सभी जीवों की रक्षा के लिये भगवान् ने प्रवचन दिया था। वह प्रवचन आज सुनने, पढने को मिलता है तो हम कितने सद्भाग्यशाली है। पर अवधानतापूर्वक श्रवण से प्रत्येक तत्त्व समझा जा सकता है।

प्रभु महावीर ने यह नही कहा था कि मै क्षत्रिय जाति का हूँ, अतः मेरा उपदेश सिर्फ क्षत्रिय जाति के लिये ही है। उन्होंने तो फरमाया कि मेरा उपदेश कल्याण चाहने वाले प्राणिमात्र के लिये है। आप उसे सुने क्योकि सुनकर ही अपना हित-अहित पहचाना जा सकता है। जैसे—

"सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयंऽपि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥" (दशवै०सू०अ० ४)

अर्थात् कल्याण मार्ग भी सुनकर ही जाना जा सकता है और अकल्याण मार्ग भी सुनकर ही जाना जा सकता है। दोनो सुनकर जाने जा सकते है। अतः जो तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है उसका तुम आचरण करो।

आज हम देख रहे है कि श्रवण की स्थिति तो बहुत अधिक व्यापक है, पर वह श्रवण कर्णेन्द्रिय तक ही सीमित है या मन तक भी पहुँचता है। मन तक पहुँचता है तो क्या कभी चितन को स्थिति भी बनती है कि मै जो सुन रहा हूँ, उसके अनुसार अपना जीवन भी बनाऊँ। जीवन के क्षेत्र में श्रवण तब तक उपयोगी नही होता है, जब तक वह श्रवण विचार क्षेत्र मे पहुँचकर निर्णायक स्थिति में परिणित न बने। गहन चिन्तन की भूमिका तैयार न करे।

आज के युग मे विचार की स्थिति से हटकर निर्विचार बनने की स्थिति भी बन रही है पर निर्विचार है क्या? क्या पशुवत् विचारो से रहित बन जाएँ? उत्तर होगा—नही। मनुष्य चितनशील प्राणी है। विचार करनेवाली बुद्धि कुछ और होती है। विचार जब चलता है, तब समुद्र में उठनेवाली तरगो की भाँति अनेक विचार तरगे उठती है। उस समय उन सारी विचार तरगो से ऊपर उठकर, जो विचार उपादेय है, उन्हें स्वीकार करने की निर्णायक बुद्धि ही यथार्थ मे हेय विचारों से निर्विचार स्थिति को प्राप्त करा सकती है। विचार जड़ के नही होते, विचार चैतन्य के ही होते है। जो सुन ही नही सकता, वह विचार क्या करेगा? सुनने की क्षमता चैतन्य मे ही है। तात्पर्य यह है कि सुनना, विचार करना, सम्यक् निर्णायक बुद्धि का विकास करना और निर्विचार यानि मोहजनित संकल्प-विकल्पो से मुक्ति पाकर विचारो पर नियन्त्रण पाना यह सब चैतन्य का ही कार्य है। विचार की तरगें मन की भूमिका पर उठ रही है, पर उसे तरगित करनेवाली आत्मा ही है। वही आत्मा उन विचारों पर नियंत्रण कर निर्विचार बन सकती है, अर्थात् निर्विचार स्थिति मे अपनी पहुँच बना सकती है।

जो लोग यह मानते है कि विचारों को समाप्त कर दो तो उनका यह मानना युक्तिसंगत नही है। विचारों को समाप्त नही किया जा सकता वल्कि रूपान्तरित किया जा सकता है। **प्रवाह को रोका नहीं जा सकता, मोड़ा जा सकता है।** एक रूपक है समझने के लिये—जिस व्यक्ति को कम दिखाई देता है, वह डॉक्टर के पास जाकर अपनी आँखे दिखाता है और रोशनी बढाने की फरियाद करता है, तब डॉक्टर उसे नम्बर वाला चश्मा देता है, जिसे लगाकर वह व्यक्ति स्पष्ट देख सकता है। पर, यदि उस नम्बर वाले चश्मे पर लाल रंग का लेप करदे तो उसे प्रत्येक चीज लाल-लाल दिखाई देगी। यह विकृति रंग के कारण ही उस चश्मे में आती है। नम्बर मे कोई विकृति नही होती। यदि वह नम्बर में कोई विकृति मानता है तो उसका चिन्तन उपयुक्त नही कहा जा सकता। इसी प्रकार आत्मा के विचार नम्बर है और इन विचारो पर अह का, ममत्व का, राग-द्वेष का रंग चढ जाता है। तब वह सही स्वरूप को नही जान पाती है। उसी रग के कारण आज मानव विचारो की गलत उलझनों मे पड़ा प्रान्तीयता के धर्मो में, गलत साम्प्रदायिक व्यामोह मे, आत्मीयता रहितपना आदि को प्राप्त हो रहा है। जो अहं, राग, द्वेष, ममत्व के रग को हटाकर समताभाव में उपस्थित होकर उन शुद्ध विचारो के नम्बरों से आत्म भाव की समीक्षा करता है, वह इतना समर्थ बन सकता है कि लोक-अलोक, सब को जान सकता है। स्वय का समुज्ज्वल स्वरूप प्राप्त कर सकता है।

आज वैज्ञानिक युग में जो बडे-बडे आश्चर्यकारी आविष्कार हुए है, उन आविष्कारों ने बहुत ही प्रज्ञाशील जनों को भी विचारो की स्थिति से गुमराह बनाया है। वे यही मानने लगे है कि भौतिक विज्ञान ही सब कुछ है। पर यह सर्वमान्य है कि इन अनेक आविष्कारो को करनेवाली हमारी अनत-अनत शक्ति सम्पन्न आत्मा ही है। आज सवालों का जवाब देनेवाले जिस कम्प्यूटर का आविष्कार हुआ है, वह जो उत्तर देता है तो वह उत्तर देने वाला कौन है ? क्या वह कम्प्यूटर जानता है कि वह कौन है ? उसमे तो जो भर दिया जाता है, वही सामने आता है। जो उसमें नहीं है, वह उससे पूछें तो ज्ञात होगा ? कम्प्यूटर से पूछे—तुम कौन हो ? क्या वह उत्तर दे सकता है कि मै अमुक हूँ ? वह तो जड है, उसका निर्माता है तो आत्मा ही। आचाराग सूत्र का दिव्य सूत्र है— "जे आया से विन्नाया" जो आत्मा है वही विज्ञाता है। आत्मा की अनत शक्ति से ही ये आविष्कार हो रहे है। भीतर का सचालक कौन है ? यह भौतिक औजारो से नही जाना जा सकता। इस विज्ञान स्वरूपी आत्मा को जानने का प्रसंग जब तक नही बनेगा तब तक कितना ही विकास हो जाय, वह अधूरा है। अगर अन्तर चेतना का विकास हो जाय तो अन्य सभी तरह का विकास होते कोई देर न लगेगी। दृश्य जगत् में दिखने वाले सभी पदार्थ भौतिक है। और उनका निर्माणकर्ता अभौतिक आत्मा ही है।

आज भौतिक विज्ञानवादी भी आध्यात्मिक स्थिति में आगे बढ़ रहे हैं। वर्त्तमान में आप जिन भौतिक पर्यायो को जान रहे है। यदि उनकी भीतरी स्थिति का ज्ञान नही है तो आप किञ्चित् मात्र भी अध्यात्म विकास की स्थिति में आगे नही बढ पाएगे। भौतिकता से आज क्या कुछ दयनीय स्थिति इस मानव की बनो हुई है। भौतिकता के रग में रगा मानव ईर्ष्या, राग-द्वेप की द्वन्द्वात्मक स्थिति मे झूलता हुआ वहिर्दर्शी बना अपने जीवन को किस भाँति जी रहा है—इस विषयक एक घटना का उल्लेख कर देता हूँ। कुछ वर्ष पूर्व की बात है, क्षेत्रपुर गॉव में एक वेणी माधवसिह नामक जागीरदार था। वह एक बार बीमार हो गया। बीमार भी ऐसा कि पलंग से उठने की स्थिति भी नही थी। डॉक्टर, वैद्य, हकीम आदि ने अलग-अलग जाँच की और एक ही निर्णय दिया कि इनको हृदय की बीमारी है। इनके सामने कुछ भी चिन्ता की स्थिति उपस्थित मत करना। इनको ज्यादा बोलाना मत। एक बार उनका भानेज सदाशिव अपने मामा की शाता पूछने के लिये अपने मित्र के साथ उनके घर गया और पूछा कि तबियत कैसी क्या है? पर उसके मामाजी ने उसे कुछ भी प्रत्युत्तर नही दिया। उसने जब मामाजी की चिकित्सा के विषय में खोज की तो ज्ञात हुआ कि चिकित्सा तो बराबर चल रही है फिर भी उनकी व्याधि समाप्त नही हुई है। इसमें जरूर कोई आन्तरिक कारण होना चाहिये। बात-चीत के दौरान उसे ज्ञात हुआ कि मामाजी को चन्द्रनाथ ठाकुर से ईर्ष्या है। उसके विकास को सुनकर ही यह इतने दु:खी हुए है। जिससे इन्हें हार्ट-अटैक हो गया है। अत: इन्हे स्वस्थ करने के लिये मनोविज्ञान से काम लेना होगा। वह भानजा मनोविज्ञान का भी जानकार था। वह मामा का मनोरंजन करने लगा, जिससे उनको कुछ प्रसन्नता की अनुभूति हुई। तब मामा सदाशिव से चन्द्रनाथ जागीर-दार के विषय मे पूछताछ करने लगा, कहने लगा कि तुम्हारे प्रान्त में खेती बहुत हुई है। तुमने तो चन्द्रनाथ ठाकुर के विषय मे कुछ भी समाचार नहीं बताये। तब भानजा कहने लगा कि—मामाजी! चन्द्रनाथ ठाकुर के खेती तो बहुत हुई पर टिड्डी लग गयी जिससे फसल नष्ट हो गयी। जो दूसरों को ठगता है वह भी ठगा जाता है। प्रकृति के घर मे देर है, पर अधेर नही है। यह श्रवणकर मामा अतीव प्रसन्न हुआ। पुन: भानजे से कहने लगा कि सुना है उसकी लड़की का सवंध किसी धनिक परिवार मे हुआ है। तव पुन: भानजे ने प्रत्युत्तर दिया कि "नही-नही! यह किसने कहा? ज्योतिषी ने तो साफ मना कर दिया कि चन्द्रनाथ को लड़की का लगन होगा ही नही।" यह श्रवण कर तो उसे इतनी अधिक खुशी हुई कि वह एकदम उठकर वैठ गया तथा अपने आपमे एकदम स्वस्थता का अनुभव करने लगा तथा भानजे को धन्यवाद देता हुआ विदा किया और यह भी कहा कि भाई! तुम्हे कभी समय मिले तो आया करना और उस जागीरदार चन्द्रनाथ का हाल सुनाया करना।

लौटते वक्त रास्ते मे सदाशिव को उसका मित्र कहने लगा कि तुमने

इतना झूठ क्यों कहा ? तब वह कहने लगा कि यदि मैं अपने मामा को ये झूठी बातें नही कहता, तो आज ही उसका हार्ट-फेल हो जाता । मेरी दवाई मेरे मामा को लागू हो गई । वे चन्द्रनाथ के समाचार श्रवण कर एकदम स्वस्थ हो गये । चन्द्रनाथ की तरक्की के समाचार सुनकर ही मामा को हार्ट की बीमारी हुई थी । बन्धुओ ! यह क्या है ? ये ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि परिणतियाँ ही हृदय-रोग आदि-आदि कैसे-कैसे भयंकर रोग खड़े कर देती है । स्वस्थ को अस्वस्थ बना देती है । विषमता का यह भयानक रूप व्यक्ति के अन्तरग और बाहरी दोनों ही प्रकार के जीवन को क्षत-विक्षत कर देता है ।

जो व्यक्ति राग-द्वेष को मंद करता हुआ नैतिकता के साथ निर्लोभ-वृत्ति से चलता है, उसके पास भौतिक सम्पत्ति चाहे कितनी भी कम क्यों न हो, वह चैन से रह सकता है । इस प्रसंग पर एक और छोटा-सा उदाहरण सुना देता हूँ । राजा भोज सादी पोषाक में जगल में घूम रहा था, तब उसने एक मस्त लकड़हारे को देखा और विचार किया कि यह इतना गरीब है पर है कितना मस्त हाल ! पूछा उससे—"तुम कौन हो ?" पर वह बिना उत्तर दिये आगे बढ गया । यह देख राजा भोज ने सोचा कि यह कितना निर्भीक है । पुनः राजा ने आगे बढ़कर पूछा कि तुम कौन हो ? तब उत्तर मिला कि मैं राजा भोज हूँ । राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । भोज उसके साथ-साथ चलने लगा । वह जहाँ बैठा, राजा भोज भी वहाँ बैठ गया और पूछने लगा कि क्या राजा भोज भी लकड़ी का भार ढ़ोता है ? क्या तुम सचमुच राजा भोज हो ? तब वह कहने लगा—"अरे ! राजा भोज जितना राजसी आनंद का उपभोग नही करता, उतना मै करता हूँ । मुझे नित्य प्रतिदिन लकड़ी बेचने मे छ: टका मिलता है, जिसमें से एक टका बोरा को देता हूँ, एक टका आसामी को, एक टका मत्री को, एक स्वय के लिये, एक अतिथि सत्कार में तथा एक भण्डार मे डालता हूँ ।" राजा ने पूछा—"तुम्हारा बोरा कौन है ?" तो वह बोला—"मेरे माता-पिता है क्योंकि उन्होंने मुझे पाल पोसकर बड़ा किया और इस योग्य बनाया । इसलिये वे अब मेरे लेनदार है । आसामी मेरे पुत्र-पुत्रियाँ है क्योंकि वे मेरे से ऋण ले रहे है । मंत्री मेरी धर्मपत्नी है. क्योकि वह मुझे नेक सलाह देती है । इसलिये मैं माता-पिता को एक टका, पुत्र-पुत्रियो के लिये एक टका, पत्नी के लिये एक टका, शेष तीन में से एक भण्डार में, एक अतिथि के लिये व एक मेरे लिये खर्च करता हूँ । मै अपनी इसी आमदनी में इतना मस्त हूँ जितनी मस्ती विशाल समृद्धि सम्पन्न राजा भोज के भी नही है ।"

भोज सोचने लगा कि ऐसी सुन्दर व्यवस्था तो मेरे पास भी नही है । कठियारे की मस्ती मे मूल कारण संतोष और आत्मनिर्भरता थी । जैसी कि सम्राट मे भी नही पायी गयी । यह तो भौतिक तत्त्वों में सतोष का परिणाम

था कि उसे इतना सुख मिला। किन्तु जब व्यक्ति भौतिक आसक्ति से परे हटकर अध्यात्म-साधना करता हुआ परिपूर्णतः आत्मलक्ष्यी बनता है, तब विचार कीजिये उसको कितने सुख की अनुभूति होती होगी। उसकी कल्पना भौतिक तत्त्वों से नही की जा सकती। अतः स्पष्ट है कि भौतिकता मे सुख नही है। सुख का मूल स्रोत आध्यात्मिकता है। जो भी व्यक्ति आध्यात्मिकता में प्रवेश कर परिपूर्णतः दृष्टि को समीक्षणमय बनाता हुआ आत्मलक्ष्यी बनता है, वह निश्चय ही परम सुख को प्राप्त करता है।

मोटा उपाश्रय   २१-७-८५
घाटकोपर, बम्बई   रविवार

• ○ •

२२ प्रभावना

(सम्यक्त्व का आठवाँ आचार)

सारे जगत् में सार रूप, अनन्य स्वरूप जिसके समान दूसरा कोई रूप नहीं हो सकता है, ऐसे वीतराग प्रभु का संस्मरण करने से वीतराग भाव भीतर में जागृत होते है। जिन-जिन तत्त्वों के गुण समक्ष आते है, उन-उन गुणों को भीतर में प्रकट करने की लालसा जागृत होती है। जब तक राग रहता है, तब तक बहुत सारे दुर्गुण, बहुत सारी कर्म बन्धन की स्थिति आत्मा के साथ सबंधित रहती है। जब राग आत्मा से दूर हो जाता है, तब आत्मा पूर्ण स्वतन्त्र होकर वीतराग दशा में रमण करती है। वीतराग दशा में प्रभु ने जो उपदेश दिया है, उस उपदेश को प्रवचन रूप में संबोधित किया जाता है।

वचन और प्रवचन में अंतर है। वचन तो सभी बोलते है, अपने भावों की अभिव्यक्ति करने के लिये। वचनों का तो कोई विशेष महत्त्व नहीं है। वह एकमात्र वादित्र की भाँति ध्वनि वाचक है। जैसे वादित्र बजता है, तो लोग सामान्य रूप से सुन लेते है। पर जब घड़ी का घंटा लगता है, तब मनुष्य कितने उपयोगपूर्वक व सावधानी से सुनते है। आप निर्णय करिये कि महत्त्व वादित्र की आवाज का है या घड़ी के टणकारे का। इसी प्रकार वचन तो वादित्र की तरह है और प्रवचन घड़ी के टणकारे की भाँति।

एक न्यायाधीश जो परिवार मे रहकर नन्हें-नन्हें बच्चों के साथ बात करता है, तब जो वचन वह बोलता है उसका इतना महत्त्व नही होता है। लेकिन वही न्यायाधीश जब न्याय की कुर्सी पर बैठकर न्याय देता है, तब लोग कितने ध्यानपूर्वक सुनते है। उन वचनों का कितना अधिक महत्त्व होता है। इसी प्रकार भगवान् के वचन जो प्रवचन रूप है वे बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रभु के प्रवचन का जितना-जितना रहस्य सामने आता है, उतनी-उतनी मुमुक्षु आत्माएँ आह्लादित होकर उसमें अवगाहन करने को उत्सुक रहती है। वर्तमान में अनेक पुस्तके निकल रही है, पर उनका उतना महत्त्व नही है, जितना संसार में घट रही घटनाओं का है, जिन्हे देखकर, सुनकर या पढ़कर उसका असर उन देखने, सुनने व पढ़ने वालों के जीवन में पड़ता है। उसका महत्त्व विशेष है। वीतराग प्रवचन का महत्त्व, कथन की अपेक्षा अनुभव से अधिक किया व जाना जा सकता है।

यह चैतन्य आत्मा जब निर्विकार बनकर अर्थ से परिपूर्ण शब्दों को निसृत करती है, तब उसमें गूढ़तम रहस्य परिपूरित रहता है। पर जो सांसारिक मनुष्य है, वे सभी प्रवचन का श्रवण नहीं कर सकते हैं। जो श्रवण करते है, वे भी सिर्फ कर्णो से, सभी हृदय से नही सुनते। ऐसे व्यक्ति उसका कुछ भी महत्त्व नहीं जान सकते है। पर जो हृदय से श्रवण करते है, वे ही इस वीतराग प्ररूपित प्रवचन के महत्त्व का मूल्यांकन कर सकते है तथा उससे प्रभावित होते है। जो व्यक्ति प्रतिदिन प्रवचन सुनते है उनको देखा जाता है कि असर कम रहता है। किन्तु जो कभी-कभी प्रवचन सुनते है उनमे कभी चमत्कारिक असर देखने को मिलता है। इससे यह मतलब नही कि प्रतिदिन प्रवचन न सुना जाये। सुनने से यत्किंचित् निर्जरा तो होती ही है। पर जैसे नगारे की आवाज को सुनने वाला मन्दिर का कबूतर बिल्कुल नही घबराता और उसी थोड़ी सी आवाज से जंगल का कबूतर उड़ जाता है। ठीक वैसे ही मन्दिर के कबूतरों की तरह के श्रोताओं के जीवन में परिवर्तन नही होता है, किन्तु जंगल के कबूतरों की तरह के व्यक्ति जो कभी-कभी सुनने वाले है, उनमें विशेष परिवर्तन देखा जाता है। जिनवाणी तो विस्तृत और व्यापक है। उस सब की बात तो जाने दीजिये। सिर्फ एक छोटा सा नवकार मंत्र जिसमें अनन्तानन्त तीर्थकरों की वाणी का सार है यदि सच्चे श्रद्धान के साथ उसके अर्थ का अनुसधान किया जाये तो मालूम होगा कि यह मंत्र कितना गूढ़ है, रहस्यमय एवं चमत्कारी मंत्र है तथा अन्यों को बहुत प्रभावित करने वाला है।

मेरी अनुभवगम्य बात है—स्वर्गीय गुरुदेव ने मुझे करोली गाॅव फरसने के लिये भेजा। आज्ञा प्राप्त कर मैने तीन संतो के साथ विहार किया। आहार, पानी दो कोस तक ही चलता (ले जा सकते) है। अतः आहार पानी करके आगे बढ़े तो आधा घटा ही दिन अवशेष था। अत: गाँव के बाहर पंचायत भवन जो प्रासुक था, उसकी एक व्यक्ति से आज्ञा मांगी तो उसने कहा कि मैं तो हरिजन हूॅ, अतः आप यहां नही ठहर सकेंगे। पर जब उसको बताया गया कि इसमे हमे कोई बाधा नही है। क्योंकि यह पंचायती मकान है। तब उसने आज्ञा दे दी। और हम सब वही ठहर गये। कुछ समय के बाद उसको जिज्ञासा हुई और उसने पूछा कि आपके धर्म का मंत्र क्या है। तब उस व्यक्ति को नवकार मन्त्र का स्वरूप बताया तो वह बड़ा प्रभावित हुआ। और कहने लगा कि हमने तो जैन धर्म की निन्दा ही निन्दा सुनी है। किन्तु आज आपसे मालूम हुआ कि दुनिया को वास्तविक शान्ति प्रदान करने वाला, यह नवकार मंत्र ही है। हमें ऐसे ही धर्म की आवश्यकता है। इस विषयक मुझे और भी आप ज्ञान प्रदान करियेगा। तब प्रतिक्रमण करने के बाद बहुत सारे भाइयों को लेकर वहां आया। उन सबको मैंने नवकार मन्त्र, अर्थ सहित सुनाया। उससे सभी प्रभावित हुए

और पाँव छूने की अनुमति माँगी । तब मैंने कहा कि वैसे तो मैं इसे महत्त्वपूर्ण नही मानता । फिर भी छूना चाहो तो मना नही है । तब उन्होंने हर्ष के साथ पैर छूए और चले गये । सबके चले जाने के बाद वह हरिजन पुनः आया और अपनी वस्तु स्थिति बताने लगा । महाराज मैं ७०० गाँव के हरिजनों का मुखिया अर्थात् अध्यक्ष हूँ । मैने आज ही इतना महिमामय मंत्र सुना है । मुझे आप ऐसा धर्म बताओ कि मैं भी आपके चरणों में समर्पित हो जाऊँ । मेरा आपको इतना-सा कहना है कि आप मेरे अधीनस्थ सभी हरिजन भाइयों को यह उपदेश देवे और जो आपके समाज के मुखिया है, उन्हें भी समझावें कि वे हमसे छुआछूत नही करें । मानवता के नाते मानव रूप में हमारा सत्कार करें, अपमान नही। उसके ७०० गाँव जिसमे उनके जाति भाई रहते थे वहां तो मै गुरु आज्ञा बिना नहीं पहुँच सका, उन्हे उपदेश नही दे सका पर वह भाई इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने जीवन को सुसंस्कारित बना लिया ।

सज्जनो ! सुख की मृगतृष्णा में दौड़ने वाले लोगों की सुख पाने की समस्या का एक ही समाधान होगा कि वे जैनत्व का सही स्वरूप समझें । जो भौतिकता के रंग में ही अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे है उसे अध्यात्म में लगावें । यह तो स्पष्ट है कि यदि परम शाति के महाद्वार में प्रवेश करना है तो वह इसी जैन दर्शन के द्वार से ही होगा । अतः इसे समझिये । जैन धर्म में प्रवेश करने के लिए सम्यक्-दर्शन सबसे पहले आना आवश्यक है । यदि सम्यक्त्व अवस्था के साथ समतापूर्वक जो व्यक्ति चलता है तो वह अपने जीवन में चमत्कारिक सुखद परिवर्तन ला सकता है ।

जितने भी वर्तमान में जैनी है वे यदि सम्यक्त्व के आचारों को जीवन में स्थान देकर चलने लगे तो आज भी जैनियों की संख्या बढ़ सकती है । जो वीतराग वाणी के प्रवचनों पर अटल आस्था रखता है, वह सम्यग्दर्शनी है । उसके आठ आचार है । उसमें अन्तिम आठवां आचार है **प्रभावना ।**

प्रवचन प्रभावना कैसे हो ? जैन शासन की प्रभावना अनेक प्रकार से की जा सकती है । दान देकर, सेवा करके, उपदेश देकर आदि अनेक प्रकार से प्रभावना का प्रसंग उपस्थित किया जा सकता है । प्रत्येक धार्मिक वृत्ति वालों को स्वाध्यायादि के माध्यम से भगवान् के प्रवचन का बोध देना भी प्रभावना है । एक प्रसंग है । भोपाल में डेढ़ सौ घर पक्के स्थानकवासी के थे । वहाँ जब मै गया तब मौढ जाति के अन्य बहुत से लोग व्याख्यान में आये । कुछ दिनों वाद जब मै दोपहर में बैठा था, तव उन मौढ़ जाति का मुखिया भगवानदास कहने लगा कि मैं जल रहा हूँ ? तव मैंने पूछा कि यह तुम क्या कह रहे हो । तव उसने कहा —आप स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. के शिष्य हो । आप धर्म का प्रचार करने के लिये आये हो, आपका व आपके परिवार साधु समुदाय का

जीवन तो बड़ा ही शुद्ध निर्मल एवं पवित्र है। पर एक वार पहले भी मैंने देखा कि कुछ संत धर्म प्रचार करने हेतु आये थे वे माइक में बोलते थे, तथा वहनों से विना पुरुष की साक्षी से घण्टों बातें करते रहते, यही नही उन्हें जरा भी अपनी साधु मर्यादा का ख्याल नहीं था। मैने देखा वे एक वार एक वहिन के कंधे पर हाथ रख कर खड़े थे। सिनेमा हॉल में भी उन्हें पकड़ा। मै उनके विपय में क्या कुछ कहूँ। गुरुदेव, ऐसे साधुओं को देखकर विचार आता है, कि लोगों की धर्म के प्रति कैसे श्रद्धा बने। धर्म प्रचार के नाम पर साधु-मर्यादाएं क्यों तोड़ी जा रही है। उस साधु के इस आचरण को देखकर हमने स्थानकवासी धर्म ही छोड दिया। और जो स्थानक बनाया हुआ है, उसमे यज्ञादि कार्य करने लगे है। अब हम आपके जीवन से अत्यन्त प्रभावित है! आप वहां पधारिये, प्रवचन फरमाइये। हमें नया दिशा निर्देश दीजिये। मै उनकी भावना को देखकर वहां गया। दो प्रवचन भी दिये। उन्होंने और रुकने के लिये आग्रह किया पर कल्प की स्थिति पूर्ण हो जाने से आगे रुकने की स्थिति नही बनी। कल्प तोड़ कर धर्म प्रचार करने से भी एक के बाद एक मर्यादा टूटती जाती है। अतः मैने विहार कर दिया। रास्ते में जब उन्होंने मांगलिक सुनी तब वे बोले—गुरुदेव ! पहले मैने अमोलक ऋषिजी का जमाना देखा था। वे अच्छे थे। और अब आपको उसी रूप में देख रहा हूँ।

बन्धुओ ! उस एक साधु के गलत आचरण से उन सभी घरों की धर्म के प्रति श्रद्धा विचलित हो गई। प्रभावना की जगह और हानि का प्रसंग आ गया। एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। वैसे ही उस एक साधु के गलत आचरण से पूरी साधु समाज बदनाम हो गई।

[आचार्य प्रवर का कल्प पूर्ण हो चुका था। यानि २९ दिन तक उन्होने साधु मर्यादा का परीक्षण कर उसके बाद वे बोले थे कि आपका जीवन कितना पवित्र है। यह हमने प्रत्यक्ष देखा है।—सम्पादक]

आप लोग धर्म का दिव्य स्वरूप समझें। धर्म से विचलित नही बने। वन्धुओं ! ऐसी स्थिति में प्रवचन की प्रभावना कैसे क्या हो सकती है। क्योंकि जवकि साधु स्वयं बहुरूपियों की चर्या अपना कर चलता है। समुद्र में ही तूफान आ जाये तो प्रलय होगा ही। वैसे ही साधु जीवन ही दूषित हो जाये तो फिर जिन शासन की प्रभावना कैसे हो सकती है। मेरा तो आप सभी से यही कहना है कि आज के युग मे यह आवश्यक है कि अगर आप महावीर के सच्चे भक्त है और जिन शासन की प्रभावना करना चाहते है तो साधु-साध्वी के जीवन को पवित्र वनाने में सहयोग दे। यह जिनशासन की सर्वोत्कृष्ट प्रभावना होगी। क्योंकि आप साधुओ के जीवन को पवित्र रखेंगे तो सारा जैन संघ पवित्र रहेगा। यदि साधुओ के जीवन को दूपित करने का प्रयास किया गया, उन्हे गिरने में

सहयोग दिया गया, जैसे कि—आप तो वहुत विद्वान हो गये हैं आप यह क्रिया छोड़िये। लाउडस्पीकर में बोलिये, प्लेन में यात्रा करिये, रात्रि में बहनों के सामने प्रवचन दीजिये। भोजन हम वना के दे देते है। पानी के लिये भी क्या परहेज करना है। सामान आदि उठाने की क्या जरूरत है। हम आपके साथ भाई रख देते है। वह सामान उठा लेगा आदि बातें करके यदि साधु-साध्वियों को इस पवित्र संस्कृति से नीचे गिराने का प्रयास किया गया तो यह प्रभु महावीर की एवं जिनशासन की बहुत बड़ी कुप्रभावना होगी। बहुत बड़ा जघन्य अपराध होगा। आप लोग यदि जिनशासन की प्रभावना नही कर सकते तो कम से कम ऐसी कुप्रभावना से तो परहेज रखिये। संत जब अपनी मर्यादा में रहकर वीतराग के प्रवचन से जनता को प्रतिबोधित करें, तो कभी भी जैनी स्वयं श्रद्धा से विचलित नही हो सकते है। यही नही अन्य भी कई जैनेतर जैनी बन सकते है। एक बार का प्रसंग है। देशनोक के भूराजी जब रायपुर चातुर्मास में दर्शनार्थ आ रहे थे। रास्ते मे जव रेल में बैठे हुए थे उसी ट्रेन मे अन्य-अन्य प्रान्तों के बड़े-बडे राजकर्मचारी भी बैठे हुए थे। उन्होंने पूछा कि तुम कहां जा रहे हो? उन्होंने कहा कि मै अपने गुरु के दर्शनार्थ जा रहा हूँ। उन्होंने जिज्ञासा की कि तुम्हारे गुरु का क्या स्वरूप है, वे कैसे रहते है, क्या पहनते है, क्या खाते है? जब उन्होने अपने गुरु की संयमी मर्यादाओ का परिचय दिया तो उन्होंने आश्चर्य करते हुए पूछा—क्या ऐसी स्थिति मे भी तुम्हारे गुरु जीवित है? तब उन्होंने कहा कि जीवित है तभी तो मै दर्शन करने के लिए जा रहा हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि संयमनिष्ठ साधु जीवन, अतीव महत्त्वपूर्ण जीवन है। अतः उसे मर्यादाओं में सुरक्षित रखा जाये, कारण कि मर्यादाओ को सुरक्षित रखकर ही प्रवचन प्रभावना सम्यक् रूपेण हो सकती है। आपने कपिल केवली का नाम सुना होगा। श्रावस्ती नगरी के जंगल में ५०० चोर थे। उनको प्रतिबोध देने के लिये वे कपिल केवली वहाँ पहुँचे। पर चोर क्या जानें कि ये केवली है। केवली ही केवली को जान सकता है। गौतम स्वामी को प्रभु महावीर ने कहा कि हे गौतम! तुम्हें जिन नही दिखते है। क्योकि छद्मस्थ जिन को नही देख सकता है। सिर्फ अनुमान से जान सकता है। जैसा कि उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन में वताया गया है।

"न हुजिणे अज्जदीसइ, बहुमए दीसई मग्गदीसए।"

चोर केवली प्रभु को नहीं समझ पाये और उन्हें दण्डित करने लगे, यातनाएँ पहुँचाने लगे। तव चोरों का सरदार जो अनुभवी था वह उनके तेजोमय प्रशान्त मुखमण्डल की दिव्य आभा को देखकर कहने लगा—रुको! इन्हे मत मारो, ये महान् विभूति है। इनसे कुछ सुनो। तब कपिल केवली ने उत्तराध्ययन सूत्र का आठवां अध्ययन सुनाया। उस अध्ययन की गाथाओं का अर्थ गीत रूप

में श्रवण कर ५०० ही चोर प्रतिबोधित हो गए। यह है प्रवचन की प्रभावना ।

प्रभावना करने के अन्य भी कई तरीके है । जैसे तपस्या भी प्रवचन प्रभावना का अंग है । पर यह विचारना कि तपस्या मे हमारी कोई इहलोक-परलोक और काम भोग आदि के हेतु भौतिक ऐश्वर्य की कामना तो नहीं बनी हुई है । जो तपस्या सिर्फ आत्म-शुद्धि हेतु प्रशस्त कर्म-निर्जरा का ख्याल करके की जाती है, उसी तपस्या से प्रवचन की सम्यक् रूपेण प्रभावना हो सकती है । जो तपस्वी का गुणानुवाद करता है । वह भी प्रवचन की प्रभावना करता है ।

वीतराग वाणी का अद्‌भुत ही प्रभाव है कि तपोवन में आत्मार्थी आत्माएँ निरन्तर आगे बढ़ती है । तप का कोई कम महत्त्व नहीं है । आत्म-शुद्धि के साथ-साथ स्वास्थ्य लाभ में भी तप अतीव महत्त्व रखता है । ' प्राकृतिक चिकित्सा वाले गर्म पानी के आधार से ४०-४० दिन के उपवास कराते है । सुना है एक व्यक्ति जिसका सारा शरीर इजेक्शनों से बीध गया था, उसकी जब प्राकृतिक चिकित्सा की गई, गर्म पानी के आधार पर उपवास कराये गये तब तेरहवें दिन ही उसके शरीर का विकार मल द्वार से बाहर निकल गया और ४०वें दिन वह एकदम स्वस्थ हो गया । यह है तप का प्रभाव जो कि जैन धर्म में जैन आगमों में विविध भाँति से दर्शाया है ।

संथारा यह भी एक प्रवचन-प्रभावना का विषय है । उनका गुणानुवाद भी प्रवचन की प्रभावना का विषय है । अभी-अभी आपने सुना कि भीनासर में सरल स्वभाविनी महासती श्री वल्लभ कंवर जी के संथारे का ६७वाँ दिन चल रहा है। जीवन-मरण के क्षेत्र में, दृढता एवं साहस के साथ आगे बढ़ना कोई मामूली बात नही है। महासती जी ने आत्म बल का सराहनीय परिचय दिया है। बहुत वर्ष पहले इसी सम्प्रदाय में स्वर्गीय महासती श्री सरदार कँवरजी म० सा० के ६२ दिन का संथारा आया था । उसके पहले और अब तक ६७ दिन का सथारा सुनने को नहीवत् मिला । फिर महासती ने २-३ दिन से तो चौविहार का भी प्रत्याख्यान कर लिया है । अर्थात् पानी भी छोड़ दिया है। यह दृढ़ता भी एक तरह से शासन की अपूर्व प्रभावना है ।

शास्त्र के गूढ रहस्य को प्रकट करने से भी प्रवचन की प्रभावना होती है । शास्त्रीय मर्यादानुसार व्याख्यान देना यह भी महान् निर्जरा का काम है । प्रवचन प्रभावना है ।

निष्कर्ष यह है कि हम इस प्रकार प्रवचन प्रभावना के विविध आयामों का सम्यक् रूपेण ज्ञान करें और यथाशक्ति उन आयामों को जीवन में स्थान देकर प्रवचन की प्रभावना करें। विशाल, व्यापक जैन धर्म की उन्नति करें। जैन धर्म के गुणों को दिपावें। ज्यादा कुछ नहीं बन सके तो धर्म-दलाली करें। कृष्ण वासुदेव व श्रेणिक राजा की तरह। सम्यक्त्व के आठों आचारों का दिव्य मगलमय जो स्वरूप है उसे समझ कर जो भी भव्य मुमुक्षु आत्मा अपनी सम्यक्त्व की भूमिका को उत्तरोत्तर निर्मल बनायेगी, उसका कल्याण सुनिश्चित रूप से होगा। इन्ही मगलमय भावों के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२२-७-८५
सोमवार

• □ •

२३ आराधना और प्रभावना

परम पिता परमात्मा, परम स्वरूप को संप्राप्त, वीतराग देव ने भव्यात्माओं के लिये जो उपदेश दिया, उस उपदेश में समत्व रूप आत्म हित की बात बतलाई है।

भगवती सूत्र के शतक आठवें में आराधना का प्रकरण आया है। महाप्रभु से गौतम स्वामी ने पूछा कि—

> कतिविहाणं भते। आराहणा पण्णत्ता ? गोयम्मा।
> तिविहा आराहणा पण्णत्ता तंजहा-नाणाराहणा,
> दंसणाराहणा, चरित्ताराहणा।

भगवन्! आराधना कितने प्रकार की कही गई है? तब महाप्रभु ने फरमाया—गौतम! भगवती सूत्र $\frac{5}{10}$ में आराधना तीन प्रकार की कही गई है। ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चारित्राराधना।

"आराध्यते इति आराधना" सामान्य रूप से आराधना का तात्पर्य है, किसी की उपासना करना। अर्थात् उसी के साथ मनसा, वाचा, कर्मणा संयुक्त हो जाना आराधना है। जीवन में जो सौम्य भावनायें बनती है उन्हें ही आचरण की भूमिका पर जब उतारा जाता है, तब वे ही भावनायें उस जीवन की महत्त्वपूर्ण आराधना बन जाती है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना को एकरूप कर उन्हें आराधना शब्द से संबोधित किया है।

आराधना करने वाली आत्मा है। उसके असंख्य प्रदेश है। जिसके संकोच-विस्तार को समझना भी आवश्यक है। शरीर में जब तक आत्मा है, तब तक वह शरीर सार रूप है। हाथी के शरीर मे जो आत्मा है, वही आत्मा ऐसे कर्म बांध लेती है जिससे वह हाथी का शरीर छोड़कर गाय के शरीर मे समाहित हो जाती है। हाथी के स्थूल-शरीर में जो असंख्यात आत्मप्रदेश थे, वे सभी हाथी की अपेक्षा छोटे गाय के शरीर में समाहित हो जाते है। और गाय यदि अशुभ कर्म करे तो वह चीटी के रूप में उत्पन्न होकर अपने असंख्यात आत्म-प्रदेश को उस चीटी के शरीर में समाहित कर लेती है। यही नही चीटी का जीव मरकर यदि जमीकंद में, निगोद में चला जाता है तो उसमें अपने

शरीर को अति संक्षिप्त रूप में सर्वात्म-प्रदेशों को संकुचित कर लेता है। और ऐसे निगोद मे जाकर अनन्त काल तक भी जन्म-मरण कर सकता है। जमीकद में जीवों की बहुलता बतलाने की एक प्रणाली बतलाई है कि सुई के अग्र भाग पर जमीकंद का जितना अंश आवे, उसमें असंख्यात प्रतर हैं, उन असंख्यात प्रतरों में से प्रत्येक में असंख्यात-असंख्यात श्रेणियां है, लाइने है। उन असंख्यात श्रेणियों में से प्रत्येक में असंख्यात-असंख्यात गोले हैं। उन गोलो में से प्रत्येक में असंख्यात-असंख्यात शरीर हैं, और उन शरीर में से प्रत्येक मे अनन्त-अनन्त जीव हैं। और उन जीवों के प्रत्येक के तीन-तीन शरीर हैं।

देखिये जो आत्म-प्रदेश हाथी के शरीर में व्याप्त थे, वे ही किस प्रकार निगोद आदि के शरीर में संकुचित हो जाते है। यह संकोच-विस्तार आत्म-प्रदेशों में चलता रहता है। तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवे अध्ययन में आया है कि—

"प्रदेश-संहार-विसर्गाभ्यां प्रदीपवत्"

आत्म प्रदेशों का दीपक के प्रकाश की तरह कर्मो के आवरण से संकोच विस्तार होता रहता है। अर्थात् जैसे १००० पॉवर का बल्ब हॉल में लगा हुआ है, पर उस पर एक मिट्टी का बर्तन रख दिया जाय तो जो प्रकाश सारे हॉल में फैल रहा था, वह संकुचित होकर मिट्टी के बर्तन की परिधि तक ही प्रकाश करेगा। यही स्वरूप आत्मा का है। वह जिस-शरीर को प्राप्त करती है। उसी शरीर के अनुरूप अपने असंख्यात आत्म प्रदेशों का अवगाहन कर लेती है।

यह विषय विस्तार की अपेक्षा रखता हैं, अतः फिलहाल तो सकेत ही कर रहा हूँ। शुभाशुभ कर्म करने में आत्मा स्वतंत्र है, पर कर्म करने के बाद जब अशुभकर्म का उपभोग होता है तब वही दुःखी हो जाती है। दुःख को प्राप्त होती हुई अगर वह सम्यक् ज्ञान की अवस्था को प्राप्त नही है तो ओर अधिक अशुभ कर्मो का बंध कर लेती है। जैसे मदिरा पीने वाले किसी भाई को मदिरा से होने वाली बेभान अवस्था का ज्ञान कराया जाय तो वह उस समय तो कह देगा कि हॉ अब मै मदिरा नहीं पीऊँगा। परन्तु वृत्ति जो चिर-काल से उसकी मदिरा पीने की बन चुकी है, उसमें वह कुछ समय बाद पुनः मदिरा पीना चालू कर देगा। उसी प्रकार मानव का भी यही हाल हो रहा है। अनादिकालीन बुरी प्रवृत्तियों में अभ्यस्त बनी आत्मा उपदेश श्रवण कर थोड़ी देर तो उन प्रवृत्तियों से विरक्त हो जाती है, पर पुनः वे ही प्रवृत्तियाँ चिर-अभ्यास होने से वापस जीवन में चालू हो जाती है। जब तक अशुभकर्मो का जबरदस्त उदय रहता है तब तक उस आत्मा को कितना ही उपदेश दिया जाय तो भी वह उपदेश उसके आचरण का विषय नहीं बन सकता। पंचेन्द्रिय अवस्था में रहकर वह यदि क्रूर कर्म करे तो नारकी में भी जा सकती है। श्रोता

बन कर व्याख्यान श्रवण कर लेना, ज्ञान हासिल कर लेना और बात है तथा उस ज्ञान को आचरण की भूमि पर उतारना, ज्ञान की आराधना करना और बात है। कर्मो की वृत्तियाँ वैभाविक है। उन्हें आत्मा से अपुनर्भाव से अलग किया जा सकता है। आवश्यकता है प्रकृष्ट सत्पुरुपार्थ की।

भगवती सूत्र में जो तीन आराधना बताई गई है, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र के रूप मे है। सम्यक्त्व के आठ आचार जो आपने श्रवण किये है, उसमें अंतिम आचार है, प्रभावना। प्रभावना प्रवचन की भी होती है। प्रभावना तप कीभी होती है। प्रभावना आचरण की भी होती है। जो मनुष्य अपना सुन्दर आचरण रखता है। उसकी प्रतिष्ठा ऐसी जम जाती है कि जिससे वर्तमान मे किसी प्रकार की कोई कष्ट की स्थिति जीवन में नही आ सकती भले ही प्रारम्भिक अवस्था में उसे कष्टों से संघर्ष भी करना पडे, पर अपनी सत्यनिष्ठा पर जो दृढ रहता है वह कष्ट से अपने अशुभ कर्मो को निर्जरित कर समुज्ज्वल भविष्य के कगार पर आकर खड़ा हो जाता है, उससे स्वयं का जीवन तो सौम्य बनता ही है, अन्यों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। धर्म प्रभावना का, वह व्यक्ति एक महत्त्वपूर्ण अंग बन जाता है।

एक समय का प्रसग है—ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा०, जब प्रतापगढ में विराजमान् थे। तब पूज्य गुरुदेव ने फरमाया कि जो मनुष्य सत्यनिष्ठा रखते है उनके प्रति सभी विश्वास रखते है। उनकी प्रतिष्ठा का प्रसंग बनता है, कि उन्हे कभी आर्थिक आदि सकटों का भी मुकाबला नही करना पड़ता। यह बात श्रवण कर एक सेठ साहब जो बड़े भव्यात्मा एवं हलुकर्मी थे उन्होंने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा ले ली और व्यापार की स्थिति से उनके जो कपड़े की दुकान थी, वे उस दुकान में बड़ी सत्यनिष्ठा के साथ अपना व्यापार चलाने लगे। अपने ग्राहकों को कहने लगे कि इस कपड़े की कीमत १ रुपये है, और १ आना मै मुनाफा का लेता हूँ। तब ग्राहक की आदत होती है कीमत कम कराने की तो वहाँ अब गुंजाइश ही नही रही। अतः वे अपनी बताई हुई कीमत पर ही अटल रहते। ऐसा करने से १ साल तक उनका व्यापार एकदम वन्द सा रहा, पर वे अपनी सत्यनिष्ठा से विचलित नहीं हुए। उनकी सत्यनिष्ठा पर ग्राहकों पर स्वतः ही ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे ग्राहक जो दूसरी दुकानों पर उन्ही कपडों की वढी चढ़ी कीमत श्रवणकर विचार करने लगे, कि इससे तो उस सेठ की दुकान पर कम कीमत में ये ही कपडे मिल रहे है। सभी ग्राहक पुनः उनकी दुकान पर आने लगे और खरीद-दारी शुरू करने लगे। ग्राहक पूछने लगे कि तुम अपनी एक कीमत पर कैसे स्थिर हो, वाजार मे तो वहुत भाव वढ़ गया है। तव सेठ ने कहा—कि मैंने जितने रुपये मे यह कपडा खरीदा है, तदनुसार १ रुपये पर १ आना मुनाफा के हिसाव मे ही वेचूंगा, अतः मेरे यहाँ कीमत मे उतार-चढाव नही है। मैने सत्य वोलने

की प्रतिज्ञा की है, उस पर दृढ हूँ, यह श्रवण कर सभी ग्राहक इतने प्रमुदित हुए कि सभी कपड़ा वही से लेने लगे। अपने सम्बन्धी दूसरे लोगों को भी कहने लगे कि अमुक सेठ सा० की दुकान प्रमाणित है, तब और भी लोग वहीं पर ही पहुँचने लगे। बाजार की अन्य सभी कपड़े की दुकानों में व्यापार ठंडा पड़ गया, और उसकी दुकान पर ग्राहकों की सख्या इतनी अधिक बढती गई कि उसका व्यापार बहुत सुन्दर रीति से चलने लगा। यही नही, सभी ग्राहक लोग उसकी सत्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। अहो जैन धर्म के अनुगामी सेठ सा० का जीवन कितना सत्यनिष्ठ है। इस प्रकार जैन जैनेतर सभी में उसके सौम्य सत्यनिष्ठ आचरण से जैन धर्म की बहुत अधिक प्रभावना हुई। आज बहुत से लोग पतासा, शक्कर इत्यादि बांटकर प्रभावना करने की भावना रखते हैं, पर विचार करिये कि उस प्रभावना का उतना मूल्य नही है, जितना कि यदि वे ज्ञान की प्रभावना करे, दर्शन की प्रभावना करे।

जैन धर्म की प्रभावना करने वाले बहुत से ऐसे सुज्ञ लोग है, जो दहेज में भी अन्य-अन्य भौतिक पदार्थ न देकर शास्त्र, प्रवचन की पुस्तके आदि साहित्य देते है और धर्म की प्रभावना करते है। दान, शील, तप, ब्रह्मचर्य, भद्रिक स्वभाव, मधुर भाषीता बनने से भी स्वयं आत्मा की शुद्धि के साथ जैन धर्म की भी प्रभावना होती है। क्योकि आत्मीय गुणों के प्रकाशन से उसका प्रभाव सार्धमियों पर पड़ता है। पर खेद होता है कि आज दिखावा इतना आ चुका है, कि प्रशंसा के भूखे प्रभावना तो बांटते हैं, पर जहाँ कोई सार्धर्मी की सहायता का प्रसंग सामने आता है तो बहुत विरले ही उसमें सहयोग प्रदान करते है। आज के धनाढ्य व्यक्ति शादी विवाह आदि प्रसंगों पर हजारों रुपयो के उपहार दे देंगे। इन संसारी चीजों से मोह ही बढ़ता है, जो दूसरों को भी कर्मो का बन्ध करवाते हैं। किन्तु जो सत्साहित्य कर्म निर्जरा का, आत्म-शुद्धि और पुण्यार्जन का हेतु है, उससे धर्म की प्रभावना नहीवत् करेंगे।

भव्यात्माओ! आप महाप्रभु महावीर के उपासक हैं, तो जरा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म की प्रभावना करना सीखिये, केवल वाह-वाही, यशलिप्सा एव सासारिक प्रपचों मे ही रह गए तो आत्म-शुद्धि होने वाली नहीं है। बिना आत्म-शुद्धि के परमात्मा रूप प्रगट नहीं हो सकता। अतः प्रभावना की विविध विधाओ पर ध्यान रखते हुए, यथाशक्ति आचरण की परिधि में उन्हें उतारेंगे तो आपका जीवन धन्य बनेगा। इसी भावना के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२३-७-८५
मंगलवार

२४ स्नात करें आत्मा को ज्ञानालोक से

इस काल चक्र में चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों ने इस भू-धरातल को पावन किया था। तीर्थंकर केवल-ज्ञान-दर्शन से युक्त होने के बाद समान शक्ति के धारक हो जाते है, फिर उनमे कोई अन्तर नही रहता, शक्ति में कोई न्यूनता नही होती। उनमें एक समान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द एवं सुख शक्तियाँ होती है। तीर्थंकर देव के वाणी रस को अलग-अलग तरीके से कवि अपनी कविता के माध्यम से अनुगु जित करते है।

यह तो बतला दिया गया है कि आत्म-प्रदेशो में संकोच और विस्तार होता है, दीपक के प्रकाश के समान। जब जीव चरम शरीरी बनता है, जिस शरीर से उसे मोक्ष जाना होता है उस शरीर में मरण अवस्था में दो तिहाई भाग में आत्म-प्रदेश घनीभूत हो जाते है, जो कि सारे शरीर में फैले रहते थे। शैलेशीकरण में आत्म प्रदेश शरीर के प्रत्येक हिस्से से निकल कर पोलार भाग में इकट्ठे होने के बाद शैलेशीकरण की अवस्था में आ जाते है। शैलपर्वत को कहते है, जो कभी डिगता नही, विचलित, कम्पित नही होता, मानलो कदाचित् पर्वत तूफान से प्रकम्पित हो भी जाय, क्योंकि तीर्थंकर महावीर के जन्म के समय उत्सव मनाने के लिये उनको मेरु पर्वत पर ले गये थे। इन्द्र, भगवान् की छोटी काया देखकर चिन्तित हो गये थे, कि इतना अभिषेक किस प्रकार सहन करेंगे। पर भगवान् को तो जन्म से ही अवधिज्ञान था, जिससे उन्होंने इन्द्र की शंका को जानकर निवारण के लिये पैर के अंगूठे से पर्वत को हिला दिया, यह जानकर सभी आश्चर्य में डूब गये। प्रसन्नता का पार न रहा, इससे तीर्थंकर की शक्ति का पता चला। इन्द्र की शंका का समाधान हो गया, इतनी शक्ति के धारक तीर्थंकर जब अन्तिम भव मे शैलीशीभूत बने, तब दुनिया मे किसी के पास ताकत नही है कि उनके आत्म-प्रदेशो को हिला सके, कम्पित कर सके। ऐसी निष्प्रकम्प आत्मा, अन्त मे निर्वाण को प्राप्त कर लेती है, जहाँ जाने पर वह उसी रूप में अनन्त काल तक रहती हुई शाश्वत सुख का अनुभव करती रहती है।

शाश्वत सुख की अनुभूति उपलब्धि के लिये सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यक् ज्ञानाराधनादि का प्रसंग चल रहा है। यह चिन्तन का विषय है, कि आराधना का अन्तिम फल क्या होगा? तो सभी यही कहेंगे कि मोक्ष। परन्तु

उससे पहले हमारे आत्म प्रदेशों में, मन में जो चंचलता है, मन बाहर की ओर भाग रहा है, आत्म प्रदेश ऊँचे से नीचे-नीचे से ऊपर की ओर भाग रहे हैं, जिस प्रकार कडाई में उबलता हुआ तेल नीचे से ऊपर-ऊपर से नीचे की ओर जाता है, उसी प्रकार मस्तिष्क के आत्म-प्रदेश पैरों की ओर और पैरों के आत्म-प्रदेश मस्तिष्क की ओर चलते रहते है।

जिसका कारण है—आठ कर्म और इनके पैदा होने में निमित्त तीन मन, वचन, काया की अप्रशस्त प्रवृत्ति। सबसे पहले जिन कारणों से कर्म बंधते है, उन्हें रोको, बाहर से लगता है कि शरीर पाप कर्म कर रहा है, पर यह मालूम है कि वह स्वत: कुछ भी नही करता है, उससे करवाया जा रहा है, वह तो आज्ञा का पालक है। विचार करना है कि भावना कहाँ पैदा होती है मन में, मस्तिष्क में ? शरीर को तो जैसी आज्ञा होती है, तदनुसार उसमे हलचल हो जाती है। वैसे लोग कहते है कि शरीर चल कर आया, पर वास्तव में मन चलकर आया है। शरीर तो मन का वाहन है, आप कहते है कि कार आ गई पर क्या वास्तव में कार चलकर आ सकती है। नही, कार तो आप चला रहे है, आप ड्राइवर है, वह तो साधन मात्र है। वैसे ही आत्मा की कार शरीर है एवं ड्राइवर मन है, वही कार को चलाता है। मन भी अकेला कुछ नहीं करता, वह भी आत्मा के साथ जुडा हुआ है, शरीर से कर्म होता है, वह मन कराता है और मन को भी आत्मा कर्म कराती है, यह सांकल जुड़ी हुई है, उसको ठीक करने के लिए जीवन को समझने का प्रसंग है, पर किस प्रकार ? सम्यग्ज्ञान से ज्ञान के बाधक तत्त्वों को रोकने का प्रसग है, मनुष्य अन्दर आने की कोशिश करता है पर दरवाजा बन्द है तो जब तक वह दरवाजा बन्द होने का कारण एवं उसको खोलने का पुरुषार्थ नही करेगा, तब तक वह न तो भीतर जा सकेगा न बाहर आ सकेगा, ज्ञान तो प्रकट होने की कोशिश करता है, पर रास्ता बन्द है, क्योंकि दिवार का अवरोध है, पूर्व जन्म के ज्ञानावरणीयादि कर्मो ने आकर ज्ञान को आवृत्त कर दिया है, वे हटे तभी ज्ञान प्रकट हो सकता है। ज्ञान को प्रकट करने के लिये यह जान ले कि इसके बाधक कारण क्या है, और उन्हे कैसे दूर किया जाय ? सम्यक्ज्ञान के जो आचार है, उन्हे जानना आवश्यक है। तभी हम कर्मो के आश्रव को रोककर वद्ध कर्म का आवरण हटा पायेगे। ज्ञानावरणीय कर्म, आयु कर्म वाधना मनुष्य के हाथ की बात है, और वह उसे तोड़ भी सकता है, पर अज्ञान अंधकार मे रहकर नही।

एक रूपक है कि एक व्यक्ति आँखो से देख सकता है, पर वह कमरे मे जाकर द्वार वंद कर दे, और विस्तर पर रजाई ओढ़कर सो जाय और फिर विचार करे कि मैं देखूं तो क्या वह देख सकेगा ? चाहे आँखे खुली हो या वद, आगे रजाई का आवरण है। वहाँ वह देखने की कोशिश भी करे और रजाई को भी ओढे तो कभी भी देख नही सकेगा, जव तक रजाई नही हटेगी तव तक नही

देख सकता, यदि रजाई हटाकर दरवाजा खोलकर बाहर आ जाएगा तभी प्रकाश देख सकेगा। प्रकाश तो है पर जब तक पर्दा नहीं हटेगा तब तक न तो बाहर जा पाएगा, और न प्रकाश के दर्शन ही हो पायेगा। इसी तरह ज्ञानावरणीय कर्म को रजाई की तरह ओढ लिया है, इसी कारण ज्ञान नही होता। इसलिये ज्ञान आवरण को रोकना चाहिये। ज्ञान, ज्ञानी पर द्वेष करने से, दुश्मनी करने से, इस प्रकार ज्ञान की ज्ञानो की आशातना करने से, ज्ञान के साधनो की तोड फोड़ करने से, ज्ञान जिनसे सिखा उनके नाम का गोपन करने से ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है। कोई माता सोचे कि उसका बालक ज्ञान नहीं करे, अतः जब वह पढने लगता है तो वह कभी किताबे छिपा देती, कभी उसे दूसरा काम सौप देती है। इस तरह वह कुछ-न-कुछ अवरोध पैदा करती है, जिससे बालक को ज्ञान न होने पाए। इस तरह वह माता ज्ञानावरणीय कर्मो का बन्ध कर लेती है। अतः जिनको ज्ञान पैदा करना है, उन्हे इन कारणों को छोड़ना चाहिये, जब ज्ञानावरणीय कर्म बन्ध जाता है तो कभी-कभी बहुत परिश्रम करने पर भी ज्ञान का उपार्जन नही हो पाता। लेकिन जब व्यक्ति सत्पुरुषार्थ के बल पर आगे बढता है तो एक-न-एक दिन साधना से संसिद्धि प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ एक साधु गाथा याद कर रहे थे जोर-जोर से। पर याद नही हो पा रही थी, तब आस-पास के लोग हँसते हुए निकल गये कि एक गाथा नही याद कर पा रहा है तो यह साधु आगे क्या करेगा, यह सुन उन्हे खेद होता, वे सोचते कि अहा! ये सब मेरी कितनी हँसी उडा रहे हैं। बहुत दु.ख करते थे, पर जब दूसरे व्यक्ति प्रशंसा करते कि अहो कितने पुरुषार्थी है। कितनी मेहनत से याद कर रहे है, तो वे अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न भी हो जाते, इस तरह निन्दा से नाराज और प्रशंसा से प्रसन्न होना, उनकी प्रवृत्ति बन गई। एक बार वे गुरुदेव के पास पहुँचे और कहा कि मै इतनी मेहनत करता हूँ, फिर भी मुझे याद नही होता। लोग मेरा उपहास करते है। गुरुदेव ने कहा कि तुमने पूर्व भव में किसी को अन्तराय दी होगी, ज्ञान के साधनो का तिरस्कार किया होगा, ज्ञानी की आशातना की होगी, ज्ञान उपार्जन करते समय किसी को सहायता नही दी होगी, जिनसे ज्ञान प्राप्त किया, उनका अपमान किया होगा, नाम का गोपन किया होगा, इसी कारण तुम्हे ज्ञान याद करने में इतनी कठिनाई हो रही है। गुरुदेव की बात सुनकर वह कहने लगा, अब वर्तमान मे क्या करूँ? तो गुरुदेव ने कहा—प्रतिज्ञा करो। किसी के भी ज्ञान अर्पण करने मे अन्तराय नही दोगे। और ज्ञानी के प्रति द्वेष भाव नही रखोगे, साथ ही प्रतिज्ञा करो कोई निन्दा करेगा तो दु.खी नही बनोगे, कोई प्रशसा करेगा तो खुश नही होवोगे। गुरुदेव ने कहा 'मा रुष मा तुप' इस समभाव का तुम आचरण अपना लो और पुरुपार्थ को अपना लो। गुरुदेव के अमृतामय उपदेश को उसने दृढता के साथ धारण किया, और उसी के अनुसार वर्तन करने लगा, मा तुप, मा रुप तो याद नही रहा, पर इतना याद रहा कि माप तुप। लेकिन इसके अर्थ को उन्होने

जीवन मे अच्छी तरह उतार लिया लोग । उनके अशुद्ध उच्चारण से हँसते भी, तो भी वे "समो निदा पसंसासु" के सिद्धान्त को जीवन मे रमा लेने से सब समभाव से सह लेते, चमत्कार हुआ महाप्रभु के एक वाक्य को जीवन मे उतार लेने मात्र से । उन साधु को केवलज्ञान, केवलदर्शन हो गया, उनके ज्ञानावरक घनघाती कर्म नष्ट हो गये, एक गाथा तो याद नही हो पाई, पर वे उसकी साधना से पूरे विश्व द्रष्टा बन गये ।

बन्धुओ ! यदि सम्यक्ज्ञान का उपार्जन कर जीवन का चरम लक्ष्य संसिद्ध करना है तो ज्ञान के आचारो का बोध आगे प्राप्त करे । ज्ञानावरणीय कर्म बंध कराने वाले वैभाविक प्रवृत्तियो से हटने का पुरुषार्थ करे । अपने आपको समभाव मे रमण करावे तो एक-न-एक दिन जीवन मे ज्ञान का अभिनव आलोक विकसित होगा, जिससे सदा-सदा के लिए अज्ञान अधकार भाग जाएगा, परिपूर्ण ज्ञानी आत्मा परिपूर्ण द्रष्टा बन जायेगी ।

ज्ञान के परिपूर्ण आवरण तोड़ने के लिए मोह को दूर करना प्रथम आवश्यक है, क्योकि मोह उसकी मूल जड है, जड मूल के साथ मोह के उखड़ते ही ज्ञानावरणीय कर्म भी नष्ट हो जायेगा ।

आत्मा ज्ञान के अलौकिक प्रकाश में स्नात हो जायेगी ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२४-७-८५
बुधवार
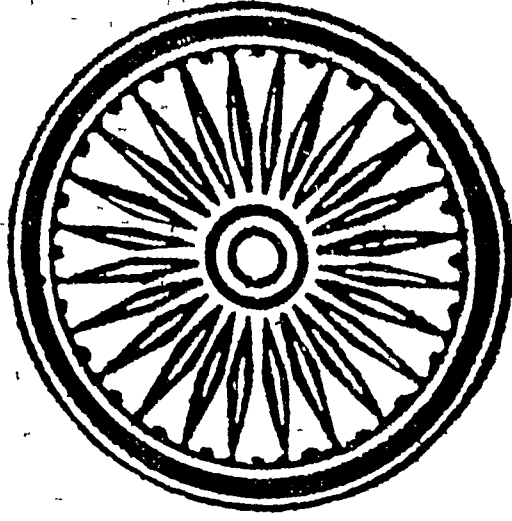
सम्यक् ज्ञान

[वैचारिक जीवन जीने की कला]

आठ आचार

- कालाचार
- विनयाचार
- बहुमानाचार
- उपधानाचार
- अनिह्नवाचार
- व्यञ्जनाचार
- अर्थाचार
- तदुभयाचार

२५ कालाचार

(सम्यक् ज्ञान का प्रथम आचार)

तीर्थंकर महापुरुषों का मनुष्य जीवन पर इतना अधिक उपकार है कि उस उपकार का प्रत्युपकार चुकाना बहुत ही कठिन है। उन्होने प्राणी मात्र पर कितनी परम कृपा दृष्टि बरसाई और सभी प्राणियों की सुरक्षा के लिये उपदेश दिया कि जो जीवन आज जी रहे है, वह जीवन शरीर पिड के साथ संसार अवस्था मे रहा हुआ है, सिद्धात्मा में एक भी शरीर नही रहता है। वर्तमान में यहाँ पर मनुष्य के औदारिक, तैजस और कार्मण तीन शरीर है।

व्यक्ति जो जीवन का निर्वाह कर रहे है, वह दो रूप में है, एक शरीर की दृष्टि से और दूसरा आत्मा की दृष्टि से अर्थात् शरीर और आत्मा की सहावस्थान स्थिति से ही यह जीवन चलता है। उसी को जीवन की संज्ञा दी जाती है, दोनों मे से एक की भी कमी हो तो उसे जीवन नहीं कहा जा सकता है। शरीर की सुरक्षा के लिये मनुष्य शरीर को भोजन देता है, उसके तीन माध्यम है, पानी, अन्न और हवा। यदि ज्ञानी है तो वह इस शरीर को ये तीनों चीजे आध्यात्मिक साधना के लिये देता है। और अज्ञानी है तो वह ये तीनों चीजें सिर्फ इहलौकिक सुख का उपभोग करने की दृष्टि से देता है। यह ज्ञानी और अज्ञानी का छोटा-सा अन्तर है। यदि शरीर को भोजन न दिया जाय तो कितने समय तक शरीर का संयोग रह सकता है। पानी के अभाव में व्यक्ति १४ दिन निकाल सकता है और ऐसा सुना है कि अन्न के बिना तो आज कई लम्बी तपश्चर्या हो ही रही है। अन्न खुराक है, पानी उसे पचाने में मददगार है और हवा प्राणों की सुरक्षा में सहायक बनती है। जिस पुरुष को यह विश्वास हो जाता है कि ये तीनो तत्त्व लेने से जीवन सुरक्षित रह सकता है, वही इन तीनों को ग्रहण करता है। जब प्यास और भूख दोनों है तो पहले वह पानी ग्रहण करेगा और बाद में अन्न। ठीक वैसे ही शरीर को खुराक देने तक ही आप सीमित न रहें, प्रत्युत जीवन के दो मुख्य अंग है, इसका ख्याल रखें।

आत्मा को खुराक देने के लिये आप क्या कुछ सोच रहे है? आत्मा की खुराक शरीर की खुराक से भिन्न है। आत्मा का पानी, आत्मा का खाद्य पदार्थ और आत्मा के लिये हवा कुछ और ही प्रकार की है। इसके लिये ही आपको वीतराग वाणी श्रवण कराई जा रही है। आत्मा की शक्ति, आत्मा का शुद्ध स्वरूप अधिक से अधिक पुष्ट अवस्था को प्राप्त होता जाय, ऐसी सुसाधना रूप

खुराक इसको नित्य-प्रतिदिन खिलाई जाय तथा सम्यग्ज्ञान रूपी पानी पिलाया जाय। साधना के साथ यदि आत्मा को सम्यक्ज्ञानरूपी पानी जब तक नही मिलेगा तब तक आत्म-साधना में निखार नही आ सकता। अतः जैसा श्रद्धान किया, उसके अनुरूप आत्मा को खुराक भी दी जाय। आत्मा को बराबर योग्य खुराक प्राप्त होती रहे, इसका ख्याल रखें।

शास्त्र जो पुस्तकों में अक्षर रूप से समाहित है ये मात्र अक्षर ही परिपूर्ण रूप से आगम नहीं है। वे तो सिर्फ निमित्त है, उन अक्षरों को पढ़कर आगमज्ञान अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञानादि प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा को आध्यात्मिक ज्ञान की खुराक देने के लिये सर्वप्रथम आगमों का अध्ययन करे। जैसे शैलड़ी के टुकड़े के भीतर ही उसका रस रहा हुआ है। ठीक वैसे ही जो यह पुस्तकों में अक्षर रूप श्रुत निहित है उसी में आध्यात्मिक आदि ज्ञान का रस भी भरा हुआ है। अतः अपने ज्ञानाचार का निर्वाह करने हेतु सर्वप्रथम अपने जीवन में स्वाध्याय की सम्यक् प्रणाली अपनाये। जो लिपि आज हमारे सामने अर्ध मागधी भाषा में निबद्ध है, वह सभी के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अर्ध मागधी भाषा को देव भाषा भी कहते है। आपको विशिष्ट श्रुतरूप ज्ञानरूपी पानी को पीने के लिये ज्ञानाचार का स्वरूप समझना अतीव आवश्यक है। उसके आठ भेद है, उसमें सर्वप्रथम भेद है **कालाचार**—जिस समय स्वाध्याय का काल है, उस समय ही स्वाध्याय करना है और जो काल स्वाध्याय का नही है, उस समय स्वाध्याय नही करना। आगमों का अध्येता, विज्ञाता स्वाध्याय-अस्वाध्याय के काल का पूरा-पूरा ख्याल रखे। शास्त्र दो तरह के है, कालिक और उत्कालिक। कालिक सूत्र की स्वाध्याय दिन के व रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर में ही की जाय और सूर्यास्त आदि के संधिकाल को सभी में छोड़ दें।

शास्त्र में वर्णन आता है कि साधु प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते थे, दूसरे प्रहर मे ध्यान, तीसरे प्रहर मे गोचरी और चौथे प्रहर में स्वाध्याय। और यही क्रम रात्रि में भी बताया है, सिर्फ तीसरे प्रहर में गोचरी की जगह निद्रा लेना कहा है। परन्तु यह कार्यक्रम हर समय लागू नही हो सकता है। क्योकि जिस क्षेत्र में गोचरी का जो काल हो, उसी काल में गोचरी करने का भी शास्त्र में विधान है। जैसे कि दशवैकालिक सूत्र के पाँचवें अध्ययन की चौथी गाथा में बतलाया है—

"कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे॥"

अतः द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से ही यह सारी शास्त्रीय विधि लागू होती है। शास्त्रकारो ने दिन के चारो प्रहरो मे से विहार करने का किसी भी प्रहर में नहीं बताया, जब कि आगमों में साधु के लिये नव कल्पी विहार का विधान है,

तो वह विहार कब करे ? अतः स्पष्ट है कि विहार के समय स्वाध्यायादि कार्यक्रम गौण करे, इस प्रकार करने से प्रकल्प मर्यादा का भी उल्लंघन नहीं होता, शास्त्र में साधक को संकेत दिया है—

"काले कालं समायरे" यह सूत्र साधक को आह्वान कर रहा है कि हे साधक ! जिस कार्य का जो समय हो, वही कार्य उस समय करना योग्य है। अर्थात् जिस क्षेत्र में गृहस्थी के घर जिस समय भोजन बनता है, उसी समय साधक गोचरी के लिये जा सकता है। कई लोग कहते हैं, कि साधु के लिये तो सिर्फ एक टाइम भोजन करने का शास्त्र में विधान है, पर उनका यह कथन सार्वकालिक नही है। शास्त्र में साधु के लिये यदि एक वक्त ही भोजन करने का विधान होता, तो भगवती सूत्र में ऐसा उल्लेख क्यों आता कि "साधु पहले प्रहर का आहार-पानी चौथे प्रहर में नही भोगें। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैसी-जैसी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से शास्त्रीय मर्यादानुसार अनुकूलता होवे, उसी प्रकार साधु अपना आहारादि कार्य करता हुआ, स्वाध्याय के काल का ध्यान रख कर स्वाध्याय करे। क्योंकि अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करने पर उस समय यदि आकाश मार्ग से देवों का गमनागमन हो रहा हो तो जो स्वाध्याय प्रेमी सम्यग्दृष्टि देव होते हैं। वे कष्ट तो नही देते है किन्तु किसी न किसी रूप मे अस्वाध्याय का संकेत करा देते हैं। पर जो मिथ्यादृष्टि देव होते हैं वे अस्वाध्याय में स्वाध्याय करने वाले पर उपद्रव भी कर सकते है।

अतः ज्ञानाचार के पहले आचार कालाचार का बोध प्राप्त कर विवेक रखना आवश्यक है।

एक महात्मा, संध्या के समय प्रतिक्रमण करने बाद आकाश को प्रतिलेखना करके स्वाध्याय करने के लिये बैठे, पर वे स्वाध्याय करते हुए इतने आत्मविभोर बन गए कि शब्द-उच्चारण रूप स्वाध्याय का काल परिपूर्ण हो गया, उसका यह ध्यान ही नही रहा अतः अकाल में भी स्वाध्याय करते रहे, उस समय एक सम्यग्दृष्टि देव जो आकाश मार्ग से जा रहा था। उसका उपयोग उस तरफ लगा और विचार किया कि यह साधु प्रशस्त भावों से स्वाध्याय तो कर रहे है, पर अस्वाध्याय काल आगया है, इनका इन्हे ध्यान नही है, कहीं मिथ्यादृष्टि देव इन पर प्रकुपित होकर कष्ट न दे, इससे पूर्व इन्हे संकेत कर देना चाहिये। यह सोचकर वह देव उन्हे प्रतिबोध देने हेतु अहीर का रूप वनाकर दही बेचने की दृष्टि से जोर-जोर से उस साधक के उपाश्रय के नीचे गुजरते हुए आवाज लगाने लगा कि दधि लो दधि लो इत्यादि। ये शब्द श्रवण कर वे साधक बीच में स्वाध्याय रोककर उस अहीर को कहने लगे-अरे अभी तो सभी लोग सोये हुए है, तुम्हारा दही कौन खरीदेगा ? इतने जोर-जोर से क्यों बोल रहे हो, क्या यह कोई अभी दही बेचने का समय है ? तब देव ने प्रत्युत्तर में कहा कि महाराज ! यह ठीक है कि अभी दही बेचने का समय तो नहीं है पर मैं आपको

पूछता हूँ कि क्या अभी स्वाध्याय करने का समय है ? यह बात सुनते ही वह साधु एकदम चौका और समय का ख्याल किया, तब उसे पता चला कि "अहो मैं अस्वाध्याय काल में भी स्वाध्याय कर रहा हूँ। मैंने कितनी बड़ी गलती कर दी।" बड़ी सरलता पूर्वक वे साधक अपनी गलती को स्वीकार करते है, और उस देव का बड़े नम्र शब्दों से आभार मानते है।

बन्धुओ ! जो सरल होता है, और सरलतापूर्वक अपनी गलती स्वीकार कर लेता है, वही अपनी आध्यात्मिक स्थिति कोसुरक्षित रख सकता है। शास्त्र मे उल्लेख आया है कि एक चक्रवर्ती महाराज छः खंड का राज्य छोड़कर मुनि बन जाय और यदि उनसे कुछ गलती हो जाय, तब उसकी अदना दासी भी यदि उन्हे प्रतिबोध देवे तो भी उनका कर्तव्य होता है कि वे अहं न करके उस दासी का उपकार मानते हुए सरलतापूर्वक अपनी ग़लती को ग़लती के रूप में स्वीकार कर प्रायश्चित, आलोचना, पश्चाताप कर ले।

बन्धुओ ! ज्ञान की प्यास शात हो सके इसके लिए ज्ञान की वास्तविक स्थिति जीवन में लाने के लिए कालाचार आदि ज्ञान के सभी आचारों का स्वरूप समझना है। कालाचार का स्वरूप सम्यक्तया समझकर शास्त्र मे जिस समय जिस आगम की स्वाध्याय करने का विधान आया है, उस समय अस्वाध्याय के सारे बोलों का ख्याल रखते हुए चिन्तन मनन पूर्वक स्वाध्याय करें तो जरूर आप आध्यात्मिक ज्ञान की खुराक आत्मा को बराबर देते हुए, आत्मिक शक्तियों को पुष्ट बना सकेंगे। इन्ही मंगलमय शुभ भावों के साथ—

मोटा उपाश्रय २५-७-८५
घाटकोपर, बम्बई गुरुवार

२६ ज्ञान हो पर अनुभूति के साथ

वीतराग देव की पवित्र वाणी का रसास्वादन भव्य मुमुक्षुजन प्रतिदिन कर रहे है, यह वाणी ही ऐसी है कि इस वाणी को यदि जीवन मे उतारने का प्रसग आ जाय तो आत्मा की जितनी भी दु.खमय अवस्थाएँ है, वे सभी समाप्त हो सकती है।

प्रत्येक संसारी आत्मा दु:ख की अनुभूतियाँ कर रही है, पर सबसे अधिक दु.ख मृत्यु के समय में होता है, मृत्यु कोई नहीं चाहता, मृत्यु का नाम सुनते ही कपकपी छूट जाती है। जन्म लेते समय भी दु ख होता है, पर वह अवस्था अबोध होने से, उस समय दु:ख की विशेष अनुभूति नहीं हो पाती है, पर मृत्यु का नाम श्रवण करते ही जो दु.खद अनुभूति होती है, वह जन्म के समय होने वाले दु.ख से बहुत अधिक है। जन्म और मृत्यु ये दोनों ही अवस्थाएँ आत्मा को, किस कारण से होती है, इस विषय मे शास्त्रकार कहते है, कि यदि तुम्हे जन्म लेने की इच्छा न हो, सदा-सदा के लिए आनन्दमय स्थिति को प्राप्त करना हो तो अन्य को जन्म मत दो, जो दूसरो को जन्म देता है, वह स्वयं जन्म ग्रहण करता है, तथा जो अन्यों को मारता है (आसक्ति पूर्वक) कषाय पूर्वक तो वह अत्यधिक जन्म-मरण की परम्परा को बढ़ाता है।

आचाराङ्ग सूत्र में कहा है कि जो मनुष्य पृथ्वीकायादि षट्काय के जीवो को मारता है, उनका हनन करता है, वह अपनी जन्म-मरण की परम्परा वढाता है। मनुष्य पृथ्वीकाय के जीवों का हनन कैसे करता है, जैसे कि उदाहरण के तौर पर समझ लो, कोई मनुष्य अपने मकान की नीव खुदवा रहा है, तो वहाँ असंख्य पृथ्वीकाय के जीवों की हिसा का प्रसंग वनता है, यदि कोई कहे कि यह कार्य तो मजदूर करता है। अत सारा पाप उसे लगेगा, पर उसका यह मानना गलत है कारण कि वह मजदूर तो लाचारीवश कर रहा है, अत: उसको कम पाप लगता है पर जो करा रहा है, आदेश दे रहा है, उसे विशेप पाप लगता है। जैसे—सेठ मुनीम से वहीखाता का काम कराता है, पर यदि कभी उसकी गलती पकड़ली जाती है तो सारा दण्ड मुनीम भोगता है या सेठ ? उत्तर होगा सेठ। इसी प्रकार नीव आप मजदूर से खुदवा रहे है, पर पाप सिर्फ मजदूर को ही नही लग रहा है, मजदूर से विशेप पाप आपको लग रहा है। पर खेद होता है. कि आज के युग में जो पंच महाव्रत-धारी साधु कहलाते है. छः काया के

रक्षक माने जाते है, उनमें भी कई छः काया के जीवों की हिसा में भाग ले रहे हैं, कई प्रसंग ऐसे सुनने में आ रहे हैं, कि साधु स्वयं नीव खोदना आदि-आदि कार्य में सक्रिय सहयोग प्रदान करते है । भले वो स्थानक बनाने का कार्य हो या फिर सार्वजनिक धर्मशाला, हॉस्पिटल, स्कूल आदि किसी भी मकान का किसी भी नाम से निर्माण कार्य हो । सभी में हिसा तो होती ही है । जिसका साधु के लिये सर्वथा त्याग होता है, वह तो अपनी सीमा में रहकर दान, शील, तप, भावना का उपदेश दे सकता है, बाकी आरम्भ-जनक कार्यो मे सहभागी बनना उसके लिए कतई अभीष्ट नही है ।

बन्धुओ ! व्याख्यान के प्रसंग से भी स्वाध्याय का प्रसग उपस्थित होता है, ज्ञानीजन कहते है कि हिसा करने वाले प्राणी भी स्वाध्याय में सलग्न बन पश्चाताप की स्थिति से अपनी असंख्य जन्म-मरण की शृंखला तोड़ सकते हैं । श्रावक सोचे कि मेरा भी वह दिन धन्य होगा, जब मै भी समस्त सांसारिक प्रपंच छोड़कर अणगार प्रवृत्ति को अंगीकार करूँगा । ऐसी भावना भाते हुए भी वे अपने कर्मो की निर्जरा कर सकते है । शास्त्रों की स्वाध्याय करने से अत्यधिक लाभ की उपलब्धि हो सकती है । जब भगवान् से पूछा गया कि स्वाध्याय करने से क्या लाभ है ? तब प्रभु ने फरमाया कि स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा होती है । उत्तराध्ययन सूत्र के २९वे अध्ययन मे बतलाया है—

"सज्झाएणं भते । जीवे कि जणयइ ?
सज्झाएणं नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ ।।"

स्वाध्याय भी दो प्रकार की है—एक तो शास्त्रीय स्वाध्याय, पुस्तक के माध्यम से की जाने वाली । दूसरी है "स्वस्मिन् अध्याय इति स्वाध्यायः" अर्थात् अपना चिन्तन करने वाली स्वाध्याय । आप शास्त्रों की स्वाध्याय करते है, इससे भी निर्जरा होती है । पर स्वाध्याय के बाद ध्यान यदि आप करते हैं तो वह ध्यानरूपी स्वाध्याय, अक्षरीय स्वाध्याय का रस लेने का एक अत्युत्तम साधन बनती है । यह एक प्रकार की अनुप्रेक्षा है, अनुप्रेक्षा का तात्पर्य गहराई से अर्थ का एवं स्वय का चिन्तन मनन करना, इससे स्वयं के जीवन की स्वाध्याय होती है । स्व के अध्याय का प्रसग उपस्थित होता है । यह स्वाध्याय का दूसरा प्रकार है ।

आप आधा घंटा पुस्तक से स्वाध्याय करे तो आधा घंटा ध्यान रूपी स्वाध्याय अवश्य करे । पुस्तकीय स्वाध्याय भी आवश्यक है, पर उसका रस लेने के लिए आत्मरमण की स्थिति से ध्यान करना अतीव उपयोगी होगा । ध्यान रूपी स्वाध्याय मे स्व का अध्याय करते समय यह चितन करे कि हम बहुत लम्बे समय मे अशुद्ध विभाव के साथ रमण कर रहे है, पर अब सम्यक्त्व के

साथ स्वभाव से अपना सम्बन्ध स्थापित करें। आत्म शक्तियों को निरन्तर वृद्धिगत करते हुए चेतन के भेद विज्ञान से आत्मान्मुखी बनें। स्वयं के जीवन का समीक्षण करें कि मेरा जीवन किस ढग से चल रहा है, मैं जन्म-मरण को शृंखला बढ़ा रहा हूँ या कम कर रहा हूँ ? यदि पारिवारिक आसक्ति एवं धन वैभव की तृष्णा में ही जिन्दगी व्यतीत कर दूँगा, तो अवश्य ही मेरी भव-शृंखला बढ़ जाएगी। अतः इसे तोड़ने के लिए स्वाध्याय, स्व का चिन्तन करना आवश्यक है।

आज व्यक्ति अक्षरीय ज्ञान प्राप्त कर बड़ी डिग्रियाँ तो प्राप्त कर रहा है, पर स्व के ज्ञान के अभाव में कितनी हास्यास्पद स्थिति जीवन में बन जाती है, इसे आप कथानक के माध्यम से समझें।

प्राचीन काल में काशी के विश्वविद्यालय में बहुत से विद्यार्थी पढते थे। एक गॉव का विद्यार्थी भी वहाँ पढ़ने आया, वह वहाँ का सारा अध्ययन बड़ी लगन पूर्वक करके उत्तीर्ण हो गया, तत्पश्चात् उसने अपने माता-पिता को समाचार प्रेषित किये कि "मेरा विद्याध्ययन पूर्ण हो गया है, मै आ रहा हूँ, मुझे लेने के जिए आप जल्दी ही आना।" सारे गॉव वालों को यह सूचना जब मिली कि अमुक का लड़का विद्वान् बन पडित की पदवी को पाकर काशी से आ रहा है तो सभी गॉव वाले उत्सुकता पूर्वक उसके स्वागत की तैयारी करने लगे। इधर वे पंडितजी अपने गॉव के बाहर पहुँचकर, गॉव वाले लोग, जो स्वागत करने के लिए आने वाले है, उनकी प्रतीक्षा करने हेतु एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। तभी चार बहिनें जो पनघट पर पानी भरने के लिए आई, वे परस्पर बातें करने लगी—उन्ही पंडितजी के विषय में, जो काशी से पढकर आये है, और वृक्ष के नीचे बैठे हुए है। वे अनुभवी बहिनें परस्पर कहने लगीं कि ये पंडितजी काशी से पढ़कर भले ही आये है, पर लगता ऐसा है कि सिर्फ इन्होंने अक्षरीय ज्ञान ही प्राप्त किया है। कहावत के अनुसार इन्होने पढ़ा है, पर गुना नही है।

अपनी इस अनुभूति को साक्षात्कार करने हेतु वे वहिने उनके पास पहुँचीं और इधर-उधर की बातें करती हुई बोली—पडितजी ! आप तो पढ लिख करके आ गये, पर क्या कहूँ....? पंडितजी ने पूछा—क्यों क्या बात हुई ? कहो-कहो जल्दी कहो। तब वे बहिनें कहने लगी—पडित साहब क्या कहूँ। कहने की हिम्मत नही हो रही है। पंडितजी बोले अरे बहिनो। आप संकोच क्यों कर रही हो ? जो कुछ भी है, साफ-साफ कह दो, मै जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ। तब वे बहिने बोलीं—पंडित साहब आप तो....काशी पढने के लिए गये थे, पर पीछे से आपकी पंडितानीजी....आपकी पंडितानीजी....। पुनः कहती-कहती रुक गई तो पंडितजी झुंझलाते हुए कहने लगे—अरे तुम चुप क्यों हो गई, कहो ना पंडितानीजी को क्या हुआ ? पंडितजी आपकी पडितानीजी अर्थात् आपकी

धर्मपत्नी विधवा हो गई, ज्यों ही यह बात पंडितजी ने सुनी तो वे बड़े दुःखी दिल होकर फूट-फूट कर रोने लगे, उनको रोते देख उन वहिनों को वड़ी जोर से हँसी आने लगी, पर बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर पंडितजी को ढांढस वंधाने लगी, कहने लगी कि पंडित सा ! अब रोने से क्या होने वाला है, जो होना था सो हो गया। आप चुप रहिये और चलिये घर की तरफ पर पंडितजी के अश्रुओं का निर्झर बंद नही हुआ और इधर परिवार वाले तथा गांव के सभी लोग उनका स्वागत करने के लिए वहाँ आ पहुँचे थे। वे वहिनें जिन्होंने वड़ी मुश्किल से हँसी रोक रखी थी, उस भीड का लाभ उठाते हुए वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गई। इधर परिवार वाले और गॉव वाले सभी सदस्यों ने उन पंडित साहव को इस प्रकार जोर-जोर से रोते देखकर अनुमान लगाया कि शायद किसी "ग़मी" के समाचार इन्हे मिले है, इसलिए ये इस तरह रो रहे है, वे सभी लोग भी रीति रिवाज के अनुसार पंडित सा. के रोने में साथ देने लगे और सभी रोते-रोते घर पहुँचे, घर पहुँचने के बाद भी बहुत देर तक रोने का कार्यक्रम चलता रहा। आखिर रोते-रोते पंडित सा. जब कुछ चुप हुए तो सभी ने पूछा कि क्या हुआ पडित साहब। किनकी मृत्यु के समाचार मिले है आपको ? तब पंडित साहब ने आश्चर्यपूर्वक कहा कि "किसकी मृत्यु ? अरे ! आप गॉव में रहते हो फिर भी आपको पता नही ? बेचारी मेरी पडितानीजी विधवा हो गई।" यह सुनकर सभी लोग एक साथ खिलखिलाकर हँस पड़े और उनकी विधवा बहिन जो अपने भैया का स्वागत करने के लिए आई हुई थी, कहने लगी कि वाह भाई वाह ! आपने भी खूब अपनी हँसी करवाई। अरे ! आपके रहते हुए मेरी भाभी विधवा कैसे हो सकती है ? तभी पडितजी जो काशी से पढ़ लिखकर विद्वान् बनकर आये थे, तर्क देते हुए कहने लगे ओह ! तुम भी कैसी बात करती हो ? मेरे रहते हुए तुम्हारी भाभी "विधवा" नही हो सकती है तो मै पूछता हूँ कि मेरे रहते हुए तुम कैसे विधवा हो गई ? यह सुनकर सभी लोग पुनः खिल-खिलाकर हँस पडे। बहिन भी अपनी हँसी को रोक नही सकी, कहा कि भाई ! मेरे पतिदेव मर गये है इसलिये मै विधवा हो गई हूँ पर मेरी भाभी के पतिदेव तो आप है अतः आपके रहते हुए मेरी भाभी विधवा नही हो सकती है। अब कुछ वात पडित सा. को समझ मे आई और गहराई से सोचकर कहा कि अच्छा। अव समझा, ऐसी वात है क्या ! ओह ऽऽ मै कितना उल्लू वन गया। उन वहिनो ने भी मेरी अच्छी हँसी करवाई। पूछा गया किन वहिनो ने ? तव पडितजी ने उनका परिचय दिया तव घर के सदस्य इस वात का रहस्य पूछने उनके पास गए तव उन्होंने वताया कि हमने जव यह देखा कि पंडितजी जहाँ वैठे थे वहाँ कीड़ी-नगरा था। जव पडितजी को वैठने के स्थान का भी विवेक नही है तो हमने अनुमान लगाया कि ये काशी से पढ़कर भले ही आये है पर इनमें विवेक-ज्ञान का अभाव है, इसीलिये हमारे अनुमान का प्रत्यक्षीकरण हमने किया और हमारा अनुमान शतप्रतिशत ठीक निकला।

बन्धुओ ! इस कथानक से यह सबक ग्रहण करना है कि ज्ञान सीखें अवश्य पर, विवेक का जागरण जीवन में अवश्य हो, केवल तोता रटन ज्ञान से जीवन का सद् विकास नही हो सकता है। आज स्वाध्याय करने के प्रसंग से प्राय: मनुष्य मात्र मूल-मूल को रट लेते है, पर उसका अर्थ क्या है ? उनका रहस्य क्या है ? यह नही जानते है, ज्ञान के आचार क्या हैं ? इनका भी उन्हें ज्ञान नही रहता, यही कारण है कि प्रभावमय स्वाध्याय जिसका महान् फल आत्मशुद्धि है, वह प्राप्त होने के बजाय कभी-कभी उल्टा प्रसंग भी उपस्थित हो जाता है।

अत: आप स्वाध्याय को स्थिति जीवन में अपनाने से पहले सर्वप्रथम ज्ञानाचार का भेद कालाचार व इसके स्वरूप का सम्यक् बोध करें और यथा-समय स्वाध्याय, ध्यान आदि प्रक्रियाओं से आत्मशुद्धि रूप प्रशस्त पथ के पथिक बनें। इन्ही मंगलमय शुभ भावों के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२६-७-८५
शुक्रवार

२७ महाप्रयाण

(महासती श्री नगीनाकुंवरजी)

आज का प्रसंग सर्वविदित है, कि ब्यावर में महासती श्री नगीना कुंवरजी का स्वर्गवास हो चुका है, अतः व्याख्यान का प्रसंग तो नही है, सिर्फ उन महासतीजी के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने का प्रसंग है ।

बन्धुओ ! संयमी जीवन कितना महत्त्वपूर्ण जीवन है, इस जीवन में जो व्रत अंगीकार करते हैं, वे व्रत कितने विशाल एवं व्यापक होते है, यह विचारने का प्रसंग है । कई मनुष्य विचारते है, कि "व्रत प्रत्याख्यान तो जीवन में बधन है, ये बंधन तो मैं नही ले सकता हूँ । पर विचारना है कि ये व्रत-प्रत्याख्यान बंधन है या बंधन से मुक्ति हैं ।"

जो मनुष्य परिवार मे जन्म लेकर परिवार के सदस्यों के साथ अपना सम्बन्ध करके चलता है, उन्ही को अपना मानता है वह अपने विराट् जीवन को एक संकुचित घेरे में रखकर चलता है, अपने परिवार के बन्धन में ही बन्धा रहता है । वह व्यक्ति कही भी जाता है पर पुनः लौटकर शीघ्र घर जाने की ही भावना बनी रहती है । इस प्रकार घर के बन्धन में बन्धा हुआ होने पर वह अपना संसार और भी अधिक संकुचित कर लेता है, सिर्फ अपनी पत्नी को ही अपना मानता है । और विचार करता है कि हमारा यह दाम्पत्य जीवन अमर रहे । इस आसक्ति बन्धन में फंसा, अन्य सभी के प्रति परायापन की वृत्ति रखता है । आंतरिक बन्धन से घिरा हुआ, वह इस संकुचित सासारिक बन्धन रूपी कैदखाने में रहता हुआ, अपनी हविशों की परिपूर्ति के साथ क्या-क्या अनर्थ वृत्तियाँ जीवन में अपना लेता है? १. असत्य, २. अचौर्य, ३. हिसा, ४. अब्रह्म, ५. परिग्रह आदि-आदि वृत्तियों में उलझता हुआ, बन्धनमय जीवनयापन करता है । उसकी यह बन्धन परम्परा भव-भव तक चलती रहती है ।

इस विश्व में एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सभी जीव जन्म-मरण कर रहे है । निगोद, जिसके एक शरीर में अनन्तानन्त जीव होते है और संचित्त जल में सात प्रकार के जीवो की नियमा है, उसमे भी अनन्तानन्त जीव है ।

वे व्यक्ति इन अनन्त जीवो की ही नही, छः काया के जीवों की हिसा करते रहते है, पर जो संकुचित घेरे से निकलकर संयम व्रत ग्रहण करते है, वे

अपने प्रथम महाव्रत की स्थिति से सभी जीवों को अभयदान देकर विराट् जीवन में प्रवेश कर लेते है। जो विराट् जीवन को प्राप्त हो जाते है, वे छः ही काया की रक्षा करते हुए आहार, पानी ग्रहण करते हैं। असत्य भाषण भी उनके छूट जाता है। अचौर्य व्रत की स्थिति से बिना किसी की आज्ञा के तृण मात्र भी वे नही उठा सकते है। जैसे – स्थानक में जब साधु प्रवेश करते है, तब वे स्थानक में रही हुई समस्त चीजों को, जो उनके कल्पनीय है, उसे भी बिना आज्ञा ग्रहण नही करते हैं, यहाँ तक कि कहीं स्थानक में कलेण्डर वगैरह लगे होते हैं, वे भी बिना आज्ञा नही देख सकते है। यही नही यदि कपड़ा सीलने के लिए सुई लाने का प्रसंग भी आवे तो भी वह जो कुछ सीलना है और उसे ही सीलने की आज्ञा लेकर आया है, तो वह उसी वस्त्र को सील सकता है, अन्य कुछ भी नहीं। अगर अन्य कुछ सीलता है, तो उसे चोरी लगती है। कार्य पूरा होने पर सूर्यास्त के पहले-पहले वह सुई पुनः गृहस्थ को भोला दी जाती है। सुई भी साधु रात्रि में स्वयं के पास नहीं रख सकता है, इतनी सूक्ष्मरूपेण चोरी का भी उसे त्याग होता है। चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है, जिसमें वह अपने मन की सम्पूर्ण विकारी वृत्तियों को अपने जीवन से निकाल देता है, और अनादि कालीन मोह बन्धन से छूटने हेतु नववाड़ ब्रह्मचर्य व्रत की परिपालना करता है, तथा पाँचवाँ अपरिग्रह व्रत जिसमें धर्म सहायक उपकरण के अलावा कुछ भी नही रखता है, उन पर भी मूर्च्छा (ममता) नही रखता है। यही नही साधु धातु का चश्मा भी अपने पास न रखे, उसमे छोटी से छोटी कील भी क्यों हो उसे भी न रखे। साधु अपने हाथ से किसी को पत्र न लिखे, न अपने नाम से मंगवावें। गृहस्थ बन्द पत्र लेकर आवे तो साधु स्वयं के हाथ से खोले भी नहीं, गृहस्थ स्वयं उसे फाड़कर दे तो साधु पढ़ले और लिखाने योग्य उत्तर हो तो गृहस्थ से ही लिखावें। इस प्रकार साधु समस्त वन्धनों से छुटकारा पाकर विराट् पथ का पथिक बन जाता है। मुक्ति के मंगल-मय राजपथ पर उसके चरण अग्रसित हो जाते है। वह सबका बन्दनीय बन जाता है।

इस विषयक एक उदाहरण है। सुधर्मा स्वामी राजगृही नगरी में जब पधारे, तब एक लकड़हारा जो कि अतीव निर्धन स्थिति में था वह सुधर्मा स्वामी के पास आकर कहने लगा कि मुझे संसार की लालसाओं से मुक्ति का मार्ग बताओ। तब सुधर्मा स्वामी ने मुक्ति का मार्ग बताया तो उस लकड़हारे ने संयम ग्रहण कर लिया। एक बार का प्रसंग है, जब महाराज श्रेणिक अभयकुमार के साथ वन भ्रमण हेतु बाहर निकले हुए थे। तब वही लकड़हारा मुनि वेश में उस रास्ते से निकला तो अभयकुमार उन मुनि को वंदन करने हेतु वाहन से नीचे उतरे और उन्हें विधिवत् वंदन किया। अभयकुमार की यह चर्या देखकर अन्य सब कर्मचारी मन ही मन हंसने लगे कि यह लकड़हारा जिसको कि अभयकुमार वंदन कर रहा है, उसने क्या त्याग किया ? अभयकुमार, जो कि औत्पति की

बुद्धि के मालिक थे। वे अपने बुद्धि बल से उन लोगो के भावों को पहचान कर उनकी भ्रमणा निकालने हेतु एक योजना बनाई। नगर भर मे ऐलान करवाया कि तीन करोड़ सौनया, तीन शर्त पर मिल सकती है, जिसको चाहिये वह लेने के लिए राजसभा में उपस्थित हो जाय। बहुत बडी मात्रा मे भीड इकट्ठी हो गई, राजसभा प्रजाजनों से खचाखच भर गई, तब अभयकुमार ने अपनी शर्त जाहिर की—

१. पहली शर्त है कि जो पुरुष अपने जीवन में पूर्ण ब्रह्मव्रत की आराधना करे, तीन करण तीन योग से तो उसे एक करोड़ सौनया मिलेगा।

२. दूसरी शर्त है कि जो तीन करण तीन योग से अहिसा व्रत की आराधना करे, किसी भी सूक्ष्म, बादर, त्रस, स्थावर जीवो की हिसा नही करे, उसे भी एक करोड़ सौनया मिलेगा, और

३. तीसरी शर्त है कि जो अग्निकाय के आरम्भ का सम्पूर्णतया आजीवन तीन करण तीन योग से त्याग करे, उसे भी एक करोड़ सौनया मिलेगा।

इन तीनों शर्तो के साथ तीन करोड़ सौनया मिलने की घोषणा कराई गई जिसे श्रवण करके सब आहिस्ते-आहिस्ते खिसकने लगे। तब अभयकुमार उन कर्मचारियों को कहने लगे कि देखो मैने जब उस लकड़हारे को जो कि अब मुनि बन चुके है, पॉच महाव्रत जिन्होंने अगीकार कर लिया है—अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप, उनको वंदना की तो आप लोग हंस पड़े, आपकी यह विचारधारा थी कि यह लकड़हारा जो कल तो दीन, हीन अवस्था को प्राप्त था और आज साधु बन गया तो अभयकुमार भी इसको वदना कर रहे है, चरणों का स्पर्श कर रहे है, आखिर इसने क्या त्याग किया है ? पर अब आप समझ चुके होंगे, उसने जो त्याग किया है, वह त्याग स्वीकार करने का सामर्थ्य क्या हर किसी में हो सकता है ?

क्योंकि मेरे बताये इन तीन व्रतो मे से कोई एक व्रत को भी स्वीकारने के लिए तैयार नही है, जबकि प्रत्येक के पीछे एक-एक करोड़ सौनया देने को तैयार है। तो विचार करिये वह लकडहारा जिसने ऐसा एक व्रत नही अपितु पाँच महाव्रत अंगीकार कर सांसारिक-बन्धनो से निवृत्त होकर मुनि रूप मे पालन कर रहा है, अतः उसका त्याग तीन करोड़ सौनयों से भी कई गुणाधिक है।

बन्धुओ ! त्याग प्रत्याख्यान का महत्त्व पहचानो ! त्यागी महापुरुषो का जीवन कितना दिव्य होता है। वे मानवो के तो क्या सुरासुरो के इन्द्रों के भी वंदनीय बन जाते है। बाह्य बंधनों से ही नही वरन् आभ्यन्तर जबरदस्त कर्मो

के बधन से भी मुक्त होते जाते है। अमित आत्मीय वैभव को समुलब्ध कर लेते है।

जो महासतीजी संयमी जीवन मे जिन आत्मीय गुणों की ज्योति को प्रज्वलित कर जो आज स्वर्गवास हो गये है, यदि उन्हे सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित करना चाहते है, तो इन सासारिक बधनों से कुछ परे हटे। बंधन से परे हटने का एक मात्र उपाय है, त्याग-प्रत्याख्यान। उन्हे जीवन मे स्वीकार कर मुक्ति के प्रशस्त राजमार्ग पर आगे बढ़ें। इन्ही शुभ भावो के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२७-७-८५
शनिवार

२८

मृत्यु भी महोत्सव है

(७२ दिन के संथारे के साथ महासती श्री वल्लभकुंवरजी का महाप्रयाण)

कल दिन एक महासती के स्वर्गवास का प्रसंग आया, उस प्रसंग से उनके जीवन पर प्रकाश डाला गया, आज पुनः प्रसंग आया है। जिन महासतीजी का संथारा लम्बे समय से चल रहा था वह कल रात्रि को सीझ गया है, अतः व्याख्यान का प्रसंग तो नही रहा है, लेकिन उन महासतीजी के जीवन के विषय में चिंतन करना सभी के लिए हितावह है।

दुर्लभ अंगों की संप्राप्ति बहुतों को होती है, और कई आत्माएँ उनका फायदा उठाकर मोक्ष मार्ग की पथिक भी बनती है, पर ऐसी आत्माएँ विरल ही होती है, जो अपने इसी जीवन में समग्ररूपेण रूपान्तरण करले, वस्तुतः उन्ही आत्माओं की विशेषता है। महासतीजी वल्लभकुंवरजी आज सभी के कितने वल्लभ बन गये हैं, कौन जानता था कि ये महासतीजी प्रभु महावीर एव क्रान्तिकारी युवाचार्यो के इस शासन में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में एक ऐसा अश्रुतपूर्व आदर्श उपस्थित करेंगी।

इन महासतीजी का जीवन कोई अक्षरीय विद्वता से परिपूरित नही था, विद्वान् कौन होता है? सिर्फ अक्षरीय ज्ञान से कोई विद्वान् नही होता है। वास्तविक विद्वान् वे ही है, जो आत्मस्थ बन आत्मिक गुणों की ज्योति से अपने जीवन को प्रकाशमय बना लेते है।

तीर्थेश प्रभु महावीर ने जहाँ शास्त्रो में साधु-साध्वियों के जीवन का उल्लेख किया उसमे अनेको के विषय में यह उल्लेख आया कि अनेक भव्य-साधक उसी भव में सम्पूर्ण ममत्व भाव की स्थिति से रहित बनकर आत्म-भाव मे तल्लीन हो गये। इतिहास के पन्ने खोलने पर मै सोचता हूँ कि वहाँ भी इतना लम्बा संथारा किसी के चला हो, यह पढने को नही मिला। ६२ दिन का संथारा पूर्व में इसी शासन में हुआ जरूर, पर ७२ दिन का यह अद्वितीय संथारा प्रथम ही सुनने को मिला।

शरीर का ममत्व छोड़ना कोई सहज बात नही है। शरीर के ममत्व को छोड़कर अन्तिम समय की साधना कोई कम महत्त्व की चीज नही है, राग-द्वेष की चित्त वृत्तियो का शमन करके अपने आप में आत्मस्थ हो जाना बहुत दुर्लभ है। यह समाधि है, इसका स्वरूप अतीव गहन है। समाधि का तात्पर्य है—

जहाँ मलिन विचार राग-द्वेष से परिपूरित जो वृत्तियाँ हैं, उससे परे हटकर शान्त दान्त बन जाना, यही सच्ची समाधि है, साधना जीवन में कितनी हुई और कितनी नहीं हुई, इसका रिजल्ट अन्तिम समय में आता है, हमारे सुकृत्यों की परछाया अन्तिम समय में आती है, यदि अन्तिम समय की साधना सुधर जाती है, तो भव्यात्मा के अनेक जन्म-मरण की स्थिति समाप्त हो सकती है। बहुत जल्दी मोक्ष प्राप्ति का प्रसंग बन सकता है। अन्तिम समय को सुधारने के लिए पहले से आत्मा को संलेखित करना अति आवश्यक है। संलेखना के साथ संथारा की स्थिति जीवन में आती है तभी वह संथारा देहातीत अवस्था को प्राप्त हो, आत्मरमण के सम्मुख आ सकता है और वह आत्मा सच्चे अर्थों में पंडित की पदवी प्राप्त करती है।

गीता के अन्दर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया कि—"भगवन्! आज दुनिया में बहुत से व्यक्ति अपने आप को विद्वान् शिरोमणि मानते हैं, तो क्या वे वस्तुतः पंडित हैं? विद्वान् है?" तब कृष्ण महाराज ने कहा कि नही सिर्फ मानने मात्र से कोई विद्वान् या पंडित नहीं होता वरन् विद्या और विनय से जो सम्पन्न हैं और प्रत्येक आत्मा के साथ समदर्शिता की स्थिति लेकर जो चलते हैं, वहीं पंडित हैं। जैसे कि गीता का श्लोक है—

"विद्या विनय सम्पन्ने, ब्राह्मणी गवि हस्तिनि।
शुनि चेव श्वपाकेच, पण्डिता समदर्शिनः॥"

जैन आगम में भी बताया है, कि जो लाभ और अलाभ में समभाव रखता है, वही पंडित है। संस्कृत में व्युत्पत्ति करते हुए बतलाया है कि "पापात् बिभेति इति पंडितः" जो साधना की स्थिति से आगे बढ रहा है, और उसकी साधना की चतुर्दिक् में भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही हैं, उस समय प्रशंसा में फूलकर ऐसा कार्य न करना, जो श्रमण संस्कृति से निर्गन्थपने की स्थिति से विरुद्ध हो तथा कोई निन्दा करे तो भी किंचित् मात्र भी निन्दा करने वालों के प्रति द्वेष भाव नहीं लाना प्रत्युत निरन्तर राग-द्वेप की वृत्तियों से ऊपर उठने की साधना में संलग्न बने रहना, वास्तविक आराधना है। साधना होती है आत्म-समाधि के लिये। उस साधना से, उस आत्म समाधि से कई एक लब्धियाँ भी उपलब्ध हो सकती है, चूंकि साधना चमत्कार लब्धियों की प्रसव भूमि है, पर चमत्कार दिखाना साधना का आदर्श नहीं है न उद्देश्य ही है। ज्ञानीजनों का कहना है कि अपना वास्तविक कल्याण चाहते हो तो चमत्कार से बचकर सदाचार का अभ्यास करो, सदाचार ही संसार का महान् चमत्कार है। अपनी प्राप्त लब्धियों को गोपकर चलो। ऐसी स्थिति जिसे प्राप्त हो जाती है, वही यथार्थ में पंडित की संज्ञा को प्राप्त हो सकता है।

संथारे की स्थिति में अपनी महिमा [illegible] और किसी के द्वारा निन्दा किये जाने पर [illegible]।

"समोनिन्दापसंसासु"

यह् श्रादर्श जीवन में उतारें। ससार के न किसी भी प्रकार के इस लोक की कामना रहे न परलोक की कामना रहे, न इस लोक-परलोक की कामना रखी जाय। सभी प्रकार की भौतिक कामनाश्रों से हटकर श्रात्मा में रमण करते रहना संथारे की सार्थकता है।

ऐसी श्रात्मलीनता मुझे स्वर्गीय गुरुदेव श्राचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. में देखने को मिली, जिनके शरीर मे भयकर कैंसर जैसी व्याधि होते हुए भी किस शान्त दान्त भाव से उसको उन्होने सहन किया, जिसे देखकर उदयपुर के डॉक्टर शूरवीरसिहजी, रामावतारजी एव बम्बई से डॉक्टर बोरजस की रिपोर्ट भी श्रायी, उसमे भी यही भाव थे कि इस बीमारी को देखते हुए जीना बहुत मुश्किल है, यह तो इन महात्मा के तपोबल का ही प्रभाव है कि वे शान्त भाव से श्रागे बढ रहे है, डॉक्टर रामावतार ने साफ कहा कि इन महात्मा के सामने तो हमारी डॉक्टरी थ्योरी फेल हो चुकी है।

जब स्वर्गीय गुरुदेव ने संथारा ग्रहण किया तब श्रत्यन्त सजगता के साथ मेरे से संथारा की पाटियों का उच्चारण करवाते हुए ग्रहण किया था। यह बतलाते रहे कि यह पाटो बोलो, यह पाटी बोलो। २६ घटे तक संथारा चला जिसे देखकर जनता श्राश्चर्यचकित हो गई। किसी श्राचार्य के इस प्रकार सथारा चलना, देखने-सुनने को कम मिलता है।

स्वर्गीय गुरुदेव ने श्रपनी वृद्धावस्था मे भी श्रमण संस्कृति की सुरक्षा बनाये रखने के लिए जो एक दीक्षा-शिक्षा प्रायश्चित-चातुर्मास एक श्राचार्य के सान्निध्य में हो, का क्रान्तिकारी कदम उठाया, वही श्राज पल्लवित, पुष्पित फलित होता परिलक्षित हो रहा है। स्वर्गीय गुरुदेव को सयम प्रिय था, पद नही, इसलिए उन्होने सयम की सुरक्षा के लिए उपाचार्य जैसे सर्व सत्ता सम्पन्न पद की भी कुर्बानी दे दी। यह शासन बीस-बाइस वर्षो से किसी प्रकार प्रगतिशील है, यह श्राप सवके सामने है।

श्राज जो महासतीजी के स्वर्गवास के समाचार मिले है। उनके शरीर में भी श्रसाध्य वीमारी की स्थिति वन गई थी। वृद्धावस्था भी श्रा चुकी थी। एक दिन जव वीमारी ने उग्र रूप धारण किया। तब शरीर की स्थिति देखते हुए एव महासतीजी के वार-वार श्राग्रह को देखते हुए, कि कही मैं खाली नही चली जाऊँ, उन्हें सथारा करा दिया गया, वाद में जव संथारा लम्वा चलने लगा तो उन्हे सूचित भी किया गया कि श्राप पारणा कर सकते है, श्रापके संथारे मे भी श्रागार रखा गया है, किन्तु महासतीजी श्रपनी प्रतिज्ञा मे दृढ़ रही, वह कभी भी सथारे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुई।

दूसरों को शान्ति देने वाली आत्मा स्वयं अटूट शांति प्राप्त कर सकती है; अशांति देने वाले को कभी शांति नहीं मिलती। क्रिया और प्रतिक्रिया ये दोनों साथ-साथ चलती हैं। यह बहुत बड़ा वैज्ञानिक तथ्य है। अहिंसक के समक्ष हिंसक भी अपना वैर विरोध भूल जाते है और हिंसक को देखकर तो उल्लेख आता है कि वनस्पति भी भयभीत हो जाती है। अतः आप परिपूर्ण अहिंसक बनें, सभी को शांति दें, समाधि समुपलब्ध करावें।

बन्धुओ ! जो सभी को भयभीत कर असमाधि उत्पन्न करता है, वह स्वयं कैसे समाधि सम्प्राप्त कर सकता है ? प्राणी मात्र के अभय प्रदाता प्रभु महावीर ने समवशरण मे प्रवेश करने वालों के लिए जिन पांच अभिगमों का विधान किया उसमें बताया कि धार्मिक स्थान जो कि निरवद्य स्थान है वहाँ सभी को अभयदान मिलने का प्रसंग बनता है। अतः समवशरण की भूमि में उत्तरासंग-पूर्वक सम्पूर्ण सचित्त वस्तुओं का त्याग करके प्रवेश किया जाता है।

चातुर्मास के इन पुण्यमय दिनो मे कम से कम इस पवित्र धर्म स्थान में छोटे से छोटे जीव को भी अपनी तरफ से अशांति असमाधि उत्पन्न नहीं करना चाहिये। साधु जीवन इसी का प्रतीक है कि वह किसी प्राणी को कष्ट देना, सताना नहीं चाहता है, चाहे स्वयं कितने ही कष्ट सहन करता है। इसी प्रकार समाधिमय साधना करने वाला ही अन्तिम समय में पूर्ण रूप समाधि [illegible] पंडित मरण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। [illegible]

के उपलक्ष्य में यह प्रतिज्ञा करें कि अपना जीवन समाधिमय बनाकर चले। किसी भी आत्मा को असमाधि नही पहुँचायें। यदि २४ घण्टो मे परिपूर्ण रूपेण अभय की साधना नहीं कर सके तो कम से कम १ घण्टा भी जगत् के जीवो को अभयदान देने का अभ्यास करना चाहिये। ऐसी अभ्यास वृत्ति से अतिम समय को सुसफल बनाया जा सकता है, अभ्यास से सब कुछ साध्य है। जिनका सम्पूर्ण जीवन ममत्व से अलिप्त है, उनका अन्तिम समय में एकाएक सभी से ममत्व छूट जाय, यह कम सम्भव है।

जीवनभर अध्यवसायों की जिन स्थितियों से मानव गुजरता है, अन्तिम समय में वे ही अध्यवसाय प्रायः बने रहते है। जो असमाधि से परिपूरित जीवन को लेकर चल रहा है, उसका अन्तिम समय समाधिमय बनना कठिन है। विचार करिये। आप जिनकी ममता से सारी जिन्दगी व्यतीत कर देते है। क्या वह ममता अन्तिम समय में दूर हो सकती है? जल्दी से नही। ७२ दिन का यह दिव्य संथारा हमारे लिये प्रेरणा स्रोत बन चुका है। वे महासतीजी जो भद्रिक भाव से साधना करते रहे। उनके ७२ दिन का संथारा आज आप श्रवण कर रहे हैं। एक जीवन भी यदि पंडित मरण से मृत्यु मे परिवर्तित हो जाय तो अवश्यमेव अतिशीघ्र मोक्षगामी बना जा सकता है।

शास्त्रों का अध्ययन, संयम का पालन प्रत्येक प्राणी को अभयदान देना ये सभी सद् अनुष्ठान समाधि के ही हेतु है। उन सती के भावात्मक जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर जो अपने जीवन को शुभ भद्रिक एवं सरल भावों से परिपूरित करेंगे तो समाधिमय बनते हुए अन्तिम घड़ियों में दिव्य समाधि की स्थिति को संप्राप्त कर सकेंगे।

उन महासतीजी के गुणमय भावमय जीवन को स्मृति में रखते हुए उनसे सतत प्रेरणा लेते रहेगे और सभी प्राणियों को समाधि पहुँचायेंगे, अभयदान देंगे तो भव्यात्माओ का जीवन भी एक दिन अवश्यमेव मगलमय बनेगा।

मोटा उपाश्रय २८-७-८५
घाटकोटर, बम्बई रविवार

२९ ज्ञान का ज्ञान हो

तीर्थंकर भगवन्तो ने इस मनुष्य जाति के शरीर में रहकर सुसाधना के द्वारा घनघाती कर्म क्षय करके केवलज्ञान एवं केवलदर्शन प्राप्त किया, तदनुसार चार तीर्थ की स्थापना की तथा उपदेश की धारा में द्वादशांगी का ज्ञान फरमाया। साथ ही यह भी बतलाया कि सिर्फ द्वादशांगी तक ही ज्ञान सीमित नहीं है, वरन् उससे भी आगे ज्ञान है।

महाप्रभु ने मति, श्रुत, अवधि, मनपर्याय और केवलज्ञान के भेद से ज्ञान को पाँच भागो में विभक्त किया है। इन ५ प्रकार के ज्ञानों मे सारा ज्ञान समाहित हो जाता है। जिस समय शरीर में रहती हुई आत्मा केवलज्ञान और केवलदर्शन की उपलब्धि के बाद जब पाँच ज्ञानो का प्रतिपादन करती है उस समय वह आत्मा रूपी एवं साकार अवस्था में रहती है। पर जब वही आत्मा सिद्ध बन जाती है, तब वह निराकार और अरूपी अवस्था में आ जाती है।

प्रार्थना की कड़ियों में जो ये निराकार, साकार शव्द आये है। वे संसारी और सिद्ध आत्मा की अपेक्षा से है। साकार और निराकार यह आत्मा का ही भिन्न-भिन्न स्वरूप है। चैतन्य रहित जड़ पदार्थ भी साकार-निराकार दोनो तरह के होते है, जैसे जो मकान है, स्तम्भ है, वे साकार है, पर धर्मास्तिकाय जो कि चैतन्यरहित है, उसका कोई आकार नही है। यहाँ प्रार्थना की कड़ियों में जड़ के साकार, निराकारपने का कथन नही है। वरन् सचेतन आत्मा के लिये कथन आया है, और वह सचेतन आत्मा साकार अवस्था मे रही पुरुषार्थ वल से अपनी अष्ट-कर्म वेड़ी तोड़कर अनन्तज्ञान/केवलज्ञान की निराकार अवस्था को प्राप्त कर स्वामी बन सिद्ध रूप मे पहुँच सकती है, पर कव? जव वह कर्म आच्छादित अनन्तज्ञान राशि का वोध करके उसे प्राप्त करने के लिये कटिवद्ध हो जाये। ज्ञान की अनन्तता के विषय मे क्या कहा जाय।

एक वार स्थूलिभद्र ने पूर्वो का अध्ययन करते हुये भद्रवाहु स्वामी से जिज्ञासा की कि भगवन्! मुझे कितना ज्ञान हो गया और कितना ज्ञान होना अवशेष है, तब भद्रवाहु स्वामी ने फरमाया कि हे आयुष्मान्! कल्पना करो कि एक विशाल समुद्र जो अथाह जल से परिपूरित है, उसमे से चिड़ियाँ अपनी चोंच में जितना पानी ग्रहण कर सकती है, उतना सा ज्ञान अभी तक तुम्हे हुआ

है। ज्ञान—अथाह समुद्र के पानी की तरह अनन्त है, अभी बहुत ज्ञान करना अवशेष है।

बन्धुओ ! जब स्थूलिभद्र जैसे ज्ञानी के विषय मे भी भद्रबाहु स्वामी ने यह बात फरमायी, तो फिर हमारे ज्ञान की क्या कुछ स्थिति है, इसे हम स्वय पहिचानने की कोशिश करे। और अत्यन्त विनीत भावो के साथ अनन्त ज्ञान राशि को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ रत बनें।

शास्त्र में आनेवाली वर्णमाला का तात्पर्य है, अक्षर क, ख, ग इत्यादि। इनका सामूहिक रूप शब्द कहलाता है, शब्दों के समूह से वाक्य बनते है। उन्ही वाक्यों से जो दूसरो को ज्ञान होता है, वह ज्ञान, मति और श्रुत ज्ञान है, जो कि ५ इन्द्रियों और मन की स्थिति से होता है। विशिष्ट ज्ञान पाने के लिये विशिष्ट पुरुषार्थ करना होगा। इसके लिए एक रूपक है—किसान जब यह समझता है कि यह जमीन मक्का है, गन्ना है, तब तो वह पुरुषार्थ करना छोड़ सकता है, पर जमीन मिलने मात्र से यह नही समझा जा सकता, और न ही उससे उसकी उदर पूर्ति ही होती है। बीज बोने आदि रूप पुरुषार्थ करने पर ही उसे मक्का, गन्ना आदि उदर-पूति के साधन प्राप्त हो सकते है। इसी प्रकार श्रुत ज्ञान रूपी शास्त्र जमीन के तुल्य है, इससे ज्ञान रूपी फसल तैयार करना है। ज्ञान रूपी फसल तैयार करने के लिये सत्पुरुषार्थी बनना नितान्त आवश्यक है। शास्त्रों का चिन्तन मनन पूर्वक पठन, पाठन वीतराग वाणी के श्रवण को आगे बढ़ाने वाला है। पर सिर्फ शास्त्रो का अक्षरीय ज्ञान हासिल कर लेना, अस्वाध्याय, स्वाध्याय के ज्ञाता बन जाना, वीतराग वाणी कई बार श्रवण कर लेना पर्याप्त नही है। यह सब तो जमीन की तैयारी है, किन्तु जब गहन चितन मनन के साथ आत्मा की अनन्त शक्तियों को प्राप्त करने के लिये, भीतरी ज्ञान जागृत करने के लिये मन और इन्द्रियो से होने वाले ज्ञान तक ही सीमित न रहकर आत्मा से होने वाली प्राप्ति में सत्पुरुषार्थशील बनेगे तब ही वास्तविक अतिन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी। यथार्थ मे यह आत्मा की फसल तैयार करना होगा। जिससे परम तृप्ति प्राप्त हो सकती है।

ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह का बतलाया गया है, इन्द्रियों और मन की सहायता से होने वाला मति और श्रुत ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। और आत्म मात्र की अपेक्षा अवधि, मनपर्याय तथा केवलज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है। यह कथन पारमार्थिक कथन की अपेक्षा से जानना चाहिये। क्योंकि इन्द्रिय और मन से होने वाले ज्ञान को व्यावहारिक प्रत्यक्ष भी माना गया है।

मैं ज्ञानाचार के जिन-जिन आठ भेदों की चर्चा कुछ दिनो से आपके सामने कर रहा हूँ। उसमे सर्वप्रथम कालाचार के स्वरूप का प्रतिपादन चल रहा है। बन्धुओ ! एक विद्वान् सारी जिन्दगी पुस्तक एव शास्त्रों को पढने मे

खपा देता है। दूसरो को भी पढा देता है, पर क्या उसने यथार्थ मे पुस्तके पढी है, जब तक जीवन में रूपान्तरण नही आवे तब तक उसका पढना, पढना नही है। स्वाध्याय और शास्त्र पठन के साथ ही जब किसी के जीवन में सही परिवर्तन आने लगता है, उत्तेजना कम होती है। ज्ञानी के ज्ञान की वास्तविक फसल जिसके जीवन मे लहलहाती है, तो हम यह कह सकते है, कि उस व्यक्ति ने ज्ञान की सम्यक् आराधना की है।

यदि शास्त्र पढले पर परिवर्तन कुछ भी नही आये, सिर्फ वह ज्ञान के अह में डूबा रहे, अपने आपको पडित मानता रहे, यदि मानले कि मेरे समान कोई ज्ञानी नही है तो अह का वह कीड़ा उसके आध्यात्मिक जीवन में "घुन" का काम करता है। जैसे खेती में जब घुन लग जाता है तो सारी फसल नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार उस तथाकथित ज्ञानी की ज्ञान रूपी फसल सिर्फ अक्षरीय ज्ञान तक ही सीमित रह जाती है। आगे नही पहुँच पाती है। बन्धुओ! आज यह स्थिति बहुतो की हो रही है, कपड़े की चिन्दी पा लेने मात्र से बन्दर बजाज नही बन सकता है। वैसे ही थोडा सा ज्ञान मात्र हो जाने से ही आज के कई साधक अपने आपको बहुत बड़े ज्ञानी समझने लगते है, लेकिन उनका यह मानना उन्ही के पतन का कारण है। वर्तमान में अवधिज्ञान का सम्पूर्णत: विच्छेद नही हुआ है. सिर्फ परम अवधिज्ञान का ही विच्छेद हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आज भी व्यक्ति को अवधिज्ञान हो सकता है और श्रुतज्ञान के साधनों की तो कोई कमी नही है। साधना के बल से श्रुतज्ञान मे विशिष्टता लाई जा सकती है, परन्तु वर्तमान मे कई मनुष्य थोड़े से श्रुतज्ञान में ही सतुष्ट करके विराम ले लेते है, यह समझ लेते है कि मैने बहुत ज्ञान अर्जित कर लिया है। उनके इस अहं को दूर करने के लिये ही मै यह बात वता रहा हूँ। चाहे चौदह वर्ष पूर्वधारी ज्ञानी भी क्यो न हो जाय पर वह भी केवलज्ञान के सामने तो समुद्र मे बूँद के तुल्य भी नही है।

बन्धुओ! जब तक आप आगे का सर्वोच्च केवल ज्ञान को प्राप्त करने की कोशिश नही करोगे तब तक परिपूर्ण लक्ष्य वरण नहीं कर सकोगे।

गौतम स्वामी जव आनन्द श्रावक को दर्शन देने के लिये गये तव आनन्द जी ने कहा—भगवन्! मैं आपके चरण स्पर्श करने की भावना रखता हूँ, पर आप कुछ आगे पधारने की कृपा करावें। तव गौतम स्वामी आनन्द श्रावक के पास आये। आनन्द श्रावक ने तीन वार मस्तक झुकाकर वन्दन नमस्कार किया और फिर पूछा कि भगवन्! क्या गृहस्थ को घर में रहते हुए अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है? गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—"हंत्ता अत्थि" "हाँ आनन्द हो सकता है"—तो भगवन् मुझे भी अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, उसके द्वारा मैं पूर्व की पश्चिम और दक्षिण मे ५०० योजन लवण समुद्र के अन्दर तक, उत्तर मे चूल

हिमवंत पर्वत तक, अधोलोक में प्रथम नरक के लोलुच्च नरक तक, ऊर्ध्वलोक में सोधर्म स्वर्ग जानने और देखने लगा हूँ। यह सुनकर गौतम स्वामी ने आनंद श्रावक को कहा—कि हे श्रावक! गृहस्थावास मे रहे हुये गृहस्थ को अवधिज्ञान तो उत्पन्न हो सकता है, पर इतना विशाल अवधिज्ञान श्रावक को नही हो सकता है। जबकि आनन्द श्रावक को उतना ज्ञान हो चुका था, जिसका स्पष्टीकरण स्वयं भगवान् ने किया था। लेकिन विशिष्ट ज्ञान के धनी गौतम स्वामी इस बात को नही जान पाए कि आनन्द श्रमणोपासक को कितना ज्ञान हुआ? इस पर कई भाई-बहन कहते है कि गौतम स्वामी चार ज्ञान के स्वामी है तो क्या उपयोग नही लगा सके। प्रथम तो वे चार ज्ञान के स्वामी थे, ऐसा विशेषण आनन्दजी के यहाँ जाते गौतम स्वामी के शास्त्र में देखने को नही मिलता है, तथा यह मान भी लिया जाय कि उन्हें चार ज्ञान थे, तो भी वे आनन्दजी श्रावक के अवधिज्ञान को नही जान सकते है, क्योंकि ज्ञान तो अरूपी है। और अवधि और मन:पर्याय ज्ञान का विषय रूपी है, अत: गौतमस्वामी भले ही उस समय ज्ञान के धनी हों पर वे आनन्द श्रावक के उस अरूपी ज्ञान को अपने रूपी विषयक अवधि, और मन.पर्याय ज्ञान से कैसे जान सकते? यही कारण था कि भगवान महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से कहा कि—

"न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम! मा पमायए॥" उत्तरा. १०/३१

अर्थात् हे गौतम! तू आज जिनको नही देखता है। प्रभु महावीर के इस कथन से यह भी स्पष्ट जाहिर हो रहा है कि छद्मस्थ रूपी विषयक ज्ञान से अरूपी ज्ञान को नही जान सकते है।

त्रिषष्टिशलाका पुरुष में एक प्रसंग आया है कि एक बार भगवान् महावीर चम्पक नगरी के बगीचे में तप सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजमान थे। तब वहाँ का सम्राट जिसका नाम "शाल" था, वह अपने युवराज "महाशाल" आदि को साथ लेकर भगवान के चरणों में पहुँचा। भगवान् की अपूर्व देशना श्रवण कर सम्राट को संसार से विरक्ति हो गई और कहने लगे कि भगवन्! ऐसा अमृतमय ज्ञान का निर्झर आज जिन्दगी में मुझे प्रथम बार ही मिला है। मैं यह जान पाया कि इस जीवन मे कितनी महान् शक्ति है। उसको प्राप्त करने पर लोकालोक देखा जा सकता है। पर कब, जब उसके अनुरूप पुरुषार्थ करें, तब। भगवन्! मैं भी आपश्रीजी के चरणों में दीक्षित होकर अपनी अनन्त ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित करना चाहता हूँ। तब प्रभु महावीर ने फरमाया—

"अहा सुहं देवाणुप्पिया।
मा पडिबंध करेह॥"

जैसा तुमको सुख हो वैसे करो, शुभ कार्य में विलम्ब मत करो। जब सम्राट ने पूर्णरूपेण दीक्षित होने की तैयारी करली, तब तक उनका पुत्र युवराज कहने लगा कि आप तो दीक्षा ले रहे है। इस दुर्लभ मनुष्य भव को सार्थक बनाना चाह रहे हो, तब यह बंधन रूप राग का भाव मेरे सिर पर क्यों डाल रहे हो ? तब महाराज ने कहा कि नही भाई—तुम मेरे अप्रिय नहीं हो, यदि तुम भी इस संसार रूपी जल से निकलना चाहते हो तो तैयार हो जाओ, मै तुम्हे सहर्ष अनुमति देता हूँ दीक्षा लेने की। तब युवराज ने पूछा कि पिताजी राज्य किसको सँभलाओगे ? तब महाराज ने कहा "तुम इसकी चिन्ता मत करो", भानजे को राज्य भार सौप देंगे। इस प्रकार भाणेज का राजमहोत्सव मनाकर पिता पुत्र दोनो प्रभु महावीर के चरणो में दीक्षा ले लेते है, और दीक्षित होकर प्रभु महावीर के साथ विचरने लगते है। जब एक बार चम्पा नगरी मे भगवान् महावीर का समवसरण हुआ तब वे दोनों साथ थे, उनमें जो शालमुनि थे वे भगवान् से निवेदन करने लगे—भगवन्! मेरा भानजा संसार रूपी जेलखाने में पड़ा हुआ है, आप आज्ञा फरमायें तो उसे भी इस जेल से छुटकारा दिलाने के लिए पृष्ठ चम्पा नगरी में जाना चाहते है, तब भगवान् ने उन्हें आज्ञा प्रदान की तब पिता-पुत्र जो मुनि बन चुके थे, गौतम स्वामी के साथ पृष्ठ चम्पा नगरी पहुँचते है। और तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। महाज्ञानी गौतम स्वामी ने अमृतोपम वाणी से सम्राट को उद्बोधन दिया उससे वे जागृत होकर मुनिशाल का भानजा सम्राट गांगली, पुत्र को राज्य भार संभलाकर माता-पिता के साथ दीक्षा अंगोकार कर लेते है। इस प्रकार गौतम स्वामी पाँच भव्यात्माओं को लेकर पुनः जब प्रभु महावीर के चरणों मे पहुँचने हेतु पृष्ठ चम्पा से विहार कर जा रहे थे, तब उस नवीन संतो को ज्ञान देते हुए कहा कि तुम अब भगवान् की विराट् परिषद् मे जा रहे हो, वहाँ विनय धर्म का यथोचित पालन करना। केवली की, अवधिज्ञान की, मन.पर्याय ज्ञान की आदि-आदि सभी की जुदी-जुदी परिषद है, तुम नवदीक्षित की परिषद् मे जाकर बैठना। गौतम स्वामी की यह आज्ञा सभी ने विनयपूर्वक शिरोधार्य की। लेकिन उनके अन्दर में भावों की विशुद्धि निरन्तर बढ़ती चली गयी। आत्मा ऊर्ध्वगामी साधना के लिये सर्वतोभावेन समर्पित होकर तन, मन, वचन से एकाकार हो गई। एक ही लक्ष्य की तरफ जिन का ध्यान तन्मय हो गया। भावनाओं मे विशुद्धि के प्रकर्ष से गुणस्थानो पर आरोहण करने लगे। क्षपक श्रेणी पर चढ़कर अन्तरमुहूर्त में ही भगवान् के पास पहुचने से पहले ही घनघाती कर्म क्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये और महाप्रभु के समवसरण में आकर सीधे केवली परिषद में आकर बैठ गये। तब गौतम स्वामी को आश्चर्य हुआ, उनके मन मे कई संकल्प, विकल्प उठने लगे। तब घट-घट के अन्तर्यामी भगवान् महावीर कहने लगे कि गौतम ! तु क्या सोच रहा है। ये तन-मन से सर्वतोभावेन तुम्हारी आज्ञाओं में समर्पित होकर चलने वाले मुनि अब तुम्हारी आज्ञा पालन की

स्थिति से बहुत आगे बढ चुके है अर्थात् इनको तो केवलज्ञान, केवलदर्शन हो गया है । तब गौतम स्वामी ने यह सुना तो कहने लगे भगवन् ! यह क्या ? मै इतने वर्ष से श्रुतचारित्र धर्म की आराधना कर रहा हूँ, पर अभी तक मुझे केवलज्ञान नही हुआ और ये मुनि जिनको अभी दीक्षा देकर मै लाया और इतना जल्दी इन्हे केवलज्ञान हो गया, भगवन् ! ऐसा क्यो ? गौतमस्वामी के भीतर हलचल सी मच गई, उसे शात करने की दृष्टि से सांत्वना देते हुए महाप्रभु ने फरमाया कि हे आयुष्मान् गौतम ! तुम्हारा मेरे प्रति अनुराग है, वह प्रशस्त है, वह आगे बढनेवाला है । राग दो प्रकार का होता है—प्रशस्त और अप्रशस्त । प्रशस्त राग गुरु के प्रति, श्रुत के प्रति होता है और माता-पिता, पारिवारिक सदस्यों और पुद्गलों के प्रति जो अनुराग होता है । वह अप्रशस्त राग है । गौतम ! तुम इतने बेचैन मत बनो, कारण कि तुम्हारा जो मेरे प्रति प्रशस्त राग है, वह तुम्हे आगे बढाने वाला है । पर अभी तक काल की परिपक्वता नही आई है, कर्मो के क्षय की स्थिति नही बनी है, तुम्हे केवलज्ञान नही हो पा रहा है । अभी तुम्हारे कुछ कर्मो का उपभोग अब शेष है, पर जब मुझे मोक्ष हो जायेगा, तब तुम केवली बन जाओगे । अत: खेद मत करो, पुरुषार्थरत रहो । उत्तराध्ययन सूत्र के दसवे अध्ययन की पैतीसवी गाथा मे भगवान् ने गौतम स्वामी को सम्बोधित करते हुए फरमाया कि हे गौतम—

अकलेवर-सेणि उस्सिया, सिद्धि गोयम ! लोय गच्छसि ।
खेम च सिव अणुत्तर समय गोयम ! मा पमायए ।।

अर्थात्—हे गौतम ! शरीर से रहित जो सिद्ध श्रेणि है, उसके सदृश पवित्र क्षपक श्रेणि पर चढकर सर्वोत्कृष्ट कल्याण रूप सिद्धलोक को प्राप्त होगा अत: तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

यहाँ विचार करने की बात है कि इतने विशिष्ट ज्ञानी को भी महाप्रभु ने समय मात्र का भी प्रमाद नही करने के लिए कहा है जिनका कि उसी भव मे मोक्ष निश्चित है । तो फिर आज के अधिकांश साधक जिनके पास श्रुतज्ञान भी पूरा नही है, फिर उनके ज्ञान की इति भी हो गई, जो प्रमाद या आलस्य में समय व्यतीत करे । गौतम स्वामी से सम्बन्धित यह घटना चाहे किसी भी रूप मे घटित हुई हो लेकिन इससे यह शिक्षा मिलती है कि सदा आलस्य, प्रमाद त्यागकर पुरुपार्थ करते रहो ।

[यहाँ आप एक बात स्पष्ट करले कि गौतम स्वामी ने जो गागली सम्राट के माता-पिता को दीक्षा दी, वह सारी विधिवत् हुई थी । और जब वे महाप्रभु के समवसरण मे पहुँचे तो गागली अनगार के माताजी जो अब सर्वज्ञ बन गई थी । साध्वी की केवली परिषद् मे जाकर विराजी । —सम्पादक]

आज हम देख रहे है कि कई साधु जो शास्त्राध्ययन भी कर रहे है, तो वे उसी में संतुष्ट बने बैठे हैं, सोच रहे हैं कि हम तो साधु बन गये हैं, हमने इतना बड़ा संयम ले रखा है, बस और हमें क्या चाहिये। और श्रावक जिसने सामायिक, प्रतिक्रमण, भक्तामर आदि-आदि सीख लिया और सोचे कि हमने तो बहुत कुछ सीख लिया है, यही भावना तो आगे बढ़ने में रुकावट डाल रही है, इसे हटाकर ज्ञानाचार के भेदों को समझते हुए आगे बढ़िये। कालाचार से शास्त्रीय स्वाध्याय का समय ध्यान में रखिये। शास्त्रीय स्वाध्याय करने के अनन्तर जब स्वयं की स्वाध्याय-चिन्तन-मनन चालू करते है, उसमें निमग्न हो जाते है, तो ज्ञान का अथाह आनन्द भी एक दिन पा सकते हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि जितना ज्ञान मिला है उसका अभिमान नही करते हुए ज्ञान का ज्ञान करिये कि यह तो है ही पर मुझे इससे बहुत आगे बढना है, इसके लिए कालाचार को समझें, ज्ञानाचार सम्पन्न बनें। जैसे एक लखपति जब हजारपति की ओर देखता है तो उसे अभिमान होता है, पर करोड़पति की ओर देखता है तो उसका अभिमान उतर जाता है। इसी प्रकार छोटे-मोटे ज्ञानी को देखकर अपने ज्ञान का अहं न करें प्रत्युत विशिष्ट ज्ञानी की ओर निहारते हुए अपनी अपूर्ण अवस्था का स्थल पाने की भावना रखते हुए अपने ज्ञान को, अपने पुरुषार्थ को अधिक से अधिक बढाने का प्रयत्न करें, ताकि एक न एक दिन अवश्य मंगलमय दशा को प्राप्त कर सकें।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२९-७-८५
सोमवार

३० विनयाचार–बहुमानाचार

(सम्यक्ज्ञान का द्वितीय-तृतीय आचार)

वीतराग परमात्मा के उपदेश को समझने के लिये उनकी स्तुति चाहे किसी रूप में, किसी भी नाम से की जाए, पर करना आवश्यक है। स्तुति का अर्थ है प्रभु की प्रशंसा करना, प्रभु के गुणों का वर्णन करना और उसकी अभिव्यक्ति स्वयं में लाने के लिये सत्पुरुषार्थशील बनना।

कई लोग प्रार्थना का अर्थ याचना करना समझते है, परन्तु लेने की कामना रखकर प्रार्थना करने वाले सामान्य व्यक्ति होते हैं, तत्वज्ञानी नही। चूंकि तत्वज्ञानी यह जानते है कि भगवान् कुछ नही देते है। लेन-देन का प्रसंग संसारियों का है, व्यापारियों का है। व्यापारी वर्ग बाजार में एक वस्तु दूसरे को देते है और उससे दूसरी वस्तु लेते है, यह प्रक्रिया व्यापारी वर्ग की है। उनकी यह प्रक्रिया स्वार्थपूर्ण होती है। अन्दर में उनकी कामना रहती है कि मै ज्यादा से ज्यादा कमालूँ। वे अन्य के कष्ट, दु:ख की परवाह नही करते। यदि ऐसा लेन-देन का कार्य कोई भगवान् के साथ करने के लिये प्रार्थना करता है तो वह उत्तम कोटि का भक्त नही है, प्रत्युत: निम्न कोटि का भक्त है। जो वस्तु अन्यों से उपलब्ध हो सकती है, उसकी माँगनी भगवान् से की जाती है तो यह बात कम ज्ञान का परिणाम है। संसार में धन है, मकान है, फ्लैट है, वस्त्र है, सोना है, चांदी है इन सब पदार्थो की मांगनी किसी बड़े सेठ को खुश करके की जाए, तो वह भी इन वस्तुओं की पूर्ति कर सकता है, यदि कोई इन्ही पदार्थो की मांगनी भगवान् से करता है तो वह भगवान् को क्या समझता है—पैसे वाला सेठ ? यह धारणा यदि है तो बिल्कुल गलत है।

एक स्वर्ग का इन्द्र यहाँ आकर आपकी धर्म करणी से प्रसन्न होकर मन-इच्छित वरदान माँगने का प्रस्ताव रखे तो आप उससे क्या मागोगे ? आपकी कुछ मांगने की इच्छा होगी या नही ? उत्तर होगा—क्यों नही होगी ? अरे ! आप तो बुद्धिमान है। अत. संभव है मोटी सारी लिस्ट बनालोगे। पर यदि कोई मनुष्य कहे कि इन्द्र ! यदि आप मेरे पर खुश हो तो मैं वरदान माँगता हूँ कि मेरे घर मे एक भैंस है, उसके लिये एक घास का भारा लाकर दे दो, दूसरा मनुष्य कहे कि मुझे भोजन बनाने हेतु लकडी अथवा कोयले की आवश्यकता है, सो वह लाकर दे दो। तीसरा कहे कि मेरे लडके को तीन दिन से बुखार आ रहा है, आप बुखार मिटा दो। चौथा कहे कि मेरी पुत्री की शादी नही हो रही

है, आप उसकी शादी करा दो। तो आप विचार करिये कि ऐसी मांग करने वालों ने इन्द्र की कितनी कद्र की, कितनी कीमत की ? जिसने घास का भारा माँगा उसने इन्द्र की कीमत मजदूर के बराबर की। जिसने लकड़ी, कोयले मांगे, उसने इन्द्र की व्यापारी जितनी कीमत की तथा जिसने बुखार उतारने के लिये कहा उसने मेटासिन की गोली जितनी कीमत की तथा जिसने पुत्री की शादी कराने की बात कही, वह तो एक सामान्य पुरुष भी करा सकता था। ऐसे मांगने वालों को आप यह कहोगे कि ये नासमझ है। इन्होंने इन्द्र की कद्र-पहिचान नही की कि उनमें कितनी शक्ति है। बल्कि इन तुच्छ वस्तुओं को मांगकर इन्द्र का अपमान कर दिया। चूँकि छोटी-छोटी वस्तु मागने से उनकी कद्र नही होती वरन् उनका अपमान होता है। भारत के प्रधानमन्त्री यदि यहाँ आये और आपके काम से खुश होकर आपसे पूछे कि आपको क्या चाहिये ? और आप उन्हे कहे कि आप इस स्थानक का झाड़ निकाल दीजिये तो उनका सम्मान हुआ या अपमान ? अपमान ही माना जायेगा तो फिर प्रधानमन्त्री से इन्द्र का पद बड़ा है और उस इन्द्र से भी वीतराग भगवान् बड़े है। पंच परमेष्ठी मंत्र से जिन भगवान् को याद करते हो, उनकी आप कितनी कीमत कर रहे हो ? यही तो ज्ञान की, श्रद्धा की कमी है। इसी कारण कई व्यक्ति वीतराग देव की कभी जानते-अजानते अशातना कर बैठते है, अविनय कर बैठते है। अतः आवश्यक है कि सही ज्ञान पाया जाय, ताकि आत्मा में ज्ञान का अभिनव आलोक प्रसरित हो, जिससे हिताहित का विवेक किया जा सके।

विश्व की समस्त भव्यात्माओं मे ज्ञान की अनन्त शक्ति दवी हुई पड़ी है। जिस प्रकार कि अंगारे पर राख आ जाने से उसकी तपन आच्छादित हो जाती है, सूर्य पर बादल आ जाने से सूर्य का प्रकाश-तेज आच्छादित हो जाता है। इसी प्रकार भव्यात्माओ की अनंत-अनत ज्ञान शक्तियाँ कर्मो से आच्छादित है। उन्हें उद्घाटित करने के लिये कर्मो के आवरण को हटाना होगा। ज्ञान का अभिनव आलोक विकसित करने हेतु सतत पुरुषार्थशील वनना होगा। उत्तराध्ययन के ३२ वे अध्ययन की दूसरी गाथा मे महाप्रभु ने वतलाया है—

"नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥"

अज्ञान और मोह का क्षय करिये, राग और द्वेष को हटाइये, परिपूर्ण ज्ञान की ज्योति जगाइये और एकान्त मोक्ष को प्राप्त करिये। बंधुओ ! वीतराग देव तो निमित्त बनते है, वास्तव में उपादान हमारा ही होता है। जब वह स्वयं पुरुषार्थ करता है तभी भीतर मे रहा हुआ ज्ञान प्रकाश बाहर आ सकता है। भगवान् की स्तुति इसलिए की जाती है कि वे भव्यात्माओं के ज्ञान को प्रकट करने मे निमित्त बनें, जिससे उनके भीतर में रहा हुआ ज्ञान अनावृत्त हो सके।

छोटे बालक को आप स्कूल में भेजते है, वह बालक वर्णमाला सीखता है, कितना प्रयत्न करता है, बार-बार उसे देखता है, लिखता है, तब वह उसे जान लेता है। उसी प्रकार जो ज्ञान भीतर है उसे निरन्तर पुरुषार्थ करने पर प्रकट किया जा सकता है। इसके लिये ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न करना अतीव आवश्यक है। आप किसी को निमन्त्रण देंगे तो ही वे आपके घर आयेंगे और उनका आप सत्कार सम्मान करेंगे तभी वे आपके यहाँ जीमेंगे। इसी प्रकार ज्ञान के प्रति विनय करना आवश्यक है, ज्ञान और ज्ञानी के प्रति बहुमान करना आवश्यक है। विनय, बहुमान होगा, तभी वह भीतर में प्रवेश कर सकता है। ज्ञान के प्रति विनय कैसे करें ? इसके विए वीतराग देव के ज्ञान की कीमत करें। यह मानकर चले कि वीतराग देव का जो ज्ञान था, है, वह अद्वितीय, अनुपम है, सत्य एवं सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी श्रद्धा करके विनय के साथ उसे पाने की पात्रता अर्जित करें। तदनन्तर वीतराग देव के उपदेश का चिन्तन-मनन करे। ध्यान में बैठकर प्रभु के सिद्धान्तों की गहराइयों में उतरे। उन्हे मथकर उनका नवनीत निकालें। यद्यपि ध्यान की प्रक्रिया भी महाप्रभु ने बहुत बतलाई है। संत बाहर जाते है तो आकर ध्यान करते है, सोते एवं जागते समय भी ध्यान करते है। जैसे—साधु को समय-समय पर ध्यान की प्रक्रिया प्रभु ने बतायी है, वैसे ही श्रावकों को भो सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध आदि मे ध्यान की प्रक्रिया का विधान किया गया है। ये ध्यान तो फिर भी आप करते ही होंगे पर आप ज्ञान को प्रकट करने का कितना व कौन-सा ध्यान कर रहे है ? "णमो नाणस्स" की माला फेरने मात्र से अथवा "णमो नाणस्स" का ध्यान करने मात्र से ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। सबसे पहले तो ज्ञान को प्रकट करने के लिये ज्ञान के प्रति एवं ज्ञानी के प्रति विनय होना चाहिये। विनय के साथ बहुमान भी अति आवश्यक है।

विनय का स्वरूप तो आप सम्यक् तरीके से जानते होंगे। फिर भी कुछ विनय का स्वरूप भी स्पष्ट कर देता हूँ। "विनय" सम्यक् ज्ञान का द्वितीय आचार है। विनय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बतलाया है कि 'विनीयते कर्माणनेनेति विनयः' जिससे व्यक्ति कर्म बंध से निवृत्त होता है, उसे विनय कहते है। श्रेष्ठ पुरुषो का विनय करने से, झुकने से भव्यात्माओं के कर्म भी झुक जाते है और एक दिन आत्मा से अलग भी हो जाते है। स्थानाङ्ग सूत्र के ७ वें ठाणे में विनय के ७ भेद प्रतिपादित किये है—"सत्तविहे विणए पण्णत्ते तंजहा—णाण विणए, दंसण विणए, चरित्त विणए, मण विणए, वत्ति विणए, काय विणए, लोगोवयार विणए।

विनय के सात भेद है—ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, काय विनय और लोकोपचार विनय। सात प्रकार से अपने विनय भावों को बनाये रखना सम्यग् ज्ञान पाने के लिये आवश्यक है।

विनम्रता कैसी होनी चाहिये इसके लिये गौतम स्वामी का आदर्श सामने है। भगवान् जब निर्वाण पधार रहे थे, उस समय दूर-दूर से लोग महाप्रभु की सेवा में आए हुए थे महाप्रभु के निर्वाण को देखने के लिये। ऐसे समय में महाप्रभु ने गौतम स्वामी को आदेश दिया—देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये। गौतम स्वामी उसी क्षण बिना रुके खड़े हो गए और महाप्रभु को वन्दन कर देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने प्रस्थित हो गए।

बंधुओ! विचार करिये! गौतम स्वामी का विनय कितना उच्चकोटि का था। उन्होंने मुँह से उफ तक करने की बात तो दूर रही, पर मन में भी यह नही सोचा कि महाप्रभु इस विकट समय में मुझे क्या आदेश फरमा रहे हैं। यह तो बाद में भी किया जा सकता है। अभी तो मुझे यही रहना चाहिये। ऐसा कुछ न सोचकर वे अत्यन्त विनय के साथ वहां से रवाना हो गए। विनय ऐसा होना चाहिये जीवन में। जब इतना उच्च कोटि का विनय आता है, तब विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति में भी देरी नही लगती। गौतम स्वामी ने विनम्रता का उत्कृष्ट रूप उपस्थित किया तो विशिष्ट परिणाम भी सामने आया कि उन्हें केवलज्ञान केवल दर्शन प्राप्त हो गया।

यह तो प्रभु महावीर के समय की बात है। लेकिन मैं आपको निकट अतीत मे हुई घटना भी सुना देता हूँ। प्रभु महावीर की इस क्रांतिकारी परम्परा के ७६ वें पाट पर विराजमान आचार्य श्री उदयसागर जी म. सा. के जीवन से सबधित घटना है। उन्हे जब यह ज्ञान हुआ कि रामपुरा में केशरीमलजी गांग नाम के श्रावक शास्त्रों के विशिष्ट ज्ञाता है तो वे जब रामपुरा पधारे तो सोचा कि उनसे शास्त्रीय चर्चा की जाय ताकि यदि उनके पास और भी नया ज्ञान हो तो प्राप्त हो सके।

आचार्य प्रवर जिज्ञासु बने और उस श्रावक को अपने यहाँ न बुलाकर स्वयं चलकर उसके घर पहुँचे। जब केशरीमलजी को ज्ञात हुआ कि आचार्य प्रवर ज्ञान–पाने की जिज्ञासु भावना से मेरे पास आ रहे है तो उनके मन में आचार्य प्रवर की जिज्ञासु भावना के प्रति अत्यन्त श्रद्धा जागृत हुई। किन्तु इसी के साथ ही एक विचार मन में आया कि जरा आचार्य प्रवर का परीक्षण किया जाय कि इनमे जिज्ञासा के साथ ज्ञान पाने के लिये विनयाचार की स्थिति भी है या नही? आचार्य प्रवर ने जब केशरीमलजी के घर में प्रवेश किया तो आश्चर्य! कि वह श्रावक उठकर भी सामने नहीं आता है। किन्तु विनयाचार की गहराइयों मे उतरे आचार्य प्रवर कुछ भी अन्यथा न विचारते हुए उन श्रावक के पास पहुँचकर फरमाते है कि मुझे आपसे शास्त्र चर्चा कर ज्ञान प्राप्त करना है। तब केशरीमलजी ने कहा कि अभी अवसर नही है। एक महान् आचार्य प्रथम तो उनके घर पहुँचे और फिर श्रावक यह कह दे कि अभी अवसर नही है तो आज के युग मे कैसी विचित्र स्थिति बन सकती है, यह विचार करिये। परन्तु

आचार्य प्रवर तो उसी जिज्ञासु भावना के साथ लौट गये। दूसरे दिन पुनः उनके घर पर जाकर यही कहा, तब भी उन श्रावक जी का यही जवाब मिला। फिर भी आचार्य प्रवर ने कुछ भी अन्यथा नही विचार किया और तीसरे दिन भी उसी जिज्ञासु भावना के साथ उनके घर पहुँचे, तव केशरीमलजी यह अच्छी तरह समझ गये कि आचार्य प्रवर सम्यक् ज्ञान और क्रिया की ठोस भूमि पर खड़े हैं। इनके जीवन में संयमी मर्यादाए साकार हो उठी है। बस! फिर क्या था, ज्योंही उन्होंने आचार प्रवर को दूर से आते देखा, त्यों ही उठकर सामने गये। विनम्रता से वन्दन नमस्कार किया और अश्रुधारपूर्वक अपने अविनय के लिये बार-बार क्षमा याचना करने लगे। वास्तव मे आचार्य प्रवर, प्रभु महावीर के संयमी सिद्धान्तो के प्रायोगिक आदर्श थे। उनका जीवन प्रभु महावीर के सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष करने वाली प्रयोगशाला था। वे अपने जीवन प्रयोग से महाप्रभु के सिद्धान्तों का प्रायोगिक रूप उपस्थित करते थे। केशरीमल जी गाग ने निवेदन किया—"कहाँ आप और कहाँ मै? आपके विशाल ज्ञान के आगे मेरा ज्ञान क्या महत्त्व रखता है? फिर भी आप जो चाहें, चर्चा करे। मेरे पास जो कुछ है, गुरुओं के प्रसाद से है, उसे अवश्य मै आपको देने को तैयार हूँ। चर्चा करने से आपको मेरे से कुछ मिले या न मिले, पर मुझे आपसे बहुत कुछ मिलेगा।"

बन्धुओ! सम्यक् ज्ञान पाने के लिये किस प्रकार का विनय होना चाहिये, जरा विचार करिये। ऐसे आदर्शो से कुछ जीवन में शिक्षा ग्रहण करने का प्रसग है। आचार्य प्रवर की विनम्रता का प्रभाव उनके शिष्यों में पर्याप्त मात्रा मे था। उसके भी कई प्रसंग है। पर एक प्रसंग सामने रख देता हूँ।

आचार्य प्रवर का एक शिष्य अत्यन्त विनयशील था। उसकी विनम्रता को लेकर गुण गरिमा बहुत दूर-दूर तक फैली हुई थी। इसी विनम्रता के आदर्श को देखने के लिये एक बार एक सरकारी आदमी आचार्य प्रवर के पास पहुँचा और पूछने लगा कि भगवन्! मैने सुना है कि आपके पास एक अत्यन्त विनम्र-शील मुनिराज है, मै उनके दर्शन करना चाहता हूँ। आचार्य प्रवर ने उसका कुछ भी उत्तर नही देते हुए एक साधु को आवाज लगाई। वे ऊपर बैठे हुए स्वाध्याय कर रहे थे। उन्होने ज्यो ही गुरुदेव की आवाज सुनी तो 'तहत्ति' के साथ वाणी को स्वीकार करते हुए विनम्रता से गुरुदेव के चरणो में आ खड़े हुए। गुरुदेव ने उन्हे कुछ भी न कहते हुए वापस भेज दिया। वे ऊपर पहुँचे ही थे कि पुनः आवाज लगाई। वे पुनः उसी विनम्रता के साथ उपस्थित हुए। फिर उन्हे कुछ भी कहे विना वापस भेज दिया। यह क्रम लगातार लगभग २७ वार तक चलता रहा। वे मुनिराज विना किसी तर्क के अत्यन्त श्रद्धा के साथ गुरुदेव के चरणो में उपस्थित होते रहे। उनके मन में भी यह भावना नही आयी कि गुरुदेव यह क्या कर रहे हैं? काम है जो वतला क्यों नही देते? वार-वार वुलाते क्यो है?

ऐसा कुछ भी न सोचकर वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ आते रहे। आखिर वह अफसर समझ गया कि विनयशील मुनिराज कौन है ? उसने गुरुदेव से निवेदन किया— भगवन् मैंने इनके दर्शन कर लिये है। आप इन्हें रोकिये। बार-बार कष्ट न दें।

सज्जनो ! देखिये विनम्रता का आदर्श ! क्या है ऐसी विनम्रता, आज की भव्यात्माओं मे ? मै सबकी बात नही कहता, पर अधिकांश साधक-साधिकाओं के जीवन पर विचार करता हूँ तो विनय की बहुत कमी महसूस होती है। गुरुदेव यदि शिष्य को बुला रहे है तो पहले तो वह जल्दी से आयेगा ही नही और आ भी गया और उसे कुछ भी बतलाये बिना कारण जाने के लिये कहा गया तो वह तुरन्त प्रतिक्रिया कर बैठेगा कि अरे ! फिर बुलाया किस लिये ? बिना कारण इधर-उधर घुमाने का क्या तात्पर्य ? विनम्रता के अभाव में ही कइयों की साधना सफल नही हो पाती। महाप्रभु ने विनय को धर्म का मूल बतलाया है। "विणओ धम्मस्स मूलो" जब तक विनयाचार की स्थिति जीवन मे नही आयेगी तब तक सम्यग्ज्ञान का विकास नही हो सकता।

वैसे आप लोग देख ही रहे है कि ये संत-सती वर्ग किस प्रकार सुन्दर तरीके से विनय एवं अनुशासन पद्धति को लेकर चल रहे है। यह सब उन अतीत के क्रान्तिकारी आचार्यो की साधना का परिणाम है कि एक ही की आज्ञा में पूरा साधु-साध्वी समाज, शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित, चातुर्मास आदि कार्य सम्पन्न कर रहा है, यह भी विनम्रता का प्रतीक है।

भव्यात्माओ के जीवन में सम्यग्ज्ञान की ज्योति जगाने हेतु इस दूसरे विनयाचार को जीवन में स्थान दीजिये। गुर्वादिक के प्रति विनम्रता का व्यवहार रखिये। अवश्य ही यह विनम्रता विकास की ओर ले जाने वाली बनेगी। विनम्रता के अभाव का ही परिणाम समझिये कि आज की युवापीढ़ी भौतिक विज्ञान की दृष्टि में इतना विकास करने के वाद भी दु:ख द्वन्द्वों मे उलझती जा रही है। अत: स्पष्ट है जब तक जीवन मे विनय नही आयेगा, तब तक सम्यग्ज्ञान नही आयेगा और जब तक सम्यक् ज्ञान नही आयेगा, तब तक सम्यक्-आचरण नही बन सकेगा और बिना सम्यक्-आचरण के शांति पाने की कल्पना मृग मरीचिका के तुल्य ही होगी।

विनयाचार के बाद सम्यग्ज्ञान का तृतीय आचार है—बहुमानाचार। बहुमान का अर्थ है ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय मे भक्ति और श्रद्धा का भाव रखना। ज्ञानी एवं गुरु का दिल जिससे प्रसन्न हो वैसा ही कार्य करना, सर्वतो-भावेन उनके प्रति समर्पित हो जाना। जब तक पूरा समर्पण नही होता है, तब तक ज्ञान हृदयगम नही होता। विद्वान् श्री अम्बिकादत्त जी ओझा के जीवन का प्रसंग है जब वे मनो को पढाते थे, तो कभी अपने जीवन का प्रसंग सुनाते हुए कहते थे। कि आज विद्यार्थी पढने की इच्छा कम रखते है। यही नही ज्ञान प्राप्त

करने के लिये स्कूल-कॉलेजों में जाते है, पर अध्यापकों पर अपना आर्डर चलाते हैं, किन्तु हमारे समय में पढ़ाने वाले बहुत कम मिलते थे, और जो मिलते थे, वे भी पैसे लेकर नहीं पढ़ाते थे, वे कहते थे कि हम ज्ञान नहीं बेचते । पैसे लेकर पढ़ाने से हम व्यापारी बन जायेगे । वे गरीब भी क्यों न हों ? खेती-वाड़ी करके काम चला लेते थे, मजदूरी करके पेट भर लेते थे, पर विद्या का व्यापार नही करते । मैं जिस गुरु से पढ़ता था, उनकी ऐसी ही गरीब अवस्था थी । वे खेती का कार्य करते थे, और हम स्वयं उस समय गरीब अवस्था में थे, मजदूरी करके ही पेट भरते थे । आज तो विद्यार्थी को कितने पौष्टिक तत्त्व मिलते है शरीर को तन्दुरुस्त रखने के लिये । उनके लिए बोर्डिंग में हर साधन की उपलब्धि हो जाती है, पर हमारी यह अवस्था थी कि खाने को धान पाने के लिये भी परिश्रम करना पड़ता और पढ़ाने के लिये भी गुरुजी के पास टाइम कहाँ रहता ? गुरूजी जब खेती में हाँकते-हॉकते थक जाते थे तब, जब विश्रान्ति के लिए बैठते, उस समय हम उनसे विनय-वैयावच्च करते हुए ज्ञान लेते थे और रात्रि में उस समय प्रकाश का साधन न होने से जुगनू को पकड़कर उसके प्रकाश में याद करते थे । खाने के लिये चने की दाल जिसे भिगोकर रख देते और उसे खाते थे तथा एक लगन से अध्ययन करते थे ।

विचार करिये बन्धुओ ! कहाँ तो वह स्थिति और कहाँ आज की स्थिति ! आज तो कितनी सहूलियत आ गयी है इन विद्यार्थियों के पास । फिर भी क्या दशा हो रही है ?

उदयपुर में मेरी एक प्रोफेसर से बात-चीत हुई थी । बात-चीत के सिल-सिले में उन्होंने कहा कि "मुझे ट्राफिक का जितना डर नहीं रहता, उतना डर रहता है कॉलेज के लड़कों का । ट्राफिक से तो सावधानी के साथ बचा जा सकता है, पर कॉलेज के लड़कों से सुरक्षित बचकर घर पहुँचना अतीव कठिन है, उनके साथ बड़े विवेकपूर्वक व्यवहार करना पड़ता है ।" देखिये ! लौकिक ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो की यह स्थिति है । अब विचार करिये ऐसी स्थिति में उन विद्यार्थियों को पढ़ने का क्या फल मिल सकता है, जिनका अपने गुरु के प्रति समर्पण न हो, विनय न हो, वह भले ही कितना ही ज्ञान पा ले, जीवन में सफल नही हो सकते । इसीलिये आज आप देख सकते है, कितने ही पढ़े-लिखे ग्रेजुएट लोग बेरोजगार घूम रहे है । इनकी बेरोजगारी में एक कारण गुरु के प्रति अविनय भी है ।

जब भौतिक क्षेत्र में भी सफल होने के लिये विनय की आवश्यकता है । तब आध्यात्मिक क्षेत्र में कितनी क्या विनय की आवश्यकता रहती है ? यह अत्यन्त विचारणीय है । परन्तु खेद है कि आज आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में भी विद्यार्थियो की क्या दशा हो रही है ? मैं क्या कुछ कहूँ ? बन्धुओ । ज्ञान लेने के लिये विनय और बहुमान की अति आवश्यकता है । जिसमें विनय तो हर कोई

कर लेता है, पर बहुमान करना कोई सहज कार्य नही है । इसे आप एक उदाहरण के द्वारा समझिये—

एक गुरुजी के पास कई शिष्य आध्यात्मिक जीवन का अध्ययन करते थे, जो किताबों से नही प्रत्युत अनुभूति से मिलता था । चूँकि अनुभूति का ज्ञान अनुभूति से मिलता है । अक्षरीय ज्ञान भले ही पुस्तको से मिल जाए, पर ज्ञानी जनो का फरमाना है कि "ज्ञान पोथी से न चाहो, किन्तु नम्र भाव से आत्मा को झुकाकर, गुरु से पूछकर उनकी सेवा करके प्राप्त करो ।" आध्यात्मिक ज्ञान का निर्झर वहाँ बह रहा था । उसी समय, सयोग की बात है, एक सम्यग्दृष्टि देव आकाश मार्ग से दसरे स्थान पर जा रहा था । उसका उपयोग उस आध्यात्मिक अध्ययन कराने-करने वाले गुरु–शिष्यो की तरफ गया । उस ने देखा कि गुरुजी शिष्यों को अपने अनुभव का ज्ञान दे रहे है और शिष्य बडे विनयपूर्वक ग्रहण कर रहे है । पर बहुमानाचार इनके जीवन मे कितना क्या है ? इस बात को उस देव ने प्रैक्टिकल रूप से जानना चाहा । अत: उसने अपनी देव शक्ति से ऐसा रोग पैदा किया, जिससे गुरुजी की दोनों आँखे चली गईं । तत्पश्चात् वह स्वयं चिकित्सक का रूप बनाकर वहाँ पहुँचा और जोर-जोर से कहने लगा कि कोई दु:खी-दर्दी है, किसी के नेत्र चले गये है तो मै ठीक कर सकता हूँ । यह बात शिष्यो ने श्रवण की तो विनयपूर्वक गुरु की आज्ञा लेकर उसके पास पहुँचे । उस देव रूप चिकित्सक के पास आकर कहा कि हमारे गुरुजी के नेत्र चले गये है । आप उनके नेत्र पुन: लौटा दीजिये । वह चिकित्सक रूपधारी देव अन्दर आया और शिष्टाचार दर्शाते हुए गुरुजी को देखने लगा । सभी शिष्य भी गुरु के आस-पास बैठ गये ।

चिकित्सक ने नेत्रों को देखा और कहा कि इनके नेत्रों में रोशनी तो है, पर ऊपर की अवस्था विकृत हो गई है । अत: इनके नेत्रों को ठीक तो किया जा सकता है, पर किसी दूसरे जीवित मनुष्य के नेत्र निकाल कर लगाने पडेगे । आप विनयवान है, गुरु के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित है, तो क्या, आप मे से कोई नेत्र दे सकता है ? यह सुनकर सभी विद्यार्थी आगे पीछे होने लगे और बहाने करने लगे कि गुरु महाराज के तो इतने चेले है, उनकी तो सेवा हो जायेगी, पर हमारे कौन से चेले है ? अगर हमारी आँखे चली गयी तो हमारी सेवा कौन करेगा ? पर उनमें से एक विद्यार्थी विना बुलाये ही सामने आया और बडी विनम्रतापूर्वक कहने लगा, कि मेरा सारा शरीर ही गुरु चरणो मे समर्पित है । आप सहर्ष मेरे नेत्र निकाल कर गुरुजी के लगा दीजिये । ऐसा कहकर सन्मुख बैठ गया, नेत्र निकलवाने के लिये । तव देव ने उसके बहुमानाचार से प्रसन्न होकर अपनी सारी माया समेट ली और अपना दिव्य देव रूप प्रकट करने के साथ गुरुजी के नेत्र पूर्ववत् कर दिये तथा उस शिष्य को साधुवाद देते हुए कहा कि तुम धन्य हो, जो ज्ञानाचारों से सम्पन्न बन, अपने अनन्त ज्ञान के प्रकाश को

प्राप्त करने में प्रयत्नशील बने हुए हो।" बन्धुओ ! यह है विनय और बहुमान में अन्तर। विनय तो सभी कर लेते है, पर बहुमान करना अतीव कठिन है। आज भी बहुत से व्यक्ति वीतराग देव का ज्ञान प्राप्त करने के लिये तत्पर तो हो जाते है, पर यह मानकर चलिये कि उनमें गुरु के प्रति विनय के साथ बहुमान की प्रवृत्ति जीवन मे नही आयेगी, तब तक भीतर का ज्ञान प्रगट नही हो सकेगा। अतः ये बहुमूल्य उपाय रूप ज्ञानाचार ज्ञानियों ने बताये है। उन उपायो को अतीव श्रद्धा के साथ अपनाने का प्रयास करना चाहिये।

आज प्रतिक्रमण करने में भी कई भाई लोग बहाना बनाते है कि हमें प्रतिक्रमण याद नही होता है। याद नही होता है तो बन्धुओ ! यह आपका प्रमाद है, आलस्य है। यह आप भव्यात्माओं के लिये योग्य नही है। सत्पुरुषार्थ करते जाइये और ज्ञान के साथ विनय, विनय के साथ बहुमान एव आगे के भी सभी आचारों का परिपालन करिये, अवश्य ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होगा। अन्यथा आत्म कल्याण असंभव है। जब तक सम्यक्ज्ञान एवं वीतराग वाणी पर सम्यक् श्रद्धान नही होगा, जब तक गुरु के प्रति परिपूर्ण समर्पण, बहुमान नही आयेगा, तब तक जीवन से वास्तविक रूप में अज्ञान अंधकार दूर नही हो सकेगा, ज्ञान का सच्चा प्रकाश नही जगमगा सकेगा। बहुमानाचार की स्थिति जीवन मे कैसे लाई जाय—इसके लिये भी मुझे आचार्य श्री उदयसागरजी म. सा. के एक शिष्य का घटनाक्रम याद आ रहा है। वैसे समय आपका हो रहा है फिर भी उसे सुना देता हूँ। एक शिष्य के हाथ से अचानक काष्ठ पात्र टूट गया, उस समय आचार्य प्रवर बाहर पधारे हुए थे और इधर ये मुनिराज किसी आवश्यक कार्य से बाहर पधार गये। आचार्य प्रवर जब वन-विहार से लौटे और देखा कि पात्र टूटा हुआ पड़ा है तो जो संत वहाँ उपस्थित थे, आचार्य प्रवर ने यही समझा कि इसी ने पात्र तोड़ा है और वे उपालम्भ की भाषा मे शिक्षा फरमाने लगे कि अरे ! यह क्या कर दिया ? थोडा विवेक रखना चाहिये। इस तरह परिश्रम-पूर्वक बने पात्र को फोड़ देना अयतना का परिणाम है। आलस्य-प्रमाद को छोड़-कर अवधानता से काम करना चाहिए।

वे शिष्य गुरुदेव की वाणी को अत्यन्त भक्ति एव बहुमान के साथ सुनते रहे। लेकिन जब वे मुनिराज आए, जिनके हाथ से पात्र टूटा था, और उन्होने देखा कि पात्र मेरे हाथ से टूटा है और उपालभ इनको मिल रहा है तो वे तुरन्त बोले भगवन् ! पात्र इन मुनिराज के हाथ से नही मेरे हाथ से [illegible]। आचार्य प्रवर बोले—अरे ! तुमने बतलाया नही कि [illegible] से नही टू[illegible] [illegible]मा-सागर मुनिराज बोले—भगवन् ! यदि मै [illegible]। तो [illegible]
अमृतमय शिक्षा कहाँ सुनने को मिलती ? [illegible] है तो [illegible]
ही। इनके सयोग से मुझे आज हितशि[illegible] मु[illegible]

भव्य पुरुषो ! देखिये बहुम[illegible] गुरु [illegible]

प्रति कितना बहुमान होना चाहिये—यह इस घटना से स्पष्ट होता है। यदि बहुमान की ऐसी स्थिति बनती है तो सम्यक् ज्ञान का जीवन मे त्वरित विकास हो सकता है। इन ऐतिहासिक दृष्टान्तों के घटनाक्रम का भाव ही मै आपके सामने रख गया हूँ।

अन्त मे मेरा आपसे यही कहना है कि सम्यक् ज्ञान का आलोक प्राप्त करने के लिए विनय एव बहुमान के स्वरूप का बोध प्राप्त करिये। विनय-बहुमान के साथ शास्त्रीय अध्ययन करने हेतु वीतराग वाणी का रसपान कीजिये। इस प्रकार से किया गया ज्ञान, निश्चय ही सम्यक् रूप में परिणमित होगा और आत्मा में विशिष्ट ज्ञान और विशिष्ट शाति प्राप्त कराने में सहायक बनेगा।

मोटा उपाश्रय, ३०–७–८५
घाटकोपर, बम्बई मगलवार

□ □ □

प्राप्त करने में प्रयत्नशील बने हुए हो।" बन्धुओ ! यह है विनय और बहुमान में अन्तर। विनय तो सभी कर लेते है, पर बहुमान करना अतीव कठिन है। आज भी बहुत से व्यक्ति वीतराग देव का ज्ञान प्राप्त करने के लिये तत्पर तो हो जाते है, पर यह मानकर चलिये कि उनमें गुरु के प्रति विनय के साथ बहुमान की प्रवृत्ति जीवन मे नही आयेगी, तब तक भीतर का ज्ञान प्रगट नही हो सकेगा। अतः ये बहुमूल्य उपाय रूप ज्ञानाचार ज्ञानियो ने बताये है। उन उपायो को अतीव श्रद्धा के साथ अपनाने का प्रयास करना चाहिये।

आज प्रतिक्रमण करने में भी कई भाई लोग बहाना बनाते है कि हमें प्रतिक्रमण याद नही होता है। याद नहीं होता है तो बन्धुओ ! यह आपका प्रमाद है, आलस्य है। यह आप भव्यात्माओं के लिये योग्य नही है। सत्पुरुषार्थ करते जाइये और ज्ञान के साथ विनय, विनय के साथ बहुमान एव आगे के भी सभी आचारों का परिपालन करिये, अवश्य ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होगा। अन्यथा आत्म कल्याण असंभव है। जब तक सम्यक्ज्ञान एवं वीतराग वाणी पर सम्यक् श्रद्धान नही होगा, जब तक गुरु के प्रति परिपूर्ण समर्पण, बहुमान नही आयेगा, तब तक जीवन से वास्तविक रूप में अज्ञान अंधकार दूर नही हो सकेगा, ज्ञान का सच्चा प्रकाश नही जगमगा सकेगा। बहुमानाचार की स्थिति जीवन में कैसे लाई जाय—इसके लिये भी मुझे आचार्य श्री उदयसागरजी म. सा. के एक शिष्य का घटनाक्रम याद आ रहा है। वैसे समय आपका हो रहा है फिर भी उसे सुना देता हूँ। एक शिष्य के हाथ से अचानक काष्ठ पात्र टूट गया, उस समय आचार्य प्रवर बाहर पधारे हुए थे और इधर ये मुनिराज किसी आवश्यक कार्य से बाहर पधार गये। आचार्य प्रवर जब वन-विहार से लौटे और देखा कि पात्र टूटा हुआ पड़ा है तो जो संत वहाँ उपस्थित थे, आचार्य प्रवर ने यही समझा कि इसी ने पात्र तोडा है और वे उपालम्भ की भाषा मे शिक्षा फरमाने लगे कि अरे ! यह क्या कर दिया ? थोडा विवेक रखना चाहिये। इस तरह परिश्रम-पूर्वक बने पात्र को फोड देना अयतना का परिणाम है। आलस्य-प्रमाद को छोड-कर अवधानता से काम करना चाहिए।

वे शिष्य गुरुदेव की वाणी को अत्यन्त भक्ति एव बहुमान के साथ सुनते रहे। लेकिन जब वे मुनिराज आए, जिनके हाथ से पात्र टूटा था, और उन्होने देखा कि पात्र मेरे हाथ से टूटा है और उपालंभ इनको मिल रहा है तो वे तुरन्त बोले भगवन् ! पात्र इन मुनिराज के हाथ से नही मेरे हाथ से टूटा है। आचार्य प्रवर बोले—अरे ! तुमने बतलाया नही कि मेरे हाथ से नही टूटा ? तब वे क्षमा-सागर मुनिराज बोले—भगवन् ! यदि मैं ऐसा बोल देता तो आज आपकी यह अमृतमय शिक्षा कहाँ सुनने को मिलती ? ये मुनिराज भी है तो मेरे गुरु भ्राता ही। इनके संयोग से मुझे आज हितशिक्षा सुनने को मिली।

भव्य पुरुषो ! देखिये बहुमान का आदर्श। गुरु के प्रति, गुरु के वचनो के

प्रति कितना बहुमान होना चाहिये—यह इस घटना से स्पष्ट होता है। यदि बहुमान की ऐसी स्थिति बनती है तो सम्यक् ज्ञान का जीवन मे त्वरित विकास हो सकता है। इन ऐतिहासिक दृष्टान्तो के घटनाक्रम का भाव ही मै आपके सामने रख गया हूँ।

अन्त मे मेरा आपसे यही कहना है कि सम्यक् ज्ञान का आलोक प्राप्त करने के लिए विनय एव बहुमान के स्वरूप का बोध प्राप्त करिये। विनय-बहुमान के साथ शास्त्रीय अध्ययन करने हेतु वीतराग वाणी का रसपान कीजिये। इस प्रकार से किया गया ज्ञान, निश्चय ही सम्यक् रूप में परिणमित होगा और आत्मा में विशिष्ट ज्ञान और विशिष्ट शाति प्राप्त कराने में सहायक बनेगा।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, बम्बई

३०–७–८५
मंगलवार

□ □ □

३१ उपधानाचार

(सम्यक्ज्ञान का चतुर्थ आचार)

वीतराग परमात्मा के कई नाम भूतकालीन दृष्टि से प्रचलित है। जिस शरीर से आत्मा ने मोक्ष प्राप्त किया, उस शरीर से सिद्ध भगवन्तो की स्तुति करने हेतु उनको उन्ही नाम से पुकारा जाता है। इस काल चक्र मे तीर्थंकर २४ हो गये है। उनकी स्तुति जो वर्तमान मे करने में आ रही है, वह सब भूतपूर्व शरीर के नाम को लेकर ही। सिद्ध भगवन्त होने के बाद उस आत्मा का कोई पृथक् नाम नही रह जाता है। आचारांग सूत्र मे सिद्ध के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है—

"अवण्णे, अगधे, अरसे, अरुवे, अफासे, अपयस्स पयं नत्थि।"

सिद्ध भगवन्त के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श कुछ नही है तथा अपद अर्थात् शब्दो से सिद्ध भगवान् के स्वरूप का पूर्ण वर्णन नही किया जा सकता है। अतः वे अपद है। सिद्ध भगवन् को चाहें जिस रूप मे पुकारा जाये, पर उनका मौलिक शुद्ध स्वरूप ही सामने रखना चाहिये। उनका स्वरूप समकक्ष रखकर ही वीतराग भगवान् के सिद्धान्तों को श्रवण किया जाना अपेक्षित है। ऐसा कहने पर ही आत्मा अपनी आध्यात्मिक ज्योति को प्रज्वलित करने के लिए उल्लसित हो सकती है। आज जो धर्मस्थान मे सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय आदि का विशेष प्रसंग दृष्टिगत हो रहा है, उन सभी का एक ही उद्देश्य होना चाहिये— मोक्ष प्राप्ति का।

चतुर्विध संघ मे साधना करने वाले सभी का एक ही लक्ष्य है पर सभी की साधना पद्धति भिन्न-भिन्न है। एक मजिल है पर चलने के रास्ते भिन्न-भिन्न है। एक महाव्रतों की सड़क पर चल रहा है तो दूसरा अणुव्रतों की। एक हवाई-जहाज में जा रहा है, तो दूसरा बैलगाड़ी में। पर पहुँचना दोनों को एक ही जगह है। कौन कब पहुँचता है, यह अपने-अपने सद् पुरुपार्थ पर निर्भर है। जैसे कि उत्तराध्ययन सूत्र मे प्रभु ने फरमाया है कि—

"सन्ति एगेहि भिक्खूहि, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहि य सव्वेहि, साहवो संजमुत्तरा॥"

अर्थात्—कुछेक साधुओ से तो गृहस्थों का संयम भी अच्छा होता है। और सब गृहस्थो से साधुओं का सयम श्रेष्ठ होता है। भावार्थ यह है कि कुतीर्थी, भग्नव्रती और निह्नवादि साधुओं की अपेक्षा व्रत नियमादि को पालने वाले, गृहस्थो को इसलिये श्रेष्ठ कहा गया है कि कुतीर्थियो मे तो सम्यक् चारित्र के अभाव से सयम का होना असम्भव है और भग्नव्रती तथा निह्नवादि चारित्र के विराधक है इसलिये उनमें भी सयम नही हो सकता है। अतः उनकी अपेक्षा देश चारित्र की आराधना करने वाले गृहस्थों के सयम को अवश्य श्रेष्ठ कहा है। पर जो सर्वविरति प्रधान साधु है, उनका सयम सभी देशविरति साधको से अनुत्तर है। क्योकि उनमें द्रव्य-भाव दोनों प्रकार से चारित्र की उच्चता होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि चारित्र की न्यूनाधिकता चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय एवं क्षयोपशम पर निर्भर है। अतः जितना-जितना उक्त कर्म के क्षय एवं क्षयोपशम मे पुरुषार्थ किया जाता है, उतनी-उतनी देशव्रत या सर्वव्रत के रूप मे धर्म की प्राप्ति अधिक होती है। आप इस बात का दृढ श्रद्धान करे कि आत्मा बंधन की स्वय निर्मात्री है तो बधन को तोड़ने वाली भी आत्मा ही है। अतः सद्-पुरुषार्थ को जागृत करे। सम्यक् धर्म आराधना की स्थिति जीवन मे अपनायें।

जो रत्नत्रय की आराधना भगवती सूत्र में प्रभु ने बताई है, वही विपय स्थानांग सूत्र मे त्रिविध धर्म के रूप में तथा तत्त्वार्थ सूत्र में "सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" और आगम गाथा मे अहिसा, सयम और तप रूप मे दर्शाया गया है।

"धम्मो मंगलं मुक्किट्ठं, अहिसा संजमो तवो।"

आप आराधना करने के लिए यहाँ उपस्थित हुए है। अतः आराधना का स्वरूप समझकर मनुष्य जीवन को सार्थक करने का प्रसंग है। शास्त्र की वाते वहुत तत्त्वपूर्ण है, जिनके विवेचन में वहुत समय अपेक्षित है। ऊपर-ऊपर की आदर्शभूत वाते तो कहने मे आ जाती है। पर वर्तमान जीवन मे कैसे आचरण की भूमिका पर आकर जीवन का रूपान्तरण कर सकें। प्रेक्टिकल रूप किस तरह जीवन में आये इत्यादि का विचार करने की स्थिति वहुत कम वनती है। सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप जो सारभूत रत्न-त्रय है, वही आत्मा की प्यास बुझाने वाला है। आध्यात्मिक सुख की तृप्ति कराने वाला है। अनन्त आनन्द में अवगाहन कराने मे समर्थ है।

अनन्त शक्ति पैदा करने वाले ये तीन ही तत्त्व है। इनका आचार क्या है? आचार का तात्पर्य है जीवन में जो व्रत-प्रत्याख्यान ग्रहण करने मे आते है। उन्हे किस तरह जीवन मे उतारना, कैसे इनकी आराधना करना, यह पद्धति आचार कहलाती है। इसी क्रम में तपस्या को जीवन के व्यवहार पक्ष मे लाना

भी ज्ञान का आचार है। जिस प्रकार--सम्यग्दर्शन को किस तरह जीवन मे लाया जाये, यह सम्यग्दर्शन का आचार है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान को जीवन मे जागृत करने के लिये ज्ञान के आठ आचार का प्रसंग भी आपके सामने चल रहा है। जो सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कराने में सहायक भूत है। उनमें से काल, विनय और बहुमान इन तीन आचारो का सक्षिप्त विवेचन तो मै कर चुका हूँ। चौथा आचार है—**उपधानाचार** अर्थात् उपधान तप, जिसका तात्पर्य है ज्ञान प्राप्त करते हुए आयम्बिल वगैरह तप करना। आज उपधान तप का जो मौलिक स्वरूप है, आज बहुत स्थानो पर वैसा नही हो रहा है। उसमें विकृति दृष्टिगत होती है। शास्त्र का जो आशय तप को लेकर रहा हुआ है, उसका सकेत मै आपके सामने करना चाह रहा हूँ।

भीतर का अनन्त ज्ञान कैसे प्रकट हो सकता है, इसके लिये प्रभु ने अनेक उपायो के साथ उपधान तप भी बताया है। कई मनुष्य उपधान तप का अर्थ आयम्बिल तप करना मानते है और उसी अर्थ को आचार मे उतार कर सतुष्टि कर लेते है। पर उपधान का यह सीमित अर्थ नहीं है। अन्तर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपधान तप—आयम्बिल तप जरूर करना चाहिए। आयम्बिल तप करने से क्या होता है? तथा उसी को उपधान तप क्यों बताया है। उसका रहस्य यह है कि आप उपवास करते हो, उससे पाँच इन्द्रियो के विषय एवं चित्त के विकार उपशात हो जाते है। पर पाँचों इन्द्रियो में विशेष विषय की तरफ झुकी हुई यह जिह्वा जितनी अपने विषय मे सशोधन की स्थिति को प्राप्त होती है, उतनी ही अवशेष चार इन्द्रिया भी शिथिल होती जाती है। उपवास के दिन जिह्वा भूखी रहने से चारो इन्द्रियाँ भी वशीभूत रहती है। पर दूसरे दिन जब पारणा किया जाता है तब जिह्वा की विषयपूर्ति होते ही अवशेष चार इन्द्रियाँ भी अपनी-अपनी विषय प्रवृत्ति को चालू कर देती है। उपवास तो फिर भी आप लोग सहज कर लेते है, पर आयम्बिल करने से बहुत से मनुष्य कतराते है। कारण कि उसमे इस जिह्वा की विषयपूर्ति नही होती है। निरस पदार्थ खाने पड़ते है। उस निरस भोजन को खाना जिह्वा को वश मे रखना कोई सहज नही है। आपने धन्ना अणगार का वर्णन सुना होगा, जो बेले-बेले की तपस्या का पारणा आयम्विल से करते थे और वह आयम्विल का भोजन भी कैसा? रक-भिखारी भी जिस भोजन को खाने की इच्छा नही करे, वैसा आहार लाकर उसे २१ वार पानी से धोकर करते थे तथा उस पानी को पीते थे। यदि आपको भी आयम्बिल के दिन ऐसी ही वस्तु मिले तो आप कितने आयम्विल करेंगे? वन्धुओ! धन्ना अणगार जैसा उत्कृष्ट आयम्विल करते थे, वही वास्तव में उत्कृष्ट उपधान तप है। क्योंकि कर्म निर्जरार्थ एवं ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति मे उपधान तप है और उससे अनन्त ज्ञान राशि की प्राप्ति में अधिक सहायता मिलती है। जब श्रेणिक महाराज ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया कि हे

भगवन्! आपके चौदह हजार शिष्यों में सबसे ज्यादा निर्जरा करने वाला महान् तपस्वी कौन है ? तब प्रभु ने फरमाया कि हे श्रेणिक ! धन्ना अणगार है। क्योंकि वह बेले-बेले का पारणा करता है। और पारणे मे भी उपधान तप आयम्बिल तप करता है। जिससे वह बहुत अधिक कर्म की निर्जरा कर रहा है। धन्ना अणगार के लिये जैसा कि अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे पाठ मिलता है—

"तएणं से धण्णे अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता जाव पव्वइयाए तं चेव दिवसं भगवं महावीर वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु इच्छामिणं भन्ते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समण्णे जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिले-परिग्गहिएणं तवो कम्मेणं अप्पाण भावेमाणे विहरित्तए, छट्ठस्सवि य णं पारणगंसि कप्पइ में आयंबिलं पडिग्गहित्तए, णो चेव णं अणायंबिलं, तंपि य संसट्ठेणं णो चेव णं असंसट्ठेणं, तंपि थ णं उज्झियधम्मियं, णो चेव णं अणुज्झियधम्मियं, तंपि य णं जं अन्ने बहवे समणमाहणे अतिहि-किवण वणिमग्गा णावकंखंति ? अहासुयं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेह ॥

तएणं से धण्णे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठ-तुट्ठ जावज्जीवाए छट्ठं-छट्ठेणं अणिखित्तेणं तवो-कम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरह ।

इस तरह कर्मो की बहुत निर्जरा होती है। कर्म कटते है। ज्ञानावरणीय कर्म खपता है। साथ ही मोहनीय कर्म के खपने से विशिष्ट ज्ञान की उपलब्धि होती है। यह उपधान तप सम्यग् ज्ञान का आचार है। पर ऐसा आयम्बिल करने का प्रसंग बहुत कम आता है। 'उप' का अर्थ है समीप, 'अधान' से तात्पर्य ज्ञान को प्राप्त करना। जो तप हमारे पास मे रही हुई अनन्त ज्ञान राशि को प्राप्त करने मे अर्थात् प्रकट करने मे सहायक होता है। वह **'उपधान तप'** है। यह आयम्बिल तप का विशिष्ट स्वरूप है। २४ घण्टों की मौन लेकर आश्रव के त्याग के साथ आयम्बिल किया जाय। वह भी एक दाने का हो चाहे एक धान का. उसमे नमक, काली मिर्च आदि कुछ भी न हो। ऐसे निरस आहार को पानी मे घोलकर आयम्बिल तप किया जाय। दिन भर मौन रखकर आत्मा के समीप जाने की कोशिश को जाय। तभी सम्यक् रूप से आपका यह आयम्बिल सार्थक होगा। तभी रसनेन्द्रिय को सही तरीके से जीता जा सकेगा जिससे कर्मो की निर्जरा होगी और सम्यक् ज्ञान की पुष्टि होगी। २४ घण्टे तक उपवास अथवा आयम्बिल का प्रसंग आवे तो उसमे आश्रव को बन्द रख कर संवर की स्वाध्याय की आराधना की जाय। अन्तर की आत्म स्थिति मे अवगाहन किया जाय। क्योंकि आत्म स्वरूप के नजदीक पहुँचने पर ही उपधान तप की पूर्ण सार्थकता हो सकेगी। पर खेद है कि आज कई स्थानों पर आयम्बिल का [illegible]

एकासना जैसी स्थिति अपनाकर आयम्बिल किया जाता है, यह उचित नही है। परन्तु आज क्या कुछ स्थिति इस तप की बन रही है। सो आप देख ही रहे है। विस्तार से कहने का प्रसग नहीं। मै तो सिर्फ शास्त्रीय बात बता गया हूँ। शास्त्र मे वर्णित आयम्बिल तप के सही स्वरूप को समझकर उसी रूप में उसका यथाशक्ति सम्यक् अनुष्ठान किया जाय। आप अधिक से अधिक तप करे। मैं उसका अनुमोदक हूँ। पर उसे उसकी पद्धति के अनुसार ही करे। नाम तो आप आयम्बिल का करे एवं पदार्थ अन्य ग्रहण करे, यह कहाँ तक उचित है? क्या भगवान के समय मे इस तप की यही पद्धति थी? आप जरा गहराई से विचार करें। यदि सही रूप से आयम्बिल तप का अनुष्ठान कर आत्मिक गुणो की अभिवृद्धि के साथ आत्मा के नजदीक पहुँचने की प्रवृत्ति मे ज्यादा से ज्यादा संलग्न बनोगे तो एक न एक दिन जरूर आप अनन्त कर्म निर्जरा के साथ अपने ज्ञान प्रकाश को जागृत कर सकोगे।

जिस तप की ज्यादा से ज्यादा प्रदर्शनी होती है, आत्मीय गुणो की सजावट के बजाय तप महोत्सव मनाते हुए शरीर को वस्त्राभूषणों से सजाया जाता है तो वहाँ तप की शक्ति एवं आत्मीय गुण विलुप्त होते जाते है। वे वास्तविक कर्म निर्जरा से वचित हो जाते है। भौतिक संपत्ति को जिस तरह आप तिजोरी में बंद करके रखते है, उसी प्रकार आध्यात्मिक गुणों को भी आत्मा-रूपी तिजोरी मे स्थित करे। दिखावा नही करे, अन्यथा इनमे बाधा आयेगी। क्योकि लौकिक संपत्ति के प्रदर्शन मे भी कैसी बाधा आती है, इसके लिए एक दृष्टान्त दे देता हूँ। जिससे आप लोग आध्यात्मिक सम्पत्ति को गुप्त रखने का मूल्य समझ सके।

दृष्टान्त— मोतीलाल नाम के एक सेठ थे, उनके पास बहुत ज्यादा सपत्ति थी, वह अत्यधिक पाप अनुष्ठान से पूर्वजो द्वारा एकत्रित की हुई थी। एक बार रात्रि के समय मोतीलाल सेठ अपनी सपत्ति के विषय मे चिन्तन करने लगे और उन्हे यह महसूस हुआ कि मेरे पास इतनी अधिक सम्पत्ति है पर मेरी कोई प्रसिद्धि नही हुई है। रात भर यही चितन चलता रहा। प्रात.काल अपने घर के सभी सदस्यों को बुलाकर कहने लगे कि रात्रि मे मुझे एक विचार आया, यदि आप लोग अनुमोदन करो तो मै कहूँ। स्वीकृति मिलने पर उन्होने कहा कि— देखो, अपने घर मे इतनी सम्पत्ति है, पर अभी तक राज-दरबार मे मेरा कुछ भी मान-सम्मान नही है। अत. अपने यहाँ राजा को जीमने के लिये बुलाकर सारी सम्पत्ति का दिग्दर्शन कराया जाये। अपना अतुल वैभव देखकर वे अपनी प्रशसा करेगे। इससे प्रजा भी अपना सम्मान करेगी। सभी ने एक स्वर मे सेठ की बात का अनुमोदन किया। छोटी पुत्रवधू जो कि गंभीर मुद्रा मे सभी के बीच बैठी हुई थी। सारी बात श्रवण करने पर भी कुछ नही बोली, अपने विनय एवं शिष्टाचार का निर्वाह कर रही थी। पर ज्योहि सेठ की दृष्टि उस पर गिरी तो

सहज ही पूछ लिया कि बहू, तुम चुप क्यों हो, तुमने मेरी बात के अनुमोदन में कुछ भी नहीं कहा, ऐसा क्यों? तब वह बड़ी विनम्रता पूर्वक बोली—"पिताजी! मैं क्या कहूँ, जो अपनी सम्पत्ति है, वह बाहर दिखाने की नही है। यदि आप इसका प्रदर्शन महाराजा के समक्ष करेंगे, तो निश्चित ही आप संकट को बुलावा देंगे। मुझे आपका यह प्रस्ताव उचित नही लगा, इसीलिए मैं कुछ नही बोली। परन्तु सभी ने छोटी समझकर उसकी बात हँसी में उड़ा दी। और बहुमत के अनुसार कार्य को क्रियान्वित किया गया। पुत्रों को गहनों से लाद दिया गया। माणक मोती से थाल भरकर बाजार के बीच से होते हुए, अपनी सम्पत्ति के प्रदर्शन का मुख्य लक्ष्य रखते हुए राज-दरबार में पहुँचे। वह भेंट राजा को अर्पित की और राजा को अपने घर भोजन के लिये पधारने का निमन्त्रण दिया, निमन्त्रण को स्वीकार करके ठीक समय पर राज्य के बड़े-बड़े अधिकारियों के साथ महाराजा राजसी ठाठ-बाट से सेठ के भवन पर पहुँचे, भवन की भव्य सजावट देखकर राजा आश्चर्य में पड़ गये। क्या मेरे राज्य में भी इतने धनवान सेठ है? भोजन करने पहुँचे तो तरह-तरह के पकवान देखकर राजा की मनःस्थिति कुछ और ही हो गई। सेठ के अतुल वैभव ने राजा के अन्तर में लोभ वृत्ति जागृति कर दी, उसकी दृढ भावना बन गई कि किसी न किसी प्रकार से इस सेठ की सारी सम्पत्ति हड़पनी है। जैसे-तैसे भोजन का कार्य निपटा कर सेठ का सत्कार-सम्मान ग्रहण करके अपने अन्दर की स्थिति गोपनीय रखते हुए पुनः राजमहलों में लौट आये। राजा को अन्यमनस्क देखकर मत्री ने कारण पूछा—तब राजा ने सारी हकीकत कह सुनाई और पूछा कि किस तरह इस सेठ की सारी सम्पत्ति अपने अधिकार मे ली जाय? मंत्री ने कुछ समय विचार करने के बाद कहा कि "आप कोई ऐसा प्रश्न सेठ के सामने रखें जिसका समाधान वह न कर सके और इस प्रसंग पर उसकी सारी सम्पत्ति अपने अधिकार में ले ली जाये। भोजन का निमन्त्रण लेकर के मन्त्री सेठ के घर गया और भोजन के लिये राजमहल मे पधारने का आग्रह किया। सेठ बड़ा ही प्रसन्न हुआ और सभी पारिवारिक जनो से कहने लगा कि "देखा तुम लोगों ने? यह सब अपनी विपुल संपत्ति का ही प्रभाव है।" पर छोटी पुत्रवधू तो उस समय भी गभीरता को धारण किये वैठी रही। जवकि मन ही मन वह सारी वाते समझ रही थी। इधर सेठ मन ही मन में अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ राजमहल में पहुँचा। राजा ने वहुत ही आदर सत्कार किया एवं अपने वरावर आसन पर वैठाकर भोजन करवाया। सम्राट यह सभी कार्य ऊपरी मन से करवा रहा था, पर भीतर ही भीतर तो वह अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिये उत्सुक हो रहा था। भोजन से निवृत्त होने के वाद वातों ही वातों मे सम्राट ने सेठ से कहा—"सेठ सा. आप तो वहुत वुद्धिमान है, तभी तो अपार वैभव के स्वामी है। मेरे मन में जो प्रश्न उभर रहे हैं। कोई भी उनका उत्तर नहीं दे सका। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इनका उत्तर दे देंगे, पर इनके साथ

एक शर्त है यदि आप उत्तर नहीं दे सकें तो आपकी सारी संपत्ति राज्याधिकार में ले ली जायेगी। और यदि उत्तर दे देंगे तो उपहार देकर बहुत मान-सम्मान दिया जायेगा। सेठ अपनी प्रशंसा सुनकर फूला नही समा रहा था। अति उत्सुकता से पूछा—कौन से प्रश्न है ? आप जल्दी पूछिये मै सुनने के लिये अतीव आतुर हूँ। तब महाराज दोनों प्रश्न सेठ के सामने रखते हुए कहने लगे—बताओ।

१. निरन्तर समाप्त होने वाली वस्तु कौनसी है ?

२. निरन्तर विस्तार प्राप्त करने वाली वस्तु कौनसी है ?

इन दोनों प्रश्नों को सुनकर सेठ साहब ठंडे पड़ गये, विचार करने लगे कि इन प्रश्नों का जवाब तो मुझे आता नही, मैने अपनी जिन्दगी में कभी ऐसे विचित्र प्रश्न नही सुने। अहो ! मुझे छोटी बहू की बात उस समय तो महत्त्वपूर्ण नहीं लगी पर अब समझ में आ रही है। उसने मुझे बहुत उचित सलाह दी थी पर अब पश्चाताप करने का समय नही है। अभी भी अवसर है, छोटी बहू बहुत बुद्धिमती है सभव है वह इन प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो जाये। अतः उसी से क्यों न पूछ लूं। ऐसा विचार कर सेठ ने महाराजा से कहा कि, "राजन् ! आज बहुत गरिष्ठ भोजन खाने से मस्तिष्क भारी बना हुआ है। अतः आप कृपा करके मुझे एक दिन की छुट्टी दे दीजिये।" राजा ने उसे एक दिन की छुट्टी दे दी। छुट्टी लेकर सेठ साहब घर पहुँचे और घर के सभी सदस्यो के सामने सारी हकीकत रखते हुए छोटी बहू से अपने कृत-कार्य के लिये माफी मांगकर कहा कि—"बहू ! तुम तो बहुत बुद्धिशाली हो, तुम्हारी बात हमने नही मानी, इसलिये आज यह भारी संकट सामने उपस्थित हुआ है। राजा के दोनों प्रश्नो का क्या कुछ समाधान है ? यह कार्य मेरी बुद्धि से परे है, मुझे तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास है कि तुम उन दोनों प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकती हो, अतः बहू, तुम प्रश्नों का उत्तर देकर अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा करो। मेरी लाज रखो।"

वह छोटी बहू जो सारी बात गंभीरतापूर्वक सुन रही थी। वह सेठ साहब को सात्वना देती हुई कहने लगी कि पिताजी ! आप कुछ भी चिता न करे, राजा को कहला दें कि आपके इन सामान्य प्रश्नों के उत्तर तो मेरी सबसे छोटी बहू भी दे सकती है। और आप मुझे राज्य-दरबार मे भेज दीजिये। मै अपनी मर्यादा में रहती हुई महाराज के इन दोनों प्रश्नो का उत्तर दे दूंगी। सेठ यह सुनकर अतीव प्रसन्न हुआ तथा महाराजा को कहलवा दिया कि—आपके इन सामान्य प्रश्नों का उत्तर तो मेरी छोटी पुत्रवधू भी दे सकती है। दूसरे दिन वह पुत्रवधू सादी-सीधी पोशाक में राज्य दरबार मे एक घास का भारा व एक दूध का कटोरा लेकर पहुँची। राजा ने पूछा कि "आप यहाँ कैसे ?" तब उसने कहा

कि "सेठजी के प्रश्नों का उत्तर देने आई हूँ।" तब राजा ने कहा—आप इन दोनों वस्तुओं को साथ में क्यों लाई हो ? तब पुत्रवधू ने उत्तर दिया कि—यह घास का भारा तो दीवान को भेंट करने के लिये लाई हूँ। यह सुनते ही दीवानजी की तो त्यौरियाँ चढ़ गई। वह पुत्रवधू आगे कुछ कहे उससे पूर्व ही दीवान ने अपना भारी तिरस्कार समझ, उससे प्रश्न किया कि—तुमने मुझे क्या समझा ? जो मेरे को भेट देने के लिये यह घास का भारा लाई हो। तब पुत्रवधू ने निर्भयता-पूर्वक उत्तर दिया कि- दीवानजी ! मै सेठ साहब की तरह असत्य का पोषण करने वाली नही हूँ। जो जैसा होता है, उसे वैसी ही वस्तु की भेंट देनी पड़ती है। आपकी बुद्धि पशु जैसी है। हालाकि दीवान की बुद्धि तो प्रजा हितैषी, व्यापक और विशाल होनी चाहिये। पर आप अपनी प्रजा के साथ ऐसा अन्याय करते हो, सम्राट को भी गलत मार्ग पर आगे बढ़ा रहे हो। आपकी बुद्धि में पशुता नही तो क्या है ? और जो पशु होता है, उसे खाने के लिये घास चाहिये। अत: मै आपके योग्य ही यह उपहार लाई हूँ। यह श्रवण कर मंत्री और भी उत्तेजित हो गया, पर राजा ने उसे शांत करते हुए उस पुत्रवधू से पूछा कि यह दूध का प्याला तुम किस लिये लाई हो ? तब पुत्रवधू ने कहा कि—दूध का प्याला आपके लिये लाई हूँ। कारण—यहाँ के राजा अर्थात् आप नन्हे बालक के समान है। जैसा दीवान कहता है, वैसा ही कार्य करते है। अपनी बुद्धि से कोई काम नही करते है। यह श्रवण कर राजा स्वय बहुत शर्मिन्दा हुआं और गलती महसूस करने लगा और उसकी बुद्धिमत्ता से अत्यधिक प्रभावित होता हुआ अपने प्रश्नों का उत्तर जानने के लिये उत्सुक बना। जब उसे दोनों प्रश्नों का उत्तर देने के लिये कहा तो वह निर्मल बुद्धि सम्पन्ना पुत्रवधू कहती है कि राजन् !

१. आयुष्य एक ऐसा तत्त्व है जो निरन्तर अर्थात् क्षण-क्षण मे कुछ भी विलम्ब किये बिना समाप्त हो रहा है।

२. आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर है—निरन्तर विस्तार को प्राप्त करने वाली वस्तु तृष्णा है।

यह श्रवण कर राजा, दीवान और सारी राज परिषद् धन्य-धन्य का गुंजार करती हुई, पुत्रवधू को शतश: धन्यवाद समर्पित करती हुई, उसे बड़े मान-सम्मानपूर्वक विदा करती है। दीवान, महाराजा से कहता है कि—"महाराज ! सेठ साहब के पुत्रवधू की कमाल की बुद्धि है। अपनी सारी योजना निरर्थक गयी। अब आप सेठ साहब की सम्पत्ति नहीं ले सकते है।" बन्धुओ, यह तो एक कथानक है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब भौतिक सम्पत्ति को प्रकट करने मे इतनी विपत्ति आती है तो आध्यात्मिक गुणों का बखान करने मे कैसे क्या होगा ? यह विचार करने की बात है। अत: बाहरी प्रदर्शन का लक्ष्य न रखते हुए अधिकाधिक आत्मानुष्ठान की पवित्र क्रियाओं में अपने आपको संलग्न [illegible] अपने भीतर में रहे हुए ज्ञान-प्रकाश को उजागर करने में [illegible] [illegible]

जायें। अपने जीवन की सारी प्रवृत्तियाँ विनय एवं विवेक बुद्धि के साथ धर्ममय बनायें। आपका जीवन अवश्य मगलमय बनेगा।

आज के युग में प्रदर्शन बहुत बढ़ता जा रहा है। उपधान तप के नाम से अनेक प्रकार का आडम्बर बढाया जा रहा है। अतः उपधान का स्वरूप सही रूप से समझकर सम्यक् ज्ञान की वृद्धि के लिये विधिवत् तपानुष्ठान में प्रवृत्ति करें।

बंधुओ ! शास्त्र का अमृतोपम तात्विक ज्ञान श्रवण करते हुए ज्ञेय तत्त्वों की जानकारी प्राप्त करे। हेय तत्त्वों का अपने जीवन से विसर्जन करे तथा उपादेय तत्त्वों से अपनी आत्मा को संवारने में प्रयत्नशील बनें। कर्म निर्जरा का प्रमुख लक्ष्य रखते हुए सम्यक् तपानुष्ठान से अपनी आत्मा को अनन्त वीर्य सम्पन्न, अनन्त ज्ञान सम्पन्न बनाकर सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक लक्ष्मी का वरण करें। इसी मंगल कामना के साथ।

मोटा उपाश्रय   ३१-७-८५
घाटकोपर, बम्बई   बुधवार

•□•

३२ अनिह्नवाचार

(सम्यक् ज्ञान का पाँचवा आचार)

इस संसार में सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ अगर कोई तत्त्व है, तो आत्मा ही है। और वही परमात्मा के रूप में प्रकट होती है. जिन्हे ईश्वर, भगवान्, सिद्धादि किसी भी नाम से कहा जा सकता है। वही अनन्त सुख की स्वामी है, मनुष्य संसार में रहता हुआ, सुख की प्राप्ति हेतु ज्ञान प्राप्त करता है। विचारता है कि अमुक पुरुष मुझे शांति देगे, मैं उनकी शरण में जाऊँ। इस कल्पना को लेकर सांसारिक मनुष्य संसार के कामों में लगता है, आवश्यकता पड़ने पर राजा, महाराजा, सतों के चरणों की उपासना भी करता है और चाहता है कि ये मुझ पर मेहरवान हो जाएँ, पर उस पुरुष को यह पता नही है कि जिसको मैं स्वामी वनाकर चल रहा हूँ, वे स्वयं दुःख में डूबे हुए है, तो मुझे क्या शांति देगे।

सुना जाता है कि अमेरिका मे १२७ मंजिल की हवेली है, उसका मालिक १२७वी मंजिल पर रहता है, जहाँ नीचे के जमीन की गर्म हवा भी (अपेक्षा से) उसे न लग सके, उसके पास डॉक्टर हर समय लगा रहता है, उसे यह भय हरदम वना रहता है, कि मेरी संपत्ति न लूट ली जाय, इस तरह उसकी स्वयं की दशा क्या है? आप उनको देखे या स्वयं के भीतर अनुभव करें, जितनी-जितनी संपत्ति वढती है, उतनी-उतनी शांति मिलती है या अशांति वढती है? स्पष्ट हो जाएगा कि भौतिकता की दृष्टि से शांति कम एवं अशाति ही वढती है, अतः भगवान् ही सर्व श्रेष्ठ है, उनके वतलाये मार्ग पर समर्पित हो जाऊँ; उनके ज्ञान मे तल्लीन वन जाऊँ, इस भावना के अनुरूप जो जीवन वना लेता है. उसकी मनोकामना स्वतः पूर्ण हो जाती है, उसका मन इतना शक्ति संपन्न वन जाता है कि मन मे संकल्प आते ही वह भावना पूर्ण भी हो जाती है।

कामना हर सामान्य मनुष्य करता है, पर उसकी सभी भावना पूर्ण नही होती, किन्तु अध्यातम पथ पथिक की हर भावना पूर्ण हो जाती है।

"जाको राखे सांईयां, मारी सके न कोय।
बाल न बांका करि सके, जो जग वैरी होय॥"

जो वीतराग उपदेश को जीवन मे ले लेता है और उस ज्ञान के अनुसार अपने जीवन को बना लेता है. उसके जीवन में फिर कोई कमी नही रह जाती है।

कवि कहता है, भगवन्, आपके ज्ञानलोचन को देख लेने से मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गए, अब मुझे कुछ भी आवश्यकता नही है ।

"विमल जिन सिद्धा लोयण आज ।
मारा सिद्धया वछित काज ।।"

तीर्थंकर देवों का जो विमल स्वच्छ निर्मल ज्ञान है, उसकी उपासना आचार नियमों के साथ करें, जिससे वह एक रोज उन दिव्य नेत्रों को देखने में समर्थ हो सकता है, जो पुरुष ज्ञान की परिपूर्ण प्राप्ति के लिए एकनिष्ठ बन जाता है, अन्य विषय गौण कर देता है, बस एकमात्र परमात्मा के साक्षात्कार का ज्ञान किस प्रकार होवे, इसमें तल्लीन बन जाता है, उसे मनोवंछित प्राप्ति होती है ।

आपने जम्बूकुमार की बात सुनी होगी, आठ देवांगना तुल्य कन्याओं के साथ शादी की । शादी की रात्रि में ही उनको समझाने के लिए तत्पर हुए । पलग के चारों ओर आठों देवकन्यासम सोलह शृंगार से सजधजकर वे राज-कन्याये जम्बूकुमार को आकर्षित करने लगी, ऐसे समय में व्यक्ति का मन अपने आप में अकुश में रह सकना, बडी कठिन बात है, पर सुधर्मा स्वामी के एक ही व्याख्यान से जो ज्ञान प्राप्त किया, उससे उनके ज्ञान चक्षु खुल गये कि "मै किस भूलभूलयाँ में पड़ा हूँ, पूर्व जन्मों में मैने क्या नही किया होगा ? पर मुझे शांति नही मिली, आत्मा की तृषा नही मिटी, मेरे मनोरथ पूर्ण नही हुए । अब मुझे तो सिर्फ एक निष्ठा है ज्ञान की आराधना करनी है, इन स्त्रियो के जाल मे नही उलझना है, ये मेरी आत्म तृप्ति को लूटने वाली है ।" अतः वे एकनिष्ठ होकर उनकी एक-एक बात का उत्तर देने लगे ।

उसी समय प्रभव चोर अपने ५०० साथियों के साथ चोरी करने निकला, उसे अनेक विद्याये सिद्ध थी, पर वे सब भौतिक थी, सबको नीद मे सुला देने वाली और ताला तोड़ने वाली इन्ही दो विद्याओ के माध्यम से वह हवेली में चोरो करने के लिए पहुँचा । वहाँ दहेज मे आये हुए बहुमूल्य जवाहरात ९९ करोड़ सौनयाँ आदि की पोटलियाँ बाँधकर साथियों को आदेश देता है कि जल्दी से उठाओ इन पोटलियों को और चलो । अत्यन्त धीमे स्वर से—कहने पर भी उसकी आवाज जम्बूकुमार ने सुनली और सोचा कि यह सारा ही धन क्यों न ले जाय, मुझे दुःख नही है । मै तो कल सुवह होते ही वैसे ही सब कुछ त्याग कर प्रव्रज्या अगीकार करूँगा ।

समुद्र कभी मर्यादा नही छोड़ता पर वह भी यदि छोड़ दे, सूर्य ठडक नहीं देता पर वह भी यदि ठंडक देने लग जाय, यहाँ तक कि प्रकृति के सव नियम उल्टे हो जायं पर मेरा संकल्प टूट नही सकता । मैं निश्चय पर अटल हूँ, परन्तु

यह दुनिया तो दो रंगी है, लोग तो कहेगे, दीक्षा लेने की भावना रखता था, दीक्षा की भावना तो ये आठो स्त्रियाँ भी उतार सकती थी, पर धन चला गया, इसलिये अब दीक्षा ले रहा है, इस लोकोपवाद से बचने के लिये आज रात्रि को धन की चोरी न हो। बस इतना सा सकल्प किया और चोरो के हाथ पोटलियो पर चिपक गये। अदृश्य शक्ति से सभी चोरों के पाँव जमीन से चिपक गये। चोरों के सरदार प्रभव ने देखा कि मेरे ऊपर यह कौन आ गया, इधर-उधर देखा तो ऊपर प्रकाश नजर आया। वह वहाँ पहुँचा। और प्रथम क्षण में ही आश्चर्य में पड़ गया कि यह कोई देवलोक तो नही है। दूसरे ही क्षण वह सभला और देखा—यह देवलोक नही है, श्रेष्ठी का लडका जम्बूकुमार है और ये इसकी पत्नियाँ है, मुझे इससे इसके पास की विद्या सीख लेनी चाहिए। यह सोचकर वह उन्हे वन्दना करता है और कहता है "आप जीते मै हारा"। अपने आपसे सौदा करलें, मेरे पास दो विद्या है, वह तुम सीख लो और पैर चिपकाने की विद्या मुझे सिखा दो। जम्बूकुमार ने कहा मुझे कोई सौदा नही करना है, मै तो सब कुछ त्यागकर कल प्रातः दीक्षा ग्रहण कर रहा हूँ। मुझे कोई विद्या आती नही है, मैने तो मात्र संकल्प किया था कि "आज रात्रि मे सम्पत्ति की चोरी न हो।" यह सुनकर प्रभव विस्मित रह गया, उसने पूछा आपको यह संकल्प की दृढता कहाँ से मिली ? जम्बूकुमार ने कहा कि मै तो वीतराग देव का परम उपासक हूँ, उनकी वाणी पर अगाध श्रद्धा रखता हूँ, इसी कारण उनकी श्रद्धा के फल स्वरूप आत्म बल की उपलब्धि हुई है।

इस बात का प्रभाव यह पड़ा कि प्रभव अपने ५०० साथियो के साथ जम्बूकुमार की अध्यात्म शक्ति—आत्म बल के आगे झुक गया, प्रतिवुद्ध हो गया। वीतराग वाणी पर उसकी अटूट श्रद्धा हो गई और जम्बूकुमार के साथ ही सुधर्मा स्वामी के चरणो मे प्रव्रज्या (दीक्षा) अंगीकार करली। सिर्फ एक व्यक्ति के आत्म बल ने, दृढ सकल्प ने सैकड़ों व्यक्तियो को प्रतिबोधित कर दिया।

उच्च स्थिति उसके जीवन में है, वह नही रह पायेगी। इस बात को आप एक कथन के माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते है।

एक नाई बडे शहर में बाल साफ करने के लिये पहुँचा। उसके पास विद्या थी जिसके प्रभाव से उसके साथ वह बक्सा आकाश में चलता था, जहाँ हजामत करनी होती, वहाँ वह बैठ जाता और इशारा करने पर बक्सा नीचे आ जाता, जिसे देखकर लोग आश्चर्य चकित हो जाते, इस तरह उसकी आमदनी बढती गई। एक संन्यासी जिसने घर बार त्याग कर भगवे वस्त्र धारण कर लिये थे, वह सोचने लगा कि यह विद्या मुझे मिल जाय तो मै निहाल हो जाऊँ। जब वह नाई अपना कार्य निपटा कर मन्त्र विद्या से पेटी को आकाश मे रवाना किया और स्वयं घर की ओर जा रहा था तब पीछे-पीछे संन्यासी भी चलने लगा। जब नाई के साथ वह संन्यासी उसके घर पर पहुँचा और उसके पाँवो पर गिरकर प्रार्थना करने लगा कि आपने यह विद्या कहाँ से सीखी? मुझे भी सिखाने की कृपा करे, आपका यह उपकार मै कभी नही भुलूंगा, तब उस नाई ने कहा कि—मैने तो यह विद्या एक सिद्धि प्राप्त महात्मा की कृपा से प्राप्त की है। यदि तुम्हारी भी सिखने की इच्छा हो तो तुमको भी सीखा सकता हूँ। इस प्रकार सरलतापूर्वक नाई ने संन्यासी को भी विद्या सिखा दी। विद्या सीखकर वह सोचने लगा कि जहाँ यह नाई रहता है। वहाँ मै विद्या का प्रयोग करूँगा तो मेरी प्रसिद्धि नही होगी। इस तरह सोचकर वह दूर किसी शहर मे चला गया और वहाँ मंत्र के प्रयोग से इसी तरह अपने कमडल, मोर, पीछी, चिमटादि उपकरणों को आकाश में रवाना कर देता। लोग यह चमत्कार देखते तो आश्चर्य मे पड़ जाते, प्रशसा करते कि यह तो कोई सिद्ध पुरुष है। राजा ने सुना तो मत्री से कहा कि मै उस सिद्ध पुरुष के दर्शन करना चाहता हूँ। पर मत्री ने कहा कि यह चमत्कार नही है, कोई एकनिष्ठा से इसने सिद्ध की है। यह कोई साधु नही है, साधु होता तो अकेला नही घूमता। पर जब राजा ने आग्रह किया और उसके दर्शन करने के लिए तरस बताई तो राजा से कहा—आप न पधारे में भोजन के लिए उन्हे यहीं बुला लेता हूँ। ऐसा कहकर मत्री ने उस योगी को भोजन के लिए आमत्रण दिया। आमत्रण पाकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ, खुशी-खुशी राजमहल मे आया। राजा ने भोजन का निवेदन किया और वह भोजन करने लगा। सम्मान से भोजन कराने के बाद राजा ने योगी को सम्मान के साथ बैठाकर बातचीत की और पूछा कि यह विद्या आपने कहाँ से सीखी? यह सुनकर वह संन्यासी विचार करने लगा कि मेरी आज इतनी प्रसिद्धि है, लोग जगह-जगह मेरे चमत्कार की प्रशंसा कर रहे है, जब ये पुरुष मुझे सिद्ध पुरुष कह रहे है, अगर मै इनको बता दूँ कि मैने यह विद्या एक नाई से प्राप्त की है तो ये लोग मेरी हँसी उड़ायेगे और मेरी पोजीशन डाउन हो जाएगी तथा समाज में मेरी कुछ भी इज्जत नही रहेगी। ऐसा सोचकर उसने कहा कि—किसी महात्मा के पास मैने लम्बे समय तक कठिन साधना की, उस लम्बे समय की

कठिन साधना के फलस्वरूप ही मुझे यह विद्या प्राप्त हुई है। उस सन्यासी का यह कहना था कि आकाश मे स्थित वे सारे उपकरण आकर धड़ाम से उसके सामने जमीन पर गिर गये। यह देखकर वह हतप्रभ रह गया, सोचने लगा कि अभी तक ऐसा नही हुआ फिर आज यह इस तरह यकायक क्यों हुआ ? गहराई से सोचने पर विचार आया कि अहो मैने ज्ञानदाता गुरु के नाम का गोपन किया है, इसी कारण मेरी स्थिति आज यह बन गई है। उसे मन-ही-मन बहुत पश्चाताप हुआ। राजा ने जब उससे पूछा कि कहिये आपकी साधना कहाँ गयी, तब उसने पश्चाताप पूर्ण स्वर में कहा कि—जिसने मुझे विद्या सिखाई उसका नाम गोपन करके मैने योगी का नाम लिया—इसी कारण मेरी सारी विद्या नष्ट हो गई। इसी तरह जो आध्यात्मिक शिक्षा देने वाले है उनका नाम छिपाये नही। विचार करने की बात है कि गुरु अनल्प उपकार करके वीतराग वाणी का ज्ञान देते है, अतः उनके उपकार को विस्मृत करते हुए उनका नाम नही छिपाना चाहिये।

आज की स्थिति क्या बन रही है, नवयुवक लोग ऊँची-ऊँची शिक्षा प्राप्त करके बड़े-बड़े ऑफिसर बन जाते है, पर जब उनसे अपने पिताजी का नाम पूछा जाता है तो वे अपने पिता का नाम बताने में भी शरम महसूस करते है, पर वह स्थिति उन्हे किसकी बदोलत मिली। इस तरह उपकारी के उपकार का गोपन करने से वे उच्च स्थिति मे नही पहुँच सकते है। और पहुँच भी गये तो ज्यादा समय तक स्थिर नही रह पायेंगे। अतः ज्ञान के आचारो को ध्यान मे रखते हुए पाँचवा जो अनिह्नवाचार है, उसे यथाविधि से जीवन मे उतारना अति आवश्यक है। जो भी भव्य मुमुक्षु आत्मा ज्ञानाचारो का परिपालन वीतराग भगवान् के द्वारा बतलाई गई प्रक्रिया के अनुरूप करेगा वह अपना जीवन अवश्यमय मंगलप्रद अवस्था से आगे बढ़ाने में सुसफल बनेगा। इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१-८-८५
बृहस्पतिवार

□ □ □

३३

व्यञ्जन–अर्थ–तदुभय

(सम्यक् ज्ञान का छठा, सातवाँ, आठवाँ आचार)

वीतराग देव की परम पाविनी वाणी का आस्वादन करने के लिये महा-प्रभु का संस्मरण याद करना आवश्यक है। जो केवलज्ञान दर्शन से सम्पन्न तीर्थंकर पद पर आसीन हुए, उपदेश दिया, वह कितना सरस और जीवन को संस्पर्श करनेवाला है।

केवलज्ञान की अनुभूति से जो विचार करता है, वीतराग वाणी में रत्न-त्रय का उल्लेख है, उसमें सम्यक्ज्ञान का प्रथम उल्लेख मिलता है। प्रभु ने बताया "पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठई सव्वसंजए" और अपुट्ठ बागरणा में उत्तराध्ययन सूत्र के ३२ वें अध्याय मे "नाणस्स सव्वस्स पगासणाए" गाथा कही गई है, जिसमें बतलाया गया है कि ज्ञान को प्रगट करो तो आत्मप्रकाश जागृत होगा, राग-द्वेष दूर हटेगा।

जो अनाज है, उसमें कंकर मिल जाते है, तो बहिनें ध्यान से चुग-चुगकर उन्हे अलग-अलग कर देती है। इसी प्रकार दुनिया में ज्ञान अज्ञान के अनेक शास्त्र है—उनमें वीतराग देव के सिद्धान्त को अपनी पैनी मति से खोजकर उसे प्राप्त कर तदनुसार गति करना, आत्मा के लिए सुखप्रदायक है।

ज्ञान प्राप्त करने के लिये मनुष्य को आठ बातों का अधिक से अधिक ख्याल रखकर पालन करना होता है। तभी सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सम्यक्ज्ञान का छठा आचार **व्यञ्जनाचार** है, अर्थात् शब्दों का उच्चारण अच्छी तरह किया जाय। यदि उच्चारण शुद्ध नही है तो ज्ञान का सरस आनन्द प्राप्त नही हो पाता। उसका अर्थ भी सही रूप में समझ में नही आ पाता।

मनुष्य मानस में मनकल्पित योजना जमाले और उसके अनुसार वीतराग वाणी का पान करे तो यह उचित नही है, बल्कि अपनी मनकल्पित योजनाओं को परे रखकर विचार करे कि वीतराग वाणी में अनंत ज्ञान है, अनन्त पर्याय है पर मुझमें इतनी योग्यता नही कि उनका वर्णन कर सकूं, वह तो यही सोचे कि मै तो जितना अर्थ मेरी बुद्धि में यथातथ्य रूप में ग्रहण किया है, श्रद्धा के साथ मैं उसी को लेकर चल रहा हूँ। और समभावपूर्वक उसी का प्रतिपादन कर रहा हूँ।

साधक के जीवन में यदि विषमता है, तब वह अर्थ करने बैठता है तो वीतराग वाणी का अर्थ सम्यक् न करके मनकल्पित कर लेगा, जो कि स्व और पर दोनों के लिए घातक होगा, ऐसा व्यक्ति भव-भवान्तर तक भटकता रहता है। अतः वीतराग वाणी को जो व्यक्ति बिना किसी शंका आदि से उतारता है, जीवन में तटस्थ भाव से परम श्रद्धा के साथ शास्त्रों का उच्चारण अच्छी तरह से करता है, तो उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, विवरित, घोष, महाघोष आदि का ध्यान रखते हुए अर्थ का प्रतिपादन भी सम्यक् प्रकार से कर सकता है। सम्यक्-ज्ञान पाने के लिये कितनी प्रबल इच्छा होनी चाहिये। इसके लिए मैं आपको महापुरुषों के जीवन में घटित उदाहरण प्रस्तुत कर देता हूँ।

पूर्व में आचार्य श्री अजरामर जी म० सा० हुए है, उनका जीवन तो चोपड़ी, पुस्तकों में मिल जाएगा। अतः मै उनके जीवन को विस्तार से कहने की स्थिति में नही हूँ, पर उनका जीवन का अध्ययन, जब मेरा सौराष्ट्र में विचरण करने का प्रसंग आया, तभी मुझे कुछ करने को मिला। उनके मन में प्रान्तीय भावना नहीं थी। उनकी जिज्ञासा जबर्दस्त थी। आचार्य पद पर आरूढ होते हुए भी वीतराग वाणी का अर्थ ग्रहण करने में जो शब्द उच्चारण किये गये वह सही है या नही, इसकी जिज्ञासा बनी रहती थी, इसके लिए प्रमाण मिलता है कि सूरत में उन्होंने सूत्रसार पढ़ा, अध्ययन किया पर उससे उनके हृदय में संतुष्टि नहीं हुई। क्योंकि जिसके पास अध्ययन किया, उनका विचार-आचार वीतराग वाणी के अनुकूल नहीं था। स्वाभाविक है जो वीतराग वाणी के प्रति श्रद्धा नही रखता है, और मनकल्पित विचार दुनिया के सामने रखता है, तो उस पर श्रद्धा नही होती। यह तथ्य है, मनोवैज्ञानिक बात है।

एक बहुत बड़ा पंडित है, उसका प्रभाव समाज पर उतना स्थायी नहीं पड़ता जितना कि एक साधक का पड़ता है। क्योंकि वह जीवन में अनुभूति से उपलब्ध ज्ञान को लेकर चलता है, वह वाणी के अनुकूल आचरण करता हुआ सीधीसादी शैली में उपदेश देता है, तो भी उसका ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

जहाँ कही छोटे मोटे सुदूर ग्रामों में सन्त अपनी मर्यादा में रहते हुए नही पहुँच पाते हैं, वहाँ श्रद्धानिष्ठ श्रावकों का यह कर्तव्य हो जाता कि वे स्वयं अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अधिक नही तो कम से कम पर्युषण के आठ दिनों मे तो समय निकालकर वहाँ दया पालें एवं वीतराग वाणी का सरल रीति से प्रतिपादन करें ताकि वीतराग देव के सिद्धान्तो का सम्यक् प्रचार हो सके। आज तो श्रावक प्रायः आजीविका के लिये ही सारे समय लगे रहते है, पर जहाँ सन्त न पहुँच सकें वहाँ जाकर धर्म की प्रभावना करने की प्रवृत्ति बहुत कम दिखाई पड़ती है। आज के लोग सोचते है कि साधुओं को अपनी मर्यादा छोड़कर प्रचार करना चाहिये, पर यह भ्रम में भूल है कि उन्हें साधु की मर्यादा का त्याग करके

हुए प्रचार एवं प्रसार का कार्य अपनी जिम्मेदारी पर लेना चाहिये । युगद्रष्टा आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने भी यह स्पष्ट फरमाया था, कि आप साधु को, मर्यादा का उल्लंघन न करावें, अपितु ब्रह्मचारियो का ऐसा वर्ग हो जो पर्युषणादि में छोटे-छोटे गाँवों में वीतराग वाणी का प्रचार कर सके, जहाँ कि सन्त समागम कम मिलता हो ।

क्रान्तद्रष्टा, ज्योतिर्धर आचार्य श्री के गहराइयों से उद्भूत चिन्तन का ही यह प्रभाव है कि आज स्थानकवासी समाज मे अनेक संस्थाएँ स्वाध्याय का प्रचार-प्रसार कर रही है । पर्युषणो में भाई-बहनों को वे संस्थायें धर्मप्रचारार्थ भेजने के लिए प्रयत्नशील है । यह आचार्यप्रवर के अनुभूति परक चिन्तन का ही परिणाम है । स्वाध्यायियो को वीतराग वाणी का प्रचार-प्रसार करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर जिनवाणी से प्रतिकूल कथन कभी नही करना चाहिये । साथ ही जीवन में त्याग-प्रत्याख्यान भी करना चाहिये । आप देख रहे हैं—गुमानमल जी सा० चौरड़िया उपस्थित है, जिन्होने लगभग ३८ वर्ष की अवस्था में सजोड़े शीलव्रत अंगीकार किया है, चार वर्ष से एकान्तर चल रहा है और आठ द्रव्य प्रतिदिन रखते है । मन पर कंट्रोल रखकर चल रहे है, भौतिकता से सम्पन्न होकर भी साधना पथ पर बढ रहे है, यह अन्यों के लिये भी प्रेरणास्पद है । हाँ तो मै कह रहा था कि अजरामर जी म० सा० जब सूरत में पढकर भी संतुष्ट नही हुये तब सूरत से तो वे लीम्बड़ी पहुँचे, वहाँ के सघ से कहा कि मै मारवाड़ जाने की इच्छा रखता हूँ । उन्होने पहले मजाक समझा पर दुबारा पूछा कि क्यो ? तो कहा कि पढने के लिये जाना चाहता हूँ । पूछा किसके पास पढोगे तो कहा कि आचार्य श्री दौलतराम जी म० सा० के पास, वे आचार-विचार मे बहुत दृढ है, अत. उनसे जो ज्ञान मुझे मिलेगा, वह अभूतपूर्व होगा । संघ ने निवेदन किया कि आपश्री वहाँ पधारेगे और अकेले ही लाभ लेगे, हमारा संघ तो यों ही रह जायेगा । अतः क्या ही अच्छा हो कि आचार्य श्री दौलतरामजी म० सा० को यहाँ पधारने की विनती की जाय । यदि हम इसमें सफल न हो सके तो आप मारवाड़ पधार जाएँ । सघ ने आचार्य श्री को विनती की । आचार्य प्रवर ने उनकी विनती स्वीकार कर जब अहमदाबाद पधार गये तो जो सघ का प्रतिनिधि जो साथ आ रहा था, उसने यह बात लिम्बडी जाकर संघ को सूचित की तो संघ ने खुश होकर उस व्यक्ति को लिम्बडी सघ की ओर से १,२५१ रुपये भेट मे दिये । उस समय उन लोगों में यह भावना नही थी कि ये मारवाड़ के सन्त अपने गुजरात मे आकर हमारा प्रभाव कम कर देगे, उस समय न तो कोई प्रान्तवाद था, न सम्प्रदायवाद । प्रायः सभी सघ गुणग्राही थे । आचार्यप्रवर श्री दौलतरामजी म० सा० लिम्वड़ी पधारे । वीतराग वाणी का गहरा निचोड वहाँ के सघ को दिया और अजरामराचार्यजी म० सा० को परम सतुष्टि प्रदान की । यह उनकी महानता थी । पर उस समय प्राय. साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध

संघ निर्ग्रन्थ-श्रम-सस्कृति की सुरक्षा के लिये जागरूक था। अतः उनमे गुजराती अथवा मारवाड़ी के प्रति जरा भी विरोधी भावना नही थी (होनी भी नहीं चाहिये) मेरा आप लोगों से भी यही आह्वान है। निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये अधिक से अधिक आत्मभोग दें, चाहे साधु हो या श्रावक। क्योकि महाप्रभु ने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका के लिये कोई प्रान्तीय भेद नहीं किया था। उन्होने स्पष्ट कहा कि साधु-साध्वी चाहे किसी भी प्रान्त में हों, पर जो भाव से जागृत है वही सच्चा साधु है। जो भाव से सुप्त है वह साधु नही है।

"सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरति ॥"

जो श्रावक-श्राविका साधुओं की मर्यादा जानते है। उन्हें पूरा ध्यान रखना चाहिये कि साधु मोटा भाई है और श्रावक छोटा भाई है। जब मोटा भाई आगे चलता है तो छोटा भाई का कर्तव्य है कि उसका अनुकरण करे। जब श्रावक सामायिक, पौषध करता है, तो दो करण तीन योग से सावद्य कार्यो का त्याग करता है। तब संवत्सरी के दिवस पर माइक पर प्रतिक्रमण करे तो व्रत भग होता है और यह श्रमण संस्कृति का अपमान भी है। आपका क्या कर्तव्य है, विचार करे। निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति को सुरक्षित रखना है। माइक सभी दृष्टियो से अनुपादेय है। इस विषयक चर्चा फिलहाल अभी न करके प्रसंग आने पर करने की भावना रखता हूँ। आचार्य श्री अजरामर जी महाराज ने जहाँ गुजरात और सौराष्ट्र मे अमर क्रान्ति बुलन्द की थी, श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये जैसा कि वीरजी भाई ने कहा—आपका संघ भी बड़ा है, आप भी गहराई से विचार करे और इस सुरक्षा में सक्रिय सहयोग दे। इस पुण्यतिथि पर आपको सहभागी बनना हो तो जहाँ-जहाँ हिसा का प्रसग हो, लाइट, माइक आदि का प्रसग हो वहाँ पर सामायिक-प्रतिक्रमण न करे, आज के दिवस पर क्रान्तिकारी कदम उठाते हुए यह प्रत्याख्यान अगीकृत करे। आचार्य श्री जवाहर-लालजी म० सा० की भी यह क्रान्तिभूमि है। जब आगमिक धरातल से भी क्रान्ति के एक-दो पगले उठते है, तो लोगो की उँगलियाँ उस ओर भी उठ जाती है। अन्यथा भी कहने लगते है, पर भविष्य मे वे ही सभी उँगलियाँ जुड़कर वन्दन करने लग जाती है. धन्य-धन्य कहने लगते हैं लोग। और चल पड़ते हैं उसी राह पर। अतः आगमिक धरातल पर, क्रान्ति के पथ पर अवश्य ही बढते जाना चाहिये। आप गुणग्राही दृष्टि रखे। अजरामर जी म० सा० के गुणों का अवलोकन करे एव उनके क्रान्तिकारी विचारो को ध्यान मे रखते हुए उन्होंने जो राह बनायी है उसकी सुरक्षा के लिए सजग बनें कटिबद्ध होवें। किसी भी प्रकार से मर्यादित रूप मे हमे निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षा करनी है, पूर्व पुरुषों की गुणावली को अपने हृदय मे उतारनी है, तभी जीवन सफलता की ओर प्रयाण कर सकेगा। ज्ञानाचार के पांचवें आचार सूत्र, अर्थ तदुभय के लिए [illegible] है अजरामर जी महाराज।

जो अर्थ का अनर्थ करता है उसका परिणाम कैसे क्या होता है, इसके लिए एक कथानक उपस्थिति कर देता हूँ।

यदि रास्ते में कोई काच का टुकड़ा पड़ा है, तो जौहरी उसे उठाता नहीं पर अशुचि में पड़े अमूल्य हीरे के टुकड़े उठाने में वह कतराता भी नहीं, इसी प्रकार आप भी अपनी दृष्टि को गुणग्राही बनायें।

खीरकदम्बाचार्य के पास बहुत से विद्यार्थी पढ़ने आते थे। पर मै अभी नारद, पर्वत, वसु तीन विद्यार्थियो का ही उल्लेख कर रहा हूँ। वसु राजकुमार था, पढ़ाई पूरी करने के बाद वसु राजा बना, वह जिस सिहासन पर बैठकर न्याय करता था वह आकाश में अधर में रहता था। लोग कहते थे कि यह सिहासन महाराज वसु की न्यायप्रियता की निशानी है। जिस दिन सम्राट वसु न्याय के बदले अन्याय का सहारा लेंगे उस दिन यह सिहासन अधर में नही रहेगा, अपितु जमीन पर आजाएगा। सम्राट के न्याय की सुदूर प्रशसा फैली हुई थी। एक बार पर्वत यज्ञ कर रहे थे, यज्ञ में 'अज' शब्द आया। उन्होंने बकरी अर्थ किया। तभी नारद भी घूमते-फिरते वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कहा—तू गलत अर्थ कर रहा है, गुरुजी ने तो इसका अर्थ धान बताया पर पर्वत नही माना। दोनों विवाद में उतर आये तब किसी ने सलाह दी कि राजा वसु के पास जाकर इसका न्याय कराना चाहिये। आपस मे शर्त कि जिसकी बात सही होगी उसे इनाम मिलेगा और जिसको बात गलत होगी उसे मृत्युदण्ड मिलेगा। पर्वत की माँ को जब यह ज्ञात हुआ तो सोचने लगी कि मेरा पुत्र गलत अर्थ बता रहा है, मै जानती हूँ कि इसके गुरुजी ने अज का अर्थ पुराना धान बताया है। पर यदि यह मामला सम्राट के सामने चला गया तो वे तो बहुत न्यायप्रिय है, जब न्याय करेंगे तो मेरे पुत्र की गलती साबित हो जाएगी और निश्चय ही उसे प्राण-दण्ड मिलेगा। इस प्रकार सोचकर वह पुत्र की रक्षा के लिये सम्राट के पास जाकर चरणों में सिर रखकर बोली कि पर्वत और नारद दोनों विवाद में पड़े है, पर्वत गलत अर्थ बता रहा है। न जाने वह भूल गया है या स्वार्थ मे पड़कर ऐसा कह रहा है और सारी बात बताकर दोनो के बीच हुई शर्त भी बतायी, तथा पुत्र के प्राण-बचाने के लिये बहुत जोर दिया। सम्राट वसु ने उसे आश्वासन देकर विदा किया और स्वय सोच मे पड़ गये कि अब किस प्रकार से न्याय करूँ। विचारों मे मन्थन चलने लगा, पर्वत उसका सहपाठी एवं उसके अनल्प उपकारी गुरु का पुत्र है, गुरु पत्नी माँ के तुल्य होती है, और वह मेरे पास पुत्र के प्राणों की भीख लेकर आयी है। गुरु के अनंत-अनंत उपकारो से मै कभी विस्मृत नही हो सकता अतः विचार करने का समय नही है. जैसे भी हो मुझे न्याय पर्वत के पक्ष मे ही देना होगा। ऐसा सोचकर वह न्याय सिहासन पर आसीन हो गया। दोनों मित्र पहुँचे और न्याय मांगा। वे सही बात जानते थे फिर भी उन्होंने नारद और पर्वत की अलग-अलग बात सुनी और सब कुछ जानते हुए भी निर्णय

पर्वत के पक्ष में दिया, अर्थात् अज का अर्थ बकरा ही बताया। उनके यह निर्णय देते ही वे सिहासन सहित जमीन पर आ गये। कथानक बहुत लम्बा चौडा है विस्तार से कहने का समय नही, बस इतना अवश्य समझना है कि जब वैदिक सिद्धान्त में भी गलत अर्थ करने पर ऐसा प्रसंग उपस्थित होता है, तो वीतराग सिद्धान्त का जो गलत अर्थ करता है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उसका संसार बढ़ जाता है, अनंत-अनंत कर्मो का उपार्जन कर लेता है। वही यदि सरल सरस रीति से वीतराग वाणी के अनुसार सिद्धान्त को समझाता है और कहता है कि जैसा मैंने वीतराग वाणी से पाया है, वही मै बता रहा हूँ। विशेष क्या कुछ है ये तो ज्ञानी ही जाने, उनकी गहरी दृष्टि का अवलोकन करने की मुझमें पूर्ण क्षमता नही है। इस प्रकार से चलनेवाला ज्ञान के पंचम आचार का सम्यक् तया पालन कर साधना पथ पर आगे बढ जाता है। सभी को इसी विषय में विचार करना है, अधिक से अधिक सरलता जीवन मे अपनायें। निर्ग्रन्थ श्रमण की सुरक्षा के लिये ही हर एक कार्य हो, हर प्रवृत्ति हो। वीतराग वाणी के अनुसार अपने जीवन को बनाये। वीतराग सिद्धान्तानुसार ही दूसरो को बताये, तभी जीवन की सार्थकता होगी, इससे दूसरों का तो उपकार करेंगे ही साथ ही स्वयं का जीवन भी वीतराग वाणी के अनुरूप आचरण से चमक उठेगा, और मंगलमय दशा को प्राप्त हो जाएगा।

मोटा उपाश्रय   २-८-८५
घाटकोपर, बम्बई   शुक्रवार

□ • □
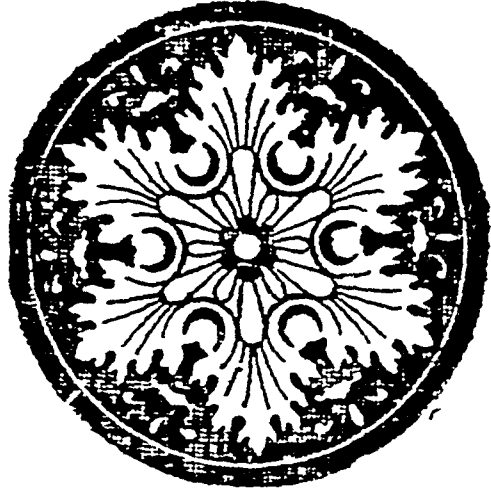
सम्यक् - चारित्र

[जीवन के विशुद्ध आचरण की विधि]

आठ आचार

- इर्या समिति
- भाषा समिति
- एषणा समिति
- आदान भंड़ मत निक्षेपणा समिति
- उच्चार प्रस्वण-क्षेल-जल्लमल सिंघाण परिस्थापनिका समिति
- मन गुप्ति
- वचन गुप्ति
- काया गुप्ति

३५

देखो स्वयं को स्वयं के आइने में

(चारित्राचार के आठ आचार)

इस वर्तमान युग में आत्माओ की विचित्र दशाएँ देखने को मिल रही है। आत्मा के विविध रूपो को विविध पर्यायो मे देखने का प्रसंग आ रहा है। आत्मा स्वयं एक रूप मे रहती हुई भी स्वय के कृत कर्मो के उदय से विभिन्न रूप धारण करती है, इस आत्मा को रूप बनाने की कोई यह प्रेरणा नही देता है कि तुम अमुक तरह का कर्म करो। वह तो स्वय, स्वय कृत्यो से रूप धारण करती रहती है।

"ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्ग वा श्वभुमेववा" की धारणा अर्थात् ईश्वर की प्रेरणा से प्राणी स्वर्ग और नरक में जाता है, यह मानना युक्तिसगत नही है, वीतराग अवस्था प्राप्त ईश्वर मे यह राग-द्वेष नही है।

इस मानव जाति के शरीर पिण्ड मे रहता हुआ, यह चैतन्य देव अपने स्वयं की सत्पुरुषार्थ शक्ति से आत्मा के गुणो को घात करने वाले घातिक कर्मो को स्वय से विलग करके केवलज्ञान, केवलदर्शन से सम्पन्न बन जाता है। इस परम पवित्र स्वरूप मे रहती हुई आत्मा समग्र विश्व की आत्माओ का रूप किन-किन पर्यायो से हो रहा है, इनका भी विज्ञान उनके ज्ञान मे अभिव्यक्त हो जाता है। प्रभु ने केवलज्ञान की अवस्था में रहते हुए भव्यात्माओ को जो उपदेश दिया, वह उपदेश भी मित्र की तरह वस्तु स्वरूप का कथन किया था, ग्रहण या विसर्जन के लिए कोई आग्रह नही किया था। वीतराग अवस्था प्राप्त महा-प्रभु ने तटस्थ दृष्टा एव ज्ञाता के रूप में रहकर आत्मानन्द का रसास्वादन करते हुए भव्यजनो को मनुष्य जीवन की सार्थकता का स्वरूप निर्दर्शन किया था, वह उपदेश आज भी दुनिया के लिए प्रकाश पुंज का कार्य कर रहा है, अन्धकार में भटकने वाली आत्मा इस उपदेश मे स्वय को प्रकाशित करे तभी मनुष्य जीवन की विशेषता है।

नहीं जानता हो, क्योंकि वह अपूर्ण है, पर मन की क्रिया की गति बड़ी तीव्र होती है । जिस पुरुष के लिए वह मन की क्रिया कर रहा है, उस क्रिया का प्रभाव मनुष्य के चर्मचक्षु से परे होता हुआ भी सम्बन्धित व्यक्ति के मन तक पहुँच जाता है, और उसकी प्रतिक्रिया उसके मन मे अदृश्य रूप मे होती है । यह विषय मन से सम्बन्धित है । मन की गतिविधि का जिसको विशेष विज्ञान नही है, वह भी यह तो अनुभव कर रहा है कि मेरी जितनी भी हलन-चलन की क्रिया हो रही है, यह सब करने वाला कौन है ? हाथ स्वतः उठ नही सकता, यह हाथ अपने आप उठे तो मुर्दे शरीर के भी उठने चाहिये । आँखे स्वतः झपकने लगे तो मुर्दे की भी आँखें झपकनी चाहिये, किन्तु यह नही होता है । इस अनुभव से यह निष्कर्ष सामने आता है कि इस शरीर की सरचना में ऐसी कोई महत्त्वपूर्ण शक्ति का समावेश है जिससे ये सारी क्रियाएँ हो रही है, जिसे शास्त्रीय भाषा मे आत्मा कह सकते है ।

शरीर की बनावट की तरह ही द्रव्य मन की भी बनावट होती है, लेकिन उसकी अध्यक्षता चैतन्य देव आत्मा करता है, वह जैसा-जैसा कर्म करता है, उसके अनुरूप उसके शरीर की रचना, उसका द्रव्य मन बनता है । इस सब स्पष्टीकरण से स्पष्ट होता है कि इस शरीर तंत्र के बीच में इसका चालक कोई स्वतन्त्र कर्ता है, वह स्वयं अपनी इच्छानुसार कार्य सम्पादन करता है, वह शरीर से बाहर नही रहकर शरीर प्रमाण अवस्थान मे ही रहता है । उसको कोई जबर्दस्ती कार्य कराने में कामयाब नही होता, दूसरा अगर कोई करना चाहे तो उसका मन होता है तो ही उस कार्य की परिणति होती है । अतः सर्वशक्तिमान तो आत्मा ही है । पर कर्मो से दबी होने से अपना स्वरूप प्रकट नही कर पा रही है । जब आत्मा, मौलिक स्वरूप समझकर उसे निखारने के लिए सत्पुरुषार्थशील होती है, तब आत्मिक शक्ति निखरने लगती है, यदि एकाग्र रूप से किया गया पुरुषार्थ भी आश्चर्यजनक शक्ति देने वाला होता है । सती सीता ने गृहस्थावस्था में पातिव्रत धर्म का अच्छी तरह पालन किया था, उसी का परिणाम था कि रावण की सीता पर बलात्कार करने की शक्ति नही रही थी । रावण भी कितना बलशाली था, पर उसने भी एक ही बात रखी कि मै सीता पर बलात्कार नही कर सकता, वह जानता था कि इस सती पर मै बलात्कार करने जाऊँगा तो मेरी यह सारी क्रिया सफल नही होगी, क्योंकि जो शक्ति सम्पन्न चैतन्य देव है, वह नारी जाति के शरीर मे भी विद्यमान है और सीता के भीतर तो विद्यमान आत्मा जागृत है । जहाँ आत्मा जागृत है, वहाँ अन्य बल चल नही सकता । अबोध को बोध देने में बल चल सकता है, पर समझदार को नही । यही स्थिति सारे संसार मे रहने वाले मनुष्य की है । यह मन शरीर में रहता है, लेकिन सम्यक् ज्ञान के अभाव में यदि यह कार्य करता है तो उसका कार्य शांतिप्रद नही होता । अन्ततो-गत्वा उसे पश्चाताप ही पल्ले पड़ता है । प्रभु महावीर ने अर्थ रूप में जो वाणी का उपदेश दिया, वह द्वादशांगी के रूप में संकलित किया गया । आत्मा को

उन्नति पथ पर ले जाने वाला यदि कोई सारभूत तत्व है तो द्वादशागी में वर्णित अष्ट प्रवचन है। जो मातृ स्थान को लेकर चलते है। वे पाँच सुमति तीन गुप्ति के रूप में है। पाँच सुमति तीन गुप्ति के लिये कभी व्यक्ति विचार करे कि ये तो सन्तों के लिये ही है, पर जहाँ मैं गहराई से चिंतन करता हूँ तो लगता है कि ये प्रत्येक भव्यों के लिये है। प्रत्येक प्राणी को सम + इ = समगति में लाने वाले है। मन मिला, शरीर की प्राप्ति हुई लेकिन मन की गति समिति युक्त है या विपम के साथ है। यह सभी के समझने की वस्तु है। एक कथानक के माध्यम से समझिये।

जहाँ भयकर जंगल में एक डकैत ऐसा बलकारी था, कि जहाँ-जहाँ लूट-पाट करने जाता वहाँ अपनी इच्छानुसार सम्पत्ति लेकर अपने स्थान पर पहुँच जाता। किसी की भी पकड़ में नही आता था, उसी जंगल में एक निस्पृह साधक जो पाँच समिति–तीन गुप्ति से युक्त थे, स्व की गति और पर की गतिविधि को जानते थे और पहचानते थे, वे निर्भय होकर भयकर अरण्य में पहुँचे। उन्हें देखकर डाकू विचार करता है कि यह मनुष्य कौन है? यहाँ तो मेरा ही साम्राज्य है। यहाँ दूसरा कोई नही आ सकता है। मेरा नेतृत्व स्वीकार करने वाला ही यहाँ आ सकता है, पर यह कौन आ रहा है। इस मनुष्य को मै जंगल का स्वरूप समझाऊँ। इसे मै मेरे नियन्त्रण में लूँ। यह भावना लेकर वह महात्मा के निकट आया और कहने लगा, "तुम रुक जाओ", महात्मा निर्भय थे, वे स्वय की समित गति के साथ चल रहे थे, महात्मा ने कहा, "मैं तो रुका हुआ हूँ, तुम रुक जाओ।" डाकू विचार करता है कि यह कैसा मनुष्य है, जो मुझे यह कह रहा है कि तुम रुक जाओ, वह इस अबूझ पहेली को समझ नही पाया। अतः यह समस्या डाकू के मन में खड़ी हो गई और वह विचार करने लगा यह कोई साधारण नही विशिष्ट पुरुष है। इसका रहस्य जानना चाहिये। डकैत महात्मा को कहने लगा, "तुम उल्टी बात कैसे बोल रहे हो और मैं रुका हुआ हूँ फिर भी तुम ऐसा कैसे बोल रहे हो।" तब महात्मा ने कहा, 'तुम ऊपरि दृष्टि के मनुष्य हो। तुम पैरो की गति को ही गति (चलना) मान रहे हो। पर तुम्हारा मन खड़ा है या चल रहा है? महात्मा बोले कि यही तो भ्रान्ति है, तुम शरीर से तो खड़े हो पर मन की प्रक्रिया चल रही है। जिस मनुष्य का मन नियन्त्रण मे आ जाय, आत्मस्थ हो जाय, तो वह पैरो से चलता हुआ भी खड़ा है. तुम्हारा मन विषम है, तुम्हारी मान्यता पशु जैसी है। पशु भी यही मानता है कि यह जंगल मेरा है, सिंह मानता है कि यहां मेरा राज्य है। कुत्ता शृगालादि भी यही मानते है। तुम विचार करो कि यह जंगल किसका है? महात्मा की समित गति का, मन की क्रिया का प्रभाव डकैत पर पड़ा और मन की प्रक्रिया को समझने के लिए वह महात्मा के चरणों मे गिर पड़ा और कहने लगा कि मैं अज्ञानी हूँ, दुखी हूँ, पर आज सम्पूर्ण [illegible] है, [illegible]
[illegible] । महात्मा ने कहा कि [illegible]

धर्मास्तिकायादि पचास्तिकायमय है। द्रव्यानुयोग का गहराई से जो बोध दिया जिससे डकैत का मन चोरी करने में ज्यादा आगे बढ़ा हुआ था पर जहाँ महात्मा की अमृतोपम वीतरागवाणी को सुनकर महात्मा के समित मन की प्रक्रिया का प्रभाव पड़ा और डकैत का जीवन परिवर्तित हो गया, तो क्या अन्य का नही हो सकता ?

महात्मा के मुँह से वीतराग वाणी सुनकर डकैत का कितना परिवर्तन हो गया, पर वही वाणी सत-सती सुनाते है, तो फिर परिवर्तन कैसे नही होता ? जब तक मनुष्य की दृष्टि भौतिक तत्त्वो को देखने मे ही रहेगी, वहाँ तक जीवन का रूपान्तरण नही हो सकता। जिसका आन्तरिक जीवन उस मानसिक क्रिया के साथ प्रतिक्रिया को समझ ले तो उसका रूपान्तर हुए बिना नही रहता। जम्बू ने सुधर्मा स्वामी का एक ही उपदेश सुना था, उनके जीवन में परिवर्तन हो गया। कहावत है कि "एक हाथ से कभी ताली नही बजती" वीतराग वाणी का उपदेश जीवन रूपान्तरण के लिये दिया जाता है। श्रोतागण उस उपदेश को गहराई से हृदय में ग्रहण करें तो ही परिवर्तन हो सकता है। सूर्य की किरणे सभी को प्रकाश देती है, पर रात्रि का राजा (गुग्गु) उल्लू जिसको सूर्य की किरणें भ्रमर की टांग की तरह काली-काली लगती है तो दोष किसका है ? सूर्य की किरणों का है या उसे ग्रहण करने वाले का ? उसी जिनवाणी को ग्रहण करने वाला सही नही है तो दोष जिनवाणी का नही है। जिस प्रकार समान स्तर पर ही व्यक्ति हाथ मिला सकता है। वैसे ही अपनी आत्मा मे परमात्मा के स्वरूप की अभिव्यक्ति भी समान स्तर पर ही हो सकती है, मन्द आत्मा कर्मो से काली है तो उसमें परमात्मा की अभिव्यक्ति नही हो सकती। जैसे एक मनुष्य का अशुचि से हाथ भरा है, उससे दूसरा व्यक्ति हाथ मिलाने की कोशिश करे तो वह मिला नही सकता, इसी तरह जीवन का सशोधन करना है तो चारित्राचार को समझने की आवश्यकता है। बाहर का कितना ही विज्ञान प्राप्त करले, बाहरी डिग्रियाँ कितनी भी क्यों न प्राप्त कर ले पर वह स्व-पर के जीवन को नही जान सकता। केवल ऊपर-ऊपर से विचार करने वाला वास्तविक रूप से दूसरो के दिल को रूपान्तरित नही कर सकता। इसी तथ्य को एक पौराणिक आख्यान से समझिये।

एक सम्राट विचार करता था कि मै राजा हूँ। अतः मुझे प्रजा की सुख-दुःख की बात सुननी है। रात्रि का समय परिवार के सभ्य स्वयं के सुख-दुःख की बाते ज्यादा करते है। अतः वेश परिवर्तन कर सम्राट रात को नगर का अवलोकन करता हुआ परिभ्रमण कर रहा था। एक बगले के पास गया, बंगले की खिडकियाँ खुली थी और कमरे में कुछ प्रकाश था। स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि कमरे मे चार कन्याएँ बैठी आपस मे वार्तालाप कर रही थी। सम्राट सुनने लगा कि ये क्या बातें कर रही है, सुख-दुःख की बाते कर रही है या अन्य ?

एकान्त में होने से सम्राट को शंका हुई कि इनके मन में चारित्रहीनता की बात भी पैदा हो सकती है । राजा दिवाल से सटकर खड़ा हो गया और ध्यान से उनकी बातें सुनने लगा—

एक बाला ने दूसरी से कहा कि वह जा रहा है । दूसरी ने इशारा करते हुए कहा—वह नही है । तीसरी ने उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा—वह होता तो जाता ही क्यो ? तब चौथी ने उपेक्षा करते हुए कहा—जाय तो जाने दो न अपना काम तो हो गया । इस विचित्र सवाद को सुनकर सम्राट स्वय की बुद्धि से विचार करने लगा कि मै तो चारित्र की प्रतिष्ठा के लिये प्रयास कर रहा हूँ, पर आज तो ये "दिये तले अन्धेरा वाली बात हो गई ।" ये चारो चारित्र भ्रष्टा है । ये पर-पुरुष की आकांक्षा करने वाली है । वह आगे बढा और घूमता हुआ अपने स्थान पर पहुँच गया । रात मे राजा को नीद भी नही आयी और उसके मन मे यह विचार हुआ कि मेरे राज्य मे यह चारित्र-हीनता मै नही चाहता हूँ । सवेरे ही चारो को राज सभा मे बुलाकर दड दूँगा । सवेरे होते ही बगला नम्बर देकर कर्मचारी को वहाँ भेजा और कन्याओ को बुलवाया । कन्याएँ समझ गयी कि लगता है रात्रि की बात राजा ने सुनली है । उसे सुनकर ही हमे बुलाया गया है । अतः वे तैयार हो गई और जाने लगी । तो सर्वत्र उनके चारित्रहीनता की बात हो रही थी । पर वे किसी की परवाह किये बिना वहाँ पहुँची और निर्भयतापूर्वक राजा को हाथ जोड़े बिना ही एक दूसरी को कहने लगी । पहली ने कहा—यह तो वही है । दूसरी ने कहा वह तो है पर इसके वे नही है । तीसरी ने कहा—वे होते तो इन्हे यहाँ आने ही कौन देता । चौथी ने कहा—यदि असावधानी से यहाँ आ भी जाते तो डण्डा मारकर सभा से बाहर निकाल देते ।

उनकी इन बातों को सुनकर सम्राट विचार करने लगा कि रात की बात से तो मै उलझन मे पड़ा हुआ था ही और यह बात और खड़ी हो गई । मैंने रात की बात सुनकर इनकी चारित्रहीनता की बात फैला दी, पर यह अच्छा नही किया । ये लडकियाँ कुलीन लगती है । इस प्रकार विचारो के महासागर मे गोते लगाते हुए राजा ने रात्रि की और अभी की बात पूछी तो उन कन्याओं ने कहा राजन् ! आपकी मन की गति समित है या नही ? यही हमारी बातो को सुनकर आप गलत काम कर दो तो ? क्योंकि आप भले ही सम्राट हो पर मन की स्थिति मे आप सम्राट नही हो । सम्राट ने कहा- रात को तुम क्या बोली थी ? वह कहने लगी कि आपकी मन की क्रिया अच्छी होती तो आप यहीं सामने [illegible] मन की क्रिया और प्रतिक्रिया का अध्ययन कर लेते । [illegible] ने कहा—[illegible] [illegible] बातो मे ही तुम्हारे चारित्र [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

तक हमारा कर्तव्य है कि पिता के अवशेष कार्य को निपटाने के लिए हम प्रयास करें। राजा ने कहा कि तुम्हारा कथन मुझे कुछ भी नहीं समझ आ रहा है। उन्हें स्पष्ट कर समझाओ। तब उन वहिनों ने कहा—सत्य कटु होता है। कही आप सुनकर नाराज तो नही हो जाओगे। तब राजा ने कहा—नहीं मैं तुम्हें सौगुना अपराध माफ करता हूँ। जो सच-सच है वह वतला दो। तब वे वालाएँ बतलाने को तैयार हुई। बोली कि अभी की बात समझाएँ या पहले की ? तब सम्राट ने कहा—पहले अभी की ही सुनाओ। तब वे कहने लगीं—सम्राट ! मन को समित रखना, विषम मत बनाना। हमने अभी जो कहा कि "यह तो वह है" अर्थात् आप सम्राट हैं, सम्राट का उत्तरदायित्व महान् होता है। राज्य धुरा चलाने के लिए विचारों की निर्मलता और बुद्धि का तीक्ष्ण होना परम आवश्यक है। किन्तु खेद है, न आपके विचार शुद्ध है और न वुद्धि ही पैनी है। आपने छिपकर रात्रि में कही हमारी बातें सुनली और पूर्वापर प्रसंग का विचार न कर हमारे ऊपर चरित्रहीनता का आरोप लगा दिया, जिससे मेरी एक बहिन ने कहा कि ये सम्राट नही पशु है। पशु में अक्ल नही होती, इसमें भी अक्ल का दिवाला है। दूसरी बहिन ने जो बात कही थी, उसका आशय है—"यह साधारण पशु नही है, यह तो सीग पूछ रहित विचित्र पशु है। तीसरी बहिन के कथन का अभिप्राय है, यदि इसके सीग पूछ होते तो इसे राज सिहासन पर कौन बैठाता और मैंने कहा था यदि इसके सीग पूछ होते तो इसे मार पीटकर बाहर निकाल देते। किन्तु अब इसे किस प्रकार निकालें। ये मेरी भूल हो गई और आपको पशु कहा पर अब रात की बात सुनो। तब सम्राट एकदम से चौक गया। सोचा इन बहिनों ने तो मुझे भरी सभा के बीच पशु बना दिया, पर मैंने इन्हे सौ गुना अपराध माफ किया है। अतः इन्हे कुछ भी नही कह सकता। दूसरी बात ये बहुत होशियार और सुशील है। फिर राजा ने रात्रि की बात पूछी तब उन लड़कियों ने कहा—राजन् ! रात में मेरी एक बहिन ने कहा वह जा रहा है अर्थात् दिये की रोशनी जा रही है, तब दूसरी ने कहा वह नही है अर्थात् तेल नही है, इसलिये वह जा रहा है। तोसरी ने कहा वह होता तो नही जाता अर्थात् तेल होता तो जाता ही नही। चौथी बोली जाये तो जाने दे अपना काम तो हो गया। सम्राट कन्याओ की बातों को सुनकर अपनी शंका का समाधान होते ही अत्यधिक प्रसन्न हुआ और स्वयं के जीवन को परिवर्तन कर लिया। आज भी लोगों में परिवर्तन का प्रसंग आ सकता है। जो समझ गया हूँ वहीं सत्य है, ऐसा न सोच कर जिस दृष्टि से यथा तथ्य समझाते है, उसी दृष्टि से समझने का प्रयत्न करे तो ये सम्यक् रीति से समझ मे आ सकता है। हठाग्रही या अभवी को तीर्थंकर भी आ जाय तो भी नही समझा सकते है।

मन की गतिविधि क्रिया-प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है। चारित्राचार के द्वारा जीवन के आचारो को, प्रवचन माता के स्वरूप को समझोगे

तो स्वयं को स्वयं के आइने में देख सकोगे। अन्यथा वास्तविक रूप में जीवन का परिवर्तन नहीं हो सकेगा।

एक पागल बाजार में सत्य बोलो, सत्य करो कहता हुआ चलता है तो कौन माने। क्योंकि स्व के आचरण में आयी हुई वस्तु ही अन्य पर प्रभाव डालती है, पागल में वह स्थिति नहीं है। सत्य का स्वरूप क्या है, इसके लिए साधु-साध्वी आदि सभी के स्वरूपों को आचार संहिता का विचार करे कि मेरा विचार, मेरा ज्ञान ही सब कुछ नहीं है, इससे भी विराट् विशाल ज्ञान-विज्ञान अभी बाकी है, शान्ति के क्षणों में बैठकर ही विधिपूर्वक सबका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। श्रावक एवं श्राविका भी समिति-गुप्ति का पालन कैसे कर सकते है आदि का अच्छी तरह ज्ञान करने पर ही स्वयं के जीवन मे उस सम्राट की भांति सद्ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक मानव यह चिन्तन करे कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिये ? वर्तमान में मै कैसे जी रहा हूँ। इन सभी का विज्ञान प्राप्त कर आगे की स्थिति में अग्रसर होने का प्रयास करेंगे, तभी भव्यात्माओ का जोवन मंगलमय दशा की ओर प्रयाण कर सकेगा।

मोटा उपाश्रय ४-८-८५
घाटकोपर, बम्बई रविवार

• □ •

३६

चारित्राचार के साथ ध्यान योग का समन्वय

समस्त विशिष्ट लक्षणो से सम्पन्न परम पवित्र वीतराग स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए तीर्थकर देव का नाम सुनने से कई मनुष्य विचार करते हैं कि ये तो जैनों के देव है, पर जब अर्थ ध्यान में आता है तो मालूम होता है कि वे जाति-पाति वर्ग विशेष से सम्बद्ध नही है। जिनका रागद्वेष मिट गया है, वे सभी के है। मानव मात्र के ही नही, प्राणी मात्र के हितैषी हैं। उनका उपदेश अमुक वर्ग के लिये ही है, यह नही होता। उनका उपदेश सभी के लिये कल्याणकारी है। आज की दुनिया में जो अशांति, दुख और द्वद्व है, उन सबका अन्त इस उपदेश से हो सकता है। आवश्यकता है, वैसा ही पुरुषार्थ करने की। विमल प्रभु की प्रार्थना में उनके लोचन देखने की बात आई है। उनके लोचन नेत्र विशिष्ट नेत्र याने ज्ञान नेत्र के लिए कहा है। उसे देखने के लिए वैसे ही नेत्र पैदा करने होंगे। आचाराङ्ग सूत्र में कहा है—भगवान् के नेत्र बहुत बडे है, जो लोक को तो देखते है, पर अलोक को भी देखते है, ऐसे ज्ञान चक्षु से जो आत्मा को देख लेता है वही विमलनाथ भगवान् के नेत्रो का साक्षात्कार कर सकता है। विचार करना है कि भीतर के नेत्र कैसे देखे जाय। इसके लिए प्रभु ने उपदेश दिया है, जिसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनो का उल्लेख है। उमास्वाति ने पहले दर्शन फिर ज्ञान कहा है। सम्यक् ज्ञान व दर्शन के आचारो का उल्लेख, मै आपके सामने कर गया हूँ। अब विचार करना है कि चारित्र के आठ आचार कौन से है। चारित्र की पालना जैन धर्म मे कई मनुष्य करते है, पर चारित्र की पालना करते-करते विमलनाथ भगवान् जैसे नेत्र उन्हे प्रगट हुए या नही, इसके लिए साधु के पाँच महाव्रत और श्रावक के पाँच अणुव्रत बताये है। इनका आचरण करके जो प्राण रूप तत्त्व ग्रहण कर लेता है, वही वैसे नेत्रो का साक्षात्कार कर सकता है। जिस शरीर मे प्राण नही रहते, वह प्राणी नही कहलाता। इसी प्रकार आचरण तो करने मे आता है, पर उसके भीतरी ध्यान योग को जाने विना उन नेत्रों का साक्षात्कार नही हो सकता।

आज वहुत से मनुष्य, शव्दों का उच्चारण तो करते है पर उसके अर्थ को नही जानते, ग्रहण नही करते। आज के कई मनुष्य वहुत से शास्त्र पढ लेते है, उसका अर्थ विवेचन भी पढ़ लेते है, पर उनके दिल मे ध्यान योग की साधना नही आती। सोचते है कि यह तो दूसरो के पास है, हमारे धर्म मे नही है।

पर यह मानना सही नहीं है, जैन धर्म में ध्यान योग का पर्याप्त विवेचन मिलता है।

ध्यान साधना चारित्र का प्राण है, इसमें जो दत्तचित्त हो जाता है, उसके भीतर के नयन खुल जाते है, पर इसकी साधना करने वाला चाहे साधु हो या श्रावक, सभी को बहुत कम समय मिलता है। कारण कि मन एकाग्र करना पड़ता है। शुरू में कठिनाई अवश्य होती है, पर करते-करते यह हाइवे रोड के समान सुबोधगम्य बन जाती है। शुरू-शुरू में धैर्य की आवश्यकता है। ध्यान रूपी चारित्र का प्राण जब चारित्र के साथ रहता है, तो उसका किस तरह विकास होता है, यह जानने की बात है। पानी का लक्षण क्या है, यही तो, जो मनुष्य की तृषा शांत करे, ठंडक प्रदान करे, वही जल है, पर यदि ये गुण उसमे नहीं है तो उसे मीठा पेय नहीं कहा जा सकता। समुद्र के पानी से प्यास नही बुझती।

ध्यान आत्मा की तृषा बुझाने वाला है, पर वह हो चारित्र रूप पानी के साथ। आज बहुत से साधक चारित्र की पालना कर रहे है, पर उन्हें अन्तर की संतुष्टि नही मिलती। कठिन-से-कठिन क्रिया की जा रही है, पर ध्यान रूप प्राण को छोड़कर ही सब कुछ किया जा रहा है, इसीलिये आत्म संतुष्टि नही मिल पा रही है। वीतराग देव ने ध्यान को महत्त्वपूर्ण बताया है।

प्राणायाम में जो श्वास ग्रहण की जाती है और छोड़ी जाती है, वह ऊपर की वस्तु है। ध्यान योग नहीं। ध्यान और योग दो शब्द है। योग क्या है? मन, वचन, काय इन तीनों की गतिविधि ध्यान में लगा दे तो हो सकती है। दूसरी-दूसरी जो योग साधना है वे खतरनाक है, ज्यादा तो उसमे प्राण वायु को रोकने का प्रसंग आता है, हवा रोकी जाती है तो अन्दर कुम्भक होता है। उन बारीक नसों पर बहुत दवाव पड़ता है, जिससे मस्तिष्क की नसो पर ज्यादा दवाव पड़ने से कभी-कभी मनुष्य पागल हो जाता है। कई बार सुनने में आता है कि वह बहुत विद्वान् था, पर योग साधना में श्वास रोकते-रोकते पागल हो गया। कारण स्पष्ट है कि नियन्त्रण नही रहा कुम्भक पर।

ब्यावर का प्रसंग है। एक व्यक्ति इसी तरह ध्यान साधना किया करता था, पर एक समय ऐसा प्रसंग बना कि श्वास रोकते-रोकते कुम्भक पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि मस्तिष्क की नसें खिंचने लगी और वह पागल हो गया। यह मेरी आँखो देखी घटना है। रोग मिटाने के लिए औषध लेने में आती है, पर वो भी दो तरह की होती है। उदाहरण है—एक चिकित्सक का कहे कि मेरी दवाई से रोग मिटे या न मिटे पर दूसरी बीमारी हो सकती है। दूसरा कहे [illegible] मिटने का [illegible] तो है, पर दूसरा रोग भी [illegible] है। तीसरा कहे दवाई लो [illegible] पर इससे रोग मिटे या निश्चित नहीं किन्तु दूसरी बीमारी नहीं

हो सकती। चौथा कहे कि मेरी दवा से रोग तो मिट ही जायेगा और ताकत भी बढ जाएगी तो बताइये आप कौन से चिकित्सक की दवा लेंगे ? उत्तर है, चौथे की। तो बन्धुओ, वीतराग देव ऐसे ही डॉक्टर थे। उन्होंने घनघातिक कर्मो का नाशकर जो सुन्दर औषध दी है, वह है चारित्र पालना में ध्यान योग की साधना। आप चारित्र के साथ ध्यान के प्राण को जोड़ें। चारित्राचार के जो आठ भेद है—आठ प्रवचन माता। जो आप सब जानते ही होंगे। प्रवचन माता क्या करती है ? प्राण रूप दूध देती है, पर वह दूध आपने ग्रहण किया या नही ? जैनाचार्य ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए दुनिया के सामने एक दृष्टि दी है। सत्वेषुमैत्री - ससार की सभी आत्माओं के प्रति मैत्री भाव हो। हरिभद्र सूरिजी ने भी इसीलिए मिथ्यादृष्टि का वर्णन किया है। यह सब ध्यान योग के लिये है। इसलिये ध्यान साधना किस तरह की जाय ? यह मै समय-समय पर बताता रहता हूॅ। पर उसमें आपकी अरुचि आ गई तो सब निरर्थक हो जाएगा। जो साधक पहले अपेक्षित ध्यान साधना न साधकर चारित्र का पालन करता है तो उसे पूरे फल की सिद्धि नही मिल सकती। इसे एक रूपक के माध्यम से स्पष्ट कर देता हूॅ।

पुष्पभूति नाम के आचार्य थे। वे अपने बहुत से शिष्यों को चारित्र के साथ-साथ ध्यान साधना की भी शिक्षा देते थे। अध्यापक चाहे कैसा भी उपदेश दे, पर यदि शिष्य सही रूप में स्वीकारे तो उस उपदेश की सार्थकता है। पुष्पभूति आचार्य का पुष्पमित्र नामक शिष्य बहुत ही गुणवान्, विनयी एवं शास्त्रो की गहराइयों में उतरने वाला था। वह उस ध्यान साधना को पाने के लिए हरेक क्रिया का ध्यान रखता था और सदा निवेदन करता कि ध्यान साधना व चारित्राराधना का मार्ग बताये। मै साधना मे तल्लीन बनना चाहता हूॅ। इस प्रकार ध्यान साधनादि में वह गीतार्थ हो गया।

एक दिन आचार्य प्रवर मन में विचार करने लगे कि मै चारित्र पालना के साथ ध्यान साधना में विशेष लक्ष्य रखता हूॅ तो सघ से अलग होना पडेगा। ध्यान साधना के लिए एकाकी रहना होगा। तब संघ को कौन समझायेगा, कौन संभालेगा ? चिन्तन करने के बाद उन्होने शिष्य पुष्पमित्र को बुलाकर कहा मै ध्यान साधना विशेष रीति से करना चाहता हूॅ, आगे बढना चाहता हूॅ। अत: कोई भी दर्शन करने के लिये आये तो तुम उन्हे बाहर ही रोकोगे, उन्हे संभालोगे। क्योकि आज भी ऐसा देखने को मिलता है, जो लोग दर्शन करने आते है तो जोर से 'मत्थएणं वंदामि' कहते है। ताकि मोटे महाराज के कान में उनके शब्द पहुँच जाय और जब तक वे आपकी वन्दना न झेलेगें "दया पालो" न कह दें, तब तक आप अपनी की गई वन्दना को सार्थक नही मानते। पर इसमें विवेक रखने की आवश्यकता है। संयमी जीवन का हर एक कार्य अपनी सीमा मे होता है। अत: आपको धैर्य के साथ रहना चाहिये। दूर

से ही वन्दनादि कर लेनी चाहिये। वे आचार्य जानते थे कि सभी मनुष्य एक सरीखे नहीं होते है, कोई आकर मेरे पांव में भी माथा लगा देगा तो ध्यान साधना में खलन पड़ेगा। लोग आकर पावों मे माथा लगाते है। तो यह नही सोचते कि इनके ध्यान मे मैं बाधक बन रहा हूँ। इनकी साधना में विघ्न उपस्थित कर रहा हूँ। इस तरह मै इन्हे अन्तराय तो दे ही रहा हूँ, पर साथ ही स्वयं भी कर्मो का उपार्जन कर रहा हूँ।

शिष्य पुष्पमित्र ने गुरुदेव की बात सुनकर कहा—कि मै तन, मन से समर्पित हूँ, आप ध्यान साधना में विराजें, मै एक भी शब्द आपके कान तक नही पहुँचने दूँगा। सभी व्यक्तियों को बाहर से ही लौटा दूँगा। शिष्य के विनीत वचनों को सुनकर एवं आश्वासन पाकर आचार्य श्री ध्यान साधना में, तन, मन, काया की साधना मे तन्मय हो गए, दूसरे शब्दों मे कहा जाय तो समिति के साथ गुप्ति की साधना में तन्मय हो गए। सभी साधु, गुरु भ्राता अन्य कोई भी आते और कहते कि दर्शन करना है, तो पुष्पमित्र यही कहते कि यही से कर लो। कुछ दिन तो सभी को संतुष्टि प्रदान की। पर कई साधु प्राण रूप चारित्र जीवन की ध्यान साधना क्या होती है? यह नही जानते थे। अतः कुछ दिन बाद पुष्पमित्र को कहने लगे कि तुम जाने नहीं देते, दर्शन नही करने देते आदि कहकर उसकी इस प्रकार आशातना करने लगे। पुष्पमित्र का तिरस्कार करते, पर पुष्पमित्र यही कहते कि आचार्य श्री ध्यान साधना में संलग्न है, उनके समीप जाने से विघ्न उपस्थित होगा, उनकी ध्यान साधना मे। पर वे ध्यान साधना से अनभिज्ञ साधु न माने और एक दिन जब पुष्पमित्र आवश्यक कार्य से निपटने के लिए जंगल गए हुए थे, तब वे लोग अन्दर पहुँच गये, देखा तो सोचा—अरे! आचार्य श्री का स्वर्गवास हो गया है, यह पुष्पमित्र हमको अन्तराय दे रहा है। पुष्पमित्र आया तो उसे भी बहुत कुछ कहने लगे। उसने समझाया कि वे महान् है, ध्यान साधना मे संलग्न है, आप उन्हे बाधा न पहुँचायें, पर उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। वे लोग जबदाह करने के लिए कहने लगे। इधर पुष्पमित्र अकेला था, फिर भी उसने उन्हे नहीं ले जाने दिया तब वे लोग वहा

हो सकती। चौथा कहे कि मेरी दवा से रोग तो मिट ही जायेगा और ताकत भी बढ जाएगी तो बताइये आप कौन से चिकित्सक की दवा लेगे ? उत्तर है, चौथे की। तो बन्धुओ, वीतराग देव ऐसे ही डॉक्टर थे। उन्होने घनघातिक कर्मो का नाशकर जो सुन्दर औषध दी है, वह है चारित्र पालना में ध्यान योग की साधना। आप चारित्र के साथ ध्यान के प्राण को जोड़े। चारित्राचार के जो आठ भेद है—आठ प्रवचन माता। जो आप सब जानते ही होंगे। प्रवचन माता क्या करती है ? प्राण रूप दूध देती है, पर वह दूध आपने ग्रहण किया या नही ? जैनाचार्य ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए दुनिया के सामने एक दृष्टि दी है। सत्वेषुमैत्री - संसार की सभी आत्माओं के प्रति मैत्री भाव हो। हरिभद्र सूरिजी ने भी इसीलिए मिथ्यादृष्टि का वर्णन किया है। यह सब ध्यान योग के लिये है। इसलिये ध्यान साधना किस तरह की जाय ? यह मै समय-समय पर बताता रहता हूँ। पर उसमें आपकी अरुचि आ गई तो सब निरर्थक हो जाएगा। जो साधक पहले अपेक्षित ध्यान साधना न साधकर चारित्र का पालन करता है तो उसे पूरे फल की सिद्धि नहीं मिल सकती। इसे एक रूपक के माध्यम से स्पष्ट कर देता हूँ।

पुष्पभूति नाम के आचार्य थे। वे अपने बहुत से शिष्यों को चारित्र के साथ-साथ ध्यान साधना की भी शिक्षा देते थे। अध्यापक चाहे कैसा भी उपदेश दे, पर यदि शिष्य सही रूप मे स्वीकारे तो उस उपदेश की सार्थकता है। पुष्पभूति आचार्य का पुष्पमित्र नामक शिष्य बहुत ही गुणवान्, विनयी एवं शास्त्रो की गहराइयों में उतरने वाला था। वह उस ध्यान साधना को पाने के लिए हरेक क्रिया का ध्यान रखता था और सदा निवेदन करता कि ध्यान साधना व चारित्राराधना का मार्ग बताये। मै साधना में तल्लीन बनना चाहता हूँ। इस प्रकार ध्यान साधनादि में वह गीतार्थ हो गया।

एक दिन आचार्य प्रवर मन मे विचार करने लगे कि मै चारित्र पालना के साथ ध्यान साधना मे विशेष लक्ष्य रखता हूँ तो संघ से अलग होना पडेगा। ध्यान साधना के लिए एकाकी रहना होगा। तब संघ को कौन समझायेगा, कौन संभालेगा ? चिन्तन करने के बाद उन्होने शिष्य पुष्पमित्र को बुलाकर कहा मै ध्यान साधना विशेष रीति से करना चाहता हूँ, आगे बढना चाहता हूँ। अत: कोई भी दर्शन करने के लिये आये तो तुम उन्हे बाहर ही रोकोगे, उन्हें संभालोगे। क्योंकि आज भी ऐसा देखने को मिलता है, जो लोग दर्शन करने आते है तो जोर से 'मत्थएणं वंदामि' कहते है। ताकि मोटे महाराज के कान में उनके शब्द पहुँच जाय और जब तक वे आपकी वन्दना न झेलेगें "दया पालो" न कह दे, तब तक आप अपनी की गई वन्दना को सार्थक नही मानते। पर इसमें विवेक रखने की आवश्यकता है। संयमी जीवन का हर एक कार्य अपनी सीमा में होता है। अत: आपको धैर्य के साथ रहना चाहिये। दूर

से ही वन्दनादि कर लेनी चाहिये। वे आचार्य जानते थे कि सभी मनुष्य एक सरीखे नही होते है, कोई आकर मेरे पांव में भी माथा लगा देगा तो ध्यान साधना में खलन पड़ेगा। लोग आकर पावों मे माथा लगाते है। तो यह नही सोचते कि इनके ध्यान में मै बाधक बन रहा हूँ। इनकी साधना में विघ्न उपस्थित कर रहा हूँ। इस तरह मै इन्हे अन्तराय तो दे ही रहा हूँ, पर साथ ही स्वयं भी कर्मो का उपार्जन कर रहा हूँ।

शिष्य पुष्पमित्र ने गुरुदेव की बात सुनकर कहा—कि मै तन, मन से सर्मपित हूँ, आप ध्यान साधना में विराजे, मै एक भी शब्द आपके कान तक नही पहुँचने दूँगा। सभी व्यक्तियों को बाहर से ही लौटा दूँगा। शिष्य के विनीत वचनों को सुनकर एवं आश्वासन पाकर आचार्य श्री ध्यान साधना में, तन, मन, काया की साधना में तन्मय हो गए, दूसरे शब्दो में कहा जाय तो समिति के साथ गुप्ति की साधना में तन्मय हो गए। सभी साधु, गुरु भ्राता अन्य कोई भी आते और कहते कि दर्शन करना है, तो पुष्पमित्र यही कहते कि यहीं से कर लो। कुछ दिन तो सभी को संतुष्टि प्रदान की। पर कई साधु प्राण रूप चारित्र जीवन की ध्यान साधना क्या होती है ? यह नही जानते थे। अतः कुछ दिन बाद पुष्पमित्र को कहने लगे कि तुम जाने नही देते, दर्शन नही करने देते आदि कहकर उसकी इस प्रकार आशातना करने लगे। पुष्पमित्र का तिरस्कार करते, पर पुष्पमित्र यही कहते कि आचार्य श्री ध्यान साधना मे संलग्न है, उनके समीप जाने से विघ्न उपस्थित होगा, उनकी ध्यान साधना मे। पर वे ध्यान साधना से अनभिज्ञ साधु न माने और एक दिन जब पुष्पमित्र आवश्यक कार्य से निपटने के लिए जगल गए हुए थे, तब वे लोग अन्दर पहुँच गये, देखा तो सोचा—अरे ! आचार्य श्री का स्वर्गवास हो गया है, यह पुष्पमित्र हमको अन्तराय दे रहा है। पुष्पमित्र आया तो उसे भी बहुत कुछ कहने लगे। उसने समझाया कि ये महान् है, ध्यान साधना मे सलग्न है, आप इन्हे बाधा न पहुँचाये, पर उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नही किया। वे लोग शवदाह करने के लिए कहने लगे। इधर पुष्पमित्र अकेला था, फिर भी उसने उन्हे नही ले जाने दिया तब वे लोग वहाँ के राजा के पास पहुँचे—कहा कि आचार्य श्रीजी न तो हिलते-डुलते है और न कुछ बोलते ही है, लगता है उनका स्वर्गवास हो गया है, पर मुनि पुष्पमित्र उनका दाह संस्कार नही करने दे रहा है। तब सम्राट स्वयं वहाँ पहुँचे और पूछा तो पुष्पमित्र ने कहा कि ये साधु महाव्रत लेकर चल रहे हैं, सम्यक् चारित्र का आचरण कर रहे है, पर उससे जो रस आता है, उसे समझ नही रहे हैं। आचार्य श्रीजी को मृत घोषित कर रहे है। आप इन्हे समझाएँ कि ये उत्कृष्ट ध्यान साधना में विराजे हुए है, पर साधु लोग कहने लगे कि अहो ! विद्वान् तो यही है, हमने इतने शास्त्र यों ही पढे है, इस तरह प्रलाप करने लगे। तब पुष्पमित्र ने मौन धारण करली कि जो ईर्ष्या एव क्रोध से अन्धे हो रहे है, उन्हे

कुछ समझाना बेकार है । राजा आचार्य श्रीजी के समीप गये, उनके हाथ पांव आदि हिलाकर देखा, उनकी नस टटोली, श्वास देखी, पर सब कुछ स्पंदन रहित देखकर कहा कि पुष्पमित्र की बात गलत है, ये सभी साधु ठीक कह रहे है। सम्राट ने उनकी शव क्रिया के लिये तैयारी करने की आज्ञा दे दी । तव पुष्पमित्र ने सोचा कि आचार्य श्री तो ध्यान साधना खोलेगे नही, मुझे संकेत बताया था कि जब कभी आवश्यक कार्य होवे तो मेरे अमुक अंग को स्पर्श करना, तब मै ध्यान की स्थिति से पूर्व अवस्था में लौट आऊँगा । उन्होंने सोचा कि अव रुकने का समय नहीं है । ये लोग तो इनका दाह संस्कार करने की तैयारी कर रहे है । अत: वे आचार्यश्री के पास गए और उनके संकेतित अंग पर हाथ लगाया । आचार्य श्री ने ध्यान खोला और कहा कि यह क्या किया ? मेरी ध्यान साधना में यह विघ्न उपस्थित क्यों किया ? तब पुष्पमित्र ने विनय के साथ करबद्ध होकर सारी स्थिति स्पष्ट की और कहा कि चारित्र की पालना, ध्यान की साधना का भगवन् ! इन साधुओं को कुछ भी ध्यान नहीं है। आप तो ध्यान साधना में तल्लीन थे, पर उन्होंने आपको मरा हुआ समझ लिया । मैंने बहुत समझाया कि आप ध्यान साधना में तल्लीन है, पर वे नही माने और आपकी शव क्रिया करने के लिये ले जाने की तैयारी करने लगे । अत: मैंने आपकी साधना में विघ्न उपस्थित किया, ताकि इन साधुओं को सच्चाई ज्ञात हो सके और इनके नेत्र खुल सके । तब आचार्य श्री ने उन समस्त साधुओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम लोग इसीलिये अधूरे रह गये हो । केवल ऊपर की वस्तुओं को देखते हो, गहराई में नही उतरते हो । अपने ज्ञान को ही महान् समझते हो, गुरु को कुछ नही समझते । न पुष्पमित्र का तुम लोगों ने विनय किया । ध्यान साधना मे तुम लोगों की रुचि नही है—और जो रुचि रखते है, उनकी साधना में तुम लोग बाधा उपस्थित करते हो । मेरी समाधि भी तुम लोगों ने अपनी असावधानी से भग करवा दी । अब मुझे नये सिरे से ध्यान करना होगा ।

बन्धुओ ! इस उदाहरण से वस्तु स्थिति स्पष्ट हो जाती है कि साधना किस प्रकार करनी चाहिये । सम्यक् चारित्र के आठ आचारों का विशिष्ट रूप मे पालन करने के लिए ध्यान योग की कितनी आवश्यकता है । केवल वाहरी क्रियाओ मे हो साधक समिति-गुप्ति का पालन करे और अन्तरंग की ओर ध्यान न दे तो साधना सफल नही हो सकती । क्योकि शास्त्रकारों ने कहा है कि वाह्य रूप से चारित्र पालन क्यों न गौतमस्वामी जैसा कर लिया जाय, पर मन मे समित अवस्था नही है, वचन की प्रवृत्ति समित नही है, तो वह आचार मुक्तानुलक्ष्यी नही हो सकता । साधक को सम्यक्चारित्र के आठ आचारो का पालन करने के लिये मन को ध्यान योग मे सम्यक्रित्या नियोजित करना आवश्यक है । इसलिये महाप्रभु ने सहजिक ध्यान योग भी वताया है कि प्रत्येक क्रिया

करते समय ध्यान उसी में रहे। जब मन इतना सधेगा, तभी चारित्राचार की परिपूर्ण पालना में ध्यान की विशिष्ट साधना सध सकेगी। केवल ऊपरी तौर पर चारित्र ग्रहण कर लिया, ३२ शास्त्रों का शाब्दिक अध्ययन कर लिया, पर चारित्र के साथ ध्यान साधना नहीं की तो क्या स्थिति होगी ? विचार करिये, चिन्तन मनन करिये कि आज जैन समाज में लोगों का विशिष्ट प्रक्रिया की ओर आकर्षण कम लगता है। केवल ऊपरी-ऊपरी ध्यानों की ओर ही आकर्षण ज्यादा है। आज के तथाकथित ध्यान साधक भी ज्यादातर ऊपरी ध्यान की ओर ही लगे हैं, ऊपरी दृष्टि रखकर चले जा रहे है। स्वयं को देखने के बजाय पर को देखा जा रहा है। कई तो यही सोचते रहते हैं कि अमुक ने मुझे वन्दना नही की, अमुक ने नमस्कार नहीं किया, अमुक ने मेरा सत्कार-सम्मान नहीं किया, अमुक मेरा भक्त कैसे बने, मेरे नाम पर संस्थान कैसे हो। इन बाहरी बातों में ही उलझते जा रहे है। इन बाहरी बातों से ध्यान साधना का लक्ष्य तिरोहित होता चला जा रहा है। दशवैकालिक सूत्र में तो साधक के लिये साफ बतलाया है—

> "जे न वंदे न से कुप्पे, वंदिओ न समुक्कसे।
> एवमन्नेसमाणस्स, सामण्णमणुचिट्ठई।"

अर्थात्—वन्दना नहीं करने वाले पर क्रोधित न हों और वन्दन करने वाले पर अभिमान न करे। इस प्रकार का वर्तन करने वाला साधक ही श्रमण धर्म का शुद्ध पालन कर सकता है।

बन्धुओ ! मैं आपसे कह रहा था कि चारित्राचार संत जीवन के साथ-साथ श्रावकों के लिए भी ज्ञेय-उपादेय है। उन्हे यथायोग्य रूप में अपनाकर ध्यान योग के साथ रमण करने पर ही दिव्य नयनों को देख सकेंगे। विशेष ज्ञान चर्म नयनो तक ही सीमित नहीं है। जीवन का तत्त्व एवं दिव्य नेत्र अवलोकन करने की चीज है। उसे यो ही सहज ही प्राप्त नही किया जा सकता। चारित्राचार के आठ भेदो को समझ कर गहराई से चिन्तन-मनन करते रहे, तभी चारित्र की पालना के साथ-साथ ध्यान योग की साधना जीवन में परिपूर्ण रूप से उतार कर मंगलमय दशा को प्राप्त कर सकेंगे।

मोटा उपाश्रय ५-८-८५
घाटकोपर, बम्बई सोमवार

• ○ •

३७ | मित्रता हो सभी आत्माओं पर

वीतराग देव को प्रतिदिन भावात्मक दृष्टि से स्मृति में उभारा जाता है, क्योंकि सभी आत्माओं का मौलिक रूप वीतराग स्वरूप है। अपने शरीर में जो आत्मा है, उसका भी यही स्वरूप है। भव्यात्माओं का लक्ष्य होता है एक न एक दिन वीतराग देव के सम बन जाना। इसलिये लगभग प्रतिदिन इनको याद करने का प्रसंग बन जाता है, चाहे तीर्थंकर के नाम से याद करे या वीतराग देव के नाम से।

सभी की भावना आज यही है कि वीतराग दशा प्राप्त की जाय। लक्ष्य नहीं होगा तो सभी एकत्व भावना मे नही आ सकेंगे। एक को साधने वाला ही सब को साधकर सत्य को पा सकता है। कहा भी है—

"एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।"

अर्थात् यदि एक को साध लेंगे तो सभी कार्य सध जायेंगे, पर यदि सभी कार्यों को एक साथ साधने जायेंगे तो मुख्य काम तो बिगड़ेगा ही, साथ ही सभी कार्य भी बिगड़ जायेंगे। वट वृक्ष आपने देखा होगा, उसका मूल बडा होता है और पत्तियाँ आदि हरी होती है। कोई मनुष्य उसकी पत्ती पकडकर चलता है और दूसरा जड़ को लेकर चलता है, जड को ग्रहण करने वाला तो फूल-पत्ती आदि सब कुछ पा लेता है, पर पत्ते को पकडकर रहने वाले के हाथ कुछ नही आता, वह पत्ता भी एक दिन पककर झड़ जाता है, इस तरह वीतराग दशा को जीवन मे लाने का प्रयत्न करने वाली आत्मा सब कुछ पा सकती है, किन्तु जो आत्मा इन्द्रियों से विभिन्न सुख को पाने का प्रयत्न करती है, वह कुछ भी नही पा पाती है, वीतराग स्वरूप की प्राप्ति के लिए सम्यक् चारित्र की आराधना के साथ समीक्षण ध्यान का समन्वय करने पर आत्मा का वीतराग स्वरूप निखर सकता है।

सुखविपाक-सूत्र मे आप सुन रहे है, मूल को पकड कर चलने वाले सुबाहु-कुमार का वर्णन। जो कि वीतराग दशा को प्राप्त करने मे सफल बन जायेंगे, अभी तो देवलोक में गए है। आत्मा को उज्ज्वल बनाने मे प्रमुख कारण चारित्र है और उसका प्राण है—समीक्षण ध्यान। वीतराग देव द्वारा प्ररूपित समीक्षण ध्यान ही चारित्र का प्राण है। ध्यान की साधना कैसे होती है? यह विचार

करने की बात है। जो विषय आज अपने जीवन के लिये आवश्यक है, उस विषय की बातें चाहे गुजराती में हो' चाहे हिन्दी में, मूल विषय एक ही है और उसे ही सबको पकड़ना है। हाँ तो मैं कह रहा था, ध्यान योग साधना किस माध्यम से हो ? हमारा यह शरीर जो दिख रहा है, उसके अन्दर दो शरीर और है-- तेजस्, कार्मण। ये दोनो ही इस आत्मा को स्वरूप से अलग कर रहे हैं, स्वरूप का ध्यान लगाने में बाधा पहुँचा रहे है।

आत्मा तो इतनी प्रखर तेजस्वी है कि सूर्य के प्रकाश की उपमा भी नही दी जा सकती। सूर्य मे कितना तेज होता है, पर जब बादल आ जाते हैं सूर्य के चारो तरफ, उस वक्त सूर्य का प्रकाश दिखाई नही देता है, पर सूर्य की किरणें इतनी प्रखर हैं कि बादल ज्यादा टिक नहीं सकते। जिस प्रकार सूर्य की प्रखर किरणों के तेज से सारे बादल हट जाते हैं और सूर्य अपने सम्पूर्ण प्रकाश के साथ प्रकट हो जाता है, इसी प्रकार सूर्य से भी अधिक यह आत्मा प्रकाशवान् है। यदि इसके तेज से कर्मो को हटा दे तो आत्मा का निर्मल स्वरूप कर्म रहित होकर चमक सकता है, औदारिक शरीर में से आत्मा का भौतिक स्वरूप निखर उठेगा। आत्मा इन शरीरों की मालिक है, उसे चाहिये कि वह अपनी सुख शक्ति को जाने। कर्मो के बादल को हटाकर अनंत ज्ञान का प्रकाश प्रकट करे।

बादल किससे पैदा हुआ ? सूर्य की किरणों के माध्यम से ही वे आकाश मे जाते है और एक दिन उसे ही आवरण मे ले लेते है, ठीक इसी प्रकार आत्मा, शरीर, मन, वाणी, व्यवहार से कर्म रूपी बादल को इकट्ठा करती है तो उसे हटाने का कार्य भी यह आत्मा ही करती है। पर उसे हटाने में सम्यक्ज्ञान के साथ सम्यक् चारित्र का पुरुषार्थ हो तो शाश्वत शाति की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।

जैसे आपने अपने हाथों से किसी को रस्सी से बाँधा है, वो एक दिन हाथों से ही उसकी रस्सी भी खोलेगा, पाँवो से नही, ठीक इसी प्रकार मन, वचन, काया के द्वारा ही कर्म बँधे है, इन्ही के द्वारा वे नष्ट भी होगे। मन, वचन, काया को सम्यक् करे। सही संशोधन करने वाला ही योगी होता है, गुफा में बैठने वाला ही योगी नही हो जाता।

वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जो मन, वचन, काया की प्रवृत्ति होती है, वह योग है। आपकी जानी मानी चीज अर्थात् जो आप रोजाना बिजली को काम लेते हो, वह बिजली पावर हाउस से जुड़ी हुई है, शक्ति पावर हाउस में है। पर प्राय: कई कार्यो में बिजली का उपयोग होता है, अर्थात् पावर का संचार पावर हाउस के होते हुए भी प्रकाश का माध्यम अलग होता है। उसी प्रकार क्रियाएँ मन, वचन, काया से होते हुए भी शक्ति का संचार तो आत्मा के द्वारा ही होता है। जिस प्रकार बिजली का पावर हाउस एक है, पर माध्यम

अलग-अलग है, उसी प्रकार आत्मा का प्रकाश पुञ्ज एक है, पर इसके मन, वचन, काया तीन मुख्य माध्यम है, जिनके द्वारा वीर्य शक्ति प्रकट हो रही है, पर आज के प्रायः मनुष्य उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। जैसे रात्रि के समय बिजली खुली रह गई तो उसमें अनर्थदण्ड की हिंसा होती है, जिसका कि श्रावक के त्याग होता है। तो फिर कैसे उसके अणुव्रत की सुरक्षा हो सकती है? इसी प्रकार मन, वचन, काया का दुरुपयोग भी अशुभ कर्मों का वन्धन कराने वाला बनता है। मनुष्य स्वयं अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर रहा है। लेकिन जो योगों का उपयोग वीतराग दशा की प्राप्ति की ओर करता है तो उसके कर्म निर्जरा का भव्य प्रसंग भी उपस्थित हो सकता है। लेकिन आज मनुष्य की स्थिति कहाँ जा रही है? पानी के नल से पानी की आवश्यकता थी, जितना भरा बाद में नल को खुला छोड़ दिया। व्यर्थ ही पानी वह रहा है, इसमें पानी का तो दुरुपयोग हो ही रहा है, पर साथ ही आपके कर्मवन्ध की स्थिति भी बन रही है। पानी के इस प्रकार बहने से अनंतानन्त जीवों का हनन होता है। पानी जीवों का पिण्ड है, पर कई अविवेकी व्यक्ति उन जीवों का घात व्यर्थ ही कर बैठते हैं। इसी तरह आज जीवन की शक्ति योगों के माध्यम से नष्ट-विलुप्त हो रही है। कर्मबन्ध की स्थिति बनती जा रही है। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त वीर्य-शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है। कम से कम धर्मस्थान में तो भव्यात्माओं को ज्यादा से ज्यादा सदुपयोग करना चाहिये। धर्मस्थान में बैठते समय श्रावक यह समझे कि मै सभी जीवों का मित्र हूँ। हरिभद्रसूरि प्रतिपादित आठ दृष्टियों में से एक मित्रा दृष्टि भी है। सभी प्राणियों के साथ उसके जीवन में अहिसा की भावना आ जानी चाहिये। जिसका तात्पर्य है कि—

'खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा वि खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वैरं मज्झं न केणई ॥"

इस प्रकार सभी के प्रति आत्मीय व्यवहार लेकर जितने समय तक भी वह चलता है, उसकी आत्मा में एक विशेष प्रकार की आत्मीयता एव सुखानुभूति जागृत होती है। लेकिन आज धर्मस्थान में रहकर भी अशुभ अध्यवसायों के माध्यम से कर्मों के बन्धन की स्थिति बनती है, तो वह आत्मा के लिए घातक है, क्योंकि कहा है—

"अन्यस्थाने कृतं पापं, धर्मस्थाने विमुच्यते ।
धर्मस्थाने कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति ॥"

अन्य स्थान पर किये पाप से छुटकारा धर्मस्थान में मिलता है, पर धर्मस्थान में जो पापक्रिया करके वंध की स्थिति बनाते है, उसका विमोचन कहाँ होगा?

बन्धुओ ! वीतराग वाणी को जीवन साधना के साथ जोड़ें। हमारे पाँच महाव्रत है और आपके पाँच अणुव्रत है। हमारे एवं आपके सभी के लिए यह ध्यान देने की बात है। यह धर्मस्थान है, सभी पापों का विमोचन यहाँ किया जाता है। अन्तःकरण से जिस समय माफी माँगी जाती है, तब योग का दण्डा नीचे रखा जाता है अर्थात् मन, वचन, काया के दण्डों को झुकाये। आप लोग इसे समझें और जीवन में उतारें। जीवों की पिटाई, हिंसा कम से कम धर्मस्थान में न करें, उन्हे अभयदान देकर चले तभी जीवन का सारा स्वरूप बदलेगा, सहायता मिलेगी। जिसके भी जीवन में ऐसा प्रसंग आता है, उसके अन्तःकरण में क्षमाभावना से आत्मज्योति देदीप्यमान होती है।

एक छोटी-सी बात कह देता हूँ। दो मित्र थे, बचपन से ही साथ-साथ पढते खेलते थे। पढ़ाई पूर्ण हो जाने पर दोनो ने व्यापार करने का निश्चय किया और सम्पत्ति कमाने के लिए विदेश जा रहे थे। आज जितनी यातायात की सुविधाएँ है उस समय नही थी। वे पैदल चलते-चलते राह भूल गये, जंगल मे चले गये, अब वहाँ किससे मार्ग पूछा जाय। वहाँ तो कोई मनुष्य मिलता नही, अतः वृक्ष पर चढ़कर चारों तरफ देखा, तो उन्हे एक पहाड़ के मध्यभाग में झोपड़ी दिखाई दी, नीचे उतरकर मित्र ने कहा कि कुछ दूरी पर एक झोपड़ी है, अतः संभव है वहाँ कोई न कोई व्यक्ति मिल ही जाएगा तो चलो वहाँ चलकर उससे किसी शहर का रास्ता पूछा जाए। दोनों मित्र चलकर उस झोंपड़ी के पास आए और देखा कि झोपड़ी के पास साधना की पूर्वभूमिका-मित्रादृष्टि को प्राप्त करके सीधी-सादी पोषाक में एक साधक बैठे हुए थे। व्यापारियों की दृष्टि किनको पहचानती है? व्यापारियों को वस्तुओं की पहचान हो सकती है, साधको की नही। वे विचार करने लगे, जंगल मे रहनेवाला यह जंगली है। वे उस साधक को जाकर कहने लगे, अरे जंगली ! यह सम्बोधन सुनकर साधक सोचने लगा कि ये अपने अहं मे डूबे हुए है, पर मुझे क्या करना ? मैं तो आत्मरमण की स्थिति में चल रहा हूँ। इनके इस सम्बोधन से मेरी आत्मा पर कोई फर्क नही पडने वाला है। ये मुझे नही पहचानते है, क्योंकि ये व्यापारी है, अतः पैसों को पहचानते है, यह सोचकर वह योगी बोला—मित्रो ! पधारो।

उस योगी के ये शब्द सुनकर वे विचार करने लगे, अहो यह तो सभ्य है। उसने उन्हे अन्दर ले जाकर बैठाया और कहा कि आपकी आकृति से लगता है कि आप प्यासे है, उन्हे झरना बताया कि वहाँ जाकर अपना कार्य निपटाकर प्यास बुझालो। फिर कहा कि आपकी तृषा तो शान्त हो गई, पर लगता है कि आप लोग भूखे भी है। उन्होने कहा—हाँ, भूखे तो है, पर यहाँ जंगल मे कोई ऐसा वृक्ष नही है, जो कि फलो से लदा हो और हमारी भूख मिटा सके। तब उस साधक ने कहा कि फल आदि के लिये आप क्यो चिन्ता करते है, व्यर्थ में वनस्पति की हिंसा करने से क्या लाभ ? मेरे लिए प्रतिदिन भोजन आता है,

आज का भोजन अभी तक रखा हुआ है, सो आप लोग वह भोजन ग्रहण कर अपनी क्षुधा शान्त करिये। उन लोगो को बड़ा आश्चर्य हुआ, पूछने लगे कि यह भोजन हम लोग खा लेंगे तो आप क्या खायेंगे? तब उसने कहा, मेरी चिन्ता न करो। इस तरह बहुत ही प्रेम से उन्हे जिमाया। भोजन करके तृप्त हुए तब उनकी दृष्टि पड़ी कि अहो, यह भी कोई व्यक्ति है, कितना शिष्ट एव सभ्य है, उन्होंने शिष्टता से पूछा कि हमें शहर का रास्ता बताओ। तब साधक ने पूछा, शहर क्यों जा रहे हो? तो कहा, आजीविका के लिए। योगी ने कहा कि क्या तुम्हारे गाँव मे पेट भरने का साधन नही मिलता? तो वे बोले, मिलता तो है, पर हमें अधिक साधन की अपेक्षा है। तब योगी ने कहा—मै समझ गया तुम पेट नही पेटी भरना चाहते हो। पर मुझे इससे मतलब नही। मै मित्रा-दृष्टि रखकर चल रहा हूँ। मेरे लिए सभी व्यक्ति समान है, यहाँ आनेवाले सभी व्यक्ति मेरे मित्र है, जो भी मेरा अतिथि बनकर आता है, उसे अपनी सेवा से संतुष्ट करना मेरा कर्त्तव्य है। तुम्हे शहर का मार्ग तो बता देता हूँ, पर उससे पहले तुम्हें एक काम की बात बताता हूँ, तुम ध्यान से उसे सुनलो।

दोनों मित्रों ने सोचा कि यह जगल में रहकर साधना कर रहा है, जरूर इसने कोई ऐसी जड़ी बूटी सिद्ध की है, जिसके रासायनिक प्रयोग से स्वर्ण धातु की उपलब्धि होती है। मन ही मन बडे प्रसन्न होते हुए प्रकट में कहा कि हाँ! हाँ! जरूर बताओ। हम ध्यान से सुन रहे है। तब उस साधक ने कहा कि मै ऐसी जड़ी बूटी जानता हूँ, जिसके प्रयोग से स्वर्ण बनाया जाता है, पर मै ऐसी परिश्रम से प्राप्त होने वाली वस्तु आपको नही बता रहा हूँ। बल्कि बिना किसी पुरुषार्थ के सीधे ही आपको रत्न और स्वर्ण की प्राप्ति हो जाए, ऐसी बात बता रहा हूँ। मेरे पीछे जो गुफा है, उसमे आगे जाते हुए बहुत से वृक्ष तुम्हें दिखाई देंगे, उनके बीच मे जो दो वृक्ष एक समान है, उनके नीचे तुम्हे चन्द्रकान्त, सूर्य-कान्त मणियाँ स्वर्णादि मिल जाएँगे। जिसके प्रकाश के सहारे तुम अँधेरे में भी सब कुछ देख सकोगे। गुफा अन्धेरी है एव लम्बी है। वहाँ किसी प्रकाश के साधन के सहारे से ही पहुँचा जा सकता है, मेरे पास दो टार्च है, जिसमें बहुत कम मसाला है। टार्च का प्रयोग सोच समझकर करना, यदि इधर-उधर देखने मे इसका मसाला खत्म कर दिया तो गुफा मे भटक जाओगे और फिर कभी वापिस निकल नही पाओगे और यदि टार्च का सही प्रयोग करते हुए बिना इधर-उधर दृष्टि डाले, एकाग्र चित्त से अपने लक्ष्य की ओर बढते जाओगे तो निश्चित ही तुम्हे ढेर सारे स्वर्ण एवं चन्द्रकान्त तथा सूर्यकान्त मणियो की उपलब्धि होगी। लौटते वक्त जबकि टार्च का मसाला खत्म हो जाएगा पर मणियो का तेज तुम्हारा मार्ग प्रकाशित करेगा और उस प्रकाश मे तुम गुफा भी अच्छी तरह देख सकोगे। दोनों खुश हो गये, उस योगी के पाँव पकड लिये। बैटरियाँ ली और चलने लगे, आगे जाने वाला सोचने लगा कि यह योगी बहुत महान्, निष्पृह है, इतनी सम्पत्ति का स्वामी है, पर इसमे जरा भी लोलुपता नही है, नि स्वार्थ

भाव से उस खजाने का रहस्य इसने हमे बताया है, इसके कथनानुसार ही सारा कार्य करना चाहिये । यह सोचकर वह एकाग्र मन से टार्च के प्रकाश को इधर-उधर न फैंकते हुए अपने गंतव्य की ओर चलने लगा । पर दूसरे मित्र ने सोचा कि यह साधक बड़ा ही चालाक व्यक्ति लगता है, इसकी बातों का क्या भरोसा ? हो सकता है गुफा में इधर-उधर नजदीक में ही अपार धन सम्पत्ति पड़ी हो, और हमें दूर भेजना चाहता हो, ऐसा विचार कर कभी इधर तो कभी उधर टार्च का प्रकाश फैंकते हुए चलने लगा । परिणामस्वरूप मसाला खत्म हो गया और वह गुफा के अन्धकार मे रास्ता भटक गया ।

पहला मनुष्य योगी के कहे अनुसार वहाँ पहुँच गया, रत्नादि उसे मिल गए, वह चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त मणि एवं यथाशक्ति सोने की पोटलियाँ बाँधकर चल पडा, और उस साधक को बार-बार धन्यवाद देने लगा । फिर पीछे मुडकर देखा तो साथी नही था । वह अकेला ही लौटने लगा, तब लौटते वक्त मणि के प्रकाश मे गुफा भी देखी एव बाहर आकर सभी धन साधक के चरणो मे रख दिया, पर उस साधक ने कहा मुझे इसकी चाहना नहीं है, मै तो मित्राद्दष्टि लेकर आत्म-कल्याण की स्थिति में चल रहा हूँ । यह सब तुम अपने पास रखो । उसके मन मे यह उथल-पुथल मची हुई थी कि मेरा मित्र पीछे कैसे रह गया ? अभी तक आया क्यो नही ? वह कहाँ है ? अत: उसने साधक से पूछ लिया कि मेरा मित्र कहाँ है ? तब उस साधक ने कहा कि तुम्हारे मित्र ने मुझ पर अविश्वास किया, अश्रद्धा की । मेरी आज्ञा का पालन नही किया, और बैटरी के मसाले का दुरुपयोग किया, जिससे उसका मसाला खत्म हो गया और अन्धकार मे रास्ता नही सूझने के कारण मार्ग भटक गया है । अब वह आने वाला नही है । अपने मित्र की यह दशा सुनकर पहला मित्र व्याकुल हो उठा । उसने कहा कि मै सूर्यकान्त मणि लेकर जाऊँ और उसके प्रकाश से अपने मित्र को खोजकर बाहर ले आऊँ, तब उस साधक ने कहा कि सब व्यर्थ है । उस गुफा मे गुफा के भीतर गुफा है, तुम स्वय भटक जाओगे, पर खोज नही पाओगे, अपने मित्र को । अब तुम्हारा मित्र कभी भी वापस बाहर नही आ सकता । अत: तुम लौट जाओ । वह धन एवं मणिये लेकर अपने घर लौट आया । इस तरह जिसने साधक की आज्ञा का पालन किया वह तो सुखी हो गया और जिसने आज्ञा का पालन नहीं किया, उसे अपने जीवन से ही हाथ धोना पड़ा ।

बन्धुओ ! यह तो कथानक है । पर आप सभी को विचार करना है कि मनुष्य जन्म की बैटरी सबको मिली है, पर इसमें मसाला-आयु कम है । अब अपना कार्यभार पुत्रों को सौंपकर आप इस मसाले को उपयोग में लेते हुए संसार की घनघोर गुफाओं में से चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त मणिरूप केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त करें । इस अनंत ज्ञान के प्रकाश में अपनी आत्मा को निखारते हुए परम निर्वाण की अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये ।

भगवान् की वाणी बता रही है कि वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त दुर्लभ मणि का जो प्रकाश मिला है, जो यह शक्ति मिली है, उसका यदि सदुपयोग नही करेंगे तो दूसरे साथी की स्थिति प्राप्त करोगे। धर्मस्थल में बैठकर वीतराग देव की आज्ञा का परिपालन करते हुए परम पवित्र आदर्श के साथ योग साधना का उपयोग करोगे तो निहाल हो जाओगे, अन्यथा दूसरे मित्र की सी स्थिति बन जाएगी। अतः वीतराग देव की आज्ञा का पूरा पालन करे, भरपूर नहीं हो सकता हो तो कम से कम धर्मस्थानक में तो उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। यदि आप पूर्णरूप से वीतराग देव की आज्ञा का पालन करेंगे तो आपको अवश्य चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त मणि के समान केवलज्ञान-केवलदर्शन का आलोक प्राप्त होगा, जिससे आप संसार की इन भयानक अँधेरी गुफाओं को देखते हुए सुरक्षित निकलकर अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे।

तप भी कर्म के कोहरे को हटाने में एक महत्त्वपूर्ण उपयोगी साधन है। मै आपका मित्र हूँ, और मित्र किसी पर जबर्दस्ती करता नही। आप तो सकेत से ही समझने वाले है। इशारा ही पर्याप्त है।

अरिष्टनेमि महाप्रभु के इशारे को पाकर तो सारथि ने प्राणियों को अभय दे दिया था। आपको मालूम होगा कि अरिष्टनेमि भगवान् विवाह करने के लिए बारात लेकर विवाहस्थल पर पहुँचे, वहाँ बहुत से पशु-पक्षी पिजरों मे बन्द आकुल-व्याकुल होकर करुण क्रन्दन कर रहे थे। अरिष्टनेमि ने अपने सारथी से पूछा कि ये पशु-पक्षी यहाँ क्यो बन्द किये गये है। बन्धुओ। विचार करना है कि भगवान् अरिष्टनेमि क्या अनभिज्ञ थे ? तीन ज्ञान के धारक थे, क्या उन्हे पता नही था, कि ये पशु क्यों बंद किये गये हैं, पर वे अपने इगित से सारथी को भी अवगत कराना चाहते थे। देखना चाहते थे कि सारथी उनके इगितानुसार कार्य करने मे सक्षम है या नही ? उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन मे कहा गया है कि—

"आणाणिद्देसकरे, गुरुणमुववायकारए।
इगियागारसंपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चई॥"

शिष्य की गुरु के प्रति इतनी समर्पणा होनी चाहिये, कि वह गुरु की आँखो के संकेत मात्र से समझ जाय। यही समर्पणा दास की स्वामी के प्रति भी होनी चाहिये। सारथी अरिष्टनेमि के चेहरे को देखकर उनके मन के भाव समझ गया। उसने कहा, प्रभु ! ये सारे पशु-पक्षी आपकी बारात मे आए मेहमानो के भोजन के लिए है। यह सुनते ही अरिष्टनेमि करुणार्द्र हो उठे, उनकी भावनाओ को समझते हुए सारथी ने सभी प्राणियो को बन्धन मुक्त कर दिया। तत्काल आज्ञा का पालन किया गया। बन्धन मुक्त होते ही सारे पक्षी प्रसन्नता से कलरव करते हुए, पख फड़फड़ाते हुए उड़ गये, उड़ते हुए मानो उन्होने मूकवाणी से अरिष्टनेमि कुमार को आशीर्वाद दिया कि जिस तरह आपने हमे इस कठोर

बन्धन से मुक्त करके व्योमविहारी बनाया है, उसी तरह आप भी इन अष्ट कर्मों के बन्धन से मुक्त बनकर मुक्ति के अनन्त गगन में विचरण करेंगे। पक्षियों को मुक्त करवाने के बाद भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने अलंकार आभूषण उतारकर सारथी को दे दिये एवं रथ लौटा दिया। इस पर कई यह तर्क करते है कि भगवान् को दीक्षा लेनी थी, इसीलिये अपने जेवर दान में दिये, जीव रक्षा के लिये नही, पर विचार करें कि उन्होंने उसी समय दीक्षा नही ली, पर राज्य में लौट आये। वर्षीदान दिया और पुनः बहुमूल्य गहनो से अलंकृत होकर दीक्षा लेने पधारे और उस समय पुनः गहनों का दान करते हुए श्रमण पर्याय अंगीकार की। उन्होंने सारथी को जो इनाम दिया, उसके कार्य से खुश होकर उसकी योग्यता की पहचान कर ही दिया क्योंकि वह "इगियागार संपण्णे" था।

जो व्यक्ति इंगितानुसार नही चलता है, उसकी क्या हालत होती है, उसे भी एक रूपक से समझा देता हूँ।

एक सेठ की लड़की बड़ी हो गयी तो सेठ ने सेवकों को कहा कि तुम लोग जाओ और मेरी लड़की के अनुरूप कोई २० वर्ष का अच्छा सा लड़का खोजकर उसके साथ सगाई पक्की कर दो। सेवको ने वर खोजने के लिए प्रस्थान कर दिया। उनके मन मे उत्साह था, उमग थी कि सेठजी के मन मुताबिक कार्य करेंगे तो खूब सारा इनाम मिलेगा। वे गाँव-गाँव मे घूमे, पर लड़की के अनुरूप बीस साल का कोई लड़का उन्हे नही मिला। वे चिन्ता मे पड़ गये एव विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय? तभी उनके मन मे विचार आया कि क्यों न १०-१० वर्ष के दो लड़कों के साथ इसकी सगाई पक्की कर दी जाय। उन्होने ऐसा ही किया और उसी उमग और उत्साह के साथ आकर सेठजी को वधाई दी कि २० वर्ष का लडका तो हमे कही नही मिला, अतः १०-१० वर्ष के दो लड़को के साथ हमने आपकी लडकी की सगाई पक्की कर दी। पर अब उन्हे क्या इनाम मिलेगा? जो सेवक सेठ के इगितानुसार कार्य नही करता वह इनाम का भागीदार नही हो सकता।

वन्धुओ! मै आपको कह रहा था कि आप लोग यह सोचे कि महाराज हम कहे कि इतना करो, यह तप करो ही, ऐसा आग्रह मै नही करना, पर मै सकेत कर देता हूँ, आप अपनी शक्ति अनुसार तप करे। मै तो प्रेरणा देता हूँ। तपस्या करके ध्यान सावना में अपने जीवन को जोड़ते हुए आगे वढ़ेगे तो आपका जीवन मगलप्रद अवस्था को प्राप्त करेगा।

मोटा उपाश्रय ६-८-८५
घाटकोपर, बम्बई मंगलवार

□ □ □

३८ समति गुप्ति की साधना करें

जब जीवात्माएँ बहुत तरह से अशांति का अनुभव करती है, तब कही उसके मन में शांति की जिज्ञासा पैदा होती है। चारों तरफ से जब कष्ट के बादल मंडराते है, तब व्यक्ति सोचता है, कैसे इनसे मुक्ति मिले और मैं जीवन को आगे बढ़ाऊँ।

ससार में जिधर दृष्टि डालिये कही भी सर्वात्मना कष्ट रहित अवस्था नहीवत् मिलती है, ऊपर से भले कोई कह दे कि मै शाति से, सुख से रह रहा हूँ, पर अन्तःकरण में दुःख अनुभव करता है। वह सोचता है, भले ही मुझे धन वैभव मिला है, पर अन्तर में सतुष्टि नही है, तृष्णा रहती है कि यह प्राप्त करूँ, वह प्राप्त करूँ। यह संसार का रूप प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। जब बच्चा जन्मता है तो विशेष कोई आवश्यकता नही रहती, मात्र दूध की आशा रखता है, वह मिलने के बाद वह संतुष्ट हो जाता है, पर वास्तविक रूप में नही हो पाता क्योंकि धीरे-धीरे दूध के बाद खाने की ओर चाह बढती है, उसके बाद फिर कुछ और उसके बाद तो ९९ का चक्कर उसे सताने लगता है, जो उसे चैन से नही रहने देता।

मनोवांछित, ससारी सभी कामनाएँ पूर्ण नही होती। होगी कैसे ? जब तक जीवन में तृष्णा है, उसके रहते सन्तोष आ नही सकता। म्यान मे अन्य वस्तु है तो तलवार नही समा सकती और तलवार है तो अन्य वस्तु नही समा सकती। ठीक इसी प्रकार मनुष्य का मन, किसी एक मे ही समा कर रह सकता है, जब तक इसमे भौतिक सुख, इन्द्रिय के विषयो की लालसा हिलोरें लेती रहती है, तब तक उसे दु.ख से छुटकारा नही मिलता है। जब इससे मन को खाली करता है, तभी उसमें वास्तविक सुख और शाति भर सकती है। जवाईजी आते है तो आप पहले से तैयारी करते है कि उनको कहाँ पर बैठाना है, कहाँ पर उनका आसन लगाना है। ठीक उसी प्रकार आत्मशांति को पाने के लिए मन को सजाना होगा।

इस जीवन में एक बहुत बड़ी शान्ति का स्थान पाना है, तो जगह निश्चित कर लेनी चाहिये। क्योकि यह सदा के लिए चलेगी। तीर्थंकर देवो ने बहुत ही सुन्दर तरीके से बनाया कि जहाँ तुम शाति रखना चाहते हो तो देखलो कि वहाँ

क्या है ? चर्मचक्षु से मन को नही देखा जा सकता । मन हैरान है, खिन्न है आखिर क्यों ? एक रूपक है—एक सेठ था, बाहरी वैभव से परिपूर्ण था, चेहरा हस रहा था, अच्छी तरह बोल रहा है, पर मुनीम ने आकर तार पकड़ा दिया मात्र दो शब्द लिखे, कि जो जहाजें आ रही थी, उनमें करोड़ों की सम्पत्ति थी, वे सारी जहाजें डूब गयी । यह पढकर उसका चेहरा मुरझा गया, शरीर शिथिल हो गया, सारी प्रफुल्लता नष्ट हो गई, बताओ वह प्रफुल्लता कहाँ थी ? क्या आँखों मे ? शरीर के भीतर जिसे मन कह सकते है, अथवा मस्तिष्क में । मन में कल्पना चल रही थी अरबपति होने वाला हूँ, करोडो का माल आ रहा है, यही उमंग थी, उसके मन में, पर तार पढते ही वह सारी उमग भीतर से नष्ट हो गई । सुख-दु.ख का माध्यम-स्थान मन है । ये जो टेम्परेरी अवस्थाएँ है, उनको बाहर निकाल दिया जाय एवं शांति को स्थान दे दिया जाय । जो कभी घटे नही, हटे नही, ऐसा प्रयास किया जाय तो वर्तमान की उपलब्धि सार्थक हो सकती है । ज्ञानीजनों का कथन है कि तुम योग साधना करते हो तो यह महत्त्व-पूर्ण हो जाती है । साधना का अर्थ मन, वचन, काया को साधना और आत्मा को पवित्र वनाना है । इन तीनों को साधने पर ही आत्मा पवित्र बनती है और इन तीनो को साधने का जो सेन्टर है, वह मस्तिष्क है, पर उसमें पहले से जो कचरा भरा है, उसे अलग कर दे, अन्यथा नयी वस्तु वहाँ नही बैठ सकेगी । अत: ज्ञानीजनो का कथन है कि ध्यान साधना से आत्मा को पवित्र बनाना है, तो योग साधना को पहचानो, स्वीकार करो । यदि तुम इसे जीवन मे उतार लोगे तो सदा-सदा के लिए वह सुख और शान्ति कल्पवृक्ष की भांति तुम्हारे जीवन मे आ जायेगी । प्रभु के सारगर्भित उपदेश का मक्खन हर कोई नही निकाल सकता, क्योकि आज के मानव को फुर्सत नही है । अत: प्रभु महावीर ने मक्खन रूप मे जो सार दिया है, उसको दुनिया पहचाने, जीवन मे स्थान दे, तव तो उसका कार्य सिद्ध हो सकता है । प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र के ३२वे अध्ययन की तीसरी गाथा मे वताया कि—

"एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया ।
दुवालसंगं जिणक्खाय, माय जत्थ उपवयण ।।"

इस गाथा मे अनन्त सुख का विधान रख दिया है । पाँच समिति बताई है । समिति का तात्पर्य, संक्षिप्त रूप से द्वादशांगी अर्थात् तीर्थंकर देवों की सार रूपवाणी–१२ अग मे तो दृष्टिवाद अभी उपलब्ध नही है, ११ अंग भी विस्तार से पढने की फुर्सत नही रखते हो, अत: १२ अंगों का सार जो प्रवचन माता है, उसकी गहराई से चिन्तना करें । बच्चा कितना ही छटपटाता है पर जब उसकी माता उसके पास चली जाती है, तो उसका रोना-धोना बन्द हो जाता है, वैसे ही मनुष्य दु.ख-द्वन्द्वो से घबरा रहे है तो अनन्त तीर्थंकरो ने यह बात कही है । कल्पना करिये कि चार व्यक्ति जन्मांध है, उन्होंने सूर्य कभी देखा नही, संयोगवश

एकाकी दृष्टि खुलती है, वह भी निर्मल, उसने सूर्य को, शुद्ध स्वरूप को देखा तो उसका वर्णन करेगा। दूसरे की भी दृष्टि खुली। उसने सूर्य को देखा तो वह भी वैसा ही बतायेगा, वैसे ही जितने तीर्थंकर होते है, इस भूधरा तल पर। वे सभी एक दृष्टि से केवलज्ञान प्राप्त कर लेते है, जो उनका निर्मल नेत्र है, उसी के द्वारा वे अपने ज्ञान चक्षुओं का प्रयोग कर रहे है। बच्चा छोटा होता है तो माँ की अपेक्षा रखता है, पर बड़ा होते ही माँ को भूल जाता है, पर दुःख की तपन जब उन्हे जलाती है तो प्रवचन माता की गोद में बैठकर निर्भय बन जाता है। यदि और कोई शास्त्र याद नहीं हो तो, लो इन आठ प्रवचन दया माता को याद करो, इसके शुद्ध रूप को पाले। मन, वचन, काया तीन गुप्ति है, इन्हे गोपने का प्रभु ने संकेत दिया कि ये तीनो शक्तियाँ तुम्हारे दुःख को बढ़ाने वाली है, अतः इन्हे तुम रोक दो और भीतर का कचरा निकाल दो। यह सब मन के माध्यम से ही होता है। २२,६५,१२० कि. मी. एक सैकण्ड में मन की गति वैज्ञानिकों ने बताई है, तीव्रमन्द चलता यह मन विषम बन जाता है। अतः इस विषम गति को समित करो। मन में समिती आ जायेगी तो सब कुछ आसान हो जाएगा। मन मे समित अवस्था आ जायेगी, कुमति निकल जायेगी।

जहाँ सुमति वहाँ सम्पत्ति नाना।
जहाँ कुमति वहाँ विपत्ति निधाना।।

अर्थात् जहाँ सुमति है वहाँ सम्पत्ति आते देर नही लगती और जहाँ कुमति है वहाँ तो विपत्ति का खजाना है। उसी सुमति को प्राप्त करने के लिए योग साधना है जो मन को समित करती है। जब मन की क्रिया समित नही होती है, तो उसका जीवन विगड जाता है। हरिकेशी अनगार, चाण्डाल कुल में क्यों आए ? इसमे एक कारण मन को समित नही करने का भी था और जब उन्होने मन को समित किया तो वे साधना पथ पर बढते चले गये।

एक बार की घटना है कि एक समय हरिजनो को बैठने के लिए जाजम विछी हुई थी। सभी हरिजन उस पर बैठे हुए थे, उस समय हरिकेशी भी उस पर वैठने लगे तो सभी ने हसी उड़ाकर उसका तिरस्कार कर दिया। उसे जाजम पर नही वैठने दिया, वह विचारने लगा कि सजातीय भाइयो के साथ बैठने पर भी इतना तिरस्कार क्यो ? क्या मै अपने जाति भाइयो के साथ बैठने के भी योग्य नही ? इसमें मेरा दोप ही क्या ? यही कि मै इनके समान वर्ण एव रूप वाला नही ? तभी जाजम के पास एक काला सर्प निकल आया। सभी में हडवड़ मच गयी, तव वडे मनुष्यों ने लाठी से उसे वही खत्म कर दिया। तभी एक और सर्प निकला। सभी वालक कहने लगे, पर उसे देखने के वाद लोगों ने कहा यह तो दुमुही है, इसमे जहर नही होता, यह किसी को काटता नहीं। इसका निकलना तो लौकिक दृष्टि मे शुभ माना जाता है, इस प्रकार आपस में वोलते हुए सभी उसकी पूजा करने लगे।

एक किनारे पर खडा-खड़ा हरिकेशी विचार करता है, दोनों एक जाति के प्राणी है, पर एक का तिरस्कार दूसरे का सम्मान। विचार करते-करते मन की गहराई मे उतर कर सोचने लगा कि मेरे पुरातन कर्मो का उदय है, अतः मेरी जबान मे जहर है। जिस तरह कि सर्प को जहरीला समझकर ये लोग मारते है। मेरे जीवन मे भी कुमति है, मै अब सुमति की आराधना करूँगा। इस प्रकार विचार करते-करते गहराई में पहुँचा और इससे उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। देखने लगा कि पूर्व जन्म में, मै आठ प्रवचन माता की गोद में आध्यात्मिक क्रीड़ा कर रहा था, उस समय मेरे मानस में विपरीत परिणाम आये। जिससे मेरी वर्तमान मे यह विपरीत दशा बन रही है। उसने पुनः उसी आठ प्रवचन माता की गोद में जाने का निर्णय लिया और प्रवचन माता की गोद का आश्रय भी ले लिया। साधु बन गये। महाव्रत अंगीकार किया, और महाव्रत की प्राणरूप ध्यान साधना में लग गये। परिपूर्ण संयम की साधना में संलग्न बन गये।

भगवान् ने बताया कि साधु छः कारण से आहार करे और छः कारण से छोडे। अतः वे प्राण रक्षा के लिए आहार करते है, जिससे प्राण सुरक्षित रहने पर रत्नत्रय की सम्यक् आराधना भी सम्यक् रीति से हो सके।

अन्नमय कोश, प्राणमय कोश यह शरीर है, इसके द्वारा ही शरीर की गति चलती है, यह समझने की बात है कि जब तक हरिकेशी के मन में कुमति थी तब तक शान्ति नही मिली। जब सुमति आ गई तो हरिकेशी अपनी स्थिति से बहुत आगे बढ गये। मन, वचन, काया की एकाकारता को अपनी आत्मा के साथ जोड़ा और उसी आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़कर आज सिद्ध भगवान् बन गये। अतः विचार करना है कि समिती के साथ सुमति और सुमति से आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त होती है। कुमति का विनाश करके ही अजरामर अवस्था को प्राप्त करने मे सक्षम बन सकते है। यदि जीवन में सुख चाहिए तो आठ प्रवचन रूप माता की भव्य तरीके से साधना करें, जिससे इस जीवन में तो सुख समृद्धि प्राप्त होगी ही और परभव में भी आप उच्च दशा को प्राप्त कर सकेंगे। इन्ही शुभ भावनाओ के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

७-८-८५
बुधवार

□ □ □

३९ | जीवन जीने की कला

मनुष्य जीवन विमलता की प्राप्ति के लिये, विमल स्वरूप को वरने के लिए, विमल की परम ज्योति प्रकट करने के लिये ही प्राप्त हुआ है। इस मनुष्य जीवन मे विविध विचित्रताएं रही हुई है। इसके भीतर जब देखने का प्रसंग आता है, तब बाहर की कितनी भी रमणीय अवस्था हो, उनसे लगाव हट जाता है। जब तक व्यक्ति को कोई बढिया वस्तु देखने को नही मिलती, तव तक वह घटिया वस्तु में ही आनन्द मानकर चलता है। जैसा कि देखने को मिलता है कि जिन वस्तुओ को व्यक्ति प्रतिदिन देख रहा है, उससे कोई अलौकिक रचना उसके देखने मे आती है तो उसे प्राप्त किये बिना नही रहता।

जहाँ धर्मस्थान मे श्रोतागण धर्म के स्वरूप को, शास्त्रीय वाणी को सुनने के लिये पहुँचते है। धर्म की प्रवृत्ति अपनाने की कोशिश करते है पर इतना सब कुछ होते हुए भी कइयों के जीवन की पद्धति में विशेष परिवर्तन नजर नहीं आता। तब मनुष्य की बुद्धि सहज ही खोजने लगती है कि जिस प्रक्रिया से बढकर कोई अन्य नही, उसे श्रवण किया, आचरण मे लाने का प्रसंग आया फिर भी जीवन उसी स्थिति से चल रहा है तो श्रवण में दोष है या आचरण में, व्यवहार आदि में कोई गलती है। इसकी खोज चिन्तक पुरुष अवश्य करता है। उत्तम क्रिया उत्तम ही रहती है। उसमे कोई कमी नही आती, पर कभी व्यक्ति उसे जिस विधि से अपनानी चाहिये, उससे नही अपनाता है, देखादेखी करता है। शास्त्रीय रीति से साधना नही करता इसलिये आचरण मे पवित्रता नही आ पाती।

चौपड़ी पढी जा सकती है, पर जीवन मे भूल कहाँ हो रही है इसका संशोधन वह नही दे सकती, मन मे शका उठती है और बुद्धि से जो समाधान लिया वह सही है या गलत इसकी पुष्टि भी नही कर पाती। कई विचारवान् पुरुप इस पर विचार करते है और गहराई मे पहुँचते है तो सारी जानकारी हो जाती है। वीतराग के सिद्धान्त अति उत्तम है। चाहे कभी भी किसी से भी श्रवण करे। वीतराग देवो के सिद्धान्तानुकूल यदि इस जीवन में श्रेष्ठ धर्म का स्वरूप पाना है तो आपको वीतराग देव की शरण में जाना ही होगा, इसमें कोई संशय नही। आज की दुनिया खोजी हो चुकी है। कौनसी वस्तु कहाँ कितनी मात्रा मे किनने रूप मे मिलती है इसकी खोज में आज का मानव तत्पर है।

आज फॉरेन में लोग वैभव की स्थिति से उदास हो रहे है, जीवन की खोज में आगे बढ़ने के लिये अन्वेषण कर रहे है। जहाँ हिन्दुस्थान के लोग अमेरिकादि के लुभावने दृश्यों को देख मुग्ध बन रहे है। वहाँ के लोग स्वयं की आन्तरिक स्थिति को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु हो रहे है। डॉ. कुन्दनसिहजी संघवी पहले बम्बई में विज्ञान की अणुभट्टी में कई वर्षो तक रहे हैं। जैन धर्म के अनुयायी होने के कारण जिज्ञासु भी है। स्वर्गीय आचार्य श्री जब उदयपुर विराजमान थे तब वे कई दफा आते थे और अपनी जिज्ञासाओं का सम्यक् समाधान पाया करते थे। अभी कई वर्षो से वे अमेरिका में है। बतलाते हैं कि वहाँ उन्हें बहुत ऊँचा स्थान मिला है। कभी-कभी जब भारत भी आते हैं। धार्मिक संस्कारों का उनमें शुरू से लगाव है। अत वे जहाँ भी मैं विचरता रहता हूँ, वहाँ पहुँच जाते है। जब मै देवगढ में था तब उन्हें हिन्दुस्थान के वैज्ञानिकों को निर्देश देने के लिये सरकार ने भारत बुलाया था, तब वे काम से समय निकालकर मेरे पास आये। दर्शन, व्याख्यान सुनने के बाद एकान्त मे समय लेकर पहला ही प्रश्न पूछा कि "जीवन तो मिला है, पर जियें कैसे ? जिससे शांति मिले।" मैने कहा—अमेरिका जैसे वैभव सम्पन्न देश में रहकर भी आपको शांति नहीं मिली। तब उन्होने कहा कि अमेरिका के लोग अब अपने वैभव धन सम्पत्ति से ऊब गये है। वहां के मनमोहक दृश्य भी उनको आकर्षित नहीं कर पाते। वे इससे भी कुछ ऊँची चीज पाना चाहते है और वह है—शान्ति। वे आत्मा की आन्तरिक स्थिति को प्राप्त करने के लिये जिज्ञासु बन रहे हैं। जीवन क्या है ? यह जानना चाहते हैं। तब उनको मैंने आत्मा की शान्ति के विषय में समझाया। इसी के साथ मैंने पूछा कि वैज्ञानिक दृष्टि मे निर्जीव पदार्थों में भी हलन-चलन होती है क्या ? जैन दर्शन मे तो सजीव की तरह निर्जीव तत्त्वों में भी गति स्वीकार की गई है। इस पर आपका वैज्ञानिक अभिमत क्या है ?

तब उन्होंने कहा कि पहले तो विज्ञान निर्जीव तत्त्वों मे गति नही मानता था, पर अब वह भी मानने लगा है।

बन्धुओ ! यह जैन दर्शन का स्पष्ट अभिमत है कि पुद्गल स्कन्ध जितने हल्के होते चले जाते है, उतनी उनमे गति बढ़ती जाती है। जब वह एक परमाणु रूप में रह जाता है तो उसकी लोकान्त तक गति हो जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सजीव की तरह निर्जीव तत्त्व भी गति करता है। अतः गति के दृश्यमान होने मात्र से गतिशील पदार्थ जीव है, यह नही माना जा सकता। आत्मा भी जब कर्मपरमाणुओं से परिपूर्णतः हट जाती है। तो वह एक ही समय मे ऊर्ध्वलोकान्त सिद्ध क्षेत्र मे जा विराजती है। आत्मा को कर्म विमुक्त करने के लिए समीक्षण ध्यान योग की अत्यन्त आवश्यकता है। वैसे देश विदेश में भी ध्यान योग सम्बन्धी बहुत प्रक्रियाएँ चल रही है। जनता का आकर्षण इस ओर हो भी रहा है। जैनों के अनुयायी भी इस ओर आकर्षित हो रहे है। वे पूछते है

कि अपने जैन धर्म में योग पद्धति है या नही ? ऐसे व्यक्ति संशयशील है। मै उनसे कहता हूँ कि आपने जैन दर्शन को अच्छी तरह श्रवण नही किया होगा और यदि श्रवण किया भी है तो ध्यान से नही। जैसे किसी ने कहा कि चिन्तामणि रत्न भोजन की पूर्ति करने वाला है। मनोवांछा पूर्ण करने वाला है। तीन दिन का भूखा व्यक्ति चिल्ला रहा है। मेरी भूख मिटाओ, दु.ख दूर करो। तब एक सुज्ञ व्यक्ति ने कहा कि अमुक सम्राट के पास जाओ, वह चिन्तामणि रत्न देगा, जिससे तुम्हारी भूख प्यास मिट जायेगी, तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो जायेगे। वह उस सम्राट के पास गया तथा अपनी गरीबी की करुण कथा सुनाते हुए दुःख मिटाने की फरियाद की। राजा ने ध्यान से उसकी सारी बात सुनी और अपने खजांची को आदेश दिया कि खजाने मे से एक चिन्तामणि रत्न निकालकर इसे दे दो। आज्ञानुसार कार्य किया गया। रत्न पाकर वह मन ही मन खुश होता हुआ अपने निजी स्थान पर लौट आया। उस रत्न को हाथ मे लेकर उलटने-पुलटने लगा। फिर सोचा जोरदार भूख लगी है पहले अपनी क्षुधा शान्त करलूँ। अतः उस रत्न को अपने मुँह मे डालकर जोर-जोर से दाँतो से चबाने लगा, जिससे दाँत टूट गये, वह दु.खी होकर कहने लगा कि लोग झूठ बोलते है कि चिन्तामणि रत्न सुख देने वाला है, मनोकामना पूर्ण करने वाला है, इसने तो मेरे दु.ख को और बढा दिया। विचार करें कि दोष, देने वाले का है या ग्रहण करने वाले का है या चबाने वाले का है ? स्वय को ही विचार करना है कि वह चिन्तामणि रत्न क्या था, एक पत्थर अर्थात् जड ही तो था पर आज चिन्तामणि से भी ज्यादा मूल्यवान यह मनुष्य तन मिला है। इसकी दशा क्या बन रही है ? इसका उपयोग किस तरह करना चाहिये और किस तरह करने मे आ रहा है ? विचार करने की बात है। मै कहता हूँ कि जैन दर्शन मे जितनी साधना की पद्धति है, उतनी कही भी नही है और वह है निरुपद्रवकारी। आवश्यकता है स्वय के जीवन को जानने के लिए समय निकालने की। आप कुछ समय निकाल कर साधना का पूर्ण स्वरूप समझे। अन्य सांसारिक कार्यो को देखने के लिये आपको समय मिल जाता है पर वह महत्त्वपूर्ण है या मनुष्य जीवन ? विचार करे, आज जब यह आँखे टिमटिमा रही है, तब तक सारा वैभव है, पर जब यह बन्द हो जायेगी तो इस अपार वैभव का क्या होगा ? जो आज वर्तमान का जीवन है, उसे मूल्यवान बनायें। इसके लिए ध्यान साधना व समाधि के लिये कुछ समय निकाले। पर इतनी फुर्सत कहाँ है ? घर पर टी.वी. आ जाती है तो उसे देखने का आपके पास टाइम है। आप अपना आवश्यक कार्य निपटाकर या छोड़कर टी.वी. अवश्य देख लेगे।

बन्धुओ ! यदि आपको आत्म-शाति पाना है तो भौतिकता के इस आकर्षण मे हटकर वीतराग वाणी को सुनने का प्रयास करना होगा। जितने भी तीर्थंकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी आदि बन गये हैं, उन्होने द्वादशांगी मे जीवन का सार

भर दिया है और उसका सार आठ प्रवचन माता में दिया गया है । अतः उसकी साधना करें । आत्मसाधना मे अवलम्बन की आवश्यकता है पर वह अवलम्बन विनाशी न होकर अविनाशी होना चाहिये । एक बार जब मै धार में गया तो वहाँ गजानन्द शास्त्री पूछने लगे कि क्या अन्तर की साधना में कोई अवलम्बन की आवश्यकता रहती है ? यदि है, तो फिर किसका लिया जाय ? मैने कहा कि आप किस भावना से अवलम्बन लेना चाहते हो, अविनाशी बनने के लिए या नाशवान बनने के लिए । उन्होने कहा—अविनाशी बनने के लिए । मैंने कहा आप अवलम्बन ले सकते है, पर वह अविनाशी हो । वीतराग देव की पद्धति में जाने का प्रसग है, तो उसमें अवलम्बन भी वैसा ही हो ।

आनन्दघनजी ने तीर्थंकरो की प्रार्थना में कहा है—शुद्ध आलबन होना चाहिये । शुद्ध की क्या पहचान ? यही कि जिसे शुद्ध करना हो उसमे चमक शाश्वत रूप मे आ जाय तो वह शुद्ध है अन्यथा अशुद्ध है । जड तत्त्वो मे शाश्वत चमक नही आती । अतः अशुद्ध आलबन है । अभौतिक तत्त्व आत्मा का स्वरूप ज्ञानमय, दर्शनमय और चारित्रमय है । इन तीनो आलम्बनो को लेने के लिये ही भगवान् ने उत्तराध्ययन सूत्र के चौबीसवे अध्ययन की पाचवी गाथा में फरमाया है कि—

"तत्थ आलंवणं णाणं, दसण चरणं तहा ।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए ।।"

ज्ञान कैसा ? भौतिक तत्त्वों का ज्ञान नही । अपितु आन्तरिक स्वरूप के यथावत् ज्ञान के साथ श्रद्धा एवं चारित्र रूप आचरण का आलवन होने से आत्मा मे शाश्वत रूप से चमक ही चमक आती जाएगी । तव आध्यात्मिक वैभव ऋद्धि का आलोक स्वय ही प्रगट हो जायेगा ।

वैज्ञानिक यह खोज जरूर कर रहे है, पर वे भौतिक तत्त्वों तक ही पहुँचे है । पर अनिर्वचनीय वस्तु की खोज भौतिक विज्ञान वाले नही कर सकते । क्योंकि उनकी खोज अधिकाशतया दृश्यमान तत्त्वो पर आधारित है । जिस प्रकार बाहरी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए आप कितना प्रयत्न कर रहे है, ताला लगाते है, पहरेदार लगाते है, जिससे आपकी वह सम्पत्ति कही चली न जाय । लूट न ली जाय । पर जीवन की सुरक्षा के लिए आप क्या प्रयत्न कर रहे हैं । जीवन का, योग का, अन्त साधना का जो श्रेष्ठ विषय है उन्हें जब तक अलग-अलग रीति से न समझाया जायेगा, तब तक वह समझ मे नही आएगा । क्योंकि आज का युग तर्क का है, पर ज्ञानीजनो का कथन है कि कभी-कभी ज्यादा तर्क करने से भी सम्यक् ज्ञान की उपलब्धि नही हो पाती । आप विचार करें कि

हमारे जीवन में समीक्षण ध्यान, योग साधना किस प्रकार आये, हम किस प्रकार धर्म के स्वरूप को जाने।

'पन्नासमिखए धम्मम्"

अर्थात् प्रज्ञा के द्वारा धर्म का समीक्षण किया जा सकता है। कई व्यक्ति बाजार में बैठे हैं। एक बहिन सोलह शृंगार कर सज धजकर अपने भाई को राखी बाधने जा रही है। बाजार में बहुत से व्यक्ति बैठे है, उसमे उसके पिता भी है। उस लड़की को देखकर पिता कहेगा कि यह मेरी पुत्री जा रही है, भाई कहेगा कि यह मेरी बहिन जा रही है। उसका पति होगा तो वह कुछ और ही दृष्टि से उसे देखेगा और यदि कोई कामान्ध व्यक्ति होगा तो उसकी दृष्टि कुछ और ही रहेगी। एक साधु महात्मा भी उसे देखेगा तो उसकी दृष्टि मे पवित्रता होगी। देख सभी रहे है, पर जिसके जैसे विचार है, उसी रूप में देख रहे है। यदि विषम दृष्टि है, राग द्वेष परिपूर्ण दृष्टि है तो वह वैसा ही स्वरूप देखेगे। अतः वीतराग भगवान ने कहा है कि रंग का चश्मा उतारकर सम दृष्टि से, तटस्थ दृष्टि से, प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा करो। सच्चा धर्म बाहरी भौतिक तत्त्वों मे नही है। यह तो यूनीफार्म है, पहचान कराने वाले है। वास्तविक धर्म तो आत्मा मे है। प्रज्ञा से अन्तर का निरीक्षण करे कि मेरा जीवन का लक्ष्य क्या है, अवलम्बन क्या है ? इस तरह आध्यात्मिक दृष्टि से स्वय का निरीक्षण करे तभी वास्तविक सुख की स्थिति जीवन में प्राप्त हो सकेगी।

आज के युग में कही प्राणायाम चल रहा है तो कही विपश्यना ध्यान साधना चल रही है तो कही और कुछ। पर हठ योग जैसे ध्यानो मे कई खतरे है। पर सम्पूर्ण खतरों एवं व्यवधानों से रहित यह सरस रीति वाली जैन धर्म की ध्यान पद्धति है। इसमें जितनी आत्मलीनता बनती है। उतनी किसी से नही। जहाँ वाल मन्दिर में छोटे-छोटे बालक जाते है और खेलते-खेलते ज्ञान प्राप्त कर लेते है। इसी प्रकार वीतराग देव ने बहुत बड़ा उपदेश दिया है। आठ प्रवचन माता की गोद मे खेलते हुए इस साधना पद्धति का अभ्यास करे। तभी उस साधना का सरस फल प्राप्त हो सकेगा। अन्यथा चिन्तामणि रत्न को खाने वाले व्यक्ति जैसी हालत होगी। प्राप्त तो कुछ नही कर पायेगे दुःख और वढ जाएगा।

यदि आप यह भावना लेकर आये है कि मेरा झूठा मुकदमा है। अतः मागलिक सुन लूँ। जिससे मेरा कार्य सफल हो जाएगा तो आप चिन्तामणि रत्न को प्राप्त करके भी उसका मुंह मे चवाने की तरह दुरुपयोग कर रहे है। यदि आपने इस अमूल्य जीवन की भावना सही ढंग से नही की तो आहार, निद्रा, भय और मैथुन के इस चक्र में उलझकर पशुवत् अपने जीवन की अमूल्यता को

गवा देगे। जैसे खाली हाथ आप यहाँ आये है, वैसे ही हाथ पसार कर यहाँ से प्रस्थान कर देगे।

अतः तटस्थ भाव से समीक्षण ध्यान की पद्धति, आठ प्रवचन माता आदि के रूप मे जो वीतराग देव ने बतायी है। उसका उपयोग किस तरह बैठे-बैठे करना है और किस तरह चलते-फिरते करना है। यह सब गहराई से विचार करे एवं ध्यान साधना की गहराई मे उतरे। तभी आपके जीवन को सही रूप में जीने की कला प्राप्त हो सकेगी।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

८-८-८५
गुरुवार

□ □ □

४० | मूल्यांकन करो समय का

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए समय का मूल्यांकन करना आवश्यक है। जिस प्रकार बूंद-बूंद करके घट भर जाता है वैसे ही एक-एक समय का मूल्यांकन करने वाला एक दिन महान् कार्यों को सिद्ध करने मे सफल हो जाता है। महाप्रभु ने आचारांग सूत्र में स्पष्ट शब्दो में कहा है--"खण जाणाहि पंडिए" हे भव्य साधक ! क्षण-समय को पहचान। समय को पहचानने वाला ही पडित होता है। जो अवसर को नही जानता वह सही माने में पडित नही कहला सकता।

कई व्यक्ति व्यर्थ की बातो में जीवन के अमूल्य क्षणों को खो बैठते है। ऐसे व्यक्ति कभी भी कार्य में सफलता प्राप्त नही कर पाते। जिस प्रकार डॉक्टर बनने वाला विद्यार्थी अपना समय डॉक्टरी अध्ययन में ही लगाता है, तो वह एक दिन सफल डॉक्टर बन सकता है। वकील बनने वाला व्यक्ति अपना समय वकालत में ही लगाता है तो वह एक दिन सफल वकील बन जाता है। कोई भी किसी भी रूप में अपने आपको बनाना चाहे, पर वह यदि अपने जीवन के बहुमूल्य क्षण उसी में लगाता है तो वह वैसा ही बन जाता है। वैसे ही जो व्यक्ति आध्यात्मिक साधना में अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणों को लगा देता है तो एक दिन वह उसमें सफलता प्राप्त कर ही लेता है।

आध्यात्मिक जीवन मे समय का बहुत महत्त्व है। इसीलिये भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी को सावधानी दिलायी, चेतावनी देते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के १० वें अध्ययन में कहा --

परिजूरइ ते सरीरय केसा पडुरया हवन्ति ते ।
से सव्व वले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

हे गौतम ! तुम्हारे शरीर की जो वर्तमान स्थिति है वह क्षण विनाशी है। क्षण-क्षण मे क्षीण हो रही है और शरीर जीर्णता को प्राप्त हो रहा है। जब शरीर जीर्ण होने लगेगा तो उसके आश्रित रहने वाली इन्द्रिया भी जीर्ण हुए विना नही रहेगी। शरीर के वलवान होने पर ही इन्द्रियां भी वलवान रह सकती हैं। शास्त्रकारों ने दस प्राण वताये है, उनमे श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य वलप्राण ये दस वलप्राण हैं।

विचार करना है कि इन सभी बलप्राणों में ज्यादा किसका महत्त्व है ? वैसे तो सभी अपनी-अपनी स्थिति से महत्त्वपूर्ण है, पर जब तक काया स्थिर रहती है, तो काय बलप्राण स्थिर रहता है, तभी तक सभी बताये प्राण स्थिर रहते है । भगवान् ने काया व स्पर्श दोनों को अलग-अलग बलप्राण बताये है । स्पर्शनेन्द्रिय ऊपर-ऊपर का भाग है । बाकी सब भीतर का भाग काया बलप्राण है । यह आप अनुभव कर सकते हैं । आपने कभी डॉक्टर से इंजेक्शन लिया होगा । जब स्पर्शनेन्द्रिय में लगाया जाता है तो ज्यादा दर्द होता है पर भीतर का ढाचा जहाँ काया बलप्राण है उसमें उतना दर्द नही होता । सभी बलप्राण प्राय: काया के आधार पर है । इसीलिए प्रभु महावीर ने गौतम स्वामी को संवोधित करते हुए कहा कि–तुम्हारा काय बलप्राण क्षीण हो रहा है । तुम कब चेतोगे । जब तक काय का बल क्षीण नही होता, तब तक इन्द्रियां अपने-अपने वल को धारण कर सकती है, अत: जब तक ये काया सशक्त है तब तक समय मात्र का भी प्रमाद मत करो । समय किसे कहते है ? इसकी क्या उपमा है ? इसे भी समझ लेना आवश्यक है । आँख की एक पलक झपकने मे असंख्यात समय निकल जाता है । यह जो उपदेश गौतम स्वामी को इगित करके दिया गया वे तो प्रमाद का त्याग करके जाज्वल्यमान केवल-ज्ञान की ज्योति प्राप्त करके, मोक्ष मे चले गये । लेकिन यह उपदेश सभी के लिए है । आज के प्राय: मनुष्य में समय का पावन्द नही है । नियत समय पर नियत कार्य न होने से मन की गति चचल हो जाती है । योग साधना, भगवान् की भक्ति, नाम स्मरण आदि करने की इच्छा वहुतों की रहती है, पर जब तक मन की चचलता स्थिर नही होती, कुछ भी नही हो सकता । क्या वाहरी किसी भी पदार्थ ने आकर आप का मन चचल वनाया या अन्य किसी वस्तु विशेष ने ? पर जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है वहाँ आपकी आत्मा ही मन को चंचल वना रही है । आप यह अनुभूति कर सकते है ।

मान लीजिये—आप भोजन करते है, तो जो समय आपका खाने का है उसी वक्त आप रोज खाने वैठ जाते है । इस प्रकार एक-डेढ महीने तक आप उसी समय खाते रहेंगे, तव आपको घडी की आवश्यकता न रहेगी । ठीक समय पर आपको क्षुधा लगने लगेगी । ठीक इसी प्रकार ठीक समय पर जीवन का समीक्षण किया जाय तो अन्तर मे जो-जो रचना है उनका ज्ञान भी एक न एक रोज आप कर सकेंगे । ठीक समय पर भोजन करने से पाचन क्रिया खराव नही होती । पर आज का मनुष्य इस नियम पर पावन्द नही है, तो फिर अन्य कार्यों में कैसे पावन्द हो सकता है । अनिश्चित समय पर भोजन करने से जठराग्नि विकृत हो जाती है । इसी प्रकार अनिश्चित समय पर किया गया समीक्षण भी पूर्ण लाभदायक नही होता । जैसे किसी व्यक्ति को अफसर से मिलना होता है तो वह आपको मिलने के लिए निश्चित समय देता है । उसी निश्चित समय पर यदि वह व्यक्ति वहाँ पहुँच जाय तो वह उससे बहुत ही अच्छी तरह से

कार्य कर देता है, पर वह यदि पहुँचने में लेट कर देता है तो फिर न तो वह आपका कार्य सम्पन्न कर सकता है और न अपना ही । अर्थात् उसका दिमाग अस्थिर हो जाता है । कुछ समय अपना निरर्थक जाने पर वह अपने काम मे लग जाता है । फिर वह व्यक्ति उसके पास जाए भी तो उसे टाइम नही मिलता है, अत: आज जीवन का नियमित स्वरूप हर मनुष्य को बनाना है । यह नियमित जीवन की कला शुरू से आ जाए तो कही भी कुछ विकृति नही आयेगी । अत: जीवन को नियमित बनाना आवश्यक है । क्योकि जीवन की सुरक्षा नियमित समय पर निश्चित कार्य करने से ही हो सकती है । वर्तमान मे जो शरीर, इन्द्रिय एवं निरोगी काया मिली है उसका नियमित उपयोग लेने से ही सारा कार्य सपन्न हो सकता है । प्रभु वीतराग देव की वाणी को ख्याल में रखते हुए अपने लक्ष्य को स्थिर करे । फिर एक घटे का समय निश्चित करें और उस समय प्रतिदिन आध्यात्मिक साधना करने मे निरत हो जाय ।

रात्रि का पिछला समय ध्यान योग साधना के लिए विशिष्ट है । प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर मे ध्यान, तृतीय प्रहर में निन्द्रा एव रात्रि के पिछले अर्थात् चतुर्थ प्रहर में ध्यान, योग साधना आदि करना, यह प्रभु का निर्देश भी है । चौथे प्रहर में जो प्रक्रिया होती है, वह मन को स्थिर करने के लिए विशेष उपयोगी होती है । चतुर्थ प्रहर, योग साधना के लिए बहुत ही अच्छा समय है । सूर्योदय होने के बाद तो शोर बढ़ जाता है, बाहरी व्यवधान उपस्थित होने लगते है तब मन बाहरी अनेक कार्यो में बिखर जाता है । ऐसे समय मे आपका मन योग साधना मे लग नही सकता । जिस प्रकार साईकिल के पैडल को घुमाकर छोड़ दें तो वह लम्बे समय तक घूमता ही रहता है, उसी प्रकार सूर्योदय के बाद मन का पहिया बाहरी कार्यो मे उलझकर घूमना शुरू हो जाता है तो वह शाम के समय सूर्यास्त तक भी उसी वेग से प्राय: घूमता ही रहता है । सूर्यास्त के बाद वह मन रूप पैडल उपशान्त हो सकता है और रात्रि मे विश्राम अच्छी तरह मिल जाय तो मन व इन्द्रियाँ शान्त बन जाती है, प्रशात हो जाती है । तब चौथे प्रहर मे उत्कृष्ट योग साधना का प्रसग बन सकता है । अत. समय की पाबन्दी सभी को करनी है, आप अपने मन को आदेश देवे कि चार बजने में सात मिनट बाकी रहे तो मुझे जगा देना । आप देखेगे कि ठीक समय पर आपकी आखें खुल जायेगी । घडी में अलार्म भरने की तरह आप अपने मन मे अलार्म भरे तो आपका मन व्यवस्थित रूप से चलेगा । बिस्तर से उठकर नीद को उड़ाने के लिए भगवान् ने जो साधना की विधि बताई है । जागृत होने के लिए भगवान् ने वन्दन की विधि बतायी है, यह रूढि नही, बल्कि विशिष्ट यौगिक प्रक्रिया है । आप किस तरह वन्दन करते है, यह अलग बात है पर आप दोनो हाथ जोड़कर ऊपर से नीचे घुमाते हुए दोनो घुटने टेक कर मस्तक को नमाते हुए जमीन पर लगाया जाय तो ही प्रभु की बतायी गई विधि सध सकती है । यह विधि ज्ञान शक्ति को तरोताजा करती है । इन्द्रियों की

शिथिलता दूर करती है । कम से कम ५ वन्दन और अधिक से अधिक ९ बार वन्दन सुबह उठते ही करना चाहिए । वैसे इससे ज्यादा यथासमय किया जा सकता है । सुबह-सुबह वन्दना करने से जो नसें आपके चिन्तन में, योग-साधना में, काम आने वाली हैं, वे सभी जागृत होकर स्फुरित हो जाती है, पर आज के मनुष्य इसे बहुत कम स्वीकार करते है, सोचते है, यह तो धार्मिक क्रिया है, यौगिक नही । उनका यह मानना भ्रान्ति पूर्ण है, क्योंकि धार्मिक साधना के साथ ही इससे मन की साधना अच्छी तरह साधी जाती है । डॉक्टरों का कहना है कि हमारे शरीर में छोटी-छोटी नसों का जाल बिछा हुआ है । रात्रि विश्राम के समय कभी-कभी उनमें ब्लड सर्कुलेशन की गति मद पड़ जाती है, ये बारीक नसें हमारे हार्ट में ज्यादा रहती है अतः जब सुबह-सुबह उठकर वन्दना करते है तो खून का प्रवाह पुनः शुरू हो जाता है, और शरीर में स्फुर्ति आ जाती है । मनुष्य के सीने में दर्द क्यों होता है ? उसमें बारीक-बारीक नसें है, जिनमें रक्त की रुकावट बन जाती है तो हार्ट फेल भी हो जाता है । पर यदि रक्त प्रवाह बराबर चल रहा है तो ऐसी स्थिति एकाएक नहीं आती । हार्ट अटेक होने पर आपको बहुत दुःख होता है पर आप यह नहीं सोचते कि यदि शुरू से ही शरीर का साधन रखा जाता, महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित वन्दना विधि को विधिवत् अपनाया जाता तो हार्ट अटेक का प्रसंग शायद नहीं आता । भगवान महावीर की प्रतिपादित यह जो सहज प्रक्रिया है । वह प्रक्रिया मनुष्य करे तो आगे जाकर वह समीक्षण ध्यान योग साधना भी सुन्दर रीति से साध सकता है । पर मैं आपको क्या कहूँ, आज आपके पास इसके लिए समय ही कहाँ रह गया है । आप अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए वाचमेन नियुक्त करते है, पर मैं पूछता हूँ कि आत्मा की सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए आप किसको नियुक्त करते है । उस सम्पत्ति की रक्षा के लिए आप क्या कुछ कर रहे है ?

एक पटेल पूर्व जन्म की पुण्यवानी लेकर आया था । जिसके आधार पर खूब आगे बढ़ गया था । अतः गर्व में आकर विचार करने लगा कि अहो ! मेरे भाई कितने पीछे रह गये है, पर मैं कितना वैभव सम्पन्न हूँ । अत. अब मुझे सत्संग से क्या लाभ ? पर उसकी पटेलन सभी कार्यों को छोड़कर सत्संग में पहले जाती । वहां से ज्ञान प्राप्त करके सोचती कि यह जो अपार वैभव, धन, सम्पत्ति आदि मुझे मिली है, वह सब पूर्व जन्म में कृत शुभ कर्मों का ही फल है । अतः पूर्व पुण्यवानी के साथ वर्तमान की शक्ति को, पुण्यवानी को भी बढ़ाना चाहिए । अतः वह अपने पति से कहती है कि सारा समय आप इन कार्यों में न बितायें, सत्संग में भी चलें । धन और इन्द्रियों में इतने आसक्त न बनें । क्योंकि यह सब वैभव तो पूर्व कृत पुण्यवानी का परिणाम है । अतः इस पर अभिमान कैसा ? यह पुण्यवानी भी अमर नहीं है । जब पुण्यवानी का अंत आयेगा तो पुण्य भी पाप में परिवर्तित हो जायेगा । अतः आप सत्संग में [illegible] [illegible] समय सत्संग में बितावें पर वह पटेल सुनी अनसुनी [illegible] । [illegible]

नाम भी उसे पसन्द नही था। इस तरह करते-करते एक समय ऐसा आया कि पुण्यवानी खत्म होते ही सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। एक समय की रोटी भी नसीब नही होती। सोचा अब क्या किया जाए। पटेलन ने कहा जाओ नौकरी करो। सुनकर वह बोला कि क्या मैं इतना बड़ा पटेल होकर नौकरी करूँ! पर मरता क्या नही करता? उसे जाना पड़ा। जहां वह जा रहा था, वही एक सेठ की हवेली थी, जिसका रुपया पटेल के पास बाकी था। उसने देखा तो आवाज दी और कहा कि मेरा रुपया कब लौटाओगे तो उसने कहा कि अभी मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है तो आपका रुपया किस तरह लौटाऊ। जब मुझे सम्पत्ति प्राप्त होगी तो मैं आपके बिना कहे ही आपका सारा धन ब्याज सहित लौटा दूंगा। पर उस सेठ ने उसकी बात पर विश्वास नही किया और कहा कि मैं क्या तुम्हारी स्थिति नहीं जानता हूँ कि तुम लाखों की सम्पत्ति के मालिक हो, अतः लाओ! मेरा रुपया मुझे लौटा दो। क्योंकि उसने सोचा कि इसकी नियत खराब हो गई है, यह धन का गबन करना चाहता है। अतः सेठ ने उस पर पहरा लगवा दिया। जेल में बन्द करते है तो कम से कम रोटी तो खाने को दे देते हैं, पर वहाँ वह पटेल तीन दिन तक भूखा प्यासा बैठा रहा, पर किसी ने उसकी खोज खबर नही ली। तीन दिन बाद जब सेठ बाहर आया और उसने पटेल को बैठा देखा तो पूछा तू यही बैठा है? क्या रुपया लाया है? तब उसने कहा नहीं। तो सेठ ने कहा कि जाओ रुपया लेकर आओ। पटेल उठा। तीन दिन का भूखा-प्यासा था, चक्कर आने लगे। किसी तरह उठकर घर आया और अपनी पत्नी से कहने लगा कि मैं तीन दिन का भूखा प्यासा हूँ। अब मुझ से कोई काम नहीं होता। तुम अपने धान के कोठे को झाड़ बुहार कर साफ करो। पाव भर धान तो निकल ही जायेगा। उसे पीस कर आटा बना लो एवं उस आटे की राबड़ी बनाकर उसमें पॉयजन मिला दो, जिसे खा पीकर हम सो जायें, ताकि समस्त दुःखों से छुटकारा मिल जायेगा। पटेलन ने उससे सारी बात पूछी और विचार करने लगी कि यह हमारे अशुभ कर्मो का उदय है। अत. आर्त व रौद्र ध्यान की स्थिति में पडकर कर्म बन्ध को न बढ़ाते हुए समभाव रखना है। तब पटेलन ने उसको समझाया कि पूर्व कृत पापों के उदय से तो यह दशा प्राप्त हुई है। फिर इस तरह आत्मघात करने से कितने क्या कर्मो का बन्ध होगा। क्या आपने सेठ को अपनी वर्तमान स्थिति से अवगत नही कराया तो पटेल ने, नही कहा। तब पटेलन ने उसे कहा कि तुम पुनः उसी सेठ के पास जाओ और बिना किसी संकोच के अपनी वर्तमान की सारी हकीकत सुना दो। वह सेठ इतना निर्दयी नही है, दयालु है, उससे कहना कि पहले का कर्जा तो है ही, आप मुझे सवा मन अनाज और दे देवें। यदि मेरी स्थिति पुनः चमक उठी तो मैं ब्याज सहित सारा धन और सवा मन अनाज चुका दूँगा और यदि नही चुका सका तो आप यही सोच लेना कि जहाँ इतना धन डूबा वहां सवा मन अनाज और

आयेगा। पत्नी की बात मानकर वह गया। सेठ दयालु थे। उसकी आकृति देखकर उन्हें विचार आया। पूछा कि तुम रुपये लेकर आये हो? उसने कहा नही, तो पूछा कि तुम्हारा चेहरा उदास क्यों है? क्या हुआ? तब उसने अपनी सारी हकीकत सुनायी। सेठ सा. ने सुनकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और कहा चिन्ता की कोई बात नही, तुम मेरे भाई हो, इस तरह उसे अन्दर ले गये और सब कुछ विस्तार से पूछा—उसने कहा कि मैं आपकी हवेली पर आया। तीन दिन तक भूखा-प्यासा बैठा रहा, फिर निराश होकर घर लौटा एवं जहर पीकर मरने की सोचने लगा। पर मेरी पत्नी ने समझा-बुझाकर सवा मन अनाज लाने के लिए पुनः आपके पास भेजा है, अतः आप इच्छा पूर्ण कीजिये। जब सेठ को यह ज्ञात हुआ कि उसने तीन दिन से भोजन नही किया है तो पहरेदार को बुलाकर उसे डाटते हुए कहा कि यह क्या किया? तुमने इसे भोजन भी नही करवाया? जाओ उसे बढिया भोजन खिलाकर इसकी क्षुधा शान्त करो। पर पटेल ने कहा कि नही, मै अकेला भोजन नही करूँगा? हमारे घर मे यह रीति है कि जो भी मिलता है उसे हम सभी पारिवारिकजन आपस में मिल करके बाटकर खाते है। कोई भी व्यक्ति अकेले नही खाता। मेरी पत्नी भी तीन दिन की भूखी है, मै खाऊंगा तो उसके साथ ही और मरूंगा तो उसके साथ ही। उसकी ऐसी भावना देखकर सेठ बड़ा खुश हुआ और बोला कि तुम दो मन अनाज ले जाओ। सेठ की बात सुनकर उसके मन मे ताकत आ गयी। यह है मन की प्रतिक्रिया। धान की बड़ी सारी पोटली लेकर घर की ओर चला। पटेलन ने दूर से आते देखा तो सामने गयी और कहा इतना अनाज? वास्तव में वह सेठ बड़ा दयालु है। इसने हम पर कितनी बड़ी अनुकम्पा की है, विपत्ति के इस भयानक समय मे इसने हमारी कितनी बड़ी रक्षा की है। ऐसे समय में अन्य लोग तो हंसी उड़ाते है, उपेक्षा करते है, पर इनकी महानता देखो कि इन्होने हमको गले लगाया है। ऐसी अवस्था में जो हमारे प्राण बचाने के लिए अनाज दे, उसका उपकार हमे जीवन भर नही भूलना चाहिए। पटेल भी विचार मे पड गया। उसने रात भर जगकर विचार किया कि मैं इस सेठ का कर्जा लेकर नही मरूंगा, चाहे जैसे भी हो मुझे यह कर्जा उतारना है। सोचा—मेहनत मजदूरी से कर्जा उतार नही पाऊँगा। इसके लिए तो चोरी ही करनी पड़ेगी। ऐसा सोचकर चोरी करने की भावना से वह आधी रात को घर से निकला। रास्ते में उसे चोर मिले। पूछा कौन? तो कहा चोर! उसने कहा तुम कौन हो? कहा चोर? चोर-चोर मौसेरे भाई। सभी मिल गये। दो के तीन हो गये। बड़ी हवेली मे चोरी करेंगे। जो पहले घुसेगा उसे दुगुना हिस्सा मिलेगा। उसने सोचा मैं चोर नही चोर बन आया नही। सिर्फ कर्जा उतारने के लिए चोर बना हूँ, यदि दुगुना हिस्सा मिले तो एक बार मे ही सारा कर्जा उतर जायेगा। अतः उसने कहा कि मैं पहले प्रवेश करूंगा। वे सब एक हवेली के पिछले भाग मे पहुंचे। पहले पटेल उस हवेली के पिछवाड़े में सेंध लगाके उसमें घुसकर अंदर

से हवेली के भीतर आ गया। पर भीतर जाते ही देखा तो विचार करने लगा कि यह तो मेरे सेठ की हवेली है, जो कि मेरे उपकारी है। इस घर का दाना पानी अभी भी मेरे पेट में है। अत चाहे मेरे प्राण जायं तो जायं पर इस सेठ की सम्पत्ति नही जाने दूँगा। जब अन्य चोरों ने पूछा कि क्यों भाई ? क्या बात है ? इतनी देर कैसे लगा दी ? तो उसने कहा कि नही-नही मै यहाँ चोरी नहीं करने दूँगा। यह तो मेरे सेठ की हवेली है। सभी चोर हंसने लगे कि चोरी करने निकला है और कहता है कि यह मेरा सेठ है। उन्होने कहा कि चलो हटो, हमे तो चोरी करने दो। बडे सेठ की हवेली है, आज खूब माल हाथ लगेगा। पर उस पटेल ने हल्ला कर दिया, जिससे वे २९ चोर तो भाग गये, अकेला पटेल ही पकडा गया। पहरेदार उसे पकडकर ले गये। प्रात. जब उसे सेठ के सामने उपस्थित किया गया तो उसे देखते ही सेठ बोला—अरे रामा पटेल। तुम यहाँ ? तो उसने कहा हाँ सेठ साहब, आपका कर्जा चुकाने के लिए ही मैने यह मार्ग अपनाया था। सोचा था कि यह पाप करके मै उसका सच्चे हृदय से प्रायश्चित कर लूगा। अत: २९ चोरो के साथ मै चोरी करने निकल पडा। पर जब देखा कि यह आपकी हवेली है, तो आपके उपकार के बोझ से दबे हुए मैने चोरी करने से साफ इन्कार कर दिया और हल्ला कर दिया। जिससे वे २९ चोर तो भाग गये और मै अकेला पकडा गया। यह सारी बात सुनकर सेठ विचार करने लगा कि यदि वे २९ चोर जिस स्वभाव के थे, उस स्वभाव का यह भी होता तो क्या मेरा धन सुरक्षित रहता ? इस पटेल ने सच्ची वफादारी निभायी है। अत: उस सेठ ने उसे स्वय अपने हाथों से बन्धन मुक्त करके कर्जे से मुक्त कर दिया। यह तो एक रूपक है, आपको जो शरीर वैभवादि सम्पत्ति मिली है, वह पुण्यवानी के योग से मिली है।

"बहु पुण्य केरा पुंज थी शुभ देह मानव को मल्यो।"

बधुओ, जरा विचार कीजिये कि दिन-रात के २४ घण्टे है और २४ घण्टे के कितने मुहूर्त्त ३०। यदि उसमें से एक मुहूर्त्त ध्यान साधना में लगाये तो आपकी सपूर्ण सम्पत्ति की सुरक्षा हो सकती है। यह जीवन की आध्यात्मिक सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए घडी भर की ध्यान साधना में अन्तर ज्योति को प्राप्त कर ध्यान योग पद्धति को जीवन मे उतार कर आठ प्रवचन माता की सम्यक् आराधना करने का भव्य प्रसंग है। जिस प्रकार एक पटेल ने चोरो का विरोध किया तो सेठ की सारी सम्पत्ति सुरक्षित रह गई। इसी प्रकार २९ मुहूर्त्त व्यर्थ जा रहे है, पर यदि एक भी मुहूर्त्त आपने सार्थक कर लिया तो वह मुहूर्त्त पटेल की तरह आत्मा रूपी सम्पत्ति की रक्षा कर सकेगा। अत: विचार करे कि अधिक से अधिक समय सार्थक बनाते हुए जीवन को सही रूप मे जीने की कला सीखे।

यदि एक मुहूर्त्त भी समीक्षण ध्यान साधना मे सही रूप में लगाया गया तो वह आपके सारे जीवन को सुख की सुरभि मे सुरभित कर देगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

९-८-८५
शुक्रवार

४१ योग का सही प्रयोग

मनुष्य की लम्बे काल से जो अभिलाषा चल रही है, वह यह है कि मुझे तृप्ति मिले, पर जिन-जिन पदार्थों का वह प्रयोग कर रहा है, उन-उन पदार्थों से सतुष्टि नही हो पा रही है। क्योकि वे तृप्ति देने वाले सही पदार्थ नही है। जैसे प्यासा मनुष्य कोई भी द्रव पदार्थ देखता है तो पानी की तरह पीने की चेष्टा करता है और वह पीता भी जरूर है, पर तृप्ति नही होती, वैसे ही चैतन्य देव आत्मा इस लम्बे चौडे विराट् ससार में परिभ्रमण करती हुई कई वक्त मनुष्य जन्म भी प्राप्त किया और मनुष्य जीवन में आने के बाद मन की गति भी प्राप्त हुई। ५ इन्द्रिय और मन की प्राप्ति हो जाने पर भी वह तृप्त नही हो रहा है। वह सोचता है कि मै प्यासा हूँ इसको बुझाने के लिए मै कई वस्तुएँ काम मे ले रहा हूँ, ताकि मुझे सतुष्टि मिले। अमुक व्यापार करूँ जिससे इतना धन मिले ऐसी कल्पना भी करता है और उसके पीछे दौड़ता भी है। पर उसे सतुष्टि नही मिलती, कभी सोचता है ५ इन्द्रिय के विषय मे अधिक रस लूं, जिससे मुझे शाति मिले, वहाँ भी वह विफल हो जाता है। जैसे आग धधक रही है, तब कोई यह सोचे कि यह भूखी है, इसे खाना दिया जाय तो उसका खाना सूखी घास लकडी घासलेट या घी है, ये उसे दे दिये जाये तो आग की तृप्ति होगी या और अधिक भडकेगी ? जैसे इन पदार्थों को देने पर अग्नि शान्त नही होती है, अपितु अधिकाधिक भडकती है। वैसे ही मानव मन ५ इन्द्रियो के विषयो मे डूबकर पिपासा मिटाना चाहता है पर उसकी तृष्णा, वासना बढती ही जाती है। वस्तुत इसको ऐसा कोई रस नहीं मिल रहा है, जिससे यह सतुष्टि प्राप्त करे। इस मन की तृप्ति का जो हेतु है, वह जब तक नही मिलता है, तब तक मन भटकता रहता है। एकाग्र नही रहता।

स्वाध्याय कंठस्थ कर लेते है। और उनकी गाथाओं को भी सुना देते है, केवल इस तोता रटन की तरह रट लेने में ही सार्थकता नही, परन्तु जब तक इसका रस आपके अन्तर में नही आयेगा, तब तक सारा जीवन इसके आवर्तन और प्रवर्तन में ही चला जायेगा और इस तरह के प्रयास से स्वयं की पूर्ण तृप्ति नहीं होगी। तृप्ति के लिए जिज्ञासा होनी चाहिए और वह भी आन्तरिक हो।

जो यह मान लेता है कि—मैंने ५-४ व्यक्तियों को निरुत्तर कर दिया। अमुक-अमुक कार्य कर लिया तो बस अब मै पूर्ण हो गया, मुझे अब अन्य किसी की भी आवश्यकता नहीं है। ऐसा मनुष्य कभी ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा नही कर सकता। तथा वीतराग देव के वचनों का सार रूप रस पी नहीं सकता।

मैं कल कुछ बात रख गया था योग साधना की दृष्टि से। भगवान् ने जहाँ १२ अगों का सार इस योग साधना मे बताया और योग साधना की व्याख्या भी बडे सुन्दर शब्दों में की है। योग का अर्थ जोडना और समाधि का अर्थ साध्य को प्राप्त करना है। हरिभद्र सूरि ने भी जहाँ दृष्टियो का प्रतिपादन किया है वहाँ मन, वचन, काया की क्रियाओं को योग के उद्देश्य के साथ जोड देना बताया है। तीर्थंकर देवों ने बिना पूछे ही आपको योग साधना का अवलंबन बता दिया है कि—

"तत्थ आलंबणं णाणं दंसणं चरणं तहा।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए।।"

तुम्हारी योग साधना का अवलंबन ज्ञान, दर्शन, चारित्र है। इसी में तू अपने योगों को जोड। योग की एकाग्रता के साथ शरीर और वाणी की एकाग्रता तो जुड़ी हुई है पर वचन और शरीर को चचल बनाने वाला मन है। सबसे मुख्य प्रश्न यही है, इसीलिए इस मन की वृत्ति को समझे। नियत समय पर बैठकर योग की साधना करें। कल मै नियत समय के विषय मे कुछ संकेत कर गया था। मै अनुभव करता हूँ कि योग साधना की पद्धति को सुनने वाले साधक ही यहाँ आये है। ऐसी बात नही है। आत्म शुद्धि के प्रयत्न की भावना से ही आप संभव है, सुनने आते होगे। बंधुओ! जहाँ जिन श्रोता गणो को यह ख्याल नही कि मैं आत्मिक शुद्धि कैसे करूँ, वे भले ही ऊपरी कथा आदि को चाहे पर आत्म जिज्ञासुओ को चाहिए कि वे अन्तर के मन को सशोधित करे, तभी आत्मा की वास्तविक शुद्धि होगी। पर्युषण और सवत्सरी आकर चले जाएँगे। प्रतिक्रमण हो जायेगा। खमत-खामणा भी आप अवश्य कर लेगे, पर यह चिन्तन नहीवत् होगा कि १२ महिनो में मेरी आत्म-शुद्धि नही हुई, अन्तर । संतुष्टि नही आयी, जो शुद्धि का काम करना चाहिए वह नही कर पाया।

तो इन आठ दिवसों में अपने योगो को सशोधित कर लूँ, ऐसे सोचने वाले बहुत कम मिलते है।

एक भाई के पास कई दिनो से वस्त्र मैले हो गये। विचार किया कि एक ही साथ इन कपड़ो को धो डालूँ। बड़ी सन्दूक मे सारे कपड़े भर के उसमे ताला लगा दिया। फिर सोचा कपड़े ज्यादा है तो साबुन की बट्टियाँ भी बहुत लगेगी। बाजार गया और ले आया और तालाब पर पहुँच कर, सारी बट्टियाँ पेटी पर रगड़-रगड कर खत्म कर दी और सतुष्टि प्राप्त कर ली कि मैंने अपने सारे कपड़े साफ कर लिये है। पर वस्तुत. उसका परिश्रम निरर्थक गया है। जरा चिन्तन करे कि कही आप भी ऐसा पुरुषार्थ तो नही कर रहे है। अन्तर की सफाई किये विना वाहरी सफाई निरर्थक होगी। सवत्सरी पर्व आ रहा है। उस रोज भीतर के मैले कपडे जो विचारों के, राग-द्वेष के उन्हे निकाल-निकाल कर क्षमा साधना से धोते हुए मन को संशोधित करे ताकि वचन और काय भी सशोधित होगी। मन की तिजोरी को साफ किये बिना साबुन की ऊपरी रगड की तरह वाहरी रूप से सामायिक, प्रतिक्रमण, तप आदि करने से आत्मिक शुद्धि नही होगी। यही नही प्रतिदिन भी आप नियत समय पर वैठकर के भगवान् द्वारा वतायी गयी योग साधना के माध्यम से अपने आप के अन्दर मे प्रवेश करने का प्रयास करे। हमारे योग का लक्ष्य क्या है? पद्धति क्या है? हमारे ज्ञान दर्शन, चारित्र पर जो मल-आवरण आ गया है, उसे हटाना है या वढ़ाना है?, इसका विचार करे।

स्वाध्याय कंठस्थ कर लेते है। और उनकी गाथाओं को भी सुना देते हैं, केवल इस तोता रटन की तरह रट लेने में ही सार्थकता नही, परन्तु जब तक इसका रस आपके अन्तर में नही आयेगा, तब तक सारा जीवन इसके आवर्तन और प्रवर्तन में ही चला जायेगा और इस तरह के प्रयास से स्वयं की पूर्ण तृप्ति नहीं होगी। तृप्ति के लिए जिज्ञासा होनी चाहिए और वह भी आन्तरिक हो।

जो यह मान लेता है कि—मैने ५-४ व्यक्तियों को निरुत्तर कर दिया। अमुक-अमुक कार्य कर लिया तो बस अब मै पूर्ण हो गया, मुझे अब अन्य किसी की भी आवश्यकता नही है। ऐसा मनुष्य कभी ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा नही कर सकता। तथा वीतराग देव के वचनों का सार रूप रस पी नहीं सकता।

मैं कल कुछ बात रख गया था योग साधना की दृष्टि से। भगवान् ने जहाँ १२ अगों का सार इस योग साधना मे बताया और योग साधना की व्याख्या भी बड़े सुन्दर शब्दों मे की है। योग का अर्थ जोड़ना और समाधि का अर्थ साध्य को प्राप्त करना है। हरिभद्र सूरि ने भी जहाँ दृष्टियों का प्रतिपादन किया है वहाँ मन, वचन, काया की क्रियाओं को योग के उद्देश्य के साथ जोड़ देना बताया है। तीर्थंकर देवों ने बिना पूछे ही आपको योग साधना का अवलंबन बता दिया है कि—

"तत्थ आलंबणं णाणं दंसणं चरणं तहा।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए॥"

तुम्हारी योग साधना का अवलंबन ज्ञान, दर्शन, चारित्र है। इसी में तू अपने योगों को जोड। योंग की एकाग्रता के साथ शरीर और वाणी की एकाग्रता तो जुड़ी हुई है पर वचन और शरीर को चचल बनाने वाला मन है। सबसे मुख्य प्रश्न यही है, इसीलिए इस मन की वृत्ति को समझे। नियत समय पर बैठकर योग की साधना करें। कल मै नियत समय के विषय में कुछ सकेत कर गया था। मै अनुभव करता हू कि योग साधना की पद्धति को सुनने वाले साधक ही यहाँ आये है। ऐसी बात नही है। आत्म शुद्धि के प्रयत्न की भावना से ही आप संभव है, सुनने आते होगे। बंधुओ! जहाँ जिन श्रोता गणो को यह ख्याल नही कि मै आत्मिक शुद्धि कैसे करू, वे भले ही ऊपरी कथा आदि को चाहे पर आत्म जिज्ञासुओ को चाहिए कि वे अन्तर के मन को सशोधित करे, तभी आत्मा की वास्तविक शुद्धि होगी। पर्युपण और संवत्सरी आकर चले जाएँगे। प्रतिक्रमण हो जायेगा। खमत-खामणा भी आप अवश्य कर लेगे, पर यह चिन्तन नहीवत् होगा कि १२ महिनो में मेरी आत्म-शुद्धि नही हुई, अन्तर । संतुष्टि नही आयी, जो शुद्धि का काम करना चाहिए वह नही कर पाया।

तो इन आठ दिवसो में अपने योगो को संशोधित कर लूँ, ऐसे सोचने वाले बहुत कम मिलते है ।

एक भाई के पास कई दिनो से वस्त्र मैले हो गये । विचार किया कि एक ही साथ इन कपडो को धो डालूँ । बड़ी सन्दूक मे सारे कपडे भर के उसमे ताला लगा दिया । फिर सोचा कपड़े ज्यादा हैं तो साबुन की बट्टियाँ भी बहुत लगेंगी । बाजार गया और ले आया और तालाब पर पहुँच कर, सारी बट्टियाँ पेटी पर रगड़-रगड़ कर खत्म कर दी और सतुष्टि प्राप्त कर ली कि मैने अपने सारे कपड़े साफ कर लिये है । पर वस्तुत. उसका परिश्रम निरर्थक गया है । जरा चिन्तन करे कि कही आप भी ऐसा पुरुषार्थ तो नही कर रहे है । अन्तर की सफाई किये बिना बाहरी सफाई निरर्थक होगी । संवत्सरी पर्व आ रहा है । उस रोज भीतर के मैले कपड़े जो विचारों के, राग-द्वेष के उन्हे निकाल-निकाल कर क्षमा साधना से धोते हुए मन को सशोधित करे ताकि वचन और काय भी सशोधित होगी । मन की तिजोरी को साफ किये बिना साबुन की ऊपरी रगड़ की तरह बाहरी रूप से सामायिक, प्रतिक्रमण, तप आदि करने से आत्मिक शुद्धि नही होगी । यही नही प्रतिदिन भी आप नियत समय पर बैठकर के भगवान् द्वारा बतायी गयी योग साधना के माध्यम से अपने आप के अन्दर में प्रवेश करने का प्रयास करे । हमारे योग का लक्ष्य क्या है ? पद्धति क्या है ? हमारे ज्ञान दर्शन, चारित्र पर जो मल-आवरण आ गया है, उसे हटाना है या बढ़ाना है ?, इसका विचार करे ।

एक रूपक है—चार भाइयों में से दो भाइयो ने गलती की । जिससे कपडे पर चिकना सा धब्बा लग गया । अन्य दोनों भाई विचार करने लगे कि इन लोगो ने प्रमाद वश ऐसा किया है, अब चीटिया आएंगी और इन्हे काट खाएगी । उन्होंने समझाया कि प्रमाद मत करो । ये धब्बे लग गये है तो उन्हे धोकर साफ कर लो । पर वे दोनो कहते है कि एक दो धब्बे लग गये है तो इससे क्या फर्क पडता है । पर वे दो के चार और होते-होते सारे कपड़े उनसे भर गये, तेल के चिकनास से युक्त कपडो में दाग लग जाने से वे बहुत गदे हो गये एव साफ होने योग्य न रहे । इसी प्रकार अन्य दो भाइयो के कपडो पर भी इसी तरह चिकनास युक्त धब्बे लग गये, पर उन्होने प्रमाद नही किया, सुज्ञजनो की सलाह के अनुसार हाथो-हाथ कपड़े धो डाले । जिससे वह चिकनास कपडों में जमा नहीं और कपड़े बिल्कुल स्वच्छ हो गये । ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति नियत समय पर बैठकर योग साधना से जीवन को धोने का प्रयास नही करता है तो उसके जीवन मे विचारों की गंदगी बढती जाती है, किन्तु जो नियत समय पर योग साधना से आत्म शुद्धि कर लेता है तो उसकी अन्तरग की सफाई हो जाती है । जहाँ दर्द है वही दवा लगाने से लाभ हो सकता है, दर्द तो है सिर मे और दवा हो रही है पेट की, तो यह दर्द कभी भी ठीक नही हो सकता ।

जो यह वीतराग देव की योग साधना है, इसमें आप नियत समय पर बैठने की कोशिश करें तथा बारीकी से इसका अध्ययन करे। जिस रोज आप प्रतिक्रमण करे उस रोज तो विशेष रूप से मन पर लगे पापों का शुद्धिकरण करने का प्रयास करे। मन चंचल है, इसीलिए पाप वध विशेष होता है, अतः सोचना है कि मन-चंचल क्यो है ? यह योग साधना के माध्यम से ज्ञात किया जाता है। योग पद्धति में जाने के बाद योग की विक्षिप्तता आ गयी, तो अनर्थ हो जाएगा। अरणक मुनि की बात सुनी होगी। पिता के साथ दीक्षित होकर मुनि बने और ज्ञान ध्यान का अभ्यास करने लगे, उनके पिता ने कहा—तुम पूरा समय ज्ञान-ध्यान करो, सारा कार्य मै करूँगा। पर योग साधना की पद्धति पॉच समिति तीन गुप्ति का प्रयोगात्मक रूप नही सिखाया—कहा कि जब तुम बड़े हो जाओगे तो तुम्हे साधना की यह पद्धति सिखाऊँगा। इस तरह सुकुमार अवस्था मे रखते हुए कुछ भी कार्य नही करने देते, दिन भर ज्ञान ध्यान सिखाते। साधु जीवन मे जहाँ गोचरी पानी आदि का प्रसंग आता है तो एक साधु गोचरी लाता है, तो दूसरा साधु धोवन पानी आदि। इस तरह अप्रमत्तावस्था मे रहकर सभी मुनि मिलजुल कर कार्य करते है। ये कार्य भी साधु जीवन के आवश्यक अंग है। पर मुनि अरणक के प्रति उनके पिता-मुनि का वात्सल्य प्रेम था। वे उन्हे खूब ज्ञानाभ्यास कराना चाहते थे। वे सोचते थे कि अभी से ही साधु जीवन की चर्या के कार्यो में लगा दिया गया तो इसे अध्ययन मे चाहिए, उतना समय नही मिल पाएगा। और प्रगति मे बाधा आएगी। ऐसा सोचकर वे स्वय तो अपना कार्य करते ही थे, साथ ही मुनि अरणक के हिस्से का कार्य भी स्वय ही करते थे। पर उसकी सुकुमार अवस्था को देखते हुए उन्होने उसे प्रयोगात्मक रूप से समिति गुप्ति आदि का ज्ञान नही कराया, जो कि जीवन व्यवहार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गृहस्थाश्रम मे पुत्र रहता है, उसे आप शाला में पढने के लिए भेजते है, वह सीखता है। घर आने पर आप उसे पूछते है कि ५-५ कितने होते है तो वह कहता है कि मुझे नही पता। वह कहता है कि शाला मे पढता हूँ और वहाँ ५-५ दस होते है। पर उसे यह नही ज्ञात कि जो प्रयोग वह शाला मे कर रहा है उसका उपयोग यहाँ भी करना है। यही है योग साधना का अभाव। मुनि अरणक के पिता-मुनि काल कर गये। अब उन्हे सारा साधु जीवन का कार्य स्वय ही करना था। योग साधना से अनभिज्ञ अरणक मुनि को अन्य गुरु भ्राताओ ने समझाया कि तुम भिक्षा के लिए जाओ तो तुम्हारा योग का लक्ष्य मस्तिष्क मे होना चाहिए। दृष्टि भूमि पर होनी चाहिए और भिक्षा की विधि को ख्याल मे रखते हुए किसी भी घर मे जाओ, वहाँ विवेक पूर्वक अपनी दृष्टि से गृहस्थ की सामग्री देखो और विचार करो कि यह सामग्री मेरे योग मे दोष लगाने वाली तो नही है। उसके बाद सब कुछ देखकर निर्दोष आहार ग्रहण करो और पानी लेने जाओ तो देखकर पक्का पानी ही लाना। मुनि अरणक विचार करने लगे—पिताजी तो

स्वर्गवासी हो गये, उन्होंने मुझे योग साधना की यह प्रक्रिया बतायी नही, पर अब तो जाना ही पड़ेगा। गोचरी के लिए निकले, पर सूर्य के प्रचड ताप से सडक जल रही थी, सुकुमार थे मुनि! उनके पॉव जलने लगे, पास ही एक बड़ी हवेली की छाया थी। वे उस छाया मे जाकर खडे हो गये। उस हवेली में एक महिला थी। उसने ऊपर से देखा। उसकी दृष्टि योग की नही भोग की थी। विचारने लगी कि अहो! इतनी तरुण वय मे सुकुमारता मे यह कठोर सयम साधना। ये गर्मी से बेचैन हो रहे है। अतः इन्हे ऊपर लेकर जाऊँ, यह सोच वह नीचे उतरी और मुनि को ऊपर पधारने की प्रार्थना की। अरणक मुनि ने शास्त्र पढे थे। अध्ययन भी खूब किया था, पर अध्ययन के साथ योग साधना से सम्बन्ध नही जोड़ा। वे घबरा रहे थे, अतः उस सुन्दरी ने आमंत्रण दिया और मुनि अरणक गर्मी से बेहाल बने और उसके पीछे-पीछे भवन में जाकर ऊपर चढने लगे। बन्धुओ, योग के आन्तरिक स्वरूप को जो समझ सकता है, वही समझ सफल हो सकती है, पर मुनि अरणक योग साधना के प्रयोगात्मक रूप को समझ नही सके, इसी कारण अकेली बहिन के पीछे-पीछे चल दिये। वह बहिन सोचने लगी कि यह मुनि योग का रस नही जानते, इसलिए मेरे साथ ऊपर आ गये है, अतः यह कच्चे मुनि है, मेरे वश मे आ सकते है। उसने अच्छा सरस भोजन उन्हे बहराया और अरणक मुनि से कहने लगी—आप कष्ट पा रहे है, यह गोचरी लेकर धर्म स्थानक मे किस तरह जाएँगे, यही बैठकर भोजन कर ले। जब सूर्य का तेज कम पड जाएगा, मौसम में ठंडक आ जाएगी तब आप खुशी-खुशी उपाश्रय पधार जाना। मुनि अरणक कुछ सोच नही पाये कि क्या करना और क्या नही करना। उन्होंने पहली गलती तो यह की कि अकेली बाई के साथ मकान मे गये। दूसरी गलती यह की कि गृहस्थी के घर बैठकर ही भोजन कर लिया। बन्धुओ! भले ही मुनि अरणक ने शास्त्राभ्यास किया था। पर ज्ञानीजनो का कथन यह है कि ज्ञान के साथ जब तक क्रिया नही होगी, आचरण नही होगा, तब तक योग साधना की, चारित्र आराधना की सही पद्धति सध नही सकेगी।

आज आप जो संत-सती को वन्दनीय पूजनीय मानते है, ये महावीर की योग साधना को लेकर चल रहे है, पर आप विचार करे कि वे जो जमाने के पीछे वर्तमान की सुख सुविधाओ में बह रहे है और चाहते है कि यह चाहिये, हमारे वह चाहिये तो समझना चाहिये कि वे सही माने मे साधु नहीं है। वे भगवान् की योग साधना की पद्धति से वहुत दूर चल रहे है। आप कई भाई विचार करते है कि साधु को आधुनिक होना चाहिए, पर सोचे कि आप क्या कर रहे है। क्या श्रमण वर्ग को अपनी अवस्था मे ले आयेगे? क्या श्रावक और साधु दोनों की एक ही स्टेज रह जायेगी? फिर साधु को वन्दनीय पूजनीय मानने से क्या लाभ? अरणक मुनि साधना की योग पद्धति की मर्यादा को

तोडकर वहाँ भोजन करने लगे। फिर उनकी साधना भ्रष्ट हो गयी। वे वही पर रह गये। यह घटना उसकी माँ ने सुनी जो कि दीक्षित थी। बड़ी-बडी ग्राशा लेकर चल रही थी कि मेरे पति के पास मेरा पुत्र भी दीक्षित हुग्रा है। मेरे पति ने उसे जी जान से ज्ञान ध्यान करवाया है, ग्रागे जाकर खूब नाम रोशन करेगा, शुद्ध ग्रन्तरकरण द्वारा ग्रात्म ज्योति जगाएगा। पर जब यह सुना कि वह कही चला गया, लौटकर वापिस नही ग्राया तो उसके मन में विक्षेप ग्रा गया। धर्म स्थानक से निकल कर जोर-जोर से ग्रावाज देने लगी। ग्ररणक मुनि, ग्ररणक मुनि। वह विक्षिप्त हो गयी, उसकी मानसिक दशा खराब हो गई। योग पद्धति सारी भ्रष्ट हो गयी, खाने का ध्यान नही, पीने का ध्यान नही रहा, इस प्रकार घूमते-घूमते एक दिन ये शब्द ग्ररणक के कान मे पड़े तो वह सोचने लगा ग्रहो! ये शब्द तो मेरी माता के है। उसे सब कुछ स्मरण हो ग्राया। मन पश्चाताप मे डूब गया। ग्रहो कहाँ मेरी वह संयमी चर्या ग्रौर कहाँ मै यहाँ ग्राकर फंस गया, धिक्कार है मुझे। मै पतित हो गया ग्रपने महान् लक्ष्य से। काश, मेरे मुनि पिता मुझे बचपन मे ही समझा देते, ग्रध्ययन के साथ ग्राचार पालन की पद्धति सिखा देते, योग साधना की सुन्दर रीति समझा देते तो ग्राज मेरी यह स्थिति नही होती। मै यो कायर न बनता। सयम से भ्रष्ट नही होता ग्रोह! यह मैने क्या किया? इस प्रकार प्रायश्चित का पावन जल उसके मनोमन्दिर का प्रक्षालन करने लगा। ग्ररणक नीचे उतर ग्राया ग्रौर बोला—माँ, जिस ग्ररणक को तुम पुकार रही हो तुम्हारा वही ग्ररणक मै हूँ। माँ ने कहाँ ग्ररे! तुम्हारी क्या दशा हो गयी। तू मेरी गोद को उजालने वाला था, पर तूने तो संयम की इस श्वेत चादर पर काला धब्बा लगा दिया। मेरे उज्ज्वल कुल को कलंकित कर दिया, पर बेटा दोष तेरा नही। तेरे पिता ने तेरा जीवन उच्च बनाने के लिए सिर्फ ज्ञानाभ्यास करवाया, इस कारण से योग साधना की बारीकियो का तुम ग्रध्ययन न कर सके। ग्ररणक पश्चाताप पूर्णक स्वर में ग्रपनी माँ से बोला—ग्रब मै क्या करूँ? तो माँ ने कहा कि इसका एकमात्र उपाय यही है कि तू पंडित मरण स्वीकार करो, योग साधना को नष्ट करने की ग्रपेक्षा जीवन का विसर्जन करना ही श्रेष्ठ है। दशवैकालिक सूत्र मे ग्राया है—

"धिरत्थु तेऽजसोकामी जो तं जीविय कारणा।
वंतं इच्छसि भावेउ सेय ते मरण भवे॥"

रथनेमि जव संयम से विचलित होकर भोग की कामना करने लगता है तो सती राजमति उसे कहती है कि वमन किये हुए भोगो को भोगने की ग्रपेक्षा तो मर जाना ही श्रेयस्कर है। ग्रत: ग्ररणक की माता कहने लगी—हे पुत्र तू पुन: सयम मे स्थिर होकर, कठोर साधना से ग्रपने शरीर का त्याग कर दो, तुम्हारे लिए यही प्रायश्चित है।

बन्धुओ ! मै आपको एक ही बात बता रहूँ कि जो योग साधना अच्छी तरह से नही साध सकता वह अपनी स्थिति से गिर जाता है तो आपका कर्तव्य है कि उन्हे प्रतिबोध देकर पुनः साधना मे स्थिर करे । आप स्वय भी विचार करे कि हमारा जीवन क्या है ? इसकी साधना क्या है ? सत-सतियो के पास जाएँ और साधना की बारीकियो को सावधानी से, गहराई से समझे । उन्हे जीवन में थोडा-थोडा भी करके उतारे पर उतारे अवश्य ही ।

आप विचार करे कि अन्तर की शुद्धि की बाते, आत्मा को पवित्र बनाने की आध्यात्मिक बाते सत-सतियो के पास ही मिलेंगी, अन्य वस्तुएँ तो कही भी मिल सकती है पर आध्यात्मिक उत्थान की बाते तो आध्यात्मिक मन्दिर में ही मिलेगी । अतः आप यहाँ नियत समय पर आकर साधना की पद्धति को स्वीकार करे । पर्युषण के दिवस आ रहे है । आत्मा के मैल को किस तरह साफ करना है । पेटी बन्द करके उसे ऊपर से धोना है या वस्त्र अलग-अलग करके उन्हे शुद्ध रीति से धोना है, विचार करले । साधना की सही पद्धति को जीवन मे उतारने का प्रयास करे । सहजिक योग साधना हर तरह से जीवन मे रम जाए—ऐसा प्रयास लेकर प्रयत्नशील रहेगे तो एक दिन योग साधना के माध्यम से आप उस उच्च दशा को प्राप्त कर सकेंगे ।

मोटा उपाश्रय, १०—८—८५
घाटकोपर, बम्बई शनिवार

४२ | साइक और मुनि धर्म

वर्तमान समय, मनुष्य जीवन के लिए स्वर्णिम अवसर है । यह मनुष्य जीवन इस सृष्टि का विशिष्ट जीवन है । सारी ही सृष्टि के मनुष्यो को तथा अन्य सभी प्राणियो को सही दृष्टि से देखने की कोशिश करें तो आपको लगेगा कि सारी सृष्टि में मनुष्य जीवन ही एक ऐसा श्रेष्ठ जीवन है कि जिससे इच्छित फल की प्राप्ति हो सकती है । मनोवाछित पूर्ण किया जा सकता है । मानव जीवन एक चौराहा है । मनुष्य जीवन से यह आत्मा, चैतन्य देव जहाँ भी जाना चाहे जा सकता है । जैसा भी बनना चाहे बन सकता है । इस जीवन के लिये वीतराग देव ने महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि यह जीवन सर्वतंत्र स्वतंत्र है । इस जीवन मे किसी की परतत्रता का प्रसंग नही आता । शर्त यह है कि इस शरीर को धारण करने वाला चैतन्य देव स्वय के स्वरूप को समझ ले । अपने स्वरूप को समझने के लिए उसे विशिष्ट महापुरुषो के संदेश को समझने की आवश्यकता है जिन्होंने अपने त्रिकाल अवाधित आत्मिक स्वरूप को प्रकट कर लिया, राग-द्वेष, काम-क्रोध की ज्वालाएँ नष्ट कर दी, विकारों की परछाइयाँ, जड़ तत्त्वो की बाधाएँ जिनके जीवन में नही रही है, ऐसी विशिष्ट शक्ति सम्पन्न आत्मा जो है उन्हे आप वीतराग, परमात्मा या परिपूर्ण शुद्ध चैतन्य देव के स्वरूप से संबोधित कर सकते है । उन्होने जो दिव्य संदेश दिया, वह मुख्य रूप से मानव के लिये है और गौण रूप से सभी के लिये है क्योंकि मानव वीतराग देव की आज्ञा मे समर्पित होकर चलता है और उस आज्ञा को अपने जोवन में स्थान दे सकता है । आत्मा मे जब समर्पणा होती है तो परमात्मा का शुद्ध स्वरूप स्वय मे दिखाई देने लगता है । उस स्वरूप को साधने के लिये वीतराग देव को जो साधना है, उस पर आगे बढा जा सकता है और वह साधना साहसिक योग की साधना है । मै कुछ दिनो से योग साधना की वात कह रहा हूँ, वही साधना का विषय आगे लेना है । वीतराग देव ने वताया कि ध्यान, योग-साधना यह आत्मा के नवनीत पाने की साधना है । फूलो के मकरन्द की साधना है । वृक्षों का राजा आम वृक्ष है, उसके सार रूप फल की साधना है । यह विषय प्रत्येक सुज्ञजनो को समझना है । आप जानते है जहाँ आम का वृक्ष सुरक्षित है, किसी भी प्रकार का जन्तु उसमे नही लगा है, वही वृक्ष आम्र फल दे सकता है । लेकिन कोई पुरुप यह विचारे कि आम्र वृक्षों की मुझे आवश्यकता नही, मुझे तो सिर्फ फल ही चाहिए तो क्या वह पुरुप आम्र वृक्ष की उपेक्षा करके आम्र फल पा सकता है ? बुद्धि-

मान व्यक्ति ऐसा नही सोच सकता। पुष्प रस का इच्छुक सोचे कि मै फूल की अवगणना करके उसका रस ले लूं, तो वह रस नही पा सकता है अतः फलित होता है कि जिस सार तत्त्व की आवश्यकता है, उस सार तत्त्व का जिसके साथ अविनाभावी संबंध है, ऐसे तत्त्व को भी महत्त्व देकर चलता है तो ही वह सार पा सकता है।

परमात्मा रूप की अभिव्यक्ति इस मनुष्य जीवन की अतिम साधना है। एक जीवन मे भी तीर्थंकर देव की आज्ञा की आराधना सही रूप में कर लेते है, तो अतिम साधना तक पहुँच सकते है। अतिम साधना का सार है—समाधि। आपकी धर्म साधना तभी फलवती होगी, जब कि ध्यान साधना का क्रम उसके साथ सयुक्त होगा। वीतराग भगवन्तों ने इस ध्यान को साहजिक योग साधना की दृष्टि से ५ महाव्रत मूलगुण और १० पच्चक्खाण उत्तरगुण बताया है। पतंजलि योग दर्शन मे यम और नियमादि बतलाये है। पतंजलि दर्शन बाद का है लेकिन अनन्त तीर्थंकरों ने जो सार बताया है, वह यह है कि अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इसी का छोटा रूप श्रावक का अणुव्रत है। ये दोनो ही वृक्ष के रूप है। इसको चारित्र कह सकते है, पर यह चारित्र सार्थक कब होगा ? जब ध्यान का मकरन्द जीवन मे आयेगा। ५ महाव्रत रूप आम्र वृक्ष और इसका फल साधना के रूप में ले सकते है। श्रावक के (५ अणुव्रत, ३ गुण व्रत और ४ शिक्षा व्रत) १२ व्रतों की भावना भी इस चारित्र के साथ योग का रस देने वाली है। पर यदि कोई संत चाहे कि मुझे महाव्रत रूप आम्र वृक्ष की आवश्यकता नही अतः इन्हे छोड़ दूं और ध्यान का मकरद रूप फल ले लूँ तो क्या वह ले सकता है ? ध्यान की साधना महाव्रत के साथ की गई तो ही फलवती होगी, अन्यथा मकरंद की प्राप्ति कदापि नही हो सकती।

पर्युषण की समीपता के साथ आज छुट्टी का दिन भी आ गया है, सात दिन उसकी उपासना के है। उसमे क्या करना चाहिये, इन सात दिनों में आठवें दिन की साधना की परिपूर्ण तैयारी करले, पर तैयारी क्या है ? भगवान् की आज्ञा की आराधना १२ महिने में जितनी हुई उतनी तो हुई, पर ये आठ दिन उनकी आज्ञा मे परिपूर्ण सर्मपित होने के है। परिपूर्ण सर्मपित होने का तात्पर्य— आठ दिनो मे अधिक से अधिक अहिसा, सत्य, आचौर्यादि व्रतो को धारण कर अहिसक बनकर शक्ति अनुसार १८ पापो से निवृत्त होकर चलने का प्रयास करे। क्योंकि भगवान् भी परिपूर्ण रूप से पापों का त्याग करके ५ महाव्रतो के साथ पूर्ण अहिसक बने थे। इसी वीतराग देव की साधना के लिये भव्यजनो को आठ दिन मे वैसी ही साधना करके दिखा देना चाहिये। यदि वीतराग वाणी की आराधना नही की गई तो सम्यक्त्व भी सुरक्षित रहेगी या नही ? इसका गभीरता से चितन करना है।

आज का युग परिवर्तन का युग है । आपको मालूम होगा एक समय पत्थर का युग था । समय के साथ युग बदलते रहते है । भगवान् ऋषभदेव के समय का युग आया, फिर राजाओ का युग आया, गाधी युग आया, जनतत्र का युग आया, ये सारे बाहर के परिवेश का परिवर्तन है । किन्तु आत्मिक मौलिक स्वरूप का परिवर्तन तीन काल से भी नही हो सकता । मूलत: आत्मा १८ पापो से रहित है, ऐसा मौलिक स्वरूप है । किन्तु कर्मो से आबद्ध होने से पापों मे रम रही है । आत्मा का इसलिए प्रभु ने सकेत दिया कि चातुर्मास प्रारम्भ के बाद १२० रात्रि मे कम से कम सम्यक्-धर्म की आराधना तो अवश्य करे । भगवान् की आज्ञा का आराधक बने । इन दिनो मे श्रावक व्रत की, सम्यक्त्व की सुरक्षा करोगे तो एक न एक दिन परिपूर्ण समाधि की स्थिति आ सकती है । पर आराधना मे कही कोई भूल तो नही है । आज के इस यात्रिकी युग मे परिवर्तन आ रहा है, जिसमे कइयो की आवाज उठती है कि भगवान् की आज्ञा की आराधना करते हुए, माइक का प्रयोग कर लिया जाय तो क्या हरकत है ? मै उन भाइयो का अनादर नही करता; पर मै उनसे परामर्श मांगता हूँ कि आप इस विषय का थोडा स्वरूप समझ लीजिये और फिर भगवान् की आज्ञा का इसके साथ कितना क्या तालमेल वैठता है ? यह विचार कीजिये ।

जहाँ तक यत्र का प्रसंग है, वह तो निर्जीव है पर उसमे जो प्रवाहित होने वाली बिजली है, उसे तीर्थकरो ने तेऊकाय के रूप मे बताया है, इस विजली को बादर तेउकाय मे गिना है । तथा भगवान् ने प्रत्येक साधक को सकेत दिया है कि षटकायिक जीवों के साथ मैत्री-भाव के साथ मेरी आज्ञा की आराधना करो । भगवान् ने छ: काया में बादर तेउकाय को सबसे बड़ा भयकर शस्त्र बताया । भगवान् की प्रथम देशना आचाराग सूत्र है, उसमे कहा 'जे दीह लोय सत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे । जे असत्थस्स खेयण्णे, ते दीह लोय सत्यस्स खेयण्णे ।' इस मूल पाठ मे किसी का वाद-विवाद नही है । इसके मूल अर्थ में कोई अलग अर्थ नही निकलता है । मूल पाठगत शस्त्र तलवार, बन्दूक, बम्ब आदि के लिए नही समझे, आजकल के युग का शस्त्र न समझे । अनन्त तीर्थकरो ने कहा कि "वादर तेउकाय सारे लोक को भस्मीभूत करने वाली है । अत: बादर तेउकाय दीर्घलोक शस्त्र है । और ये विद्युत सचित्त वादर तेडकाय है । देरावासी समाज के राजेन्द्र सूरिश्वर ने अभिधान राजेन्द्र कोष के ४० पडितो को वैठाकर भगवान के समस्त शास्त्रो को इकट्ठे करके जो ७ भाग वनाये है । ऐसी जानकारी हुई है । उन्हे भी देख सकते हैं । उसमे वताया कि ये वादर तेउकाय व्यवहार और निश्चय से सचित्त है । व्यवहार से सचित्त, छाणे-कंडे के अगारे, लकडी के अगारे इत्यादि । पर भट्टियो के वीच मे जलने वाली सव अग्नि और विद्युत निश्चय से सचित्त है । उत्तराध्ययन सूत्र के ३६वे अध्ययन मे तथा पन्नवणा सूत्र आया है—

"संघरिस समुट्ठिए"

संघर्ष से उत्पन्न होने वाली अग्नि सचित्त है। बिजली संघर्ष-घर्षण से उत्पन्न होती है। चाहे सूक्ष्म रूप संघर्षण हो या स्थूल, पर होता अवश्य है। इसलिये वह भी सचित्त है, जीवयुक्त है। जितनी भी बिजली की अग्नि है, वह सारी बादरी तेउकाय है और वह सारे संसार को भस्मीभूत करने वाली है।

आकाश की बिजली जब पृथ्वी पर गिरती है तो पानी के जीव तो मरते ही है पर वनस्पति के जीव भी मरते है। उस बिजली के वृक्ष पर गिरने से वृक्ष समाप्त होता है, वृक्ष के कोपर मे जहाँ पक्षियों के घोसले है, अडे है, उनके बच्चे है वे भी सारे के सारे समाप्त हो जाते है। पानी में जो ७ प्रकार के जीव है, वे सभी मर जाते है। एक ही बिजली के प्रत्यक्ष प्रयोग से आप देख सकते है कि कितनी हिसा होती है। भगवान् महावीर ने इससे बढ़कर कोई शस्त्र नही बताया है। इससे वही बच सकता है जो वीतराग देव की आज्ञा का आराधक हो।

जब आगमिक दृष्टिकोण से विद्युत सचित्त प्रमाणित हो जाती है तब विद्युत के संचालित सारे साधन भी सचित्त, जीव युक्त ही प्रमाणित होते है। जिनमें बोलने से या उनका प्रयोग करने से अवश्य जीवों की हिसा होती है। लाउडस्पीकर में बोलने वाला या विद्युत के साधनों का उपयोग करने वाला साधक फिर भगवान् की आज्ञा का आराधक कैसे रह सकता है? व्यावहारिक दृष्टि से भी इस बात को समझलें। जैसे कोई एक सूई अन्य के भी लगाता है और अपने स्वयं के भी चुभाता है, तब उसे अनुभव होता है कि इससे स्वयं को कितना क्या दु.ख होता है? इसी तरह विद्युत, बिजली के करेन्ट को भी अन्य जीवो को लगाते है तो स्वयं को भी लगाने पर ज्ञान होगा कि जितना दर्द आपको होगा, उतना अन्य आत्मा को भी होगा। बंधुओ, चितन के क्षणों मे बैठकर इस विषय को गहनता से समझने की आवश्यकता है और आप तटस्थ दृष्टि से चितन कर सकते है कि ऐसे भयंकर शस्त्र का थोडे सुनने के पीछे प्रयोग कैसे कर सकते है?

हमने प्रतिज्ञा की है कि तीन करण और तीन योग से छः काया के जीवों की हिसा करना नही, करवाना नही और करने वाले की अनुमोदना भी नही करना, मन, वचन, काया से।

यह प्रतिज्ञा व्यक्तिगत नही है, वीतराग देव की बताई हुई प्रतिज्ञा लेकर हम चलते है।

आपकी एक सामायिक भी अहिसा की साधना है। आप उसमे बैठते है, पौषध करते है, उसमें आप भी २ करण ३ योग से प्रतिज्ञा लेकर बैठते है पर हमारी सामायिक यावतजीवन की सामायिक है। तीन करण और तीन योग की सामायिक है।

दूसरी बात यह है कि खुले मुंह बोलने वाला भगवान् की आज्ञा का आराधक नही होता, क्योंकि भगवान् ने भगवती सूत्र में खुले मुंह बोलने वालों की भाषा सावद्य कही है ।

बन्धुओ ! जरा आप विचार करें कि इधर तो मुंह पर जीव रक्षा हेतु कपड़ा लगाया है और उधर षड्कायिक जीवों की विराधना कर लाउडस्पीकर में बोल रहे है । यह आपकी कैसी साधना है । खून से रंजित वस्त्र कभी खून से नही धोया जा सकता । आप ठंडे दिमाग से विचार करे कि इस तरह १२ महीनों की हिसा से एक दिन भी आप निवृत्त नहीं हो सकते । एक तरफ तो कहते है कि हम भगवान् की आज्ञा की परिपालना कर रहे है दूसरी तरफ ऐसी बात लाउड-स्पीकर में बोलकर जीवो की हिसा कर रहे है । बन्धुओ ! ये दिन आत्म शुद्धि के आ रहे है, इन दिनो में भी जीवन की शुद्धि नही करोगे तो फिर कब करोगे ?

शास्त्रकारों की दृष्टि से आप इस धर्मस्थान में आकर इन आठ दिनों में ध्यान-साधना, मौन-साधना करके आत्मा की धुलाई करे । आप प्रश्न करते है कि पब्लिक की अधिकता मे हमे सुनाई न दे तो फिर क्या करें ? पर भगवान् की आज्ञा का उल्लघन करके हिसा करके सुनना भी कोई जरूरी नहीं है । सुनाई न दे तो ध्यान और मौन की साधना भी कर सकते है ।

आजकल राजनैतिक दृष्टि से सरकार कानून बनाती है एसेम्बली में, पर कितना परिपालन हो रहा है, कानून—कौन परिपालन कर रहा है ? मेरे भाई कहते है मा. सा. समय व परिस्थिति के अनुसार कानून भी तोड़े जा रहे है । इसलिये आप भी बदलिये । लेकिन बन्धुओ ! यह विचारने का विषय है । जहाँ मौलिक मर्यादा का अनुपालन नही होता है, वहाँ संयमी जीवन टिक नही सकता । साधु ने संयम लिया है, उसका प्रमुख उद्देश्य आपको सुनाने का नही है । उसका सर्व प्रथम मौलिक उद्देश्य आत्म शुद्धि के लिए महाव्रतों की अनुपालना करना है । यदि महाव्रतो को तोड़कर सुनाने का काम करता है, तो वह न तो भगवान् की आज्ञा का आराधक रहता है और न ही अपने आपका सही आत्म संशोधन ही कर सकता है । यदि समुद्र जन कल्याण की भावना से अपनी मर्यादा तोड़ दे, तो कल्याण नही प्रलय हो सकता है वैसे ही साधु भी भले जन कल्याण की भावना से महाव्रतों को तोड़ता है, तो वह आगमिक दृष्टि से अपना व दूसरो का संरक्षण नही ससार सवर्धन कर रहा है । सुज्ञ सज्जनो । जरा यह गहराई से समझने का विपय है, आप इसे समझने के साथ ही किसी का प्रश्न रह गया हो तो मेरा खुला प्लेटफार्म है । मैं सबको खुली छूट देता हूँ कि आप बाद मे भी समयानुसार प्रश्न कर सकते है । मैं यथोचित समाधान देने के लिए तत्पर हूँ ।

आप लोगों ने सुन तो बहुत कुछ लिया है अब आचरण में लाने की आवश्यकता है । आप इन सात दिनो में ध्यान व मौन की साधना का शिक्षण

लीजिये। त्रास दिये जाने वाले प्राणियों से क्षमायाचना कर उन्हें अभयदान दीजिये। व्यक्ति एक तरफ तो संवत्सरी के रोज क्षमायाचना करते है और दूसरी तरफ लाउडस्पीकर में बोल करके उन्हे करेन्ट लगा रहे है, उन्हे मार रहे है तो यह कैसी आत्म शुद्धि होगी ? यह आत्म शुद्धि का कौनसा रूप होगा ? भगवान् ने तो कहा है कि इस जीवन में जहाँ वचन का भी करेन्ट नही लगावे वहां पर बिजली का करेन्ट लगाकर धर्म साधना कैसे की जा सकती है। अतः इन सावद्य साधनों को छोड़कर छोटे से छोटे जीवों को अभयदान देकर क्षमा-याचना का भव्य प्रसंग उपस्थित करना चाहिए।

आप इस महानगरी के प्रबुद्ध नागरिक है, अतः मुझे ज्यादा कहने की आवश्यकता नही रह जाती।

कल्पना करिये—सोचें, इधर तो प्रतिक्रमण चल रहा है और उधर अचानक पावर बंद हो जाय तो उस समय में प्रतिक्रमण कराने वाले के मन में कैसी भावना आयेगी, और समझ लो, लाउडस्पीकर में व्याख्यान चल रहा है। तो व्याख्यानदाता के मन में क्या भावना चलेगी कि जल्दी से जल्दी पावर हाउस चले। एक वेश्या भी यही सोचेगी कि पावर हाउस जल्दी से चालू हो जाय, जिससे मेरा भी काम हो। जिस पावर से कतलखाना चल रहा है, वे भी यही सोचेगे कि पावर आ जाय, एक जुआरी भी उक्त प्रकार का ही विचार करेगा, तो अब बोलिये इस पावर हाउस के आने की जुदी-जुदी कल्पना करने वाले कितने भागीदार होगे ? क्या वे इस महापाप के भागीदार नही होगे ?

भगवान् ने जीव वधादि के अनुमोदन में भी पाप माना है तब पावर को जल्दी से जल्दी आने की भावना रूप अनुमोदन से होने वाले जीवों की हिसा आदि अनेक पापों के भागीदार भी बनेंगे। अतः इस प्रकार के महापाप से कम से कम धर्म कार्यो में तो बचने का प्रयास करना चाहिए।

पर्युषण अथवा संवत्सरी के प्रसग से जहाँ छोटे से छोटे जीवों को भी अभयदान देने की स्थिति उपस्थित करनी है। पर जहाँ इस महापाप की संस्था का अनुमोदन किया जाय तो कैसी क्या स्थिति बनेगी ?

ब्यावर का प्रसंग है। मेरे सामने ही जो कान्फ्रेस के अध्यक्ष थे उनकी उपस्थिति में डॉ. डी. एस. कोठारी जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक है उनसे प्रश्न किया कि डाक्टर साहव ! विजली सजीव है या निर्जीव। तव उन्होने कहा—हमारा विज्ञान निर्जीव-सजीव की परिभाषा से नही सोचता है पर आप छाणा-कोयला की आग को, आकाश की विजली एवं भट्टी की आग को सचित्त मानते हो तो विजली निश्चित सचित्त है अतः वैज्ञानिक दृष्टि से भी विद्युत में सजीवता स्पष्ट हो जाती है।

डाक्टर साहब ने यह भी साफ कहा कि सचित्त अग्नि के अचित्त की बात तो है ही, पर लाउडस्पीकर लगाकर साधु के नया परिग्रह नही लगाना चाहिए। क्योंकि वे इसके अधीन हो गये, तो फिर इसके बिना वोल ही नही सकेगे— टाइम्स आफ इण्डिया में एक अजैन लेखक ने ध्वनियों की विवेचना करते हुए कहा कि धर्म साधना का क्षेत्र धर्म स्थान में तो इन लाउडस्पीकर जैसी चीजो की आवाज कतई नही होनी चाहिए। देरावासी अनुभवी आचार्यो ने भी इसे सचित्त अग्नि बताई है। मेरे कुछ भाई लोग सोचते है कि म. सा. ! यह तो सब कुछ होता है पर आप थोड़ी देर के लिए हमें वीतराग वाणी (माइक के जरिये) सुना दो और फिर थोड़ा प्रायश्चित ले लो। बन्धुओ ! यह कैसा प्रायश्चित, यह कैसा दंड ? आप व्यापारी है। सरकार की ओर से दूकान पर लगे भाव सूची-पत्र को तोड़कर किसी व्यापारी ने २ नम्बर का पैसा इकट्ठा करके परोपकार मे लगा दिया। सरकार को मालूम हुआ कि इस व्यापारी ने भाव सूचो तोड़ी है तो इसका दंड मिलेगा या नही ? अवश्य मिलेगा। वह व्यापारी कहता है मैंने तो सारा धन परोपकार में लगा दिया है तो बताइये अब मुझे दड किस बात का है ? पर सरकार उसे नही छोडती, क्योकि उसने सरकार की चोरी की है।

बन्धुओ ! जब आपकी सरकार भी नही छोड़ सकती है तो क्या हमारी वीतराग देव की सरकार इतनी कच्ची है, इतनी कमजोर है। जब आपको भी छूट नही मिलती है तो वीतराग देव की सरकार में कैसे छूट मिलेगी ? अतः पुण्य क्या है, हिसा किसमें है, धर्म क्या है, इस विषय का विश्लेषण हर भाई-बहिन को लेना चाहिये।

एक बार का प्रसंग है कि कवि आनन्दघनजी के पास एक संन्यासी आया और बोला कि देखो महात्मन् ! आप आध्यात्मिक साधना कर रहे हो, पर हमारे गुरूजी ने इतनी साधना की कि जिसके प्रभाव से उन्होने एक ऐसा रसायन प्राप्त किया है, जिसकी एक बूंद से पत्थर का सोना बनाकर परोपकार मे लगा सकते हो। उस सन्यासी ने कहा, मेरे गुरूजी ने इस रासायनिक तत्त्व की शीशी आपको देने के लिए ही मुझे भेजा है, अतः आप इस शीशी को ले लीजिये।

वह संन्यासी आनन्दघनजी को शीशी देता है तो आनन्दघनजी ने कहा— यह स्वर्ण पैदा करने की रासायनिक शीशी तुम मुझे देना चाहते हो पर मुझे तो आध्यात्मिक रस की शीशी चाहिए। तुम केवल जड तत्त्वो की सिद्धि मे ही लगे हुए हो। चारित्र की साधना ज्ञान की साधना के साथ ही सध सकती है। तुमने अभी तक आध्यात्मिक जीवन को नही समझा। यह भौतिक तत्त्व कोई महत्त्व-पूर्ण नही है यदि इसकी एक बूंद से लाखो मन सोना वन सकता है तो एक टोपे से क्या कोई आध्यात्मिक जीवन का सोना वन सकेगा ? तो वह बोला कि ऐसा तो नही होगा। आनन्दघनजी ने कहा कि आध्यात्मिक जीवन की साधना को

न तुमने समझा है और न तुम्हारे गुरूजी ने ही। आध्यात्मिक जीवन को उपलब्धि सच्ची साधना से ही हो सकेगी। वह इन चन्द चाँदी के टुकड़ों से नही हो सकती। आनन्दघनजी के इतना समझाने पर भी वह बार-बार कहने लगा और नही माना तो आनन्दघनजी ने उसके हाथ से शीशी ले ली। और जो रस लाखों मन सोना बनाने वाला था, उसे अपने हाथ मे लेकर पत्थर पर फैंक दिया और वोसिरा दिया।

यह देखकर संन्यासी को बहुत क्रोध आया और आग बबूला हो, आनन्दघनजी को कहने लगा—आपने इस लाखो मन सोना बनाने वाले रासायनिक तत्त्व को मिट्टी मे मिला दिया। तो आनन्दघनजी ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि लाखों मन सोना महत्त्वपूर्ण है या आध्यात्मिक जीवन की साधना अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह कहने लगा कि क्या आपकी ऐसी कोई आध्यात्मिक साधना की शक्ति है कि जिससे तुम भी सोना बना सको। महात्मा ने कहा—जिसकी आध्यात्मिक साधना सच्ची है तो उस साधना की निश्चित रूप से अचिन्त्य शक्ति होती है। मै चमत्कार दिखाना नही चाहता पर फिर भी कुछ नमूना तुम्हे बताता हूँ। बन्धुओ! कमल की सुवास सारी दुनिया को सुरभित कर सकती है। आनन्दघनजी ने एक पत्थर को शिला पर लघुशंका कर दी जिससे सारी शिला सोने की बन गयी। यह आत्मिक शक्ति का चमत्कार देखकर वह नतमस्तक हो गया और उनके चरणो मे गिर गया। आध्यात्मिक साधना में वास्तव मे अनन्त शक्ति भरी पड़ी है। पर इस साधना को छोडकर जो यह परिग्रह सारे पापो की जड है, जो इसमें पड़ता है वह अपने जीवन को पतन की राह पर धकेल देता है। आध्यात्मिक जीवन की साधना तो इन सब बाह्य परिग्रहो से ऊपर उठकर ही हो सकती है।

जो साधक साधना में बढकर भी यश लिप्सा प्रसिद्धि के इच्छुक बन जाते है और अपनी प्रसिद्धि के पीछे मर्यादाओं का भी ख्याल नही रखते, माइक आदि हिसात्मक साधनों का प्रयोग भी करते है। वे निर्दोष कैसे रह सकते है? लाउडस्पीकर में बोलकर सुनाने वाले कई साधक ऐसे भी कहते हुए पाये जाते है कि गृहस्थ लाकर रख देते है, तब हमारा क्या दोष? यह थोथी कल्पना है। क्योकि गृहस्थ साधु की इच्छा बिना कुछ भी नही कर सकता। जैसे कि घाटकोपर की बात है कि मैंने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था कि सयमीय मर्यादा के अनुसार स्थिति बने तो ही मै चातुर्मास के लिए सोच सकता हू तो आपने भी वैसा ही विवेक रखा। इस प्रकार साधु स्पष्ट निषेध करदे तो गृहस्थ की हिम्मत नही है कि वह उसके सामने लाउडस्पीकर की बात ला दे। अजमेर मे आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा. के सामने लाउडस्पीकर की बात चली तो कहते है ४० हजार की जनता के बीच में यह कहते हुए आचार्य प्रवर निकल गए कि "मैं लाउडस्पीकर में नही बोलूंगा। किसकी हिम्मत कि जो मुझे जबरन

बुलाए"। आचार्य प्रवर की इस घोर गर्जना के सामने कोई भी नहीं आया। अतः अनिच्छा होते हुए भी गृहस्थ रख देते है, यह मानना तो बिल्कुल गलत है। यदि ऐसे उपयोग करने लगेंगे तो फिर वे गृहस्थ तो कार, मोटर, एयरकंडीशन आदि सब व्यवस्था कर देगे। तब साधु जीवन कहा रह जायेगा? यदि यह कहा जाय कि इसके लिए हम प्रायश्चित लेते है तो यह भी आगमिक दृष्टि से उपयुक्त नही है क्योंकि प्रायश्चित वही आता है जहाँ संयम जीवन की सुरक्षा में खतरा हो रहा है, वहां यदि अपवाद का सेवन किया जाय तो अविधि में प्रायश्चित की स्थिति बनती है। लेकिन लाउडस्पीकर में नही बोलने से संयम जीवन में कोई खतरा नही आने वाला है जिससे कि व्रत तोड़कर प्रायश्चित लिया जाय। अपवाद का सेवन वहाँ किया जा सकता है जहाँ उत्सर्ग की स्थिति नही निभ रही है। कहा है "उत्सर्गाद परिभ्रष्टस्य अपवाद गमनम्।"

लाउडस्पीकार में नही बोलने में उत्सर्ग स्थिति में कोई नहीं जा रहा है और लाउडस्पीकर में बोलना भी अपवाद का सेवन नही है एक बात और है कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के नाम से यदि साधुओं के लिए लाउडस्पीकर खोला जाय तो फिर विदेशों में प्रचार करने के लिए हवाई जहाज भी खुल जायेगे, जो कि देखने को मिल ही रहे है। सत्य है नाव मे एक छिद्र हो जाने पर भी वह पूरी नाव को डुबो देता है वैसे ही साधु जीवन में एक दोष का प्रवेश भी उसके सारे साधु जीवन को दूषित कर सकता है।

दूसरी बात यह है कि बहुत ज्यादा भीड-भाड़ हर समय नही होती है। कभी-कभी ही होती है, जब दीक्षा आदि का कोई ऐसा प्रसंग हो तो उस समय श्रोता सुनने के लिए कम, देखने के लिए ज्यादा आते है, जिसके सुनने की सच्ची जिज्ञासा है, वह ऐसे प्रसगों को टालकर आ सकता है जिससे उसे सुनने को मिल सके। किन्तु सुनने के नाम से साधु को उसकी मर्यादा से नीचे गिराना कतई उपयुक्त नही है।

यह भी एक हास्यास्पद बात होगी कि जहाॅ वायु के जीवो की रक्षा के लिए तो मुख पर वस्त्रिका को वाधते है और अग्नि से होने वाली महा हिसा की ओर ध्यान न देकर धड़ल्ले से लाउडस्पीकर में बोल रहे है।

आज कई साधक भीनासर सम्मेलन का नाम लेकर भी यह कहते हुए पाये जाते है कि लाउडस्पीकर तो उस समय ही खुल गया था, पर उनका यह मानना भ्रान्ति मूलक है—क्योकि भीनासर में १-४-५६ को जो प्रस्ताव पारित हुआ, वह यह था—

प्रस्ताव न. १० ध्वनिवर्धक यंत्र विपयक—"ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलना, मुनिधर्म की परम्परा नही है। यदि अपवाद में वोलना पड़े तो उसका प्रायश्चित

लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्द रूप से ध्वनिवर्धक यंत्र का उपयोग नहीं करना चाहिए।"

उपरोक्त प्रस्ताव बहुमत के आधार पर ही पारित हुआ, सर्वसम्मति से नही। इस प्रस्ताव के भावों की व्याख्या निम्न प्रकार है :—

इस प्रस्ताव के प्रथम वाक्य में "ध्वनिवर्धक यंत्र में बोलना मुनिधर्म की परम्परा नही है", यह कहकर उत्सर्ग मार्ग में ध्वनिवर्धक यत्र के उपयोग का कतई निषेध कर दिया है।

दूसरे वाक्य के प्रथम अंश में "यदि अपवाद में बोलना पड़े" तो कह कर मुनि की विवशता व्यक्त की गई और साथ ही ऐसी अपवाद की स्थिति मे भी अनिवार्य रूप से प्रायश्चित का कथन किया गया है। और दूसरे वाक्य के दूसरे अश में तो स्वच्छन्द रूप से बोलने का कतई निषेध है।

अपवाद की स्थिति, सयम रक्षा के लिए अथवा जीवन व धर्म की संकटा-वस्था के समय ही आती है। अपवाद की स्थिति क्या हो सकती है ? स्वच्छन्दता क्या है ? और प्रायश्चित क्या लेना ? इसका भीनासर सम्मेलन मे निर्णय नही हुआ। इन तीनों शब्दों की व्याख्या नहीं हुई, इसको आचार्य श्री जी म. सा. ने भी स्वीकार किया है जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे। परन्तु फिर भी भीनासर सम्मेलन के बाद, आचार्य श्री जी म. सा. ने अपने शिष्यों को ध्वनिवर्धक यंत्र में बोलने की आज्ञा प्रदान कर दी। इससे श्रमणवर्ग और संयम प्रेमी चतुर्विध संघ में हलचल मच गई।

उन दिनों में श्रमण संघ के प्रधानमंत्री पद पर व्या. वा. पं. रत्न श्री मदनलालजी म. सा, श्रमण संघ का कार्य सुचारु रूप से कर रहे थे। स्वाभाविक था कि ध्वनिवर्धक यंत्र के खुले उपयोग होने से, समाज में जो उथल-पुथल हुई उसकी शिकायत प्रधानमंत्रीजी म. सा. के पास आती और ऐसी शिकायतें उनके पास पहुँची। तव आचार्य श्री जी म. सा. और प्रधानमत्रीजी म. सा. के बीच में श्रमण संघ सम्वन्धित पत्र व्यवहार आदि के प्रसंग में जो वातावरण बना और जो कटुता का अनुभव हुआ उससे प्रधानमंत्री जी म. सा. ने प्रधान मत्री पद का त्याग पत्र आचार्य श्री म. सा. की सेवा मे पेश कर दिया। उस त्याग पत्र का मुख्य अंश यहाँ उद्धृत कर रहे है।

प्रधानमंत्री श्री मदनलालजी म. सा. ने अपने त्याग पत्र में लिखवाया कि– "ध्वनियंत्र विपयक प्रस्ताव मे निहित, अपवाद, प्रायश्चित और स्वच्छन्दता" की परिभापा स्पष्ट हुए विना ही आचार्य श्री जी म. सा. ने अपने शिष्य वर्ग को ध्वनिवर्धक यंत्र मे वोलने की आज्ञा देकर, सघ मे एक अव्यवस्था पैदा कर दी है। हमारे पास स्पष्टता के लिए माग आई है, आदि।[1]

---

१. श्रमणसंघीय विषयों पर विश्लेषणात्मक निवेदन से साभार।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय लाउडस्पीकर नही खुला था। जब वह मुनि धर्म की परम्परा मे ही नही है तो वह खुल भी कैसे सकता है अत: भीनासर सम्मेलन के नाम से लाउडस्पीकर खुल गया, ऐसा कहना साधक के सत्य महाव्रत को सशंकित करता है। भीनासर सम्मेलन मे स्थानकवासी सघ के बडे-बड़े मूर्धन्य मुनिराज थे। जब वहाँ भी यह स्पष्ट निर्णय था कि यह मुनि धर्म की परम्परा के अनुकूल नही है तब उसका अब प्रयोग करना मुनिधर्म के अनुरूप हो ही नही सकता।

साधु मर्यादा की दृष्टि से देखे तो आप सोचिये कि साधु बारीक वर्षा की बूंदों मे भी पॉच कदम चलकर व्याख्यान नही दे सकता। भले पांडाल में दस हजार की जनता बैठी हो। क्योकि जाने पर पानी के जीवो की हिसा होती है तब अग्नि की हिसा करके लाउडस्पीकर में बोलकर उपदेश कैसे दिया जा सकता है? वैज्ञानिको ने तो यहाँ तक कहा कि लाउडस्पीकर की आवाज अप्राकृतिक आवाज है। इसे सुनने से बहरापन, रक्तचाप आदि बीमारियाँ आ सकती है। अत: स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। इस बात को सुबोध गम्य बनाने के लिए एक व्यावहारिक रूपक देता हूँ।

एक व्यक्ति उपवास करके १० हजार मनुष्यों का जीमण करता है। वह सबको जिमाना चाहता है। पर बाहर के व्यक्तियो को यह शंका हो गई कि इस जीमन मे बनाई गई मिठाई में पॉइजन है तो वे भोजन करने को तैयार नही हुए और वे लोग उसे कहते है कि आप भोजन कर लो हम सभी १० हजार व्यक्ति जीम लेगे, पर उसके उपवास है। यदि आप नही जीमते है तो हम सारे के सारे भूखे रहेंगे। अब आप ही विचार करो कि आप क्या करेंगे। उपवास तोड देना या नही (श्रोताओ में से उत्तर) एक कहता है नही तोडेंगे और कोई कहता है समय व परिस्थिति की दृष्टि से तोड़ दे तो कोई हरकत नही है। अच्छा, अब बतलाइये, उपवास तोड दिया, उन्हे जिमा दिया, बाद मे आपसे कोई पूछे कि आपके उपवास है? तो क्या कहोगे? उपवास नही तोडा ऐसा तो नही कहेगे। श्रोताओ का उत्तर—नही ऐसा नही कहेगे। यो कहेगे कि उपवास तो था। लेकिन इन लोगों को जिमाने के लिए तोड़ दिया। अब मेरे उपवास नही है। वहुत अच्छा—अब आप विचार करिये कि एक भाई कहता है कि हम उपवास नही तोड़ेगे, भले लोग भूखे जायं। आपका उपवास तो पत्ते की तरह और साधु के महाव्रत वृक्ष की मूल की तरह है। आप उत्तरगुण उपवास को तोड़कर भी लोगो को नही जिमाना चाहते तो एक साधु अपने महाव्रतों को तोड़कर किस लिए उपदेश देना चाहेगा? समझ लीजिये उसने लोगो को जिमाने की तरह लोगों को सुनाने के लिए महाव्रत तोड़ दिये। अव मूलगुण की दृष्टि से निर्दोष कैसे रहा? तव उसे कोई पूछे कि आप पाच महाव्रतधारी साधु है, तो वह क्या कहेगा? जव आप भी उपवास तोडकर यह कहते है कि मेरे उपवास नही है, तो उसे अवश्य कहना होता है कि मै पहले

पाँच महाव्रतधारी साधु था, पर लोगो को सुनाने के लिए मैने महाव्रतों मे दोष लगाया है। अब मेरे महाव्रत सुरक्षित नही है। लेकिन वह ऐसा न कहकर अपने आपको पूर्ण पच महाव्रतधारी साधु माने तो उसमें नैतिकता भी कैसे रह सकती है ?

जैसे एक उपवास तोडने का प्रायश्चित डबल उपवास का प्रायश्चित आता है तो वैसे ही महाव्रत तोडने पर कितना दीक्षा छेद का प्रायश्चित आयेगा, आप विचार कीजिये। इसी तरह वीतराग प्रभु द्वारा दिये गये नियमों को तोड़कर वीतराग देव की वाणी का भोजन जिमाने बैठोगे तो कहना पड़ेगा कि हमारे ५ महाव्रत पूरे नही है। यह चिन्तन करने का विषय है, मैने वस्तु स्वरूप रख दिया, अब आप बतलाइये, मेरे सामने ऐसे प्रसग आवे तो क्या करना चाहिए ?

क्या लोगो को सुनाने के लिए वीतराग वाणी से विपरीत चलकर महाव्रत में दोष लगाया जाय या महाव्रत की सुरक्षा करते हुए जितना लोग सुन सके उतना सुनाया जाय ? उत्तर—लोगों की आवाज है—पहले महाव्रत की सुरक्षा अपेक्षित है। इस आध्यात्मिक जीवन की साधना और भगवान् की आज्ञा की आराधना पर्व के दिनों में गृहस्थ वर्ग भी सामायिक, पौषध आदि मे हिसा करते हुए कैसे कर सकेगे ? आप सामायिक, प्रतिक्रमण कुछ भी करो, उस समय खुले मुँह रखकर कुछ नही बोल सकते हो।

सुज्ञो ! मै आपको स्पष्ट बतला देता हूँ कि प्रचार-प्रसार के नाम पर आप साधुओ को उनकी मर्यादा से नीचे न उतारें। लेकिन स्वर्गीय क्रान्त दृष्टा आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. ने जो मध्यम मार्ग का सकेत दिया है अत: मध्यम वर्ग बनाकर सत महापुरुषों से ज्ञान प्राप्त कर प्रचार-प्रसार करने में आप स्वतन्त्र है। जिस प्रकार वैज्ञानिक लोग दवा बनाते है तो बनाने वाले दूसरे होते है और प्रचार प्रसार करने वाले दूसरे होते है। बनाने वाले ही यदि प्रचार करने में लग जायं तो निर्माण कौन करेगा ? वैसे ही साधु को अपनी मर्यादा मे रखे। उन्हे महाव्रतो से हटाने के लिए कभी प्रोत्साहित नही करना चाहिए और गृहस्थ को भी सामायिक, प्रतिक्रमण, पौपध आदि मे हिसक साधनों का उपयोग नही करना चाहिए।

वन्धुओ ! जिसके मन मे किसी भी प्रकार की जिज्ञासा हो तो पूछ सकते हो, मेरा तो खुला प्लेटफार्म है और यह मेरा उत्तर नही वीतराग देव की वाणी का दृष्टिकोण है, यह पहले भी कह गया हूँ। यह मेरी स्वयं की वात नही, वीतराग देव के सिद्धान्त की वात है। इस पर तटस्थ दृष्टि से चितन कर, आने वाले पर्युषण के दिनों में वीतराग देव की आज्ञा की सम्यक् आराधना करके आगे वढोगे तो आप साधु जीवन को पवित्र रखते हुए अपने जीवन को पूरी भव्य रीति से ऊँचा उठा सकोगे। इसी भावना के साथ। □

मोटा उपाश्रय,   ११-८-८५
घाटकोपर, वम्वई   रविवार

४३ | योगों का संशोधन हो

वीतराग देव के वचनों का संस्मरण करने का प्रसंग है। विराट् केवलज्ञान मे सारे संसार की अवस्था का अवलोकन करके जो निर्देश महाप्रभु ने दिया है, उस निर्देश को याद करने का प्रसंग है। जहाँ चार अंगों की दुर्लभता बतलाई गई है। यथा—

> "चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
>
> माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥"

श्रुत का श्रवण करना एक वात है, श्रुति का पैदा होना दूसरी बात है। जब अंतर से श्रुति जागृत हो जाय तो फिर उसके हृदय में स्वभावतः श्रद्धा, रुचि पैदा हो जाती है। कई मनुष्यों में श्रद्धा का प्रसंग सुनकर भी आता है। 'माणुसत्तं' सबसे पहले मनुष्य जीवन की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। किन्तु आज जो आत्माएँ मनुष्य जीवन प्राप्त करके अलग-अलग कार्य कर रही है, इस मनुष्य जीवन में क्या कार्य करने का है। इस जीवन में हाथ, पाँव आदि पाँचों इन्द्रियाँ मिली है, पर इसका उपयोग कहाँ करना है। इस विषय का विज्ञान वहुत कम मनुष्य प्राप्त करते है। जब तक इस विषय का विज्ञान व शुद्ध रूप से श्रुत का प्रसंग न आएगा, तब तक श्रुत का सदुपयोग नहीं हो सकता। ये वात वीतराग देव ने स्वयं की साधना से बताई है, श्रुत का लाभ सिर्फ मनुष्य जन्म में ही मिल सकता है। मनुष्य पर्याय बहुत महत्त्वपूर्ण है। आत्मोन्नति की अनंत संभावनाएँ इसी मनुष्य जीवन में रही हुई हैं। यहां से जो साधना करने की है, वे करलें तो महत्त्वपूर्ण है और मनुष्य जीवन में जो साधना न करें तो मिट्टी के ढेले की भांति यह देह मिली और नष्ट हो जायेगी। यदि कुछ भी न कर सके तो जीवन व्यर्थ ही जाएगा। श्रुत का अनुभव आत्मा मे उदित होता है तो आत्मा की क्या-क्या अवस्था होती है, इसका वर्णन शब्दों से नही कर सकते है पर अनुभव से किया जा सकता है।

आत्मा की अवस्था का विचार करने पर आयेगा कि सूखे घास की अग्नि भी प्रकाश दे सकती है और जलाने में तो आती ही है। इसी तरह आत्मा की अवस्था होती है। इसी तरह छाणे की आग ज्यादा टिक सकती है, उसमे आगे

लकड़ी और दीपक की आग में तफावत है । इसी तरह योग की साधना भी है। साधना का प्रकाश घास से या अन्य प्रकाश से नही आयेगा । जीवन की शुद्धि तो अतर से ही प्रकट होगी, जब अंतर से प्रकट हो जाय तो मन चचल नही रह सकता । मन को इच्छित वस्तु की प्राप्ति न हो जाय तव तक मन चचल रहता है। वच्चा कब तक रोता है ? जब तक उसे खिलौने न मिल जायें । भ्रमर गुनगुनाता है पर कब तक ? जब्र तक कि उसे मकरद न मिल जाय, मकरंद मिल जाय तो उस पर वह चुपचाप बैठ जाता है । उसी प्रकार आत्मा को श्रुत एवं चारित्र के माध्यम से जीवन का मौलिक रस प्राप्त होता है तो आत्मा भी फिर उस रस को पाने में निमग्न हो जाती है। जिसका मन प्रभु के श्रुत-चारित्र रूप पांच महाव्रत, तीन गुप्ति का गुण मकरंद लेने मे लग जाये, तो आत्मा की साधना सध सकती है। किन्तु आज के मानव में ज्ञान, दर्शन और चारित्र का महत्त्व कम है, इसलिये धर्म का स्वरूप जीवन में नही आ पाता । कारण कि उसका मन चंचल है इसलिये धर्म की ओर ध्यान नही जाता । पर जो व्यक्ति देवलोक के इन्द्र, नरेन्द्र, चक्रवर्ती, सम्राट् की सम्पत्ति भी तृण तुल्य गिनता है । पत्थर के कटके (टुकड़े) की तरह संसार के पदार्थो को मानता है, वह व्यक्ति योग साधना मे सफल हो सकता है । श्रावक के मूल व्रतों को यथाशक्य लिये बिना ध्यान साधना ठीक तरह से नही हो सकती है । जो मनुष्य इनको छोड़कर साधना करना चाहे तो नही हो सकती है । वह तो आम्र वृक्ष को छोड़कर आम्र फल की इच्छा करने के तुल्य है ।

दशवैकालिक सूत्र मे प्रभु ने कहा कि—जब संयम जीवन के अतरग मे आता है तो उसके मन, वचन और काया में भी संयम आ जाता है—"हत्थ-संजए-पाय-संजए वाय संजए-सजए इन्दियस्स" वीतराग देव के वचनो को जीवन में विचारोगे तो आपको समझ मे आ सकेगा । स्वय के भीतर जो अपूर्व खजाना है, उसे प्रकट करने के लिये सबसे पहले तीन गुप्ति का गोपन करो ।

कल्पना करिये आपके वंगले पर कोई निमित्तक आकर कहे कि आपके आगन मे सोना, चादी, मणि-माणिक्यादि के चरू गड़े हुए है तो आप क्या करोगे ? घर का दरवाजा वद करके धन के चरू निकालने का प्रयत्न करोगे या क्या करोगे ? वृद्धावस्था मे भी उसका आकर्षण है । इस तरह अनंत तीर्थंकर डके की चोट से वता रहे है कि शरीर रूपी वंगले मे अपूर्व अनिर्वचनीय शक्ति रूपी सम्पत्ति भरी पड़ी है, जो सारे संसार के वैभव की तुलना से भी अधिक है पर उसे निकालने के लिये सवसे पहले योगों के दरवाजे वद करने की आवश्यकता है । इसके लिये ज्ञान, दर्शन और चारित्र अंदर मे प्रकट हो, अगर अपूर्व शक्ति की लाइट जीवन में आ जायेगी तो 'हत्थसंजए' आदि से सारी शक्ति प्रकट हो जायेगी ।

इन योगों की साधना किस तरह करनी है, यह चितन प्रत्येक भव्यों को करने की आवश्यकता है। यह विषय आज का नही पूर्व के तीर्थंकरों के समय में भी था और वर्तमान का भी है। पूर्व के श्रावक सामायिक, पौषधादि करते थे, १२ व्रतो का भी ज्ञान था। इन सभी नियमो का पालन करते हुए, ध्यान साधना की प्रक्रिया भी करते थे। उस समय की श्राविकाओ का नाम भी आगे आया।

मगध सम्राट् श्रेणिक की पत्नी चेलना महारानी थी। श्रेणिक, जैन मुनि पर आस्था नही रखते थे जबकि महारानी चेलना वीतराग देव के सिद्धान्तो को जानती थी और उसे उस पर अगाध विश्वास था, योग पद्धति का भी ज्ञान था। महारानी चेलना श्राविका व्रत मे रहती हुई श्रेणिक सम्राट् को धर्म समझाने का प्रयत्न करती थी। एक बार वह श्रेणिक के पास राज भवन के झरोखे बैठी थी। उस समय राजमार्ग पर बढते हुए जैन मुनि को देखा सिर्फ बाहरी रूप से। श्रेणिक की दृष्टि मुनि के जीवन पर नही थी। श्रेणिक भावना रखते थे कि इनका प्रभाव कैसे कम हो, मै देखूँ तो सही, महारानी मुझे हमेशा कहती है, इनकी साधना कैसी उत्कृष्ट है। संयोग से एक मुनि भिक्षार्थ राज भवन के सामने आ रहे थे। दूर से महारानी चेलना ने साधु को देखा और देखते ही दूर से ही, वही बैठी-बैठी स्वय हाथ से सकेत देकर तीन अगुली ऊँची की। देखिये वह कितनी आध्यात्मिक जीवन की योग साधना को जानने वाली थी। मुनि वही खडे हो गये और एक अगुली नीची करके, दो अगुली ऊँची कर भद्रिक भाव से चले गये। थोड़ी देर बाद दूसरे मुनि आये तो उनके सामने भी महारानी चेलना ने तीन अंगुली ऊँची की तो उन मुनिराज ने भी एक अंगुली नीची करके दो अगुलिये ऊँची करके चले गये। इसी तरह तीसरे मुनि भी आये वे भी उक्त मुनियो की भाति दो अगुली ऊँची करके आगे चले गये। सकेत करते हुए किसी ने किसी को कुछ कहा नही। श्रेणिक विचार करने लगे कि मेरी महारानी धर्मात्मा कहलाती है, फिर साधुओं के सामने तीन अंगुलियां ऊँची कर इशारा कैसे कर रही है—और मुनिराज क्रमश: दो अगुली ऊँची कर, एक अगुली नीचे करके चले गये। इसका रहस्य क्या है? मेरी ये महारानी भगवान् के सिद्धान्तो की गहराई में जाने वाली है पर इस तरह इशारा क्यो करती है? श्रेणिक महारानी के पास आकर कहने लगे कि—तुम धर्म की जानकार हो पर जो अगुलियाँ तुमने उन मुनिराजों को दिखाई, उनका रहस्य क्या है? उस रहस्य को जानने के लिये मैं उत्सुक हूँ। तुम वीतराग धर्म पर श्रद्धा रखने वाली होकर भी मुनियों को नमस्कार न करके इशारा क्यो किया? महारानी चेलना ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया कि राजन्! इनका रहस्य मै नहीं बताऊँगी. उन साधुओ से ही पूछो और उनसे ही जो आपको उत्तर मिले. उसे स्वयं के जीवन में जमाओ और फिर मुझसे पूछो। श्रेणिक के मन मे

उथल-पुथल मचने लगी । वह मुनिराजों के पास गया और महात्मा से पूछा कि—महात्मन् ! आपने महारानी के तीन अंगुली दिखाने पर दो अंगुली क्यों उठाई ? महात्मा के जीवन में वीतराग देव के सिद्धान्तों का रस रग-रग में रम रहा था । कहने लगे कि—आपकी महारानी वीतराग योगो का सरस रीति से ज्ञान रखती है और वीतराग योग पद्धति को जीवन में स्थान रखकर उसने सकेत दिया कि तुम साधु बने हो । जो पांच महाव्रतों के प्राण रूप पाच समिति तीन गुप्ति है, तो तुम्हारे जीवन मे तीन गुप्ति का अनुभव कितना हुआ ? यह बात पूछने के लिये तीन अंगुली ऊंची की और मुझे वीतराग देव द्वारा दर्शित तीन गुप्ति के विषय में पूछा । तब सम्राट् ने कहा कि आपने दो अगुली बताकर क्या संकेत किया ? मुनि ने कहा—मैने दो अगुली ऊपर उठाई । इसका तात्पर्य-मेरी दो गुप्ति तो सध गयी पर एक नही सधी, इसलिये दो अंगुली ऊँची की । देखिये साधु जीवन की सरलता । साधु का जीवन सरल होना चाहिये । जो ऋजु-भूत होता है, उसके जीवन में ही धर्म आता है । उस साधु ने सम्राट् श्रेणिक से कहा—राजन् ! मन गुप्ति और वचन गुप्ति को तो मैने रोका पर काया गुप्ति वश मे नही रही । श्रेणिक ने कहा—काया से क्या किया ? तो महात्मा ने कहा—और तो कुछ नही । मै वीतराग की बतलाई हुई ध्यान साधना मे बैठकर शुद्ध ज्योति को प्राप्त कर रहा था, उस समय नजदीक में आग की गर्मी मालूम हुई तो मेरा शरीर खिसक गया तो काया की गुप्ति वश में नही रह सकी । मैने सोचा—आग कभी मेरे निकट आ जायेगी तो इस शरीर का क्या होगा ? मुझे काया पर मोह था, इसलिये मैने सरलता से कह दिया तो महारानी ने कहा कि तुम्हारी तीन गुप्ति सधी हो तो ही प्रवेश करना । इसी कारण मै महारानीजी को दो अंगुली बताकर राज-भवन में प्रवेश किये बिना ही लौट गया । यह सुनकर सम्राट् आश्चर्य करने लगे कि इतनी सरलता, अपनी इस गलती को महारानी के समक्ष स्वीकार करली ।

सम्राट् दूसरे सत के पास गये, पूछने पर दूसरे मुनिराज ने कहा—काया व वचन की गुप्ति तो सधी पर मन की गुप्ति नही सधी । यह सुनकर सम्राट् ने पूछा क्यों ? तो मुनि कहने लगे कि एक दिन एक वहिन मुझे वंदन करने आयी तो दृष्टि के माध्यम से मेरा मन उसके पाँवों पर गया और विचार आया कि ऐसे ही पॉवों वाली मेरी धर्म पत्नी थी । मेरा मन उस वहिन के पॉवो को देखकर विचलित हो गया । इसलिये मैं दो अंगुली वताकर चला गया । सम्राट् श्रेणिक ने तीसरे मुनि को भी इसका कारण पूछा तो मुनिराज ने उत्तर दिया—राजन् ! मेरी मन की शक्ति मजवूत है और काया की भी, पर मै वचन पर नियंत्रण नही रख सका, क्योंकि ज्ञान, दर्शन और चारित्र की वृद्धि हो वही पर साधु को वचन का प्रयोग करना चाहिये, परन्तु एक दिन मै गोचरी जा रहा था तो वहा एक सम्राट् एक मैदान के किनारे खड़ा असमंजस मे पडा हुआ था ।

उसके सामने बड़ी समस्या थी और वहीं पास में कुछ बच्चे भी हार-जीत का खेल-खेल रहे थे। एक पार्टी दो-तीन बार हार गयी, हारने वाली पार्टी उदास होकर खड़ी थी तो उस समय मेरे मुंह से स्वाभाविक रूप से निकल पड़ा कि उदास क्यों होते हो, उत्साह के साथ काम करोगे तो सफलता मिल सकती है। यह कहकर मै तो चला गया पर वहाँ जो सम्राट् खड़ा था वह थोड़े दिनों बाद मेरे पास आया और चरणों में गिरकर कहने लगा कि—आपकी कृपा से मै विजयी हो गया हूँ। मैने पूछा कि आप कब आये थे मेरे पास ? तब सम्राट् ने मैदान में खेलते हुए बच्चो की हार-जीत देखकर मुनि द्वारा निकले हुए वचनों को दोहराते हुए कहा कि—उस समय वे वचन मैंने भी सुने थे और उन्ही वचनों के प्रमाणानुसार उत्साहित होकर मै युद्ध करने गया और पूर्ण विजय पाई। मुनि ने सोचा कि मैने इस वाणी का प्रयोग व्यर्थ में किया। मैने तो सम्राट् को कुछ नही कहा—खेलने वाले बच्चों को कहा था, पर सम्राट् द्वारा उन वचनों को पकड़ने से व्यर्थ की हिसा का प्रसंग बना। इस तरह मेरे वचनों की स्खलना हुई। इसी कारण मैं महारानीजी को दो अंगुली बताकर चला गया। मुनिराजों द्वारा संकेतों का स्पष्टीकरण सुनकर सम्राट् श्रेणिक जैन मुनियो से प्रभावित हुआ।

बंधुओ ! आप भी मन में एक ऐसी स्फुरणा पैदा करे कि वीतराग देव के सिद्धान्तों के अनुसार जो ग्रहण करने की बाते है, उन्हें ग्रहण करें और जो छोड़ने योग्य हों उन्हें छोड़कर साधना में सफल बनें।

प्रभु की योग साधना का गुण मकरंद लेकर चले तो जीवन की दशा कितनी सुन्दर बन सकती है। उस साधना का फल मधुर अनुभूतिगम्य होगा। बंधुओ ! पर्युषण के दिवस समीप आ रहे है। इन आने वाले आठ दिनों में पाँच समिति और तीन गुप्ति का स्वरूप स्व-जीवन मे उतारने का प्रयास करे।

परिपूर्ण अहिसक बनकर आत्मा को जागृत बनावें तथा प्राणीमात्र को अपना मित्र बनाकर चलेगे तभी हमारे जीवन मे परमात्म दशा की परम ज्योति जल सकेगी।

पर्युषण का प्रसंग, आत्मा के विशेष शुद्धिकरण का प्रसंग है अत: उन महान् आत्माओं का जीवन आदर्श हमारे सामने आने वाला है जो स्वय के लिये आदर्श रूप होगा।

राजस्थान में यह प्रक्रिया है कि अन्तगड–दशांग सूत्र, कल्प सूत्र आदि का वाचन पर्युषण पर्व के आठ दिनो मे किया जाता है। जिसमे, उन महान्

आत्माओं ने अपनी अंतिम अवस्था में किस प्रकार समभाव की भावना करते हुए अपना जीवन सार्थक बनाया तथा पंडित मरण को प्राप्त कर कर्मों का अंत करते हुए अक्षय, अव्याबाध सुखों के स्वामी बने, उनका सांगोपांग वर्णन आता है।

इन महापुरुषों का वर्णन यदि वर्ष में एक बार भी श्रद्धा के साथ सुना जाये तो आपकी आत्मा को अवश्यमेव खुराक मिल सकेगी और आपको उच्चतम लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने में सहायता मिल सकेगी। इन्ही मंगल भावों के साथ........।

मोटा उपाश्रय, १२-८-१९८५
घाटकोपर, बम्बई सोमवार

४४ बाहर से हटें, भीतर में झांकें

(पर्युषण पर्व–प्रथम दिवस)

चातुर्मास काल का यह परम पावन प्रसंग, पर्युषण के रूप में हमारे सामने आ चुका है। पर्युषण पर्व वर्ष में एक बार ही आता है। इस पर्व का निर्देशन देने वाले सर्वज्ञ-सर्वदृष्टा महाप्रभु वीतराग देव थे।

यद्यपि वर्ष भर में आने वाले सभी दिन गतिमान है तथापि इन आठ दिवसों को महत्त्वपूर्ण इसलिये बतलाया गया है कि इन दिनो मे व्यक्ति अधिक से अधिक आत्म-साधना के लिए प्रयत्नशील बने।

तीर्थकर देव, विशाल वैभव का त्याग कर साधना पथ पर बढते है। वे पाँच इन्द्रियों के विषयों से मन की सकल्प-विकल्प जनित दशाओ से उठकर ऐसे अवस्थान में पहुँचते है, जहां अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होता है। वह अनुभूतिगम्य ही हो सकता है अभिव्यक्ति मे नही आ सकता। तीर्थकर भगवंतों ने संयम जीवन अंगीकार कर साधना पथ पर बढकर पहले घनघातिक कर्म-क्षय कर हस्तामलकवत् सम्पूर्ण विश्व को देखने वाले ज्ञान को प्राप्त किया। तदनन्तर उन्होने सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिये हितकारी, कल्याणकारी, कर्म कलिमलहारी उपदेश दिया था।

उन वीतराग देव ने अपने केवलालोक मे देखा कि प्राणी जगत मे यह वहुमूल्य प्राणी, जो मानव है उसे प्रायः यह ज्ञान नही हो पाया है कि यह मानव जीवन किस उद्देश्य की सिद्धि के लिये है। वे तो पाँच इन्द्रियो के पोषण मे ही भटक रहे है। कान, आँख, नाक, जिह्वा, चर्म आदि के विषयों को पाने में ही सम्पूर्ण जीवन को समाप्त कर देते है। इस प्रकार बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ ही खो वैठते हैं। जिस हीरे से सब कुछ भौतिक साधन पाये जा सकते है उस हीरे को मुट्ठी भर चने में वेचने वाले अज्ञानी व्यक्ति की तरह मानव जिस शरीर से मोक्ष सुख पा सकता है साधना के वल पर, उसी शरीर को मुट्ठी भर चने की तरह भौतिक सुख पाने में खर्च कर रहा है।

इस तरह जीवन को निरर्थक वनाने वाले व्यक्तियो को साधना पथ पर आगे बढाने के लिए वीतराग वाणी परम सहायकभूत है। जिनवाणी मे किसी भी व्यक्ति विशेष पर कोई आग्रह-दुराग्रह नही है। महाप्रभु की वाणी सम्पूर्ण

प्राणी जगत के लिए होने से यथार्थ मे सर्वोदय वाणी है अर्थात् वह सबका हित एव कल्याण करने मे समर्थ है। उस वाणी से कल्याण एवं हित तभी हो सकता है, जब मानव एकाग्रता के साथ उसे श्रवण कर जीवन मे रमाने का प्रयास करे।

आज के युग में कुछ विचित्र सा परिलक्षित हो रहा है। आज के बहुत से लोग वीतराग वाणी की ओर ध्यान कम देकर अपूर्ण व्यक्तियो की वाणी सुनने मे ज्यादा आकर्षित हो रहे है। लेकिन सज्जनो! यह निश्चित है कि अपनी मन-कल्पित धारणा कहने वाले व्यक्ति की अपूर्ण वाणी से कभी भी पूर्ण शाति मिल नही सकती। आज के व्यक्ति उनके उपदेश को सुनकर बाहरी विषयो में ही भटकते जा रहे है, उसी का परिणाम यह आ रहा है कि वे सब कुछ भौतिक साधन पाने के बाद भी शाश्वत शाति की अनुभूति नही कर पा रहे हैं। इसका एक ही कारण है कि अपूर्ण व्यक्ति की वाणी को सुनकर आज के लोगों की दृष्टि अधिकाशतया बाहरी बनी हुयी है। लेकिन वह महत्त्वपूर्ण नही है। जिस प्रकार घड़ी का बाहरी काटा चलता हुआ नजर आ रहा है। उस घड़ी के भीतर की मशीन उसे चलाती है। यदि वह मशीन बन्द हो जाए तो बाहरी कांटा चल नही सकता। बाहरी काटे को चलाने के लिए भीतर की मशीन की अनिवार्य आवश्यकता है। आम को खाने वाला यदि ऊपर से ही उसके छिलके को खावे तो वह खाने वाला उसके वास्तविक आनन्द को नही ले सकता, उसके लिए आम के भीतर के रस को चूसने की आवश्यकता है। उसी प्रकार शरीर की वाहरी क्रियाएं हो रही है, उसके लिए शरीर के भीतर में एक मशीन काम कर है। उसका संचालक चैतन्य देव आत्मा है। यदि आत्मा अन्दर नही हो तो शरीर की कोई भी क्रिया नही हो सकती। अत: शारीरिक क्रियाओ को करने के लिए आत्मा अनिवार्य एव महत्त्वपूर्ण है। आत्मा का रस बाहर से चूसने से नही, भीतर से प्राप्त होता है, वैसे ही वास्तविक आनन्द को अनुभूति बाहर की शारीरिक साधना से नही, आत्मिक साधना से प्राप्त होगो।

जब व्यक्ति आन्तरिक जीवन को विकसित कर लेता है, तब वह यहा वैठा-वैठा सम्पूर्ण विश्व को आँखे बन्द करके देख सकता है। आचाराग सूत्र में कहा है—"आयतचक्खू लोग विपस्सी।" भीतरी चक्षु से सम्पूर्ण लोक को देखा जा सकता है। पर आज का व्यक्ति, भीतर से नही, वाहर से, वाहरी दृष्टि से पुरुषार्थ कर रहा है। राकेट, हवाई जहाज आदि अनेक आविष्कार कर रहा है, पर उससे वह स्थायी शान्ति नही पा सकता। स्थायी शाति पाने के लिए वाहरी अग महत्त्वपूर्ण नही है, उसके लिए भीतरी अग, भीतरी यत्र महत्त्वपूर्ण है। जिसे व्यवस्थित चलाने के लिए महापुरुषो ने वर्ष भर मे आठ दिवस महत्त्वपूर्ण वतलाये हैं। जहा व्यक्ति वाहरी चीजो को पाने में, धन कमाने मे, मकान वनाने मे, पिक्चर देखने मे, भोग विलास मे पूरा वर्ष खत्म कर देता है। ऐसा व्यक्ति

स्थायी शाति पा नहीं सकता । स्थायी शांति के लिए कम से कम इन आठ
में तो भीतर के यत्र को व्यवस्थित चलाने के लिए आत्मिक साधना करना
श्यक है । इन आठ दिनों में अधिक से अधिक बाहरी तत्त्वों से हटकर,
र आकर्षण से हटकर जो निरन्तर आत्मिक साधना मे लग जाता है तो वह
दिनों में भी अपनी आन्तरिक शुद्धि विशेष रूप से करने में समर्थ हो सकता
योग को लेकर भी जहाँ अष्ट दिवसीय शिविर लगता है, तो वहां भी पूर्ण
ती, मौन आदि रखवाया जाता है तो फिर यहां तो योग साधना नही अपितु
ना की चरम एवं प्रकर्ष साधना के लिए आठ दिवसों का प्रावधान रखा
है । ये आठ रोज अन्तर की साधना के दिन है । इन आठ रोज में भव्या-
ऍ सांसारिक प्रपंचो से हटकर साधु जीवन की तरह संवर साधना में रहते
मौन एवं ध्यान की साधना के साथ भीतर मे प्रवेश करने का प्रयास
। इन दिनों में यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी प्रकार की हँसी
त्रा मजाक न हो, राग-द्वेष न पनपे । सघर्ष न हो । बाहरी विभावों में न
झकर आन्तरिक जीवन को विशुद्ध बनाने का प्रयास किया जाए । समीक्षण
न में प्रवेश करने का पुरुषार्थ किया जाए । जो व्यक्ति इस प्रकार पुरुषार्थ
ता है तो एक दिन वह परम साधना को पा लेता है ।

इस प्रकार की परम प्रकर्ष साधना के प्रकर्ष का वर्णन अभी-अभी ज्ञान
ाजी ने आपको अन्तगड़ सूत्र के माध्यम से सुनाया । जिसमे आपने सुना कि
स प्रकार वे राजकुमार जिनके पास भौतिक सुख-सुविधाओ की कोई कमी नही
पर उन्होने महाप्रभु के उपदेश को सुनकर शाश्वत शांति को पाने के लिए
तिक सुख-सुविधाओ को छोड़कर आध्यात्मिक साधना मे प्रवेश कर लिया और
मी जीवन को स्वीकार करके साधना पथ पर आगे बढ गए । लेकिन आज क्या
रहा है ? आज साधना तो कम, भौतिकता का आकर्षण ज्यादा बढ रहा है,
ससे स्थायी शांति मिल नही सकती ।

प्राचीन युग में तो अध्ययन करने के लिए भी व्यक्ति २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य
पालन के साथ माता-पिता को छोडकर गुरु के पास रहते थे । उसी प्रकार
न्तरिक साधना के लिए भी सम्पूर्ण निस्पृहता आवश्यक है । एक बार उद्दालक
षि के पास एक शिष्य शिखिध्वज आ गया । उसने साधना पथ पर आगे
ने के लिए ऋषि से निवेदन किया तो उन्होंने एक साल उसे मंत्र दीक्षा देकर
दगी, ब्रह्मचर्य आदि के साथ रहने के लिए कहा । शिखिध्वज साल भर तक
ही रहा । उसके बाद दूसरी बार उन्होने उस शिष्य को अग्नि दीक्षा देने से
ले उसकी योग्यता को देखने के लिये अपने मंत्र के माध्यम से पारस-मणि
स्थित की और जो पास में बैठे अर्थार्थी लोग थे, उन्हे लोहा लाने के लिये
ा । जब वे लेकर आए तो उन्होने सारे लोहे को सोना बना दिया । यह
खकर वह जिज्ञासु शिखिध्वज सोचने लगा कि गुरु तो बहुत चमत्कारी है ।

इनसे और कुछ नही, अगर पारस मणि ही प्राप्त हो जाय तो मैं बहुत कुछ जनता का उपकार कर सकता हूँ। उसने उद्दालक ऋषि से निवेदन किया—यह मणि मुझे दे दीजिये। तब गुरु ने सोचा अभी तक एक वर्ष साधना करने पर भी इसकी दृष्टि बाहरी तत्त्वों मे ही उलझी हुई है। अतः इसे आन्तरिक साधना कराने के लिये पहले इसकी योग्यता देखना आवश्यक है।

उद्दालक ऋषि उसकी परीक्षा करने के लिये उसे अपने साथ में लेकर एक गाँव में एक घर पर पहुँचे। उस घर के भाई को कहा—हम एक रात रहना चाहते है। मेरे पास पारस मणि है। मैं तुम्हारा सारा लोहा सोना बना सकता हूँ। पर एक शर्त है कि तुम अपनी जवान कन्या को एक रात के लिये हमारे पास रख दो तो हम सोना बना सकते हैं। एक बार तो वह हिचकिचाया, लेकिन फिर वह तैयार हो गया। उसने अपनी कन्या उद्दालक ऋषि के पास भेजदी। उद्दालक ऋषि ने उस कन्या को कहा कि तुम्हारे पिता तो सम्पत्ति में उलझ गये पर तुम्हारे में तो सत्व होना चाहिये। तुम यहां क्यों आई? लड़की शरमा गई। ऋषि ने शुभाशीर्वाद देकर उसे वहा से विदा कर दिया। समीपस्थ शिष्य ने देखा—अरे! पारस मणि के साथ यह जवान कन्या भी मिलने वाली थी, लेकिन ऋषि ने जब उसे रवाना कर दिया तो वह उदास हो गया। ऋषि वहां से आगे बढे और एक सेठ के यहा पहुँचे। उसे कहा कि हम तुम्हारे यहां एक रात रहना चाहते है, तुम एक घण्टे में तुम्हारे पास जितना लोहा है, उतना ले आवो, मै उसे सोना बना दूँगा। पर बाहर से नही लाना है। सेठ ने हां तो भर दी। पर नौकरों को आस-पास दौडाकर बाहर से भी नीति-अनीति से लोहा इकट्ठा करवा लिया। गुरुजी ने सेठ को समझाया कि तुमने अन्याय किया है, यह उपयुक्त नही है।

ऋषि वहा से आगे बढकर एक सम्राट के पास पहुँचे। और उसे कहा कि तुम्हारा सारा लोहा सोना बना सकता हूँ पर उसके लिये एक बालक की बलि देनी होगी। सम्राट आनन-फानन मे एक बच्चे को पकड़कर उसकी बलि देने को तैयार हो गया। तब ऋषि ने समझाया—अरे! तुम प्रजापालक होकर सोने के पीछे एक अबोध बच्चे की बलि देने के लिये तैयार हो गये। क्या यही प्रजावत्सलता है? सम्राट वह होता है जो निर्दोष बच्चे के लिये अपना भण्डार खाली कर दे पर उसे बचाए। सम्राट को समझाकर ऋषि आगे बढ गये और एक ब्राह्मण के पास पहुँचे। उसे कहा कि तुम्हारा सारा लोहा सोना बना सकता हूँ पर तुम्हारे जितने शास्त्र है मेरे नाम पर करने होगे। वह ब्राह्मण तैयार हो गया। देखिये बंधुओ! "सुवर्ण-मय-पात्रेण सत्यस्य पिहित मुखम्" सोने के पात्र से सत्य का मुख ढका जा सकता है। ये सब समझाते हुए ऋषि अपने आश्रम मे पहुँचे एवं अपने शिष्य को समझाया—देखा! एक पारस मणि के पीछे कितना अनर्थ हो सकता है। यह मणि कभी भी शाश्वत शांति देने वाली नही है। शांति

के लिए अन्तरंग जीवन में प्रवेश करना होगा। भौतिकता से हटकर आध्यात्मिक साधना मे प्रवेश करना होगा। जबकि आज तो उल्टा ही लग रहा है।

इन पर्युषण के दिनों में भी कितने पौषध आदि हो रहे है। इसका भी सर्वेक्षण करिये। जब मै बहुत वर्षो पहले उदयपुर वर्षावास में था, तो वहां लगभग ७०० पौषध भाइयों मे स्थानीय हुए थे। तो यहाँ घाटकोपर में ५००० स्थानीय घर बताते है तो कितनेक पौषध होते है। इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। पौषध की साधना भी आत्मा की साधना है। भौतिकता से हटते हुए आध्यात्मिकता की साधना है। अतः आप घाटकोपरवासियों को भी इस ओर विशेष ध्यान देना है।

महाव्रतधारी साधु तो भौतिकता के प्रपंचो से सर्वथा हटकर अध्यात्म की साधना में लगे हुए है। ऐसे साधक भी अगर भौतिकता के प्रपंचों में उलझ जाए तो अध्यात्म की परिपूर्ण साधना नही कर सकेंगे। उस शिष्य को तो उद्दालक ऋषि मिल गये जिससे वह पुनः सजग हो गया था। पर ऐसे उद्दालक ऋषि उद्बोधन देने वाले विरल ही प्राप्त होते है। आप विचार करिये कि जब ५ महाव्रत धारी साधु आपके घर आते है तो आपको उन्हें आहार बहराने के लिए कितना ध्यान रखना होता है। लिलोतरी का स्पर्श न हो, अग्नि का स्पर्श न हो, कच्चे पानी का स्पर्श न हो, ताली न बजाएं, ऊपर से कोई वस्तु गिर न जाए—आदि-आदि अनेक नियम होते है। उनमें से यदि एक भी नियम का उल्लघन हो जाए तो फिर क्या साधु आहार लेंगे ? नही। तो बधुओ ! विचार करने की बात है कि जब छोटा-सा एक नियम भी टूट जाय, तो आप साधु को आहार नही दे सकते, तो फिर अग्नि की हिसा करते हुए प्रतिक्रमण करे, व्याख्यान दे, परमात्मा की साधना करें, आत्मा की आलोचना करे तो आत्मिक शुद्धि होगी ? कभी नही। क्योंकि अग्नि दीर्घ लोक शस्त्र है। इससे चलने वाला कोई भी शस्त्र क्यो न हो, वह बहुत घातक है। महा-हिसा करने वाला है, अतः आत्म साधक को अध्यात्म साधना करने वाले को तो उससे परहेज ही रखना चाहिये।

आप एक तरफ तो सभी प्राणियो से "खामेमि सव्वे जीवा" के माध्यम से क्षमा याचना करें और उसी समय अग्नि-विद्युत् के माध्यम से छः काय के जीवों की हिसा करे तो क्या यह सच्ची क्षमा याचना होगी ? जैसे—एक व्यक्ति किसी को विजली के हंटर से मार रहा है, निरन्तर मार रहा है और दूसरी ओर क्षमायाचना करे तो क्या वह उसे माफ कर देगा ? बल्कि यों कहेगा कि यह कैसा ढोंग है ? एक तरफ तो मुझे मार रहा है और दूसरी तरफ माफी माँग रहा है। अगर माफी ही माँगनी है तो पहले हंटर मारना बंद कर। तो बंधुओ ! जो व्यक्ति एक तरफ तो प्रतिक्रमण करता है। सभी प्राणियो को, सभी जीवों

की रक्षा के लिये उपदेश देता है और उसी समय अनन्त जीवों के प्राण ह
वाले विद्युत् के साधनो का उपयोग करता है तो यह कैसी क्षमा याचना होगी
सिर्फ बाहरी प्रक्रिया मात्र ही रह जायगी । अत आप लोगों को इन पर्यु
के दिनो में इस विषय मे विशेष ध्यान रखना चाहिये ।

वर्तमान का युग क्रान्ति का युग है । आपके खून में क्रान्ति करने का
है तो मैं कहता हूँ कि क्रान्ति करिये । पर क्रान्ति कैसी होनी चाहिये ।
इसे समझ लीजिये । महात्मा गाधी ने जो क्रान्ति की वह अहिंसा से एव मर्या
रहकर की थी । जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा था । वैसी ही क्रान्ति व्रतो
सुरक्षा के लिए हो न कि उसे तोड़ने के लिए । जो साधु वीतराग सिद्धान्तानु
पाँच महाव्रत का पालन नही कर रहे है, तो उन्हें पालन करवाने के लिये क्रा
की जाय। यही सच्ची क्रान्ति होगी । किन्तु आधुनिकता के नाम से साधुओ
यदि व्रतों से अलग किया जाय, उसे लाउडस्पीकर, माइक्रोफोन में बोलने
लिये, प्लेन मे यात्रा करने लिए, मर्यादाओ को तोड़ने के लिए प्रेरित किया
तो यह सच्ची क्रान्ति नही होगी । आप घाटकोपरवासियों को समझना है
क्रान्ति को सही रूप में घटित करना है । क्रान्तदृष्टा आचार्य श्री जवाहर की
चातुर्मास भूमि रही है । अत: आपको तो इस विषय मे विशेष ध्यान रख
चाहिये । साधुओ को व्रतो से नीचे गिराकर क्रान्ति न हो अपितु उन्हे व्रतो
सुरक्षित रखने के लिये क्रान्ति की जाय । महान् क्रियोद्धारक आचार्य
हुक्मीचन्दजी म. सा. ने ऐसी ही सच्ची क्रान्ति, सयम का दृढता के साथ पा
करके, कर दिखायी थी । उसी का परिणाम है कि आज तक उनकी शा
परम्परा अबाध गति से चली आ रही है ।

पर्युषण के दिन आपको यह सब कुछ उपदेश दे रहे है एव जीवन
उतारने के लिए प्रेरित कर रहे है । आज के मेरे कई भाई यह सोच बैठते है
जैन दर्शन मे बहुत सी बातें बतलायी है, पर ध्यान योग से सम्बन्धित बाते न
मिलती है । लेकिन मै यह स्पष्ट कह देता हूँ कि जिनवाणी में ध्यान योग
सम्बन्धित जितनी गम्भीर एव सरस विवेचना है शायद ही, वैसी तलस्पर्श
आत्म-सम्बद्ध विवेचना आपको दूसरी जगह मिल पायेगी । पर आज के लो
की दृष्टि तो बाहर की ओर लगी हुई है । अपने भीतर क्या है—इसे देखने
लिये वे प्रयास ही नही करते । ऐसी स्थिति मे अपने वंश परम्परागत धर्म
आने वाली विशिष्ट ध्यान-साधना की ओर उनका ध्यान ही नही जा पा र
है । उन बाहरी प्रयोगो से कभी भी शांति नही मिलने वाली है ।

प्रभु महावीर के साधको का जीवन ध्यान योग का एक विशिष्ट आद
है । क्योंकि वीतराग अनुयायी साधक की प्रत्येक क्रिया सहजिक ध्यान योग
साथ होती है । जो उसके स्वयं के जीवन को संवारने के साथ अन्यो पर

विशिष्ट प्रभाव डालने वाली होती है। ऐसे साधकों के जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिये। उन्हे कभी भी नीचे गिराने का प्रयास नही करना चाहिये, जैसे एक नगर के चेयरमैन को मारना, एक दृष्टि से पूरे नगर को मारना कहा जा सकता है, एक राष्ट्र के प्रेसिडेन्ट को मारना पूरे राष्ट्र को मारना भी कहा जा सकता है, वैसे ही एक साधु को मारना। मारने से तात्पर्य उसे साधु जीवन से नीचे गिराना है, साधु को अपने व्रतो से गिराने वाला पूरे विश्व का घातक कहलाता है। क्योकि साधु ने पूरे विश्व के जीवो की हिसा का त्याग कर अहिसा का पालन करने का व्रत ले रखा है। ऐसी स्थिति मे उसके व्रतो को तुडवाना जीवो की हिसा करवाना है। अत ऐसी हिसा आप से न हो जाये इसका विशेष ध्यान रखे। साधु का अगर एक भी महाव्रत टूट जाता है तो उसके सभी महाव्रत टूट जाते है। साधु के महाव्रत अखण्डित रत्न की तरह होते है, उसका एक भी टुकड़ा टूट जाने पर वह पूरा काम का नही रहता। वैसे ही साधु के महाव्रत भी है। जो सघ प्रमुख वज्जू भाई यहा बैठे है, उनका भी एक लेख मुझे देखने को मिला है। उन्होने भी लगभग कुछ ऐसा ही लिखा था कि जो साधु इन हिसात्मक साधनो को काम मे लेता है, वह फिर वन्दनीय कैसे हो सकता है ? भव्यात्माओ ! आप यहां कर्म धोने के लिये आते है, कर्म बॉधने के लिये नहीं। अत. यहा आकर ऐसा कोई काम नही करना चाहिये कि जिससे कर्मो का बधन हो। छोटी से छोटी प्रवृत्ति भी आपकी अहिसा से अनुप्रेरित होकर होनी चाहिये ताकि धर्म स्थान पर रहकर आप विशेष रूप से आत्म-शुद्धि कर सकें। यहाँ आकर भी प्रतिक्रमण आदि करने में हिसाकारी साधनों को काम में लेते है तो फिर उस पाप को कहां धोएँगे ? ऐसे कार्यो से श्रमण सस्कृति की सुरक्षा नही होने वाली है। प्रतिक्रमण न सुनाई दे तो दो, तीन, पॉच, दस विभाग करके अलग-अलग प्रतिक्रमण कर सकते है पर सुनने के लिये हिसाकारी साधनों को कभी काम मे नही लेना चाहिये और न ही ऐसे हिसाकारी साधनो में बोलने के लिए साधु को प्रेरित करना चाहिए। इन हिसाकारी साधनों से श्रमण सस्कृति की सुरक्षा नही होने वाली है। भगवान् महावीर के सिद्धान्त अनुरूप श्रद्धान नही हो सकेगा। हिसाकारी साधन मे जहॉ कही बोला भी जा रहा हो तो उसे सामायिक में सुनना भी मर्यादा मे नही आता है। आप लोगो को इस ओर विशेष ख्याल करना है। पर्युषण के दिनों में आप विशेष रूप से त्याग-प्रत्याख्यान् लेकर चले, जीवन को साधनामय बनावे।

आप भले ही मुझे मारवाडी साधु समझे, राजस्थानी समझे या अमुक सम्प्रदाय से आबद्ध समझे। पर मै तो आप सबको अपनी आत्मा के तुल्य समझता हूँ। प्रभु महावीर के सिद्धान्तानुसार तो कोई भी प्रान्तीयता भेद होता नही है। उन्होंने तो पंच-महाव्रतधारी को, सुसाधु को सार्वभौम और विश्व का बताया है चाहे वह कही का भी क्यो न हो। अत: प्रान्तीयता भेद तो मन मे

होना ही नहीं चाहिये । ऐसा प्रान्तीय भेद लेकर चलने वाले वीतराग वाणी के प्रतिकूल आचरण से कभी मिथ्यात्व की अवस्था में भी आ जाते है । प्रान्तीयता आदि भेद रखना यह सब बाहरी दृष्टि का परिणाम है । जब तक दृष्टि वाहर ही रहेगी तब तक भीतरी ज्ञान हो ही नही सकता । भीतरी ज्ञान पाने के लिये "आयतचक्खु लोगविपस्सी" की तरह चलने का प्रयास करें ।

आन्तरिक चक्षु को उद्घाटित करने के लिए आपके सामने इन दिनों में अन्तगड सूत्र के माध्यम से महापुरुषो का वर्णन आ रहा है । आप इसे ध्यान से सुनने का प्रयास करें ताकि उनका आदर्श भी आपको समझ में आ सके । इन दिनों में तो सभी को यहां दया पालकर सामायिक का भव्य प्रसंग उपस्थित करना चाहिये । देखिये, साधुमार्गी संघ के अध्यक्ष चुन्नीलालजी मेहता आए हैं, पर सामायिक नही की है ।[1] अरे ! मै इनको क्या कहूँ ? आप जो दूर बैठने वाले खुले मुँह बैठे है, उन सभी को मेरा कहना है कि आप सभी सामायिक करके साधना में आगे बढे । सामायिक का भव्य प्रसंग उपस्थित करे ताकि आने वाले जैनेतर भाई-बहिनों पर प्रभु महावीर के शासन का एक अनूठा प्रभाव पड़ सके उपाश्रय मे आते है, प्रवचन सुनते है तो सामायिक करके सुने तो दुहरा लाभ हो सकता है । मै तो अपने कर्त्तव्य पालन की दृष्टि से कह देता हूं पर करना या नही करना यह आपके ऊपर निर्भर है । आप भी अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए सर्वांगीण विकास की ओर बढने का प्रयास करें ।

टाइम आपका ग्यारह के लगभग आ चुका है । अब मै विशेष नही बोलता हुआ यही संकेत देता हूँ कि जैसे घड़ी अन्दर की मशीन से चलती है अतः उसकी अन्दर की मशीन को ठीक रखना पड़ता है, वैसे ही आपका शरीर भीतरी चैतन्य देव की शक्ति से चल रहा है । अत चैतन्य देव के गुणों को सुरक्षित रखने का प्रयास करना आवश्यक है, उसके लिये यह सुन्दर अवसर आ गया है । आप भीतर में झाके, उसे स्वच्छ बनाने के लिये इन आठ दिनो में आध्यात्मिक साधना में गति करे ।

मोटा उपाश्रय, १३-८-८५
घाटकोपर, बम्बई मगलवार

१—मेहताजी गुरुदेव का सकेत पाकर अगले दिन मे सामायिक मे बैठ गये ।

४५

विचारों को परिष्कृत करें

[पर्यु षण पर्व—द्वितीय दिवस]

वीतराग देव की देशना की विवेचना का प्रसंग पर्यु षण के माध्यम से घाटकोपर मे चल रहा है । तीर्थंकर महाप्रभु ने भव्यों के कल्याण हेतु जिन बातों को उपयोगी समझा, उसका वर्णन कर दिया है । फिलहाल उन सभी शास्त्रों का वर्तमान में उल्लेख करने का प्रसंग नही है । किन्तु जो अन्तगड़दशाङ्ग सूत्र है, उसमें भी इतना सार भरा है कि वह व्यक्ति के प्रत्येक व्यावहारिक जीवन पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डालता है ।

शास्त्र श्रवण के माध्यम से अपनी आत्मा को पवित्र बनाने के लिये मन को अपने अंडर-वश में करना होगा । जिस प्रकार कार का ड्राइवर कार को, मालिक की आज्ञा के अनुसार चलाता है उसी प्रकार इस शरीर रूपी कार का मालिक यदि आत्मा है तो उसका ड्राइवर मन है । मन को आत्मा के स्वामित्व मे चलना होता है । यदि आत्मा अपने स्वामित्व को न समझे और मन को वश मे नही रखती है तो वह मन स्वच्छंद रूप से भागता हुआ, एक्सीडेंट की तरह उस आत्मा को भव-परपरा के अधकूप मे पटक देता है ।

आत्मा को, शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए मन को समझना एव उसे आत्मा के तन्त्र मे करना आवश्यक है । कई लोग यह शिकायत करते है कि मन हमारे वश में नही रहता है । लेकिन वे आत्मा एव मन के ही स्वरूप को नही समझ पा रहे है । इसलिये मन उनके तन्त्र मे नही चल रहा है । अन्तगड़ सूत्र के माध्यम से मन को वश में करने की बात भी स्पष्ट हो जाती है । आप विद्वद्वर्य मुनि श्री से अब तक अन्तगड़ सूत्र गत कई महापुरुषों का वर्णन श्रवण कर चुके है । लेकिन श्रवण करने के साथ ही उस पर चिन्तन-मनन करना आवश्यक है । जब तक चिन्तन-मनन की स्थिति नही बनती है, तब तक शास्त्र का नवनीत नही पाया जा सकता, और बिना नवनीत के आत्म पुष्टि नहीं होती । अभी आपने शास्त्र के माध्यम से देवकी महारानी के विषय मे भी सुना । देवकी महारानी किस प्रकार से धर्मनिष्ठा और कर्तव्यनिष्ठा को लेकर चल रही है । यह शास्त्रीय वर्णन से स्पष्ट हो जाता है । ऐसे गुणों के कारण ही देवकी महारानी का वर्णन प्रसंगवश शास्त्र में आया है । इस वर्णन से प्रत्येक महिला को अपनी कर्तव्यनिष्ठा एव धर्मनिष्ठा को समझना चाहिये । जब तक व्यक्ति कर्तव्य का पालन समुचित रूप से नहीं कर पाता है, तब तक वह धर्म का पालन भी नहीं कर पाता । धर्म

के पालन के लिए कर्तव्य का पालन पहले आवश्यक है। जब व्यक्ति सही ढग से कर्तव्य का पालन करता है तो उसके मन मे उठने वाली अनुचित वाते एव स्वच्छन्दता आपेक्षित रूप से शान्त हो जाती है उनकी उपशान्ति के बाद धर्माचरण मे मन तन्मय बन जाता है। यदि घर में सघर्ष करके व्यक्ति यहाँ आया है तो उसमें कर्तव्यनिष्ठा नही है। ऐसा व्यक्ति क्यों न यहाँ सामायिक करके वैठ जाय, पर उसका मन धर्म मे नही लग सकता। अत: कर्तव्यनिष्ठा को समझना आवश्यक है।

कर्तव्यों के पालन में महिलाओ की तरह पुरुषो को भी अपनी कर्तव्यनिष्ठा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यह कर्तव्यनिष्ठा आज के सिनेमा घरों में, टेलीविजन मे या बाह्यादि माध्यम से मिलने वाली नही है। उसके लिए वीतराग महापुरुषों की वाणी का श्रवण एव अध्ययन आवश्यक है। उसी के माध्यम से अपनी कर्तव्यनिष्ठा एवं धर्मनिष्ठा का बोध प्राप्त कर सकते है। जीवन को शातिमय एवं सुखमय बना सकते है। आज तो कुछ विपरीत सा ही देखने को मिलता है और फिर भौतिकता से रगीन इस बम्बई नगरी का तो कहना ही क्या ? जहाँ न मालूम कितने सिनेमा घर होंगे ? अब तो घर-घर भी सिनेमा घर बन रहे है। **वीडियो** मशीन के माध्यम से घर बैठे किसी भी प्रकार के पिक्चर की **कैसेट** लगाकर सिनेमा देख लिया जाता है। आज का व्यक्ति विलासिता मे कितना अधिक डूब रहा है। यह तो बम्बई नगरी के लोगो का सर्वेक्षण किया जाय तो स्पष्ट हो सकता है। बन्धुओ ! इसलिए इस भौतिकता मे निमग्न होने से आज के भौतिकवादी शाश्वत शांति का अनुभव नही पा रहे है। जब तक व्यक्ति भौतिकता की चार-दीवारी में ही भटकता रहेगा, तब तक वह अध्यात्म की दिशा मे आगे नही बढ सकता। चार दीवारी का तात्पर्य है—जन्म लेना, खेलना-कूदना, कुछ पढ लेना, विवाह कर लेना, पैसा कमा लेना आदि बातो की ओर व्यक्ति का अधिकाश लक्ष्य होता है। ऐसी चार दीवारी में भटकने वाले पुरुप या नारी जीवन को परिष्कृत नही कर सकते। जव तक पुरुष एव नारी का जीवन विशुद्ध नही होगा, तव तक उनकी संतति का जीवन भी शुद्ध नही हो सकता। टंकी में यदि जहर मिला है तो नल से भी विष मिश्रित ही पानी आएगा। ठीक इसी प्रकार जैसा माता-पिताओं का जीवन होगा, उसका प्रभाव संतान पर अवश्य पड़ेगा। माता-पिता के विचारों का प्रभाव भी संतति पर अवश्य पड़ता है। अभी आप मुनि श्री के द्वारा फॉरेन की घटना सुन गए कि गर्भाधान के समय उस वहिन के मन मे हव्सी का चित्र आ जाने मात्र से उसका प्रभाव पड़ा कि वच्चा हव्सी हो गया। जव वच्चे पर भी ऐसा प्रभाव पड़ सकता है तो फिर उन विचारो का स्वयं की आत्मा पर कैसा प्रभाव पड़ता होगा, यह विचार करने की वात है। इसीलिए शास्त्रकारो ने विचारों का प्रभाव वहुत ही स्पष्ट रूप से वतलाया है कि वच्चे के जीवन को और अपने आपके जीवन को

परिष्कृत एवं शान्तिमय बनाना है तो विचारों का परिष्कार अत्यन्त आवश्यक है ।

बन्धुओ ! वैसे मैं गत दिन से हिन्दी मे ही बोल रहा हूँ । क्योंकि कुछ हिन्दी के अभ्यासी भाई भी उपस्थित है और दूसरी बात मुझे यहां के लोगों ने हिन्दी में बोलने के लिए सकेत किया था, उनका भी कहना है कि यहाँ के घाटकोपर निवासी हिन्दी मे प्रायः समझ लेते है । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मै हिन्दी में ही आपको समझाने का प्रयास कर रहा हूँ । यदि आपको कुछ भी वाक्य समझ में नही आवे तो आप स्पष्ट रूप से पूछ सकते है । तो बन्धुओ ! मैं आपको समझा रहा था कि कर्तव्यनिष्ठा एवं धर्मनिष्ठा को जीवन में उतारने के लिए विचारों का परिष्कार आवश्यक है । यदि अपनी सतति को सुधारना है, उसे नैतिक एवं चरित्रवान बनाना है तो महिलाएँ बहुत ही सुन्दर ढग से उन्हे वना सकती है । लेकिन माताओं को अपने कर्तव्यो को समझना आवश्यक है और विचारों में परिष्कार लाना आवश्यक है ।

देवकी महारानी ने यद्यपि बच्चों को जन्म ही दिया था, पालन नही किया था तथापि गर्भावस्था मे भी उसके विचार इतने सयमित रहते थे कि बच्चे पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था । वैदिक साहित्य में मदालसा महारानी का वर्णन आता है कि मदालसा महारानी ने अपनी इच्छानुसार पुत्रों को शिक्षा देती हुई उन्हे आध्यात्मिक पथ पर बढाकर महिलाओ के समक्ष एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित कर दिया । मदालसा अपने बच्चे का जब पालन करके हालरिया देती थी, तव भी यही भावना एवं शब्दों का उच्चारण करती थी—

"सिद्धोसि, बुद्धोसि, निरजनोसि, संसार माया परिवर्जितोसि
ससार स्वप्न तज मोह निद्रा, मदालसा वाक्य मुवाच पुत्र ! ॥"

हे पुत्र ! तुम आत्मा के मौलिक स्वरूप से सिद्ध हो, बुद्ध हो, मुक्त हो, निरजन हो, ससार माया से परिवर्जित हो । अतः हे पुत्र ! संसार को स्वप्नमय समझ कर उसे छोड़ते हुए आत्म साधना मे रमण करो । ये मदालसा के वाक्य है । ये गहरे संस्कार पुत्रो पर पड़ते और वे आगे वढ़ते ही दीक्षित हो जाते । यह देखकर सम्राट ने कहा—मदालसा तुम यह क्या कर रही हो, मेरा राज्य कौन सम्भालेगा ? तव मदालसा ने कहा कि अवकी वार जो पुत्र होगा, वह आपका राज्य भी सम्भालेगा और वाद में संयम लेकर आत्म कल्याण भी कर लेगा और हुआ भी वैसा ही । मदालसा की तरह, शास्त्रों में धारिणी का वर्णन भी आता है । उस प्रसग से कहा कि गर्भावस्था मे महिला को विकारी विचार नही करने चाहिये । अधिक तीखा, कड़वादि भी नही खाना चाहिए, क्योकि इससे गर्भस्थ जीव पर विशेष प्रभाव पड़ता है । इन सव वातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि

वच्चे पर माता के विचार, उच्चारण एव आचरण का कितना प्रभाव पड़ता है ?

वर्तमान युग को देखते हुए यह विषय गहरा विचारणीय वन चुका है। आज कई माता-पिताओं का जीवन किस विलासिता में व्यतीत हो रहा है। राग, द्वेष, मद, मोह की परिणतियां कितनी तेजी से बढ रही है। वे लोग कितने रागान्ध हो रहे है। लेकिन यह नही सोच पा रहे है कि इसका कितना भयंकर घातक प्रभाव सामने आ रहा है। आज बच्चा जन्म लेने के साथ ही भौतिकता में डूबा नजर आता है, कुछ बड़ा होने के साथ गलत एव विकारी प्रवृत्तियों में घिरा परिलक्षित होता है। माता-पिताओ का अपमान कर देता है। उनकी बात को नहीं मानता है। इन सबका मूल कारण है, माता पिताओं के दूषित विचार एवं दूषित आचरण। जब तक माता-पिता के जीवन में परिष्कार नही आएगा, तब तक पारिवारिक जीवन सात्विक नही बन सकता। महिलाओं के जीवन मे यदि कर्तव्यनिष्ठा आ जाती है तो वे परिवार के जीवन को सुधार सकती है। इन माताओ को कभी कुम्भकार और प्रजापति की उपमा दी है। यदि ये चाहे तो दुनिया की दुर्नीति को बदल सकती है, अनीति को हटा सकती है। ये बहिनें अपने कर्तव्यो के अनुसार चले तो बड़े-बड़े ऑफिसरों के दिमाग भी ठीक कर सकती है। इसके लिए मै आपको एक उदाहरण दे देता हूँ।

एक बहुत बड़े वकील थे, जिनकी प्रतिभा बहुत तीक्ष्ण थी। मुकदमों मे किस प्रकार दाव पेच करके अपने पक्ष को जिताना वे अच्छी तरह जानते थे। गलत केस भी उनके हाथों आ जाता तो वे उसे भी अपने बुद्धिबल के द्वारा न्यायालय में सही प्रमाणित कर देते। एक बार की घटना है कि उनके पास एक ऐसा केस आया कि एक भाई को सामने वाले व्यक्ति को पचास हजार रुपये देने थे और वह देने की स्थिति में नही था, सामने वाले ने उस पर केस (दावा) कर दिया, उस व्यक्ति ने भी अपने पक्ष को रखने के लिए इन वकील सा. को अपना वकील बना लिया। वकील सा. यह अच्छी तरह जानते थे कि जिसका केस मैंने लिया है, उसे सामने वाले व्यक्ति को पचास हजार रुपये देने है, किन्तु केस जब वकील सा. ने अपने हाथ मे लिया तो ऐसे झूठे केस को भी जिताने के लिए, लगाने लगे अपनी बुद्धि की दौड़। आखिर बुद्धि ने कमाल दिखाया। एक के बाद एक तर्क कोर्ट में पेश करने लगे। आखिर उन्होने अपने पक्ष को जिता ही दिया। जिताया ही नही अपितु जिसको उसे पचास हजार रुपये देने थे, उसे देने की बात दूर रही, उससे पचास हजार रुपये लेने निकलवा दिये। देखिये आज के कोर्ट का न्याय। जहाँ दूध का दूध और पानी का पानी होना चाहिये, वहाँ ऐसे वकीलो के परिणामस्वरूप आज कैसे अन्धकारमय निर्णय सामने आते है, जहाँ दुःख का मारा व्यक्ति अपना न्याय लेने के लिए न्यायालय में आये और उसकी ऐसी स्थिति बने तो उसके दिल पर क्या बीतती है ? आज तो कई सुज्ञ व्यक्ति अपनी

हानि सहन कर लेते है, किन्तु कोर्ट में लड़ने नही जाते । वकील साहब तो केस जीत लेने के कारण बहुत प्रसन्न हो रहे थे, मन ही मन फूले नही समा रहे थे । जीत की खुशी में उन्मत्त होते हुए वे घर पर पहुँचे । भोजन करने के लिए बैठे ही थे कि उनकी धर्मपत्नी भोजन परोस रही थी, इतने मे ही जिस पक्ष को उन्होंने जिताया था उस पक्ष का व्यक्ति अत्यन्त खुश होता हुआ वहाँ आ पहुँचा और दस हजार रुपये के नोट वकील साहब को लेने के लिए आग्रह करने लगा । वकील सा. समझ गये, मैने इसके पक्ष को जिताया, उसी के फलस्वरूप यह दस हजार रुपये देने का आग्रह कर रहा है, लेकिन मेरे इस बुद्धि के चमत्कार को मेरी पत्नी कैसे जानेगी ? मै अपने मुँह से कहूँ, इसकी अपेक्षा इसके मुँह से ही कहलाऊँ तो ज्यादा अच्छा होगा । यह सोच कर वकील सा. तिरछी नजर से देखते हुए बोले "यह रुपये किस बात के है ?" इस पर वह व्यक्ति हाथ जोड़कर विनम्रता के साथ बोला—वकील सा. यह रुपये आपके बुद्धिबल के चमत्कार के परिणाम है । आपने कोर्ट में वह चमत्कार दिखाया कि जिससे मेरा असत्य पक्ष भी सही साबित हो गया । मुझे जो सामने वाले व्यक्ति के पचास हजार रुपये देने थे, उसके बदले आपने पचास हजार रुपये और दिलवाए, इस प्रकार मुझे एक लाख रुपये की आमदनी करवादी । इतने रुपए तो मैं नही दे सकता, किन्तु आपकी फीस के दस हजार रुपए दे रहा हूँ ।

वकील सा. सोच रहे थे कि इस व्यक्ति की बात सुनकर मेरी पत्नी बहुत खुश होगी और कहेगी कि बहुत अच्छा किया आपने, मै आपकी बुद्धि की दाद देती हूँ, अब मेरे बहुत जेवर और पोशाक बन जाएगे, अपने ही विचारो में खोए वकील सा. ने ज्योही अपनी धर्मपत्नी की ओर देखा तो उनके विचारों पर कुठाराघात हो गया । उनकी सारी भावनाओ पर पानी फिर गया । पत्नी के खुश होने की बात तो दूर रही । उसकी आँखों से धर-धर आँसू आ रहे थे ।

वकील सा. की तो सारी प्रसन्नता ही कही गायब हो गई । वे सहमते हुए पत्नी से बोले— अरे, तुम रो क्यो रही हो ? लो ये दस हजार रुपए मै तुम्हे देता हूँ, इससे तुम जो चाहो सो बनवा लेना । इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हारी इच्छा होगी सो भी पूरी कर दूंगा, लेकिन तुम रोती क्यो हो ?

पत्नी का रोना इसलिए तो था नही कि उसे रुपए चाहिए, उसकी आत्मा तो इसलिए कराह रही थी कि अहो ! कितना घोर अन्याय हो रहा है । जिस कोर्ट से न्याय की अपेक्षा रखी जाती है, उसी कोर्ट में यह घोरतम अन्याय और वह भी मेरे पति द्वारा, तुच्छ रुपयों के लिए । वह बोल उठी पति से । मुझे नही चाहिए ऐसा रुपया और न ही मुझे ऐसी कोई भी फैशनेबल साड़ी या जेवर ही चाहिए । मैं एक पोशाक से भी अपनी गुजर कर सकती हूँ । किन्तु मुझे अनीति का एक पैसा भी नही चाहिए । ईमानदारी का तकाजा था कि आप इस व्यक्ति

से पचास हजार रुपए सामने वाले को दिलवा कर सही इन्साफ करवाते । लेकिन आपने पचास हजार रुपए उसे दिलवाने की वात तो दूर रही वल्कि पचास हजार रुपए उससे और निकलवा लिए, क्या आपने सोचा कि जिसके एक लाख का घाटा हुआ उसका कितना कलेजा टूटा होगा ? कलम और बुद्धि से होने वाली कितनी क्रूर हिसा है यहा । ऐसे कृत्यों से भारी कर्मो का वन्धन होता है ।

मैं आपकी धर्मपत्नी और आप मेरे पति है । अतः मेरे पति ऐसे हिसा-कारी कार्यो से उपरत होकर ऊपर उठें । न्याय और नीति से वित्तोपार्जन करे । जिससे यह जीवन भी सुखी बने और पर जीवन भी सुखमय बन सके । अतः मेरा तो आपसे यही निवेदन है कि आप इस प्रकार के अनीतिपूर्ण कार्यो को छोड़ें । ऐसे धन की अपेक्षा सीधा और सात्विक जीवन जीना वहुत उत्तम है ।

पत्नी की मानवीय भावना और आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव वकील साहब पर भी गहरा पड़ा । वे भी सोचने लगे—जब मेरी पत्नी भी अनीतिपूर्ण धन को नही चाहती है तो फिर इसे रखकर क्या करना है ?

वकील सा. ने उस भाई से कहा—यह रुपए तुम वापस ले जाओ । मेरी पत्नी इस प्रकार के अनीतिपूर्ण धन को रखना बिल्कुल पसन्द नही करती । तुम्हे भी जो पचास हजार रुपए आए है, उन्हे तो वापस सामने वाले व्यक्ति को देने ही पड़ेगे ।

देखिये ! बहिन की धार्मिक भावना—समीक्षण दृष्टि के अभ्यास ने क्या चमत्कार दिखाया ।

देखिए बन्धुओ ! एक नारी का जीवन । वकील सा. की धर्मपत्नी ने किस प्रकार वकील सा. का जीवन बदल दिया । नारी मे वह शक्ति है कि जो पारि-वारिक जीवन मे अभूतपूर्व परिवर्तन ला सकती है, लेकिन यदि नारी ही विलासिता मे फसी हुई है तो वह दूसरे के जीवन को कैसे बदल सकती है ? आज तो पति को नीति की शिक्षा देने की बात तो दूर रही । वे तो यही सोचती है कि पति नीति से कमाये या अनीति से कमाये पर उसे तो गहने चाहिए, फैशनेबल साडी चाहिए, इम्पोर्टेड गाडी चाहिए, सुन्दर वाडी चाहिए, न मालूम क्या-क्या माग होती है, उनकी ये तो आप ही जान सकते है । ऐसी नारियाँ न अपना हित कर सकती है, न परिवार का हित कर सकती है । ऐसी वहिनो को अन्तगड सूत्र गत देवकी महारानी के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए । सवसे पहले वह अपने जीवन को सुधारे और फिर परिवार के जीवन को । वहनो मे यदि जोश आ जाय तो वह भाइयो को नीतिमय वना सकती है । उन्हे सामायिक, प्रतिक्रमणादि मे लगा सकती हैं । क्योकि आज देखा जाता है कि पुरुप लोग औरो की वात माने या न मानें पर धर्मपत्नी की वात तो उन्हे (प्रायः) माननी ही पड़ती है ।

नारी शक्ति अगर केन्द्रित होकर सही दिशा में आगे बढे तो व्यक्ति-व्यक्ति को बदलती हुई सारी दुनिया को बदल सकती है। शास्त्रों मे देवकी महारानी का वर्णन आता है कि वह मुनिराजों को किस प्रकार भक्ति भाव से वन्दना करती है और उन्हें प्रतिलाभित करती है। यहाँ पर भी भाई-बहिनो को शिक्षा लेनी चाहिए कि अगर घर मे अशनादिक प्रासुक नही है तो वे सत-मुनिराजो को कैसे प्रतिलाभित करेंगे ? बतलाइए आपकी यह बम्बई नगरी बड़ी है या द्वारिका नगरी ? जन आवाज है कि द्वारिका नगरी। तो देखिये वहाँ के लोगों मे, महारानी आदि सभी में कितना विवेक था। आप सभी में भी ऐसे विवेक का भव्य प्रसग उपस्थित होना चाहिए। वैसे घाटकोपर-वासियों में कइयों में विवेक की स्थिति परिलक्षित होती है। घरो मे भी सुलभता से धोवन पानी आदि मिल जाता है। अभी जब सुबह मै जंगल से आ रहा था तब एक बहिन कह रही थी कि मेरे यहाँ धोवन पानी भी है, पधारिये।

बन्धुओ ! यह तो विवेक है, संत मुनिराज व्याख्यान के पश्चात घरो में से सहज सुलभ प्रासुक मिलने वाला धोवन पानी लेकर आते है। धोवन पानी तो घर-घर सहज रूप से बनता है, विवेक रखने वाला चाहिए। केवल राख का पानी ही आवश्यक नही है। चावल का पानी, दाल का धोया हुआ पानी, कठौती का धोया पानी, दाख का धोया पानी भी साधु के उपयोग मे आ सकता है। यहां पर सत मुनिराज ऐसा पानी भी लाते है। यहाँ सत नौ एव महासतियाँजी बाहर से आने वाली पन्द्रह है तथापि आहार पानी घरो में सहज प्रासुक मिल जाता है। वैसे भी घाटकोपर में **पांच हजार** घर बतलाते है। व्याख्यान उठने के बाद संत-सती आहार पानी लेने के लिए दूर-दूर जाते है और घरो से प्रासुक आहार-पानी लाते है। गोचरी कभी-कभी एक या डेढ बजे भी आती है।

भीड़ भाड़ की दृष्टि से भी देखा जाय तो, यद्यपि घाटकोपर बम्बई का एक अंग है, तथापि घाटकोपर मे जितनी भीड़ भाड़ नही दिखती है, उससे ज्यादा भीड शोरगुल जयपुर, उदयपुर जैसे शहरों में देखने को मिलती है। जगल की दृष्टि से भी पूरी सुविधा है। जब मै पूर्व में आया था तब भी यहाँ रहा था। उस समय ही मैने यहाँ जंगल देख लिया था, प्रासुक जगह मिल जाती है। परठने-परठाने के लिए भी थोड़ी दूरी पर स्थान मिल जाता है। साधु मर्यादा मे दोप लगे, ऐसा किंचित् भी कारण परिलक्षित नही होता। उपाश्रय की कल्प-नीय-अकल्पनीय विधि जब आपको बतलाई गई तो आप सुज्ञों ने उसे भी कल्पनीय बना दिया। बोरीवली में भी जगलादि की पूरी सुविधा थी ही और यहाँ पर भी है। मै बम्बई के कई उपनगरो में भी गया, वहाँ भी बाहर जगल जाने की सुविधाएँ है। वालकेश्वर में तो पास में थोड़ी दूरी पर ही जंगल है। वैसे ही अन्यान्य उपनगरों मे भी जंगल जाने को स्थान मिल गया था। पानी आदि भी घरो में गवेपणा करने पर एपणीय मिल जाता है।

कई उपनगरों में साधु जीवन के पूर्ण पालन की स्थिति नहीं होने से वहाँ मैं नहीं गया । माटुंगा में मैने सुना था कि वहाँ जंगल का स्थान नहीं है, तो मेरी जाने की भावना कम हो गई थी क्योंकि जहाँ संयम का पालन सुरक्षित रूप से न हो वहाँ साधु को नहीं जाना चाहिए । **दूसरों को लाभ देने के पहले स्वयं के जीवन को सुरक्षित रखना आवश्यक है।** इधर माटुंगा के लोग अति आग्रह कर रहे थे तो मै एक दिन के लिए वहाँ जाने का विचार करके पहुँचा और वहाँ जंगल की गवेषणा की तो थोडी ही दूरी पर प्रासुक जंगल मिल गया । मैंने इस बात का जिक्र जिन लोगों के समक्ष किया तो उन्हे भी आश्चर्य हुआ कि यहां कहां जंगल है ? हमने तो अब तक देखा ही नही ? मनसुखभाई और मासुखभाई तो बोले—हम भी आपके साथ चलकर जंगल देख लेते है ताकि पौषध मे हम भी वहाँ जा सकें । वे भी साथ चले और उन्होने भी जगल देखा तो आश्चर्यचकित हो गये । वैसे ही अंधेरी आदि क्षेत्रों में भी जंगलादि की सुविधाएँ है । कही-कही उपाश्रयों में अकल्पनीय स्थिति नजर आई तो मैने वहाँ के प्रमुखों को सूचित किया कि हमें यहाँ नहीं कल्पता है तो उन्होंने तुरन्त कल्पनीय स्थिति बनाई । कान्दीवली, मलाड़ आदि अनेक स्थलों पर ऐसा हुआ भी है ।

इन सब बातों को देखते हुए यह सुस्पष्ट हो जाता है कि बम्बई में आकर यदि साधु चुस्त संयम का पालन करना चाहता है तो वह कर सकता है और यदि वही ढीला-शिथिल हो जाय तो उसका क्या उपाय है ? उसका दोष इसे नही दिया जा सकता । मैं तो वैसे भी यहां इलाज के लिए आया था और डॉक्टर को दिखलाने के बाद यहाँ से जाने की सोच रहा था पर घाटकोपर-वासियों के आग्रह से एवं यहा साधु मर्यादा मे कोई दोष नही लगेगा, ऐसी आपने खातिरी भी करवाई थी और कहा था कि हम आपके व्याख्यान मे चदा चिट्ठा भी इकट्ठा नही करेंगे । जिनवाणी के कल्पानुसार आप जैसा फरमा रहे है, वैसा ही करेंगे । इस प्रकार आपके द्वारा कहने पर ही यहां चातुर्मास का प्रसंग उपस्थित हुआ है। और आप देख ही रहे है, संत सतीवर्ग किस प्रकार की सयमीय मर्यादाओं को विशुद्धता के साथ लेकर चल रहे है ।

मै सौराष्ट्र में भी अनेक गावों-शहरो मे घूमा, वहां पर भी एक बार तो प्रासुक पानी लाने के लिए अनेक कठिनाइया सामने आई, लेकिन सत धैर्यता के साथ आगे बढ़ते गए । जगह-जगह गृहस्थो को प्रासुक पानी का स्वरूप समझाया तो फिर वहाँ भी प्रासुक पानी सहज सुलभ हो गया, यह तो संतो का विवेक होना चाहिये । विना आलस्य करते हुए वे अगर गवेषणा करते है तो प्रासुक आहार, पानी, जंगल का स्थान प्राप्त हो सकता है । तो मै बतला रहा था कि देवकी महारानी के द्वार पर जब प्रथम सिंघाड़ा पहुँचा तो उसने उन्हे अत्यन्त भाव-भक्ति के साथ प्रतिलाभित किया । इसी प्रकार दूसरे और तीसरे सिंघाड़े को भी प्रतिलाभित किया । फिर उसके मन मे जो जिज्ञासा उठी, उसका समाधान पाने हेतु उन्हें निवेदन किया और जिज्ञासा का समाधान पाया ।

यहा पर भी भव्यात्माओ ! विचार करिये कि जिसके प्रति देवकी के मन में जिज्ञासा उठी, वह उन्हीं से समाधान चाह रही है। ऐसा नहीं कि मन में उठी शंका को मन में ही रखकर इधर-उधर फैलाते हुए, वातावरण दूषित करे। आज के बहुत से भाई ऐसे भी है, जो कई प्रकार की गलत शंकाए मन में करके बैठे रहते है। जिसके प्रति शंका है उससे तो पूछते नही और बात का बतगड़ बनाते रहते है। ऐसे व्यक्ति आत्म-कल्याण कैसे कर सकते है ? सामने कुछ भी न कहकर पीठ पीछे किसी की निन्दा या अन्यथा कथन करने वाला सच्चा धार्मिक नही हो सकता ।

मै तो स्पष्ट रूप से आह्वान करता हूँ कि आप मेरे या इस शासन में चलने वाले किसी भी साधु-साध्वी में किसी भी प्रकार का दोष देखे तो खुले रूप मे कहे, मै उससे नाराज नही होऊंगा, बल्कि और अधिक खुश होऊंगा। यदि साधु-साध्वी में दोष होगा तो उन्हें प्रायश्चित देकर शुद्धिकरण कर दिया जाएगा और यदि नही होगा तो आपकी भ्रान्ति का स्पष्टीकरण हो जाएगा। आप अपने मन मे कोई बात नही रखे। साफ-साफ बतलाइये। देवकी महारानी की तरह समाधान ले लीजिये। जो व्यक्ति समाधान नही लेता है तो वह भ्रान्ति में ही अपने विचारों को दूषित करता हुआ, अमूल्य जीवन को सार्थक नही कर पाता। इसके लिए एक उदाहरण है।

एक गॉव मे कुछ संत मुनिराज आ रहे थे, उनके सामने कई श्रावक अगवानी करने हेतु जा रहे थे। उन श्रावको ने, सामने आने वाले एक किसान से पूछा कि मुँह पर कपड़ा बांधने वाले महाराज को क्या तुमने देखा है ? तो वह बोला—हॉ साहब देखा है, वे नदी मे बैठे पानी पी रहे थे।

जब श्रावकों ने यह सुना तो वे शकाशील हो गए, अरे, साधु होकर नदी का कच्चा पानी पीते है, नही वे साधु नही हो सकते। गए थे अगवानी करने, पर बिना साधुओ की अगवानी किए, सभी अपने-अपने घर या स्थानक चले गये। मुनिराज सभी वैसे ही उपाश्रय में पहुँच गए तो वहां देखा कि श्रावकों का व्यवहार बहुत रूखा-सूखा नजर आ रहा है, क्या बात है ? इनमें क्या शंका है ? आखिर खोज की, पूछा तो एक श्रावक ने सारी बात बतला दी।

मुनिराज, समझ गए, उन्होने उस किसान को बुलाकर पूछा—भाई ! तुमने हमें देखा ? तो वह बोला—हॉ साहब देखा। कहॉ देखा, तो वह बोला नदी में आप पानी पी रहे थे तब देखा। यह सुनकर श्रावक बोल उठे कि सुन लीजिये, यह साफ बतला रहा है। आप नदी मे पानी पी रहे थे। इस पर भी मुनिराज उत्तेजित नही हुए और बोले कि भाई-बताओ हम पानी किससे पी रहे थे। तब वह बोला - ओ महाराज ! आपके पास जो लकड़ी का बर्तन है ना। उसमें जो पानी था वही पी रहे थे, तो महाराज बोले—नदी का तो पानी नही पी रहे थे ?

तो वह बोला--महाराज, आप कैसी बात करते है। नदी में तो एक बून्द भी पानी नही है, वह तो सूखी है। यह सुन सभी श्रावकों का स्पष्टीकरण हो गया और वे पूर्ववत् श्रद्धा भक्ति करने लगे।

बन्धुओ, यह तो एक रूपक है। इससे शिक्षा लेना है कि आप किसी भी प्रकार की शंका मन मे न रखें, विचारों को दूषित न बनावें।

इन परम पवित्र दिवसो में सभी शंकाओं का समाधान पाकर निःशंक बनें। जिसके प्रति शंका हो, उसी से पूछलें, अन्य जगह निन्दा करके कर्मो को न बांधे। इस दिव्य सूत्र से प्रेरणा मिल रही है, उसे ग्रहण करें।

"संशयात्मा विनश्यति"

जो व्यक्ति संशय रखता है, उसका समाधान नही करता है तो नीतिकार भी कहते है कि उस आत्मा का कल्याण नही होता। जो भी आत्मा कर्तव्यनिष्ठ बनती हुई, अपनी भ्रान्तियों को हटाकर, विचारों को परिष्कृत करती हुई आगे बढ़ेगी तो उसका कल्याण होगा।

मोटा उपाश्रय, १४-८-८५
घाटकोपर, बम्बई बुधवार

• □ •

४६

स्वतंत्रता : ऊपरी नहीं, वास्तविक हो

(पर्युषण पर्व—तृतीय दिवस)

अनंत आत्मिक शक्ति से सम्पन्न तीर्थकर देवों ने भव्यजनों के लिये जो उपदेश दिया है, उसे एक अपेक्षा से अनिवर्चनीय भी कहा जा सकता है। जिसका निर्वचन-विवेचन नही किया जा सकता है, क्योंकि विवेचन अधूरी वस्तु का होता है, किन्तु वीतराग देव की वाणी अधूरी नही अपितु परिपूर्ण है। भव्यों को समझाने के लिए उस भाषा में विस्तार से समझाना और बात है, पर वीत-राग वाणी को अधूरी समझकर उसका विवेचन करना उपयुक्त नहीं है। जो आत्मा सच्ची जिज्ञासा भावना से जिनवाणी को सुनती है, वह निश्चय ही उसे जीवन में उतारने में भी समर्थ हो जाती है। ऐसी आत्मा का रूप परमात्म रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। अत: सबसे पहले अपने आप में सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न करनी चाहिये। सच्ची भूख लगने पर किया गया भोजन जिस प्रकार पाचक होता है, उसी प्रकार सच्ची जिज्ञासा के साथ ग्रहण किया गया सम्यक्ज्ञान आचरण के साथ आत्मा को तुष्टि देनेवाला होता है। जब तक व्यक्ति के मस्तिष्क में वैभाविक विषय एवं मोह ममत्व का रंग भरा रहेगा, तब तक शाति की सच्ची जिज्ञासा भी उत्पन्न नहीं हो सकेगी। सच्ची शांति को जीवन मे प्रवेश कराने के लिए सबसे पहले मन-मस्तिष्क में भरी बाहरी बातो को हटाना होगा। जिस प्रकार चिन्तन करने के लिये व्यक्ति सोचता है कि बाहरी कोलाहल का शात होना आवश्यक है, वैसे ही आत्मशांति पाने के लिए अन्तरंग में राग-द्वेष का कोलाहल शांत होना आवश्यक है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मटकी को पानी पर एकदम उल्टी करके उसमें पानी भरना चाहे तो क्या उसमें पानी प्रवेश हो सकेगा? आपको शायद इसका पूर्ण अनुभव नही होगा, लेकिन यह स्पष्ट है कि मटकी का उलटा मुँह करके, पानी मे एकदम डुबा देने पर भी पानी की एक बूँद भी उसमें प्रवेश नही कर पाती। यद्यपि चर्मचक्षुओ से कुछ भी नही दिखता है, मटकी खाली दिखती है, फिर भी उसमें हवा भरी होती है। जब मटकी तिरछी हो जाती है, तब डबडब की आवाज के साथ पानी अंदर प्रवेश करने लग जाता है, ज्यों-ज्यो हवा बाहर निकलती है, त्यों-त्यों पानी अन्दर प्रवेश करता है। इसी प्रकार आपने ग्लूकोज की बॉटल को डॉक्टर के द्वारा चढाते हुए भी देखा होगा। जब तक उस बॉटल मे डॉक्टर हवा जाने का रास्ता नही कर देता, तब तक ग्लूकोज शरीर में प्रवेश नही करता है। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब तक

दूसरे तत्त्व भीतर भरे है, तव तक अन्य तत्त्वों का उसमें प्रवेश नही हो सकता। जब तक आत्मा मे विभाव के तत्त्व भी रहेंगे तव तक सच्ची शांति को तो वहाँ अवस्थान ही नहीं मिलता है। उसे अवस्थान दिलाने के लिये पूर्व से भरे हुए विकृत वैभाविक तत्त्वों को वाहर निकालना आवश्यक है।

आज का पन्द्रह अगस्त का यह दिवस भारतीय स्वतंत्रता का प्रतीक दिवस भी है। आज के रोज भारत ने अग्रेजियत-परतन्त्रता से हटकर संवैधानिक रूप से वर्षो पूर्व स्वतन्त्रता प्राप्त करली थी। और आज तक सवैधानिक ढग से भारत स्वतत्र रूप से चला आ रहा है, पर विचार यह करना है कि स्वतंत्रता क्या वास्विक रूप से जीवन मे आई है या फिर कागजी कार्यवाही की स्वतन्त्रता ही आई है, और वैसे परतन्त्रता का आचरण चल रहा है, क्या कहूँ जरा अपने में और इर्द-गिर्द देखने की कोशिश करिये। मानव स्वतंत्रता के स्थान पर कितना अधिक परतंत्रता मे जकड़ता चला जा रहा है। बाहरी फेसिलिटी को देखिये—खान-पान, रहन-सहन को देखिये, आपको पाश्चात्य सस्कृति जकड़ी हुई नजर आयेगी। आज के व्यक्ति भारतीय सभ्यता को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति को अधिक से अधिक अपनाने मे उत्साहित हो रहे है। ऐसी परतंत्रता में व्यक्ति कभी भी सच्चो स्वतंत्रता को प्राप्त नही कर सकता है। बाहरी स्वतंत्रता के साथ आचार एव व्यवहार मे भी स्वतन्त्रता आना आवश्यक है। सामान्य जनता की बात तो जाने दीजिये, राष्ट्र के नेताओं के जीवन मे भी वास्तविक रूप से स्वतन्त्रता देखने को कम मिलती है। **जो मकान बाहर से स्वच्छ एवं चाक् चक्य दिखने वाला हो पर अन्दर से भयंकर दुर्गन्ध से भरा हो तो ऐसे मकान को कोई भी सभ्य व्यक्ति पसन्द नहीं करेगा। इसी प्रकार केवल बाहरी कागजी स्वतंत्रता तो आ जाय पर भीतरी स्वतंत्रता न आवे तो वह वास्तविक स्वतंत्रता नहीं होगी।**

आज के दिन स्कूल-कॉलेज तथा बड़े-बड़े प्रतिष्ठान एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्वतन्त्रता का प्रतीक राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिया जाता है, किन्तु इस ध्वजा से प्रेरणा बहुत कम ली जाती है। हर वर्ष पन्द्रह अगस्त आती है और चली जाती है, हर वर्ष झडे फहराये जाते है, पर जीवन को परिमार्जित करने का झडा बहुत कम फहराया जाता है। **आज के लोगों के हाथ में झंडा नहीं है केवल डंडा ही रह गया है, वह डंडे को ही लेकर चल रहे है। वास्तविक आदर्श को तो भूलते चले जा रहे है।**

सच्ची आजादी पाने के लिये स्वप्न जरूर देखे जाते है, पर व्यावहारिक स्तर पर कुछ भी काम नहीवत हो पाता है। आज लोगों का जीवन किस प्रकार विलासिता मे डूवता चला जा रहा है। स्वार्थ की भावनाएँ कितनी अधिक घर कर गई है। वह अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये राष्ट्र से भी विद्रोह करने के लिये

तैयार हो जाता है। देश मे कितनी हिसा एवं विद्रोह की भावना भड़क उठी है। यह तो आप देख ही रहे है। क्या यह सच्चे भारतीय का कर्त्तव्य है, क्या इसे सच्ची स्वतंत्रता कहेगे? सच्ची आजादी लेकर चलनेवाला, कभी भी भाई-भाई के साथ सघर्ष नही करता है, पिता-पुत्र के साथ सघर्ष नही होता है। वह देश के समस्त व्यक्तियों को अपने समान समझकर चलनेवाला होता है।

राष्ट्र की रक्षा के लिये अपने स्वार्थो को तिलाजलि देने में जरा भी हिचक नही होती है। उसे अपनी रक्षा नही राष्ट्र की रक्षा का ध्यान ज्यादा होता है। इसके लिये मैं जापान का एक उदाहरण देता हूँ।

एक हिन्दुस्थानी व्यक्ति जापान में पहुँचा। रेल मे बैठकर जा रहा था। तब उसे फलो की आवश्यकता थी। वह सब जगह फिर गया परन्तु कही पर भी फल नही मिले। अब उसके धैर्य का धागा कितनी जल्दी टूटता है। अब उसके धैर्य का धागा टूट गया। देखिये आर्यदेश वालों के धैर्य का धागा कितनी जल्दी टूटता है। आपेसे बाहर होकर कहने लगा कि यह कैसा निकम्मा देश है, जंगली देश है कि जहाँ पर फल फ्रूट भी नही मिलते है। यह बात किसी व्यक्ति को लेकर नही कही परन्तु वह सामान्य रूप से बड़बड़ा रहा था। उसी रेल मे जापान का ही साधारण-सा मजदूर था। परन्तु उसके मन में देश के प्रति गौरव था। उसने सुनकर सोचा कि मेरे देश की निन्दा नही होनी चाहिये। जिसको अपने देश की निन्दा का ख्याल रहता है, तो वह अपनी निन्दा का, देश की, समाज की निन्दा का ख्याल रखता है। उस गरीब जापानी को अपने राष्ट्र का गौरव रखना था। वह झट से भागा हुआ गया। उसके घर मे जो खाने के लिए फल रखे थे, वे सारे उठाकर ले आया, और हिन्दुस्थानी महाशय के सामने रख दिये। फलों को खाने के बाद हॅसता हुआ महाशय पैसे देने लगा। उसने कहा—मुझे पैसे नही चाहिये; तो पूछा कि क्यो नही चाहिये? तब उसने कहा कि आप हमारे देश मे आये है तो हमारे देश की निन्दा मत कीजिए, बस यही अपेक्षा है।

सुज्ञ बन्धुओ! विचार करिये उस जापानी के मन में अपने देश के प्रति कितनी निष्ठा थी। वह अपने देश की जरा भी निदा नही सुनना चाहता था। क्या ऐसा देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम है भारतवासियो मे? जरा अपने-अपने घट मे विचार करिये। आप सोच रहे होंगे कि म० सा० आप तो साधु हैं। धर्म की बाते करिये। राष्ट्र की बाते राजनेता करते रहेगे। बन्धुओ! ऐसी बात नही है। धार्मिकता मे चलनेवाले के लिए राष्ट्र की सुव्यवस्था सहायक होती है। स्थानाङ्ग सूत्र में ग्रामधर्म आदि दस भेदों मे से एक भेद राष्ट्र धर्म भी आया है। यदि राष्ट्र में समुचित व्यवस्था नही होगी तो धर्म की साधना व्यवस्थित रूप मे नहीं की जा सकती है। अतः राष्ट्र की सम्यक् सुरक्षा की ओर संयम साधक को मर्यादित रूप से ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

दूसरे तत्त्व भीतर भरे है, तब तक अन्य तत्त्वों का उसमें प्रवेश नही हो सकता। जब तक आत्मा में विभाव के तत्त्व भी रहेगे तब तक सच्ची शांति को तो वहाँ अवस्थान ही नहीं मिलता है। उसे अवस्थान दिलाने के लिये पूर्व से भरे हुए विकृत वैभाविक तत्त्वों को बाहर निकालना आवश्यक है।

आज का पन्द्रह अगस्त का यह दिवस भारतीय स्वतंत्रता का प्रतीक दिवस भी है। आज के रोज भारत ने अग्रेजियत-परतंत्रता से हटकर सवैधानिक रूप से वर्षो पूर्व स्वतंत्रता प्राप्त करली थी। और आज तक संवैधानिक ढग से भारत स्वतत्र रूप से चला आ रहा है, पर विचार यह करना है कि स्वतंत्रता क्या वास्तविक रूप से जीवन मे आई है या फिर कागजी कार्यवाही की स्वतत्रता ही आई है, और वैसे परतंत्रता का आचरण चल रहा है, क्या कहूँ जरा अपने मे और इर्द-गिर्द देखने की कोशिश करिये। मानव स्वतंत्रता के स्थान पर कितना अधिक परतत्रता मे जकडता चला जा रहा है। बाहरी फेसिलिटी को देखिये—खान-पान, रहन-सहन को देखिये, आपको पाश्चात्य सस्कृति जकड़ी हुई नजर आयेगी। आज के व्यक्ति भारतीय सभ्यता को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति को अधिक से अधिक अपनाने मे उत्साहित हो रहे है। ऐसी परतंत्रता में व्यक्ति कभी भी सच्ची स्वतंत्रता को प्राप्त नही कर सकता है। बाहरी स्वतंत्रता के साथ आचार एवं व्यवहार मे भी स्वतंत्रता आना आवश्यक है। सामान्य जनता की बात तो जाने दीजिये, राष्ट्र के नेताओ के जीवन मे भी वास्तविक रूप से स्वतत्रता देखने को कम मिलती है। **जो मकान बाहर से स्वच्छ एवं चाक् चक्य दिखने वाला हो पर अन्दर से भयंकर दुर्गन्ध से भरा हो तो ऐसे मकान को कोई भी सभ्य व्यक्ति पसन्द नहीं करेगा। इसी प्रकार केवल बाहरी कागजी स्वतंत्रता तो आ जाय पर भीतरी स्वतंत्रता न आवे तो वह वास्तविक स्वतंत्रता नहीं होगी।**

आज के दिन स्कूल-कॉलेज तथा बडे-बड़े प्रतिष्ठान एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता का प्रतीक राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिया जाता है, किन्तु इस ध्वजा से प्रेरणा बहुत कम ली जाती है। हर वर्ष पन्द्रह अगस्त आती है और चली जाती है, हर वर्ष झडे फहराये जाते है, पर जीवन को परिमार्जित करने का झंडा बहुत कम फहराया जाता है। **आज के लोगों के हाथ में झंडा नहीं है केवल डंडा ही रह गया है, वह डंडे को ही लेकर चल रहे हैं। वास्तविक आदर्श को तो भूलते चले जा रहे है।**

सच्ची आजादी पाने के लिये स्वप्न जरूर देखे जाते है, पर व्यावहारिक स्तर पर कुछ भी काम नहीवत हो पाता है। आज लोगों का जीवन किस प्रकार विलासिता में डूबता चला जा रहा है। स्वार्थ की भावनाएँ कितनी अधिक घर कर गई है। वह अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये राष्ट्र से भी विद्रोह करने के लिये

तैयार हो जाता है। देश में कितनी हिंसा एवं विद्रोह की भावना भड़क उठी है। यह तो आप देख ही रहे है। क्या यह सच्चे भारतीय का कर्त्तव्य है, क्या इसे सच्ची स्वतंत्रता कहेगे ? सच्ची आजादी लेकर चलनेवाला, कभी भी भाई-भाई के साथ संघर्ष नही करता है, पिता-पुत्र के साथ संघर्ष नहीं होता है। वह देश के समस्त व्यक्तियों को अपने समान समझकर चलनेवाला होता है।

राष्ट्र की रक्षा के लिये अपने स्वार्थों को तिलाजलि देने में जरा भी हिचक नही होती है। उसे अपनी रक्षा नही राष्ट्र की रक्षा का ध्यान ज्यादा होता है। इसके लिये मैं जापान का एक उदाहरण देता हूँ।

एक हिन्दुस्थानी व्यक्ति जापान मे पहुँचा। रेल में बैठकर जा रहा था। तब उसे फलों की आवश्यकता थी। वह सब जगह फिर गया परन्तु कही पर भी फल नही मिले। अब उसके धैर्य का धागा कितनी जल्दी टूटता है। अब उसके धैर्य का धागा टूट गया। देखिये आर्यदेश वालों के धैर्य का धागा कितनी जल्दी टूटता है। आपेसे बाहर होकर कहने लगा कि यह कैसा निकम्मा देश है, जंगली देश है कि जहाँ पर फल फ्रूट भी नही मिलते है। यह बात किसी व्यक्ति को लेकर नहीं कही परन्तु वह सामान्य रूप से बड़बड़ा रहा था। उसी रेल में जापान का ही साधारण-सा मजदूर था। परन्तु उसके मन मे देश के प्रति गौरव था। उसने सुनकर सोचा कि मेरे देश की निन्दा नही होनी चाहिये। जिसको अपने देश की निन्दा का ख्याल रहता है, तो वह अपनी निन्दा का, देश की, समाज की निन्दा का ख्याल रखता है। उस गरीब जापानी को अपने राष्ट्र का गौरव रखना था। वह झट से भागा हुआ गया। उसके घर मे जो खाने के लिए फल रखे थे, वे सारे उठाकर ले आया, और हिन्दुस्थानी महाशय के सामने रख दिये। फलों को खाने के बाद हँसता हुआ महाशय पैसे देने लगा। उसने कहा—मुझे पैसे नही चाहिये; तो पूछा कि क्यों नही चाहिये ? तब उसने कहा कि आप हमारे देश मे आये है तो हमारे देश की निन्दा मत कीजिए, बस यही अपेक्षा है।

सुज्ञ बन्धुओ ! विचार करिये उस जापानी के मन मे अपने देश के प्रति कितनी निष्ठा थी। वह अपने देश की जरा भी निंदा नही सुनना चाहता था। क्या ऐसा देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम है भारतवासियो मे ? जरा अपने-अपने घट में विचार करिये। आप सोच रहे होगे कि म० सा० आप तो साधु है। धर्म की बाते करिये। राष्ट्र की बाते राजनेता करते रहेगे। बन्धुओ ! ऐसी बात नही है। धार्मिकता मे चलनेवाले के लिए राष्ट्र की सुव्यवस्था सहायक होती है। स्थानाङ्ग सूत्र में ग्रामधर्म आदि दस भेदों मे से एक भेद राष्ट्र धर्म भी आया है। यदि राष्ट्र में समुचित व्यवस्था नही होगी तो धर्म की साधना व्यवस्थित रूप मे नही की जा सकती है। अतः राष्ट्र की सम्यक् सुरक्षा की ओर सयम साधक को मर्यादित रूप से ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

मैं तो अपनी मर्यादा में रहता हुआ कर्तव्य की दृष्टि से संकेत कर देता हूँ। उसका अनुपालन करना या न करना, यह आप लोगों के ऊपर है। वर्तमान युग में तो राष्ट्र की सुरक्षा की बात एक तरफ रखकर अधिकांश राष्ट्रनेता कुर्सी के पीछे दौड़ रहे है। उन्हे कुर्सी चाहिये जिसके लिए वे लाखों रुपये इलेक्शन में अपना प्रचार-प्रसार करने मे खर्च कर देंगे, अनेकों जनहित की घोषणाएँ करके पब्लिक को वोट देने के लिए विश्वास में ले लेंगे, लेकिन कुर्सी पर आकर जनहित की वे सभी बातों पर प्रायः गजनिमिलिका ही कर देते है। ऐसे व्यक्ति वास्तविक रूप से राष्ट्रप्रेमी नहीं कहे जा सकते। नही वे यथार्थ में स्वतंत्रता प्राप्त ही माने जा सकते हैं। ऐसे लोगो के कारण देश मे विकृतिया फैल रही है। राष्ट्र नेता ही नही व्यापारिक वर्ग भी राष्ट्र प्रेम को भूलकर अधिकांश रूप से अपने ही स्वार्थ की पूर्ति में लगा हुआ है। मै किस-किस की बात कहूँ—आप स्वयं ऊपर से नीचे तक सर्वेक्षण कर जाइये तो आपको ज्ञात होगा कि इस स्वतंत्रता प्राप्त देश के निवासियों का राष्ट्र के प्रति कितनाक प्रेम है भी या नही ? जब तक देश के प्रति देशवासियों की निष्ठा जागृत नही होगी, तब तक देश का समुचित उत्थान नही हो सकता। इसके लिये आज के रोज प्रत्येक व्यक्ति को देश के प्रति अपने-अपने कर्तव्यो को समझकर दश की वास्तविक स्वतंत्रता एवं नैतिक सुरक्षा के लिये आगे आने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। मै राष्ट्र की बात क्या कहूँ, परम पावन आध्यात्मिक जीवन में भी वर्तमान में अनेक कूटनीतियाँ फैलती हुई परिलक्षित हो रही है। साधना पथ पर बढने वाले निःस्वार्थ निस्पृह कहे जाने वाले साधको के मन में भी स्वार्थ, स्व का प्रदर्शन, मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष की भावनाएँ बनती जा रही है। इस परिवार के बीच चलनेवाला साधक कभी भी अपनी आत्मा को कर्मो के बधन से स्वतत्र नही कर सकता। हमारी आत्मा भी कर्मो से पराधीन बनी हुई है। जब तक वह कर्मो के बन्धन को तोड़ने का प्रयास नही करेगी; तब तक वह शाश्वत शाति की प्राप्ति नही कर सकती। सूत्रकृताङ्ग सूत्र मे महाप्रभु ने कहा है।

"वधण तिउट्टिज्जा" हे भव्य साधक ! बधन को समझकर उसे तोड़ने का प्रयास करो।

स्वतत्रता के इस दिवस को प्रतीक बनाकर भी अध्यात्म साधक को, आत्मा को स्वतंत्र वनाने का प्रयास करना चाहिये।

अन्तगड़दशाङ्ग सूत्र के माध्यम से आपके सामने ऐसी एक नही, अनेक घटनाएँ उभरकर सामने आ रही है, जिन घटनाओ मे उन महापुरुषो का वर्णन आ रहा है, जिन्होने कि संसार के स्वरूप को समझकर जन्म-जन्म से कर्मो की जकड़ी भटकती हुई आत्मा को साधना पथ पर लगातार संशोधित-परिष्कृत कर परिपूर्णतः स्वतंत्रता प्राप्त की थी। जिस स्वतंत्रता को पाने के वाद उनकी आत्मा

कभी भी वधन में नहीं जकड़ सकती । अनन्त सुख मे तल्लीन हो जाती है । ऐसी ही स्वतंत्रता पाने के लिए भव्यात्माओं को प्रयत्नशील बन जाना चाहिये ।

अन्तगड सूत्र के माध्यम से अभी विद्वान मुनि [श्री ज्ञानमुनि जी] से आपने गजसुकुमाल एव श्रीकृष्ण के जीवन के विषय मे श्रवण किया । प्रतिवर्ष की अपेक्षा आपको इस वर्ष अन्तगड सुनने मे समझने में कुछ तफावत लगी होगी। आपने सुना गजसुकुमाल कुमार को, श्रीकृष्ण अपना सारा राज्य देने के लिए तैयार हो गये । कितना अपने छोटे भाई के प्रति श्रीकृष्ण का स्नेह था, यह तो इस घटनाक्रम से स्पष्ट हो जाता है । क्या आज के भाइयों मे अपने भाइयो के प्रति इतना प्रेम है । क्या वे अपने भाई के सुख-दुःख में सहायक बनते है । यह तो दूर रहा अगर भाई भोला या नासमझ है तो उसे पिता की सपत्ति से वंचित किया जाता है, ऐसा भी देखने को मिलता है कि एक भाई तो भूखा मर रहा है और दूसरा भाई ऐश कर रहा है ।

वन्धुओ ! जब जीवन में भाई-भाई के प्रति भी प्रेम-स्नेह की भावना उत्पन्न नही होगी तो विश्व के सभी प्राणियो के प्रति आत्मीय भावना की उत्पत्ति की संभावना ही नही की जा सकेगी । आत्मशुद्धि के इस पावन प्रसंग पर सभी के प्रति आत्मीयता भाव जागृत करना आवश्यक है । आज तो कई व्यक्ति ऐसे भी देखने को मिलते है कि वे धर्मस्थान पर भी अभिमान को छोड़कर नहीं अपितु लेकर आते है । ऐसे व्यक्तियों के यहाँ पर भी बैठने के लिए कुर्सियाँ चाहिये । उनके अभिमान पर किसी भी प्रकार की ठेस नही लगनी चाहिये । परन्तु ऐसे विचारो के व्यक्ति यहाँ आकर के भी अपने जीवन का सशोधन नही कर पाते बल्कि और अधिक से अधिक कर्मो का बन्धन कर लेते है । ऐसे व्यक्ति को अभिमान छोडकर सच्चा जिज्ञासु बनना चाहिये । जब तक व्यक्ति अभिमान मे भरा रहता है, अपने प्रदर्शन मे लगा रहता है, तब तक वह व्यक्ति सच्ची आत्मशुद्धि नही कर सकता न ही परमात्मा का साक्षात्कार कर पाता है ।

मुस्लिम मजहब मे एक घटना आती है कि हुसैन नाम का सम्राट प्रतिवष मक्का मदीना की यात्रा करने के लिए जाया करता था, वह अपने साथ बहुत-सी धन संपत्ति, वाहनादि भी लेकर जाता था । उसका जाने का मुख्य उद्देश्य यह रहता था कि लोग उसके ऐश्वर्य को देखकर उसकी प्रशसा करे । लेकिन एक गरीब असहाय बहिन राबिया भी प्रतिवर्ष मक्का मदीना की यात्रा करती थी, लेकिन उसकी यात्रा सभी प्रकार के प्रदर्शन से दूर, केवल अल्लाह की भक्ति से अनुप्रेरित होकर होती थी । राबिया किसी भी वाहन मे न बैठकर पैदल ही यात्रा करती थी ।

एक समय की बात बतलाई जाती है कि राबिया जब मक्का मदीना की यात्रा पर थी, तब उसे खुदा के दर्शन हुए, खुदा उससे बडे प्रेम से बात कर रहे

थे, ठीक उसी समय सम्राट हुसैन भी पीछे चला आया। उसने देखा कि खुदा राबिया से बात कर रहे है। तो वह कहने लगा कि आप इस गरीब को दर्शन दे देते है, लेकिन मै जो आपके प्रतिवर्ष दर्शन करने के लिए हजारों रुपये खर्च करके आता हूँ, मुझे तो आप दर्शन नही देते, तब कहते है कि खुदा ने कहा कि तुम यहाँ शुद्ध मन से भक्ति से अनुप्रेरित होकर नही आते हो, बल्कि अपना प्रदर्शन करने के लिये आते हो, अतः तुम्हें कैसे दर्शन दे सकता हूँ ?

सज्जनो ! घटना चाहे किसी भी रूप में घटित हुई हो या नही हुई हो, पर इससे यह शिक्षा जरूर मिलती है कि आप लोग धर्मस्थान में धर्म करने के लिए आते हैं या अपने अभिमान का प्रदर्शन करने के लिये आते है ? यदि यहाँ आकर भी आपके मन में यह भावना रह जाती है कि मै इतना पैसे वाला हूँ, संघ प्रमुख हूँ, राजकीय अधिकारी हूँ या और कुछ भावना लेकर यहाँ आते है, और आपको बैठने के लिए भी कुर्सी चाहिये। ऐसी भावना लेकर चलने वाले की फिर किस प्रकार आत्म-शुद्धि हो सकती है ? उसमें परमात्मा को अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है ? इस रूप में तो आप एक बार नही अनेक बार जन्म-जन्म तक भी धर्मस्थान पर आते रहे, साधना भी करे तो भी आत्म-शुद्धि नही मिलने वाली है।

सच्ची साधना में प्रवेश करने के लिये सबसे पहले मस्तिष्क से अभिमान, क्रोध आदि वैभाविक वृत्तियों को निकालना आवश्यक है। जब तक 'वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना नही बनेगी। तब तक साधना सही माने में सफल नहीं हो सकती। कई मेरे भाई गौ-रक्षा की बात भी करते है, तो मेरा भी कहना यही रहता है कि गौ-रक्षा होनी ही चाहिये, पर इसके साथ गौ से भी बढकर मानव की रक्षा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। आज मानवों की क्या हालत हो रही है, जरा इस ओर भी ध्यान दीजिये। दूर की बाते तो जाने दो, आपके बबई शहर मे भी देख लीजिये कि कुछ लोगो के अलावा बहुल भाग झोपडपट्टी मे, दुर्गंध में श्वास लेता हुआ जी रहा है। कही-कही ती खाने के लिए रोटी और पहनने के लिये वस्त्र भी उनके पास नही है। अगर वास्तविक आजादी में जीना चाहते हो तो जरा इस ओर ध्यान देना आपका अपना कर्तव्य हो जाता है। केवल मुँह से स्वतंत्रता के गीत गा लेने से या झंडा फहरा देने से स्वतंत्रता का सही रूप नही आ सकता। इसके लिये वस्तुतः मानवीय प्रेम जागृत करना होगा।

अभी संघ प्रमुख वजूभाई दीक्षाओ की विनती कर गए। आप देख रहे है कि यह शासन किस प्रकार विकास कर रहा है। अभी आपने वैराग्यवती वहिन प्रिया एव अन्य वहिनो के भावो को सुना। इनके मन मे कितनी तमन्ना है सयम जीवन स्वीकार करने की। इस शासन के विकास मे वीतराग देव को साधना के साथ पूर्वाचार्यो के तप-संयम का ही प्रभाव मूल मे है। आत्मिक वधन को तोड़ने के लिये संयम की स्वतंत्रता को अपनाना आवश्यक है।

बन्धुओ ! हॉल के बाहर शोरगुल बहुत हो रहा है। क्या धर्मस्थान में आकर इतनी सभ्यता शिष्टता नहीं रह पाती कि शांति से श्रवण करें। कहाँ चर्च में क्रिश्चियन लोग शांति से श्रवण करते है और कहाँ आप लोगो की स्थिति सुनने को मिलती है तो बड़ा आश्चर्य होता है। जरा आप अपनी इस वृत्ति को सुधारने का प्रयत्न करें।

बम्बई की इस बाहरी ट्रेफिक से भी बढकर भीतरी मन की ट्रेफिक है। भीतरी शोरगुल, बाहर से भी तेज है, उसे शांत करने के लिये कर्मो से हटकर अन्तगड़ सूत्र में वर्णित महापुरुषों की तरह स्वतत्रता के राही बनेगे तो निश्चित ही आत्म-कल्याण होगा।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, बम्बई

१५-८-८५
बृहस्पतिवार

४७

सम्यक्त्वी का आचार कैसा हो ?

(पर्यु षण पर्व—पंचम दिवस)

पर्यु षण के दिनों में जिन-जिन महापुरुषों का व सतीवर्ग का वर्णन आपके समक्ष आ रहा है, वह सब जीवन के लिये अत्यधिक प्रेरणादायी है। वर्तमान का मनुष्य जीवन किसी की प्रेरणा पाकर आगे बढ सकता है। वैसे आत्मा को उद्बोधन स्वतः—परतः दोनों प्रकार मिलता है। 'तत्त्वार्थ सूत्र' में कहा है – "तन्नीसर्गादधिगमाद्वा" स्वभाविकतौर से जीवन की अन्तर स्फुरणा से भी प्रकट होता है, और किसी का उपदेश सुनकर भी आत्मजागरण होता है। अन्तर्जगत् की स्थिति को लेकर जब मनुष्य चलता है, तो वह स्वय के जीवन का ज्ञान प्राप्त करता है। ऐसा प्रसंग बहुत कम मिलता है। दूसरो के उपदेश से उद्बोधन पाने वालो आत्मा भी अपने जीवन में बहुत कुछ ग्रहण कर लेती है। जब वह उसके अन्तर में रम जाता है तो उसके आत्म ज्ञान का प्रकाश प्रगटीकरण में आ जाता है।

अन्तगड सूत्र मे जो वर्णन आता है, उससे सुखद प्रेरणा मिलती है एवं कई प्रश्नों का समाधान भी मिलता है। जहाँ कृष्ण वासुदेव के तेले का वर्णन सुना। वे अट्ठम करके बैठे, तीसरे दिन देव को बुलाया और देव उपस्थित हुआ। यहाँ सहज ही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सम्यक् दृष्टि आत्मा किसी देव की चाह नही करती, उन्हे नही बुलाती, उनकी मिन्नत नही करती, उसे बुलाने का प्रयत्न नही करती, फिर कृष्ण वासुदेव ने तेला करके देव को क्यों बुलाया ? यदि बुलाया तो क्या उनके सम्यक्त्व में कोई दोष नही लगा ? जहाँ वर्णन आता है कि कृष्ण वासुदेव क्षायिक सम्यक्त्वी थे। तो उस सम्यक्त्व में यह दोष कैसा ? दोष आया तो फिर उन्हे क्षायिक सम्यक्त्व कैसे आई ?

शास्त्रकारो ने जो वर्णन किया वह सही है। वे पक्के सम्यक्त्व दृष्टि थे। उनके रग-रग में अणु-अणु मे सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के प्रति दृढ आस्था थी, उसमे वे जरा भी मोच नही आने देते, पर घरेलू कार्यो में कभी-कभी अन्य व्यक्ति की सहायता भी लेते थे। जहाँ कही भी संघर्ष करने का प्रसंग आता है, युद्ध छिड़ता तो राजा-महाराजाओ की सहायता लेकर आततायियों को हराया भी जाता है तो क्या सम्यक्दृष्टि सांसारिक कार्यो मे अन्य किसी की मदद नही ले सकते या ले सकते है ? जहाँ मनुष्य की शक्ति से काम न होता हो तो वहाँ वह देव की सहायता भी लेता है। कृष्ण वासुदेव ने देव को बुलाया, पर वह मोक्षमार्ग

की आराधना के लिये नही बुलाया था, वरन् आर्त भाव पाती हुई माता को आश्वासन देने के लिये। माता को ठीक तरह विश्वास दिलाने के लिये ही अट्ठम (तेला) किया था, वह तप आत्म शुद्धि के लिये नही किया गया था। जब वे तेले की तपस्या में बैठे तो एकाग्रतापूर्वक अपनी भावना देव तक पहुँचाई, देव का आसन चलायमान हुआ और देव आया। आप सोचते होंगे कि आज के भाई-बहिन भी तेला व लम्बी-लम्बी तपश्चर्या करते है फिर भी देव क्यो नही आते ? इस विषय में कई मनुष्यों की जिज्ञासा होती है।

बन्धुओ ! याद रखिये कि उन्होंने देव को बुलाने में मनगुप्ति को साधा था, मन का अवधान किया था, उसमें मन की एकाग्रता बनी, जो मन गुप्ति को साध लेता है उसको इच्छित फल की प्राप्ति हो जाती है। आज के साधक तपस्या करते जरूर है पर ये शरीर को ही साधते है, मन को नही। मन उनका एकाग्र नही रह पाता। तपस्या चल रही है, सोचेगे अब पारणे पर मुझे क्या-क्या पदार्थ ग्रहण करना, मुझे उकाली चाहिये या अमुक वस्तु चाहिये। इस प्रकार की ये सारी कल्पनाये कई तपस्या करने वालों की चलती है तो समझना चाहिये अभी तक मन गुप्ति सधी हुई नहीं है, साधना सफल नही हुई। आज मनोविज्ञान की दृष्टि से मनोविज्ञान के विज्ञाता भी अपने विलपावर से इतनी शक्ति बना लेते है कि मात्र सकल्प से दूर पड़ी लोहे की छड़ को भी मोड़ देते है, ये शक्तियां आज अन्य-अन्य देशों में कई भाई-बहिन अपने-अपने जीवन में प्रगट कर रहे है, पर खेद है आज हिन्दुस्थान में रहने वाले भाई इस तथ्य को नही समझ पा रहे है, बाहरी पदार्थों मे ही उनका मन चचल बन रहा है।

कृष्ण वासुदेव मन से एकाग्र थे। वे ऊपर से तीन खंड का राज्य सम्भालते थे पर मन से एकाग्र थे। मन की एकाग्रता को आत्मा के सम्मुख रखकर चलते थे, उठते थे, बैठते थे, भोजन-शयन आदि करते थे। उनकी इन सारी क्रियाओ में मन की साधना विपरीत नही होती थी। उन्होने आज के भाई-बहिन की तरह साधना नही की। आज देव को तो बुलाना दूर रहा पर जहाँ नमस्कार महामंत्र का जाप करते है, वहाँ भी धूप-दीप आदि लगाते है। ये सम्यक्दृष्टि का लक्षण नही है, सम्यक्दृष्टि जीव धर्मस्थान में सावद्य वस्तुओं का प्रयोग नही करते है। जहाँ सावद्य क्रिया होती है, वहाँ मन की साधना नही बनती। कृष्ण महाराज ने देव को बुलाने के लिये तेला किया, वह शास्त्रीय मर्यादानुसार किया था। धूप-दीप आदि प्रक्रिया नही की, क्योकि ये सावद्य प्रक्रिया है। जहाँ छोटे-छोटे जीवों की विराधना होती है वहाँ मन की साधना नही होती। छोटे से छोटे प्राणी की आह, उनकी दुराशीष, उनका उपमर्दन मन को शान्त नही रहने देता। अरिष्टनेमि के पास जाते समय भी श्रीकृष्ण जब घर से निकलते तब चतुरगी सेना साथ लेकर जाते थे पर समवसरण में प्रवेश करते समय, व्याख्यान स्थल पहुँचते समय सचित्त वस्तुओं का त्याग कर देते थे। फूलो की मालादि उतार देते थे। अपने पास एक

इलायची का डोडा भी होता तो उसको भी अलग रख देते थे। समवसरण में जाने के पहले वे उत्तरासन लगाते थे, वे जानते थे कि यह भगवान् का परिपूर्ण अहिंसक समवशरण है, जहाँ एकेन्द्रिय जीव का भी उपमर्दन न हो, छोटे से छोटे प्राणी की हिंसा न हो। इतनी निष्ठा उनमे थी। उसी निष्ठा के साथ बैठते थे। आज के भाई चाहते है कि हम भी गृहस्थाश्रम में रहकर देव को बुलावे, पर उनकी विधि की ओर ध्यान नही देते, यह शरीर की शक्ति नही, मन की शक्ति है। आपको विचार करना चाहिये। भगवान् की आज्ञा की आराधना किस प्रकार की जाय। भगवान् साक्षात् नही है तो क्या, उनका ज्ञान तो साक्षात् है।

आत्मशुद्धि का माध्यम है—धर्मस्थान। अत: धर्मस्थान में प्रवेश करते ही आपको विचारना चाहिये कि हमारे पास फूलों की माला तो नही है, बहिनें सोचें–हमारी चोटी में फूलों की वेणी तो नही है आदि पाँच अभिगम का आपको पूर्ण रूपेण ख्याल रखना चाहिये। हम जा रहे है, जहाँ मन की साधना करने के लिये तो खुले मुँह न बोलें। मेरे भाई ये बाते सुन लेते है पर ख्याल नहीं रखते। कपड़ा पास में है पर मुँह पर लगाने का कष्ट नही करेंगे। कई भाई महाराज की साता पूछने जाते है तो कभी खुले मुँह से बोलकर उन पर थूंक गिराकर महाराज की अशातना भी कर देते है। संतों पर थूंक गिराना भी असभ्यता का सूचक है। संकेत देने पर भी मेरे कई भाई ख्याल नही देते। कृष्ण महाराज पांच अभिगम का ख्याल कर जाते थे। आप भी सोचे कि महाराज अहिंसक है तो उन संतों के पास जाने की मर्यादा क्या है ? उनका पालन करें।

संत पूर्ण ब्रह्मचारी होते है। अत: बहिनों को उनके स्थान पर सूर्योदय के पूर्व और सूर्योदय के पश्चात नही आना चाहिये, और जो नियत समय है, उसी समय में भाई की साक्षी मे बैठना चाहिये। व्याख्यान समाप्ति के बाद सतीवर्ग के स्थान पर बहिनों को चले जाना चाहिये। कदाचित् सामायिक नही आई हो तो थोड़ी देर बैठ भी गये तो बहिनों को यहाँ सोना कतई नही चाहिये। यह धर्म साधना का स्थान है। यहाँ तो जागृति लेने आये है। जब बेसमय मे रहना और बैठना भी नही तो सोना तो चाहिये ही नहीं। धर्म स्थान मे तो निर्वद्य प्रवृत्ति करने का प्रसग है।

जो ज्येष्ठ पुरुप है वे चाहे राष्ट्र के नेता हो चाहे संघपति हों, संघ अध्यक्ष हों, प्रमुख हो, वो जो जो करेंगे उसका अनुकरण जनता करेगी। कृष्ण वासुदेव जानते थे कि मैं सम्यक्दृष्टि भाव में मजबूत हूँ। पौपधशाला में न जाकर अन्य स्थानो में जाकर अन्यथा करूँगा तो भी समकित में दोप नही लगने दूँगा। पर वैसा न कर पौपधशाला में गये। कृष्ण ने सांसारिक कार्य की दृष्टि से देव को बुलाया था न कि आध्यात्मिक दृष्टि से। पौंपधशाला में एकेन्द्रिय जीव की भी हिंसा नही की। अपने हाथ से प्रमार्जन किया। नौकर-चाकर बहुत थे पर

उन्होंने सोचा ये अविवेकपूर्वक पूजेंगे इसी दृष्टि से स्वयं अपने हाथ से पूजा। आसन भी कैसा ? गादी-तकिये नही लिये। कुश का आसन बिछाया और पर्यकासन से बैठे। उनकी मनगुप्ति की साधना इतनी तीव्र थी कि मन का संप्रेषण देव तक पहुँचा दिया। देव तक मन की गति पहुँचाने के लिये तीन दिन और तीन रात लगे। सम्यक्त्वियों को इनसे प्रेरणा लेनी चाहिये।

आज के वैज्ञानिको ने एक ऐसे ग्रह की खोज की है कि जिसे वे आर्टसविमान कहते है। और यह भी कल्पना की है कि ऐसे ग्रह से यदि टेलीफोन से सम्पर्क स्थापित किया जाय तो वहाँ तक सम्बन्ध होने मे ३५ प्रकाशवर्ष जाने में और ३५ प्रकाशवर्ष आने में लगते है। प्रकाशवर्ष का तात्पर्य है एक सूर्य किरण एक सेकण्ड में १ लाख ८६ हजार मील गति करती है। उस गति से चलते हुए ३५ वर्ष तक जाने पर उस आर्टस से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। उससे भी देवता का विमान दूर है, उससे सम्बन्ध जोड़ने मे तीन दिन तीन रात तो लग जाते है।

कृष्ण वासुदेव ने ऐसा कोई यंत्र नही लिया पर मन के फोन की एक धारा लगाई, जो देव तक पहुँच गया। कृष्ण वासुदेव सांसारिक कार्य के लिये देव को बुलाने हेतु अन्य कोई कार्य करते तो जनता भी गैर रास्ते पर चली जाती। इसी प्रकार समाज व मुखिया की प्रवृत्ति भी ऐसी हो कि पीछे की संतति गलत रास्ते पर न जाये। इस प्रकार का ध्यान प्रत्येक भव्य को रखना चाहिये।

मिथ्यात्व कब लगता है, जब ससार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग और मोक्ष के मार्ग को ससार का मार्ग समझे तब, देव को बुलाना उन्होंने संसार का मार्ग समझा, मोक्ष का मार्ग नही। अतः उन्हे सम्यक्त्व मे कोई दोष नही लगा। कृष्ण वासुदेव तो तीन खड के अधिपति ही थे, पर जो चक्रवर्ती छः खंड के अधिपति होते है वे भी इन छः खंडो को साधने के लिये तेले की आराधना की तैयारी करते है। कुंथुनाथ, शांतिनाथ, अरहनाथादि भी चक्रवर्ती पद को प्राप्त करने के लिये तेले के तप की आराधना मे लगते थे। पर उन्होने भी सावद्य ढग से तेले नही किये थे। चक्रवर्ती पद की साधना सासारिक कार्य की थी। फिर भी सम्यक्त्व में दोष लगाने की दृष्टि नही थी। अतः सम्यक्त्व क्या है और मिथ्यात्व क्या है ? इस विषय को गहनता से समझना चाहिये। कृष्ण वासुदेव के समक्ष जब देव प्रकट हुआ तो उन्होने यही पूछा कि मेरे भाई होगा या नही ? देवो मे इतना सामर्थ्य नही कि वे किसी को पुत्र दे सके, वे भविष्य मे होने वाले को अपने ज्ञान में देखकर बतला सकते है। उन्होने अपने उपयोग में देखकर यही कहा कि आपके भाई तो होगा, पर अल्प वय मे ही संयम लेकर संसार से मुक्त हो जायेगा। कृष्णजी ने सारी जानकारी प्राप्त करली और देवकी को भी दे दी। वे यह जानते थे कि मेरा भाई भगवान् की

वाणी सुनकर साधु बन जायेगा, फिर भी वे उन्हे भगवान् के पास ले गये। उनका मोह कितना हल्का था, उन्हें समवशरण से उठाकर नही लाये बल्कि अपूर्व वात्सल्य दिखाकर दीक्षा की तैयारी करने लगे। आगे क्या कुछ घटना हुई, अंतगड सूत्र के माध्यम से आपने सुना होगा, दीक्षा की दलाली से तीर्थकर गोत्र का उपार्जन कर लिया, पर आज तो एक टूटी-फूटी हंडिया में भी मोह ममत्व की स्थिति नही छोड़ी जा सकती किन्तु कृष्ण महाराज सच्चे सम्यक्‌दृष्टि थे। उन्होंने प्राणो से भी प्यारे नयनों के तारे राजकुमारों, कुमारियाँ एवं रानियों को दीक्षा की अनुमति देने में जरा भी सकोच नही किया, पर आपकी प्राण प्यारी कदाचित् दीक्षा लेने की भावना रखती हो तो आप क्या कुछ करेंगे ? आज जीवन पर कितना मोह, कितना ममत्व है ? मासखमण करके शरीर कृश कर लेगे पर मन नही सधेगा।

मै योग साधना की बात पूर्व मे कह गया था। जीवन मे योग की साधना सही तरीके से की जाय तो जीवन में सम्यक्‌दृष्टि भाव की साधना भी कर सकता है, जो गहरे ममत्व में पड़ जाता है, वह सम्यक्‌दृष्टि भाव से गिर जाता है। उसके विकास का मार्ग रुक जाता है। मन की साधना यदि दृढ़ सकल्प के साथ की जाय तो सारी दुनिया को हिलाया जा सकता है, पर सच्चा साधक अपने चमत्कार से दुनिया को हिलाने की भावना नही रखता, उसकी साधना तो आत्मा को उजागर बनाने मे ही रहती है।

बन्धुओ ! यह सारा विषय इन आठ दिनो मे ग्रहण करना है, जीवन की आलोचना करनी है। धर्मस्थान मे कभी भी सावद्य प्रवृत्ति नही करेंगे तो ही अपने मन की साधना का प्रसग उपस्थित कर सकेंगे। यदि इस विषय मे किसी को भी शका-विशका हो तो शास्त्रीय प्रमाण सहित वीतराग देव की आज्ञा के अनुसार शंका का समाधान खुले दिल से ले सकते है। मेरा तो यही कहना है कि आप वीतरागदेव की आज्ञानुसार चलेंगे तो आप अपने जीवन में जरूर चार चाद लगा सकते है।

मोटा उपाश्रय, १७-८-८५
घाटकोपर, बम्बई शनिवार

४८ आत्मा को हल्की बनावें

(पर्यु षण पर्व—षष्ठ दिवस)

उपशान्ति के केन्द्र, परम शांति के समुद्र, अनंत सुख के दरिया एवं अनंत शक्ति सम्पन्न वीतराग देव, जिनकी बदौलत आज भव्यजन अपने कषायों को शमित कर जीवन के अमृत कुंभ को, अमृत घट को भरने का प्रयास करते है। ऐसा संयोग जिन आत्माओं को मिलता है, वे आत्माएँ इस जीवन में रहती हुई स्वयं धन्य बनती है और स्वयं के पास आने वाले अन्य प्राणियों को भी शांति का संदेश देती है। आज जो अशांति का दौरदौरा चल रहा है, प्राय: करके चारों तरफ आत्मा को अशांति का अनुभव होता है। यह अशांति आयी कहाँ से और किसने पैदा की ? यह अशांति बाहर से नही आती। अशांति पैदा करने वाली स्वयं यह आत्मा इस शरीर मे रहती हुई ऐसे कुछ कर्म उपार्जन करती है, जिनके ऐसे परिणाम सामने आते है, जिससे उस समय वह स्वयं अशान्त बन जाती है। जिस वक्त भंग, दारू आदि मादक द्रव्य पीता है, उस समय उसे कुछ भी ज्ञात नही होता। पर जब भंग का नशा तीव्र हो जाता है, उस समय वह कैसा दु:ख का अनुभव करता है, यह वही जान सकता है। ये मादक द्रव्य मनुष्य को बेभान बनाने वाले है। जो मादक द्रव्यों को पीने की कोशिश नही करता है, वह मादक द्रव्यो के प्रभाव से प्रभावित नही होता। कभी कुतूहलवश या कभी भद्रिक प्राणी अन्यों के कहने मे आकर ऐसा नशीला पदार्थ ग्रहण कर लेते है तो वे स्वयं अशांति के झूले मे झूलते है और परिवार के भी घातक बन जाते है। ऐसी बहुतेरी घटनाएँ सामने आती है।

मेवाड़ (राजस्थान) मे गंगापुर नामक गाँव में होली के दिनों मे महेश्वरी समाज की एक बहन रास्ते पर चल रही थी। कुछ उद्दंड युवकों की टोली ने जाती हुई बहन को कहा कि—लो ठंडाई पी लो। वह जान नही पाई, उस ठंडाई में भंग मिली हुई थी, उसे ऐसा नशा आया कि कुछ भी भान नही रहा, वह बेभान हो गई। जब उसका सात वर्षीय बच्चा खेलता हुआ उसके पास आया, तो कुछ भान तो था नही, एक लोहे की कील उठाई और पत्थर लेकर उस बच्चे के माथे पर ठोक दी।

अब देखिये अशांति पैदा किसने की ? उत्तर होगा उस बहिन ने। वैसे ही यह चैतन्य देव अनादि काल से स्वयं कर्मो से भारी बनकर दु:खी होता हुआ चला आ रहा है। जहाँ आत्मा हल्की होती है तो ऊर्ध्वगामी बनती है या तिर्छे लोक

में भी रहती है, पर क्रूर कर्मों के अर्जन से इतनी भारी बन जाती है कि तिर्छे लोक को छोड़कर पाताल लोक में पहुँच जाती है। वहाँ उसे कोई अन्य नही ले जाता पर स्वयं कृत कर्मों से भारी बनकर नीचे जाती है।

भगवती सूत्र के श० १२ उ० दूसरे में वर्णन आता है कि भगवान् महावीर के समय कई साधक आये उनमे एक जयन्ती नाम की श्राविका भी आई। उस श्राविका ने भगवान् से प्रश्न किया—यह आत्मा, यह चैतन्य देव अच्छा है। आपके कथनानुसार ऊपर उठना इसका स्वभाव है फिर यह नीचे कैसे जाता है?

"कहणं भते! जीवा गुरुयत्तं हव्वमागच्छन्ति? जयंति! पाणाइवाएण जाव मिच्छादसण संल्लेणं। एवं खलु जीवा गुरुयत्तं, हव्वमागच्छन्ति ॥"

उस श्राविका के प्रश्न से जान सकते है कि उस समय ऐसी-ऐसी श्राविकाएँ भी होती थी जो गूढ़ ज्ञान को लेकर तात्विक प्रश्न करती थी। वह श्राविका प्रभु से प्रश्न करती है, प्रभु उसे उत्तर देते है कि हे श्राविके! आत्मा का स्वभाव हल्का है जिससे यह ऊपर जाती है पर कर्मों के भार से भारी बनकर नीचे जाती है। प्रभु ने आत्मा के भारी होने के कारण प्राणातिपातादि १८ पाप बताये है, इनके कर्म बंधन से आत्मा भारी बनती है, और यह भारीपन आत्मा को अधः पतन की ओर ढकेल देता है।

भगवान् ने तुम्बी का रूपक देकर समझाया कि जैसे—तुम्बी को पानी में डाला जाय तो ऊपरी सतह पर तैरती है पर जब कोई व्यक्ति उस पर मिट्टी का लेप लगातार सात या आठ बार लगाते जाय और उस तुम्बी को मिट्टी के लेप से भारी बना दिया जाय, उसे फिर पानी के सतह पर रख दी जाय तो वह तुम्बी पानी की सतह पर टिकेगी नही, नीचे चली जायेगी। वैसे ही हे जयंती! यह आत्मा प्रतिक्षण-प्रतिपल कर्मों का लेप अपने पर लगाती है। आगे प्रश्न किया गया है—भगवन्! यह किन-किन निमित्तों से, किन-किन कारणो से यह कर्मों का लेप लगाती है? महाप्रभु ने उसके लिये प्राणातिपात आदि पापों को कारण बताया।

आचाराग सूत्र में महाप्रभु ने बतलाया है कि हे पुरुष! तू वही है, जिनको तू मारना चाहता है, क्योकि दूसरी आत्मा मरेगी या नही पर पहले तू स्वयं मरेगा, तेरा घात होगा। यदि तू अधिक जिदा रहना चाहता है तो पहले प्राणी मात्र को अभय दे, शांति दे फिर तुम्हे अभय मिलेगा।

वधुओ! आप सोचेंगे कि दूसरे को मारने से पहले वह स्वय कैसे मारा जायेगा? मनोविज्ञान की दृष्टि से चितन करे कि जो व्यक्ति दूसरे के मकान को गिराना चाहता है तो गिराने का नक्शा पहले अपने मन में बनाता है तो अपने ही मस्तिष्क में नाश के संस्कार पैदा करता है। एक व्यक्ति सोचता है कि मैं

द इकट्ठा करके पड़ौसी के मकान को तहस-नहस कर डालूँ, यह सोचकर अपने घर में बारूद इकट्ठा कर लिया और कभी जरा-सी असावधानी से कहीं से आग की छोटी-सी चिनगारी लग गयी तो किसका घर नष्ट ? पहले स्वयं का। वैसे ही यह आत्मा दूसरों का घात करने से पहले स्वयं घात करती है। उसके पहले कर्म बंध जाते हैं।

एक साथ आत्मा सात तथा आठ कर्मों को बांधती है। वे आठ कर्म कौन-से हैं ? ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, और अंतराय कर्म।

ज्ञान प्राप्त करने वालो को अंतराय देने से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध ा है। इसी तरह आगे के कर्म दर्शनावरणीय आदि के कारण भी जानने हिये।

मनुष्य के शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक रोग ज्यादा है। प्रभु वीर ने इसका बहुत सुन्दर प्रतिपादन किया है। आज का विज्ञान भी धीरे-इस ओर बढ़ रहा है।

वैज्ञानिक आज इस बात को महसूस कर रहे है कि जितना जो व्यक्ति ने आप मे कलुषित होता है, वह हिसा का ऐसा रोग पैदा करता है, जो आगे कर कैंसर का रूप भी धारण कर लेता है।

कैंसर के रोग का आज इलाज क्यों नही हो पा रहा है ? कैसे हो ? जब हिसा के या दूसरो को सताने के विचार चलते रहते हैं तो मस्तिष्क के जो ड्स है, जो ग्रन्थियाँ है उनमें पॉयजन पैदा हो जाता है तब कैंसर का रोग न्न हो जाता है।

जहाँ मनुष्य किसी को सताता है, चोरी करता है तब उसे खुद को चैन ा पडती।

फोरेन में एक ऐसा प्रसग आया कि—गिरजाघर पहुँचकर साधक मौन यना करते है, वहाँ ऊपर से सुई के गिरने की आवाज तो आ जाय पर मनुष्य कोलाहल की आवाज न आय। ऐसी स्थिति सुनने को मिल रही है।

ऐसे स्थल पर एक बहन पहुँची तब उसके शरीर में खुजली चलने लगी, सोचने लगी कि जहाँ धर्म स्थान है, शाति का स्थान है वहां आते ही मुझे शा अशाति हो जाती है। ऐसा क्यों ? कारण ढूँढ़ने पर भी कुछ न मिला तो ा ने एक मनोवैज्ञानिक डॉक्टर से कहा—इस बहन के शरीर में क्या रोग है, ास करो। धर्म स्थान में आती है तो खुजली आती है और यहां से जाती है ठीक हो जाती है।

आज भी कइयों की स्थिति भी ऐसी ही है कि नवकार मंत्र की माला फेरते है तो हाथ धूजने लगते है। मेरे कई भद्रिक भाई कहते है कि म० सा० ! हम धर्म स्थान में आते है तो हमारा मन नही लगता।

बंधुओ ! मैं तो साधु ठहरा। साधु मर्यादा में उत्तर दे देता हूँ।

मै फोरेन की बात कर रहा था कि डॉक्टर ने हर तरह से उस महिला के शरीर की तपास की, सब कुछ स्थिति ठीक होते हुए भी निदान नही कर पाया तो डॉक्टर ने उस महिला से कहा कि—तुम्हे शारीरिक नही, मानसिक रोग है। इसका इलाज तुम स्वयं कर सकती हो। तुम्हे कौनसा मानसिक रोग है, इसका तुझे पता नही है, पर मै कहता हूँ कि जिस ऑफिस में तुम सर्विस करती हो तो वहाँ का वह अफसर तुम पर विश्वास करके सारा कारोबार तुम पर छोड़ देता है पर तुमने उसके साथ कोई धोखा-धड़ी तो नही की ? तो वह महिला बोली—कुछ नही की। चिकित्सक ने कहा—तुम अपने मन की बात जब तक मेरे सामने नही रख दोगी तब तक तुम्हारी बीमारी नही जायेगी। मैं तुम्हारी गुप्त बात किसी को नहीं कहूँगा। तब वह कुछ आश्वस्त हुई और सारी अदर की बात रखदी। बतलाया कि—मै मेरे मालिक की दुकान से माल चुरा लेती हूँ, पैसा इकट्ठा भी कर लेती हूँ। कभी ऐसी भावना भी जगती है कि—इस मालिक को मै ऐसा पदार्थ खिला दूँ, जिससे इसके शरीर में खुजली-२ हो जाय। जिससे यह ऑफिस मे न आ पावे। तब डॉक्टर ने कहा—यह प्रकारान्तर से हिसा तुम्हारे जीवन में खुजली पैदा करनेवाली है। तुम यदि अपनी खुजली मिटाना चाहती हो तो नि:सकोच अपने मालिक के पास जाकर आलोचना कर दो। उसके दिल में यह बात जम तो नही रही थी। पर विचार करने लगी कि—डॉक्टर जाकर कह देगा तो ठीक नही होगा, वह स्वयं गयी और एकान्त में अपने मालिक से कहने लगी—मैंने आपके साथ अनीति की, धोखाधड़ी की, मै ऊपर से नही जान पाई पर भीतर से अनुभव कर रही हूँ अत. मेरी इस बीमारी को मिटाने के लिये आप मुझे माफ कर दें और आपका सारा धन जो मेरे बंगले पर सुरक्षित पड़ा है, ले आवे। मालिक भी गंभीर था, कहने लगा कि गलती मेरी है, मैने तुम्हारी आजीविका के लिये बराबर व्यवस्था नही की पर अब तुम प्रण करो कि अब भविष्य मे ऐसी गलती कभी नही करोगी। उसने अपनी गलती स्वीकार करली और भविष्य मे ऐसी गलती नही करने की प्रतिज्ञा ली। वह मालिक कहने लगा अब तुम शुद्ध-विशुद्ध हो।

गलती करना बुरा है, पर उस गलती को गलती समझकर उसे निकालने की जो चेष्टा करता है, उसका जीवन सुधर जाता है और जो नही करता है, उसकी मानसिक स्थिति खराब होने के साथ-साथ वह अल्प समय में ही परलोक को प्रयाण कर जाता है, उसका परलोक भी बिगड़ जाता है।

वंधुओ ! यह तो आधुनिक युग का थोड़ा-सा उदाहरण दिया है पर प्रभु कह रहे हैं कि हे जयती ! जो अपने दु:ख को दु:ख रूप नही समझता है, अन्य को सताता है वह अपने मन में क्रूरता ले आता है, उसके मन की स्थिति डांवा-डोल वन जाती है । प्राणातिपात आदि अठारह पापों में परिग्रह पाँचवाँ पाप है । हिसा और परिग्रह विचित्र ढंग का पाप है, जो मानसिक रोग, कैंसर आदि सारी वीमारियों की जड़ है ।

आज मानव अशांत है, आखिर ये वीमारी है क्या ? इसका पता नही लगा पाता । पता लगाना है तो वीतराग देव के सिद्धान्तो की छाया मे आना होगा । इन वीमारियों से मुक्त होना है, तो इस आत्मा को १८ पापों के त्याग करने होगे । इन्हें करने से ही आत्मा हल्की वन सकेगी । इनको हटाने के लिये पर्युषण के दिन चल रहे है, आज छठा दिन होने से तेले का घर है । देखिये इस घर के दिवस में गंभीरता से प्रत्येक भव्य को चितन करना है । मानसिक रोग की निवृत्ति के लिये तपाराधन के साथ वीतराग के सिद्धान्तों को, नजदीक से श्रवण करें, नजदीक से सम्पर्क साधें, नजदीक के संप्रेपण से अपने जीवन को आगे वढाएँ ।

फोन में न बोलने वाला व्यक्ति वीच में किसी का माध्यम रखता है तो वह वात नही कर पाता है । आप अपने आपको हल्के बनाना चाहते है तो इतने हल्के वन जाइये कि इन दिनों में ३ करण ३ योग से छः काय की हिसा का त्याग करें । वैसे ही १८ पापों का त्याग करके सवत्सरी महापर्व की आराधना करने का प्रयास करे । शोरगुल से रहित होकर अपने पापों का प्रतिक्रमण करें । सवत्सरी के दिन सूर्यास्त के समय से मौनपूर्वक आप शुद्धिकरण करिये और उस शुद्धिकरण में यदि कोई हिसात्मक माध्यम आयेगा तो आप पूरा शुद्धिकरण नहीं कर पायेंगे ।

भगवान् महावीर का सिद्धान्त अहिंसा परमोधर्म का है । जो अहिंसा परमोधर्म की छाया में आता है वह अपने जीवन को पावन बनाता है । आज व्यक्ति हिसा के अलावा बात भी नहीं करना चाहता, उसकी व्यवहार-पद्धति हिसा मूलक हो गई है ।

शाति चाहते है तो पहले अन्य प्राणियों को शाति दें ।

एक व्यक्ति घबराता हुआ एक भाई के पास आकर कहने लगा कि मुझे शाति दो । उसने कहा तुम्हें शाति दूसरे से नही स्वयं से मिलेगी । तुम्हारे भीतर मे शाति का खजाना भरा पड़ा है, उसे तुम दूसरों को देने लग जाओगे तो तुम्हारी शाति वढती जायेगी और कंजूस वने रहे तो शांति कभी नहीं मिल सकेगी ।

१२ महीने अहिसा का पालन करो तो बहुत ही श्रेष्ठ बात है। रोज नही तो पर्व, पक्खी, अष्टमी के दिन और इतना न बन सके तो संवत्सरी को तो हिसा का त्याग करें। उस दिन भी यदि हिसा करते है तो स्वयं की आत्मा को तो भारी बनाते ही हो पर वीतराग देव की भी आशातना करते हो। आप जैनी हो या नही ? इसका थर्मामीटर अपने आप मे लगाओ कि जैनत्व आपमें है या नही ? जैनी का कर्तव्य है कि सबसे पहले महापाप का त्याग करें और बाद में अपने जीवन को बनाने के लिये धार्मिक की दृष्टि से अष्ट कर्मो से लिप्त बनने से दूर रहे। भगवान् ने नरक-गमन के ४ कारण बताये—महारंभी, महापरिग्रही, पचेन्द्रिय की घात करने से और मद्य-मॉस का आहार करने से। इन चार कारणों में दो कारण तो मुख्य रूप से अण्डाहार में आ जाते है। क्योंकि अण्डा पचेन्द्रिय जीव है। उसको खाने वाला पहले उसका हनन करता है तो पचेन्द्रिय जीव की हिसा का प्रसंग बनता है। फिर उसको खाता है तो मांसाहार का प्रसंग बनता है। इस प्रकार एक अण्डे का आहार करने में नरक गमन के दो हेतु बन जाते है।

अत: आर्य संस्कृति के उपासकों को तो कभी भी अंडे का सेवन नही करना चाहिये। सामान्य अवस्था की बात तो दूर रही भयानक रोग भी आ जाय, मारणान्तिक कष्ट की स्थिति हो, तथाकथित डॉ० का परामर्श भी हो कि अडे खाने से ठीक हो जायेगा तथापि आर्य पुरुषों को मांसाहार से दूर रहना चाहिये।

मनुष्य का खाना मास व अंडा नही है, पर जिसमें जैनत्व के संस्कार नही है, वे अण्डा आदि का सेवन कर लेते है। आज तो स्कूली शिक्षाओं मे अडे को निरामिष समझकर अंडाहार करने की शिक्षा दी जाती है, जिनको बचपन से जैनत्व के संस्कार नही मिले, जिन्होने वीतराग देव के सिद्धान्तों को सही रूप मे नही समझा, स्व-पर के साध्य को नही समझा वे ऐसा करते है पर मै आपके समक्ष एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण रखता हूँ, जिसमे जेनत्व के सस्कार बचपन से ही भरे पड़े थे।

भोपाल के भाई भीमसिहजी जो यहॉ आये हुए है। ये जज भी रह चुके है। ये जब कॉलेज में पढ़ते थे, तब का प्रसंग है कि—सभी विद्यार्थियो ने मिलकर एक बार टी पार्टी के लिये कहा कि सभी अपने घर से टिफिन लेकर आये। भाई भीमसिहजी भी विद्यार्थी के रूप में थे, अत: वे भी अपना टिफिन लेकर पहुँचे। सभी विद्यार्थीगण भोजन का समय होने पर अपना-अपना टिफिन खोलकर भोजन करने बैठे तो भाई भीमसिहजी से अन्यो के टिफिन में अडे देखकर रहा न गया। अत. बोले कि तुम महापाप का खाना खाते हो यह ठीक नही। तब वे साथी अंडे को निरामिप बताकर श्री भीमसिहजी से भी खाने का आग्रह करने लगे,

तो उन्होंने मुखिया को कहा कि ये विद्यार्थी मुझे जबरन अण्डा खिलाना चाहते है तो शिक्षक ने उनकी इस बात पर गौर नही किया, अपितु विद्यार्थियो का समर्थन करते हुए कहा—अण्डा मांस नही है अत खाने मे कोई ऐतराज नही है।

जिनमें जैनत्व के संस्कार नही है, वे चाहे किसी भी ऊँची पोस्ट पर क्यो न हों, उनके विचार ऐसे ही होते है। जब अध्यापक ने यह कह दिया तब विद्यार्थी भी खाने के लिए आग्रह करने लगे। किन्तु जैनत्व के सस्कारों में पक्के भीमसिहजी ने इधर-उधर अपने भागने का रास्ता देखा, अन्य कोई दूसरा रास्ता नही मिला तो दीवार लांघकर भागते हुए घर आ गए, पर अडा नही खाया।

बंधुओ ! देखिये वीतराग देव के सिद्धान्तो की कितनी गहरी व दृढ निष्ठा होनी चाहिये। वास्तव मे अडा मासाहार है या निरामिप है, इसकी चर्चा मै कई बार कह चुका हूँ।[1]

गांधीजी ने भी इसे मांस के रूप में माना है। मॉस खाने वाले रोग से ग्रस्त बन रहे है। आज के वैज्ञानिक अण्डे के विपय मे दलीले दे रहे है। आप मुझसे पूछे। मैं आपको यथोचित एक-एक प्रश्न का समाधान दूँगा व बताऊँगा कि अण्डा निरामिप नही सामिप है। जरा विचार करें कि पशु का मॉस, मुर्गी का अण्डा आपके स्वास्थ्य के साथ तालमेल खाता है क्या ? आप किस शका में पडे है। आप कोई भी तर्क रखे मै युक्ति युक्त उत्तर दूँगा। इस बात को आप अनुभव मे ले सकते है। आज जैन समाज के बच्चे-बच्चे में यह घृणा हो जानी चाहिए कि यह ग्राह्य नहीं, हानिकारक व पापकारी है। डॉ० की स्थिति से समझे कि एक इजेक्शन भी बिना उबले पानी से धोये एक दूसरे के नही लगाया जा सकता है तो फिर दूसरे पशु-पक्षियो का मॉस कैसे खाया जा सकता है ?

आज मानव अपने जीवन की स्थिति को शांति के क्षणो में देखे कि हम क्या कर रहे है। अगर महापाप का त्याग नही किया तो आपमें जैनत्व कहाँ रहा ? आप विचार करें और अपनी स्थिति से आगे बढें। अगर आत्मशुद्धि करनी है, भगवान् के वचनों का भोजन करना है, यदि आपको सच्ची भूख है, सच्ची जिज्ञासा है और वर्तमान जोवन शांतिपूर्वक जीना है तो जो आप सुने उसे जीवन में उतारें।

जितनी अधिक हिंसक कार्यो से आप लोग निवृत्ति लेंगे, उतनी मात्रा में जीवन में शाति आएगी। धार्मिक कार्यो मे तो हिसक साधनो का प्रयोग होना ही नही चाहिये।

---

१ 'अहिंसक देश मे घोर हिसा—अण्डा शाकाहारी नहीं है' इस नाम से मेरे द्वारा सपादित आचार्य प्रवर की एक पुस्तक अलग से प्रकाशित हो चुकी है। —सपादक

चाहे आपको सुनाई दे या न दे पर प्रतिक्रमण, सामायिक आदि में हिसक साधनों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये । मौनपूर्वक शांति के साथ सुनने पर आवाज दूर तक सुनाई देती है । प्राणातिपातादि पाप आपकी आत्मा को डुवोने वाले है । धार्मिकता के वहाने धर्मकरणी को बेचने का प्रसंग उपस्थित किया तो धर्म को कौड़ी में बेच देगे । अत: धर्म के साथ किसी भी फल की कामना नही रखनी चाहिये ।

वर्तमान जीवन को समझे । शांति कही बाहर नही स्वयं के भीतर है । ठडे दिमाग से, गहराई से चितन करें, अपने आप की शांति को अपने अन्दर खोजे और छोटे से छोटे प्राणी को अभय दें । अर्जुन माली ने जो पाप कर्म किया, उनकी आलोचना कैसे की ? परिणामस्वरूप छ: महिने में ही अपने कर्मो को खपाकर, शुद्ध बनकर भगवान् महावीर से पहले सिद्ध अवस्था में विराज गये । इन सब आदर्शो को सामने रखकर पूर्ण अहिसक साधना के साथ जीवन जीने का प्रयास करेंगे तो इस जीवन में भी परम शाति की अनुभूति हो सकेगी……।

मोटा उपाश्रय, १८-८-८५
घाटकोपर, बम्बई रविवार

४६

प्रतिस्रोतगामी बनें

[पर्युषण पर्व—सप्तम दिवस]

इस पंचमकाल मे जिन-जिन परिस्थितियो मे संसार चल रहा है। जिस भौतिक वायु मण्डल मे मानव के संस्कार भौतिकता की ओर चले जा रहे है। इसी रफ्तार मे यदि मानव की गति चलती रही तो इस प्रकार के संस्कारो का कही भी अन्त नही आ सकेगा। क्योंकि जो जड़ तत्त्व है, वे परिवर्तनशील है। आत्मा से भिन्न जो तत्त्व है, उसे भौतिक तत्त्व कहा जाता है जड कहा जाता है। जड की परिधि मे अर्थात् जड के परिवर्तनशील संस्कारो के साथ जीवन के संस्कार परिवर्तित होते रहे तो ऐसा व्यक्ति स्वभाव की अभिव्यक्ति नही कर सकता। इसके लिए वीतराग वाणी की ओर ध्यान देना आवश्यक है। अमर सुख को वरने वाले महापुरुष ही अमरवाणी की अभिव्यक्ति करते है। वह अमरवाणी अजर-अमर बनाने वाली होती है।

तीर्थंकर देवो ने अनंत-अनन्त करुणा करके जो उपदेश दिया, उसे गणधरों ने ग्रहण किया और गणधरों के बाद सुधर्मास्वामी जो गणधर थे, वे तीर्थंकर देवों के उत्तराधिकारी हुए, आचार्य पद पर सुशोभित हुए, उन्होंने तीर्थंकर देवों की वाणी रूप अखूट खजाने को गुरु-शिष्य के वाचनाश्रम से सुरक्षित रखा। उसी परम्परा से आज भी जीवन को अजरामर बनाने वाली वाणी उपलब्ध हो रही है। जो अन्तगड़ सूत्र के माध्यम से पर्युषण के दिनों मे अधिकाधिक सुनने को मिलती है। अंतकृत अर्थात् अन्त कर दिया कर्मों का जिसने, ऐसी आत्मा का वर्णन होने से अन्तगड़ सूत्र है।

भौतिक सत्ता-सपत्ति का प्रवाह जन साधारण को मोहित करने वाला बनता है, पर उस प्रवाह मे भी जिन आत्माओ ने अपने अभौतिक जीवन को समझा और विषय-कषाय से विपरीत दिशा में गमन किया, प्रतिस्रोतगामी बने, वे जीवन के अन्त मे सदा-सदा के लिए अजरामर बन गये। नदी का प्रवाह जिस तरफ बहता है, उस तरफ उसी दिशा मे बहता हुआ कोई पुरुष चलता है, वह भले ही सैकडों कोस दूर चला जाय और समझे कि मै इस अपार नदी के प्रवाह मे तैरता हुआ इतनी दूर चला गया, मैने उत्क्राति की है। यह बात वह स्वयं कह सकता है, किन्तु समझदार पुरुष उसकी प्रगति को प्रगति नही मानते। वे तटस्थ भाव से चिन्तन करते है कि जिधर पानी का प्रवाह बह रहा है उस दिशा में गमन करने मे कोई कठिनाई नही आती, पानी का वेग उसकी सहायता ही करता

है। इसमें एक मुर्दा कलेवर भी वहते हुए पानी के प्रवाह में सैकड़ों मील जा सकता है। इतने मात्र से उस मुर्दे कलेवर को कोई विशेषता नही होती। घास का तृण भी उसमें बह सकता है, इसमें उस तिनके की विशेषता नहीं है। विशेषता उसमे है कि पानी का प्रवाह पश्चिम में जा रहा है तो उसके विपरीत पुरुष पूर्व की ओर जावे तो उसे प्रतिस्रोतगामी कह सकते है। इसी प्रकार यह संसार के पाँच इन्द्रियों के विषय का प्रवाह [काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा] नदी के प्रवाह की तरह बह रहा है। मनुष्य ने जन्म लिया, मानवोचित कला सिखी, विज्ञान की विधि प्राप्त की, दुनिया मे वीर भी कहलाया, लेकिन विषय-कषाय के प्रवाह में ही बहता रहा और फिर कहे कि मैने वहुत प्रगति की तो ज्ञानीजन इसे प्रगति नही मानते। प्रगति उसमें है, जहां काम, क्रोध, विषय, कषाय जिस तरह मनुष्य को बहाते है, उससे विपरीत होकर जो आगे बढ़ते है, वे ही सच्ची शक्ति अर्जित करते है। अन्तगड़ सूत्र मे उन्ही वीर आत्माओ का वर्णन किया गया है। जहां प्रौढ अवस्था मे रहने वाला व्यक्ति इस विषय को समझ कर आगे बढे, उसकी तो विशेषता है ही पर जिसने अभी तरुणाई की देहली पर पाँव भी नही रखा है, उसके पहले ही संसार के विषयों को समझ कर जो प्रतिस्रोतगामी बन गया, तो ऐसी महान् आत्मा का जीवन प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में तेज फैकने वाला होता है, प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणा देने वाला होता है।

एवताकुमार की घटना अंतगड़ सूत्र की तरह भगवती सूत्र मे भी आयी है। ऐसे मुनि का वर्णन जहाँ अतगड़ सूत्र का वाचन होता है वहाँ तो न्यूनाधिक रूप मे श्रवण करने में आ ही गया होगा। कविता की कड़ियो में भी उनके जीवन का प्रसग आता है। कड़ियों का माध्यम है कठ। उन कड़ियों का उच्चारण करने में कदाचित स्वर में अवरुद्धता होने से कमी आ सकती है, तब स्वर जितना चाहिये उतना अच्छा नही होता। आप सभी श्रोतागण कड़ी से परिचित होने से आप उस कड़ी का एक स्वर के साथ उच्चारण करने का प्रयत्न करेंगे, पर विधि के साथ अविधि से नही। यह वीतराग वाणी का श्रवण यत्नापूर्वक करने का है, तो कविता की कड़ियो का उच्चारण भी यत्नापूर्वक करे। यत्ना का तात्पर्य खुले मुँह न वोले। उच्चारण यह स्वर है, स्वर मे भी वडी शक्ति होती है।

स्वर विज्ञान अपना अलग स्वतंत्र महत्त्व रखता है। इससे अन्तर की सुषुप्त शक्ति जागती है। सारे मस्तिष्क मे एक ध्वनि तरग पैदा होती है, और उससे आन्तरिक योग की स्थिति प्राप्त हो सकती है। उस स्वर को आप वोलकर इस वायु मण्डल में व्याप्त कर सकते है। महापुरुषो के जीवन की कडियों का उच्चारण करना, वाणी को, वाचा को पवित्र करना है। साथ ही मन का योग उसके साथ जुड़ेगा तो मन भी पवित्र होगा और आत्मा की भी शुद्धि होगी। तो स्वर मिलाइये—

एवंता मुनिवर, नाव तिराई वहता नीर मे........

कुछ आवाज आयी पर एक स्वर नही मिला । एवंता मुनि ने बहते नीर मे नाव तिराई, कवि का आशय है । यह घटना तैरने की बात उभार रही है । एवंता, छोटी वय का राजकुमार । शास्त्रीय दृष्टि से आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र का था । इसके विषय में कुछ आचार्यों का मतभेद है । कोई कहता है कि छः वर्ष का ही था, पर यह बात शास्त्रीय दृष्टि से मेल नही खाती है । क्योंकि छः वर्ष की अवस्था में तो संयम लेने का भी निषेध है । अतः आठ वर्ष झाझेरी अवस्था आगमानुकूल है । किसी-किसी बालक की प्रतिभा बचपन मे भी विशिष्ट होती है । एवंताकुमार बचपन में ही विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे । हो सकता है । आज के युग में छोटे बच्चे को लेकर चर्चाएँ होती है कि छोटी वय के बच्चे आध्यात्मिक जीवन को क्या समझ सकते है । जिनके शरीर के अवयव विकसित नही हुए, तब शरीर के अवयवो का विकास हुए बिना आध्यात्मिक जीवन का विकास कैसे होगा ? इन प्रश्नों के विषय मे कुछ अनुभूति के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चितन करना है । शरीर के अवयव दो तरह के होते है । स्थूल और सूक्ष्म । स्थूल शरीर के अवयव जागृत हों या न हों, पर सूक्ष्म ज्ञान शक्ति का माध्यम जो बुद्धि है, वह यदि अधिक सक्रिय बनती है तो उसमें समझने की बहुत बड़ी शक्ति-क्षमता आ जाती है । इस विषय को आज के वैज्ञानिको ने भी अछूता नही छोड़ा है । वैज्ञानिक केवल भौतिकता की ही खोज कर रहे हैं । यह बहुलता का कथन है ।

वैज्ञानिक स्थूल तत्त्वो के साथ-साथ अवयवो का भी प्रयोग कर रहे है । शरीर की स्थिति का अवलोकन व परीक्षण भी कर रहे है । आज के युग में एलोपैथिक तथ्य सामने आ रहे है किन्तु ये सिद्धान्त स्थूल दृष्टि का परीक्षण करने वाले है । इससे विपरीत ज्ञान का माध्यम जो बुद्धि है । उस बुद्धि का परीक्षण भी वैज्ञानिक कर रहे है । शरीर मे तापमान को थर्मामीटर से देखते है, वैसे ही अमुक इन्सान की बुद्धि किस तरह की है । यह देखने के लिए वैज्ञानिकों ने खोज की है—इन्सान दो तरह से (शारीरिक व बौद्धिक दृष्टि से) प्रौढ़ बनता है ।

शारीरिक दृष्टि से प्रौढ बना व्यक्ति सबकी दृष्टि में आयेगा कि वह ४५ या ५० वर्ष का हो गया । यह सबकी दृष्टि में है, पर बौद्धिक दृष्टि से वह व्यक्ति कितने वर्ष का है, इसका थर्मामीटर वैज्ञानिकों ने निकाला है, वह थर्मामीटर व्यक्ति से किये जाने वाले प्रश्न की स्थिति से है । एक आयु की दृष्टि से दस वर्ष का बच्चा है, एक आयु की दृष्टि से पचास वर्ष का व्यक्ति है । दोनो को एक समान प्रश्न दिया, उस प्रश्न का समाधान पचास वर्ष का व्यक्ति नही दे पाया और दस वर्ष के बच्चे ने समीचिनता से दे दिया. तो वह आयु की दृष्टि से दस वर्ष का है, पर बौद्धिक दृष्टि से पचास वर्ष का है । जो उत्तर नहीं दे पाया वह आयु की दृष्टि से पचास वर्ष का है पर बौद्धिक दृष्टि से दस वर्ष का ही है । अतः वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध होता है कि बच्चे की बुद्धि प्रौढ-वृद्ध से भी अधिक विकसित हो सकती है । एवंताकुमार की बुद्धि भी अत्यन्त विकसित थी, इसी का

परिणाम था कि उसके माता-पिता उसकी बातों का रहस्य समझ नही पाये, जो उसने बहुत ही स्पष्ट रूप से बतलाया था। जिसने बाहरी रूप से ही नाव नही तिराई अपितु उस बच्चे ने तो अपनी आत्मा को इस भवसागर से तिराकर मुक्ति तक पहुँचा दिया था। महाप्रभु का ज्ञान असीम होता है। उन्होने एवंताकुमार की बुद्धि को परख लिया था।

गौतम स्वामी जब भिक्षार्थ जा रहे थे, जहाँ बच्चे खेल रहे थे वही एवंता-कुमार भी खेल रहा था। उसने मुनि के हाथ में काष्ठ के पात्र, ओघा, मुखवस्त्रिका व सादी वेषभूषा देखी तो उस बालक का मन खेलते-खेलते सहसा मुनि की ओर आकर्षित हो गया। जहाँ बच्चे खेल खेलने मे ऐसे रम जाते है कि प्राय: सब कुछ भूल जाते है, पर बुद्धि की विशिष्टता रखने वाला ऐसा नहीं करता। रगीनता में डूबे तो आश्चर्य की बात नही पर साधारण वेष की ओर ध्यान जाना विरलों का काम है। साधु-जीवन, साधारण वेषभूषा है, बाहरी चाक चक्यता नही, सजा-संवरा शरीर नही। ऐसे प्रसंग पर गौतम स्वामी के गरिमामय जीवन को समझने की, परखने की क्षमता बड़े-बड़े बुद्धिशाली व्यक्तियो मे भी नही आती। वेष को देखकर तो सभी कह देते है कि यह जैन साधु है। परन्तु इनके जीवन से क्या कुछ भाषित हो रहा है? कौन क्या महापुरुष है? ऐसी क्षमता मिलना असम्भव है, लेकिन उस मैदान मे यह एवंता राजकुमार खेल रहा था। खेलते-खेलते उसकी दृष्टि गौतमस्वामी की तरफ गयी। और वह खेल को छोड़कर भागते हुए गौतमस्वामी के पास आया और पूछा आप कौन है और किस लिए घर-घर घूम रहे है? देखिये पूछने की क्षमता, अपने आप की ऊर्जा से तथा इन्सान मे महापुरुषों को पहचानने की क्षमता उस बच्चे में थी। उसकी पहचान केवल पोशाक तक ही सीमित नही थी। उसने उनके साधुत्व जीवन को समझा था और फिर निडरतापूर्वक उनकी अंगुली पकड़कर घर ले आया, आहार से प्रतिलाभित करने के लिए। माता भी भावना भाने वाली श्राविका थी, पर उस वक्त पुत्र की प्रतिक्षा मे थी कि उसे आहार पानी करा दिया जाय। माता का कितना ममत्व रहता है कि बच्चा जरा भी भूखा नही रहे। बच्चे के साथ गौतमस्वामी को देखकर माँ ने कहा कि अरे तू कैसी तिरण-तारण की जहाज घर ले आया, माता की प्रफुल्लता का पार नही रहा। परिपूर्ण शुद्धि के साथ गौतम अणगार को असणं, पाणं, खाइमं और साइमं संतों के योग्य चार प्रकार का निर्दोष आहार वहराया।

बन्धुओ! जब गौतम भिक्षा के लिए गए वहाँ माता ने बच्चे का उत्साह बढ़ाया और गौतम स्वामी जब महावीर स्वामी के पास जाने लगे तो वह उनके साथ हो गया। उस समय माता ने बालक को यह नही कहा कि अरे थोड़ासा नाश्ता तो कर जा पर उसने यही सोचा कि धन्य है मेरी कुक्षी से जन्म लेने वाला बच्चा कितना प्रतिभाशाली है। गौतमस्वामी के साथ जाते हुए बच्चे को रोका

नही, जाने दिया । वह श्रमण भगवान् महावीर के पास गया, दर्शन किया, देशना सुनी, आकर माता से कहा--मानाजी मैंने प्रभु के दर्शन किये । माता कहती है, वेटा, तेरे नेत्र पवित्र हो गए, तुम धन्य हो गये । कुमार कहने लगा--माँ मैंने प्रभु की अमृतोपम वाणी का पान किया । माँ ने कहा—वेटा तेरे कान पवित्र हो गये, वीतराग वाणी का श्रवण करना वड़ा दुर्लभ है । माँ मुझे प्रभु की वाणी अच्छी लगी । वेटा ! तुम्हारा जीवन अच्छा वना, तुम्हारा हृदय निर्मल वन गया । कुमार कहने लगा—माँ ! मैं प्रभु की वाणी को हृदय तक ही नही रखना चाहता । उसे क्रियान्वित भी करना चाहता हूँ । अर्थात् मै घर-वार छोड़कर अनगार वनना चाहता हूँ । यह सुनकर माँ पहले तो मुस्कराई और कहने लगी—

वह कवि की कड़ियों मे— तू काई जाणे साधुपणा ने वाल अवस्था थारी, उत्तर दीधो एसो कुंवरजी, मात कहे वलिहारीजो एवंता मुनिवर·······हे लाल तू साधुपने को क्या समझता है, तेरी अवस्था अभी छोटी है । साधुपना कोई वच्चो का खेल नही, यह अति दुष्कर है । तो वालक एवता ने कहा- मैंने प्रभु से, संसार की असारता को जान लिया है । "ज चेव जाणामि, तं चेव नो जाणामि" आदि इन सवका उत्तर सुनकर भी माँ ने उसे समझाने का प्रयास किया, किन्तु कुमार अपने दृढ संकल्प पर अटल और अविचल रहा, उसे प्रलोभन दिया गया, उसे राज सिहासन पर भी आसीन किया गया अर्थात् एक दिन का राज्य दिया, अनुशासन की पालना करना वताया, अनुशासन जीवन की विशिष्ट शक्ति होती है । **जो अनुशासन पालन करता है, वही अनुशासन दे सकता है ।** राजा वन जाने पर भी कुमार ने यही सोचा कि मै तो अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहता हूँ । वीतराग सस्कृति को पाकर मेरे जीवन को उज्ज्वल करना चाहता हूँ । देखिये । सारा राज्य का स्वामी बन जाने पर भी उस बच्चे ने क्या कहा कि— मेरी आज्ञा है कि श्री भडार से तीन लाख सोनैया निकालकर शीघ्र ही सयम के उपकरण मगवाइये और मेरी दीक्षा विधि सम्पन्न करवाइये । इस प्रकार की दृढता देखकर दीक्षा की तैयारी की गई । एवताकुमार ने उत्कृष्ट वैराग्य से दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा लेने के बाद जब वे सतो के साथ निपटने गये । काष्ठ पात्र था, बचपन और लड़कपन तो था ही, बाल भाव से काष्ठ पात्र को जो वर्षा का पानी बह रहा था, उस बहते हुए पानी मे तिरा दिया और कहने लगे—"मेरी नाव तिरे, मेरी नाव तिरे ।" अन्य साथी स्थविरो ने उसे ऐसा नही करने को कहा तो बाल मुनि ने पुनः ऐसा नही करने का आश्वासन दिया, किन्तु अन्य साधु उस बात की मन में शका लेकर प्रभु के समीप पहुँचे और शका का निवारण किया । प्रभु ने फरमाया—यह चरम शरीरी है । तुम इसकी हिलना-निन्दा मत करो । स्थविरो ने प्रभु के वचनों को शिरोधार्य किया । एवता मुनि ने संयम की उत्कृष्ट साधना की और जिस कार्य के लिए प्रवजित हुए थे, उसे सिद्ध कर लिया । न केवल उन्होने वर्षा के वहते नीर मे नाव तिराई अपितु संसार के दुष्कर प्रवाह से आत्मा की नौका सदा-सदा के लिए पार करली । प्रकरण का विस्तार शास्त्र के

महत्त्वपूर्ण होते हैं । उन्हें झुठलाया नही जाता, पर उन सभी कार्यो में महत्त्वपूर्ण वीतराग देव की संस्कृति के नमूने का कार्य है । आपको मालूम ही है कि मगध सम्राट श्रेणिक को पूणिया की सामायिक खरीदने के लिए कहा गया था, और जब वह सामायिक खरीदने गया तो पूणिया श्रावक ने भगवान से ही उसका मूल्य जानने की बात कही तो प्रभु ने कहा कि बावन डूंगरी सोना तो उसकी मात्र दलाली के लिए भी पर्याप्त नही है । श्रमण संस्कृति का नमूना जो सामायिक है, उसका मूल्याकन नही किया जा सकता । अतः ऐसी संस्कृति की सुरक्षा हर हालत मे होनी चाहिये ।

आज परीक्षण करना है कि इन पॉच इन्द्रियों के विपय में आप अनुस्रोत गामी बने हुए है या प्रतिस्रोतगामी ? मै आपको क्या कहूँ ? मै जिस वेश मे हूँ उसी वेश में रहने वाले मेरे यह भ्राता प्रतिस्रोतगामी न बन अनुस्रोतगामी बन कर अपने कार्य को क्रान्तिकारी मान रहे है । बन्धुओ ! यह क्रान्ति नही भ्रान्ति है । मै तो यही कहूँगा कि प्रत्येक मानव विपयों से प्रतिस्रोतगामी बने । इस श्रमण सस्कृति को महत्त्वपूर्ण समझकर चले । मै तो अपनी अन्तरात्मा से सबको यही परामर्श दूंगा कि आप विपयो से विरक्त होकर ऊपर उठने का प्रयत्न करें । यदि अधिक न हो सके तो कम से कम कल के दिन तो अधिक से अधिक सामायिक, प्रतिक्रमण, पौपध करें । विषयो से प्रतिस्रोतगामी से जितनी भी बाते सामने आए आप उनमें मुस्तेदी चाल से आगे बढे । वीतराग देव की वाणी के साथ अन्तगड़ सूत्र के माध्यम से आप अपने जीवन मे आयु की अपेक्षा बुद्धि के थर्मामीटर को तेज बनायगे तो वस्तु स्वरूप समझ मे आयेगा और उसी वस्तु स्वरूप को समझकर आगे बढ़ेगे तो आपका जीवन मगलमय बनेगा । इन्हीं भावनाओ के साथ ।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, बम्बई

१९-८-८५
सोमवार

माध्यम से आ गया है। मैंने उसे अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है। इस प्रकरण से आज सभी को प्रेरणा लेने का प्रसंग है। बचपन मे जो संस्कार दिये जाते है वे विशिष्ट रूप से उभर कर सामने आते है। कहा भी है—

"यन्नवे भाजने लग्नः सस्कारो नान्यथा भवेत।" जो नवीन भाजन में सस्कार एक बार लग जाते है, वे अन्यथा नही जाते। एवताकुमार के जीवन मे जो सस्कार एक बार जम गये, वे उन्हे मुक्ति में ले जाने वाले सिद्ध हुए। अत. बच्चों को सस्कारित करने के लिए आज के माता-पिता को विशेष ध्यान रखना चाहिये।

एक भाई ने गामा पहलवान से पूछा कि क्या आपके साथ देवीय चमत्कार हुआ, जिससे कि आपमें इतनी शक्ति आ गयी, तो उसने कहा कि नही। यह तो पुरुषार्थ पर निर्भर है। आज भी आप मुझे एक पाँच वर्ष के दुबले-पतले बच्चे को सौप दो—मै दूसरा गामा तैयार कर दूंगा। यह सब संस्कार की बात है। वैदिक सस्कृति मे भी सप्तऋषि का वर्णन आता है, ध्रुवकुमार का वर्णन आता है, वे भी छोटी वय में ही विषयों से मुड़कर प्रतिस्रोतगामी बन गये थे।

बन्धुओ! यह संस्कृति वीतराग देव की है। इस वीतराग देव की श्रमण संस्कृति को हर दृष्टि से सुरक्षित रखना है। इस श्रमण संस्कृति से बढकर भौतिक तत्त्व धार्मिक दृष्टि से कोई भी जीवन मे नही आना चाहिये। सत-सती का जीवन कैसा हो? उनके अंग-प्रत्यंग से वीतरागता कैसे टपकती हो, इन सबका विवेक श्रावक-श्राविका-संत-सतीवर्ग को रखना चाहिये। यह संस्कृति साधारण मानव की नही, वीतराग देव की ही है। वीतराग ने जो कष्ट सहकर जो संस्कृति दी, उस अपूर्व सस्कृति का सेंपल-नमूना किसके पास है? सामायिक, २४ घंटे का पौषध और प्रतिक्रमण उस संस्कृति का नमूना है। आप सुज्ञ है, पर मै समझता हूँ कि इस सामायिक की संस्कृति में भी वीतराग देव की संस्कृति का नमूना समाया हुआ है। धर्म होते हुए भी जहाँ उसमे हजारों प्रकार की औषधियाँ मिलाई जा सकती है। वीतराग देव की संस्कृति का नमूना पूर्णरूपेण ग्रहण नही कर सकते हो तो थोड़ा-थोड़ा ग्रहण करे। इस नमूने को चखने के लिए ये आठ दिन आ गये है और जा भी रहे है। इन आठ दिनों में इस सस्कृति के नमूने को अपने जीवन मे लें।

यह घाटकोपर का संघ बहुत बड़ा संघ है। यहाँ जो कुछ स्थिति थी वह मेरे ध्यान में आयी। भावना बहुत है पर सेंपल-नमूना लेने की स्थिति कम नजर आती है। पाँच हजार घरों की संख्या में पाँच हजार पौषध भी हो जांय तो मै समझूँ कि आप इस सस्कृति के नमूने को लेकर चले। प्रत्येक भव्य का ख्याल रखना है कि यह कोई एरगेर नथुफेर की संस्कृति नही है। मैं सब देखता हूँ। संघ अपनी स्थिति को लेकर चलता है, कई जिम्मेदारियाँ होती है, वे कार्य भी

महत्त्वपूर्ण होते है । उन्हे भुठलाया नही जाता, पर उन सभी कार्यो में महत्त्वपूर्ण वीतराग देव की संस्कृति के नमूने का कार्य है । आपको मालूम ही है कि मगध सम्राट श्रेणिक को पूणिया की सामायिक खरीदने के लिए कहा गया था, और जब वह सामायिक खरीदने गया तो पूणिया श्रावक ने भगवान से ही उसका मूल्य जानने की बात कही तो प्रभु ने कहा कि बावन डूंगरी सोना तो उसकी मात्र दलाली के लिए भी पर्याप्त नही है । श्रमण सस्कृति का नमूना जो सामायिक है, उसका मूल्याकन नही किया जा सकता । अत: ऐसी संस्कृति की सुरक्षा हर हालत मे होनी चाहिये ।

आज परीक्षण करना है कि इन पाँच इन्द्रियों के विपय में आप अनुस्रोत गामी बने हुए है या प्रतिस्रोतगामी ? मै आपको क्या कहूँ ? मै जिस वेश मे हूँ उसी वेश में रहने वाले मेरे यह भ्राता प्रतिस्रोतगामो न बन अनुस्रोतगामी बन कर अपने कार्य को क्रान्तिकारी मान रहे है । बन्धुओ ! यह क्रान्ति नही भ्रान्ति है । मै तो यही कहूँगा कि प्रत्येक मानव विपयों से प्रतिस्रोतगामी बने । इस श्रमण सस्कृति को महत्त्वपूर्ण समझकर चले । मै तो अपनी अन्तरात्मा से सबको यही परामर्श दूंगा कि आप विपयो से विरक्त होकर ऊपर उठने का प्रयत्न करे । यदि अधिक न हो सके तो कम से कम कल के दिन तो अधिक से अधिक सामायिक, प्रतिक्रमण, पौपध करें । विपयो से प्रतिस्रोतगामी से जितनी भी बाते सामने आए आप उनमे मुस्तेदी चाल से आगे बढें । वीतराग देव की वाणी के साथ अन्तगड सूत्र के माध्यम से आप अपने जीवन मे आयु की अपेक्षा बुद्धि के थर्मामीटर को तेज बनायगे तो वस्तु स्वरूप समझ में आयेगा और उसी वस्तु स्वरूप को समझकर आगे बढ़ेगे तो आपका जीवन मंगलमय बनेगा । इन्ही भावनाओं के साथ ।

मोटा उपाश्रय, घाटकोपर, बम्बई — १९-८-८५ सोमवार

५० माफी मांगो और माफी दो

(संवत्सरी)

वीतराग वाणी के पिपासु भव्यजनों के लिये आज का प्रसंग वीतराग वाणी को हृदयगम करने का प्रसंग है, अंतर चेतना में व्यवस्थित करने का प्रसग है। वीतराग देव का ज्ञान सीमित नही, सीमातीत है, आकाश का जैसे कहीं ओर छोर दृष्टिगत नही होता है, वैसे ही वीतराग देव के ज्ञान का भी ओर छोर नही है, ऐसे वीतराग देव के ज्ञान को हृदय में भरने के लिये प्रत्येक मुमुक्षु को स्वय का हृदय विशाल बनाना है। जब तक मनुष्य का दिल सकुचित रहेगा, उसमें वीतरागवाणी का उपदेश समा नही सकता। उसको अन्तर मे समाहित करने के लिये प्रत्येक भाई और बहिन को सवत्सरी के प्रसग से दिल को बड़ा बनाना है। मनुष्य जीवन की सार्थकता आत्मा को पवित्र बनाने मे है। अत: आत्मा को पवित्र बनाने का मार्ग प्रशस्त करने के लिये संवत्सरी का पुनीत प्रसंग उपस्थित है। चातुर्मास प्रारम्भ से ४६-५०वे दिन संवत्सरी की आराधना तीर्थंकर देवों ने बतायी है। तीर्थंकर देव महावीर स्वामी ने भी सवत्सरी मनायी, ऐसा समवायांग सूत्र के मूल पाठ में कहा है—

"समणे भगवं महावीरे वासाण सवीसइराए मासे वइक्कते।
सत्तरिएहि राइदिएहि सेसेंति वासावास पज्जोसवेइ।।"

श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षावास का एक माह और २० दिन वीतने पर तथा ७० दिन अवशेष रहने पर पर्युषण कल्प अर्थात् सवत्सरी पर्व की आराधना की। चातुर्मास का प्रारम्भ आषाढ शुक्ला पक्खी से होता है। इस आगम के मूल पाठ से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने और उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरो ने भी इस पर्व का आराधन किया था इससे इस पर्व की सनातनता और महत्ता सिद्ध होती है।

यह विपय जरा समझने का है कि चातुर्मास वैठने के वाद एक माह और २० रात्रि व्यतीत होने पर ही संवत्सरी पर्व क्यो मनाया जाता है? इस विपय का विवेचन भव्य-जनो को यथा-समय समझ लेना चाहिये। समय की स्थिति से शोरगुल में इस वात को भले ही कोई न सुने, पर जिन भाइयो के शब्द-कर्ण-गोचर हो रहे है, वे शांति के साथ इस विपय का चितन-मनन करने की कोशिश करे। यह पर्व आध्यात्मिक दृष्टिकोण से तो महत्त्वपूर्ण है ही, समग्र सृष्टि मे भी

युगान्तरकारी है। आरों के प्रसंग से भी आप समझ सकते हैं। जैन सिद्धान्तानुसार एक काल चक्र के १२ आरक हैं। इसके दो विभाग है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी, जिस समय में मनुष्य आदि प्राणियो की शरीर की ऊँचाई-चौड़ाई तथा शक्ति में तथा जमीन आदि पदार्थो के रस-कस मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता जाता है, वह काल उत्सर्पिणी कहलाता है और जिस समय मे इसका क्रमिक ह्रास होता है, वह काल अवसर्पिणी कहलाता है। वर्तमान मे अवसर्पिणी काल का पचम आरक चल रहा है। यह २१ हजार वर्ष तक चलेगा। इसकी समाप्ति पर छठा दुःखम-दुःखम आरा लगेगा। वह ह्रास की पराकाष्ठा का काल होगा। उसमें धर्म, कर्म, राज्य व्यवस्था आदि का लोप हो जाएगा। प्रकृति में भयकर उथल-पुथल होगी। गांव, नगर आदि उजड़ जाएँगे। यह आरा लगते ही प्रथम सप्ताह में भयंकर प्रलयंकारी वायु चलेगी जो अधिकाश वस्तियो को उजाड़ देगी। एक सप्ताह तक प्रलयंकर असह्य सर्दी पड़ेगी। एक सप्ताह तक खारे जल की मूसलाधार वर्षा होगी। वह जल इतना खारा व तीक्ष्ण होगा कि जीवधारियों एवं वनस्पतियों के शरीर जलने लगेंगे। इसके पश्चात् सात दिन तक विष वृष्टि होगी। सात दिन तक धूलि की वर्षा होगी। सात दिन तक धूम वृष्टि होगी। इस तरह सात सप्ताह तक प्रलयकारी दृश्य रहेगा। ५०वे दिन शांति होगी। इसी तरह जब उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होगा। तब उसके प्रथम आरे में भी छठे आरे की तरह यही स्थिति मानवो के जीवन की होगी।

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में उत्सर्पिणी काल के प्रथम आरे का प्रारम्भ बतलाते हुए लिखा है कि श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को वालावकरण और अभीच नक्षत्र मे अनंत गुण द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की वृद्धि के साथ प्रथम आरा प्रारम्भ हुआ। इक्कीस हजार वर्ष मे उस "दुःखम-दु.खम" नामक प्रथम आरे के समाप्त होने पर अनंत गुण वृद्धि को लिये हुए श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से ही "दुःखम" नामक द्वितीय आरा प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ मे पुष्करावर्त्त नामक महामेघ सात अहो रात्रि पर्यन्त गर्जना के साथ निरन्तर बरसता रहा। इस महान् वर्षा के फलस्वरूप तप्त लोहे के समान जलती हुई पृथ्वी शीतल हो गई। इसके बाद सात दिनों तक क्षीर नामक महामेघ अविराम-गति से वरसा, जिससे भूमि के अशुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श उपशांत होकर शुभ रूप में बदल गए। तत्पश्चात् सात दिनों तक आकाश निर्मल रहा। बाद में घृत नामक महामेघ सात दिन तक निरतर बरसता रहा, जिससे भूमि का अशुभ रस शुभ हुआ। तत्पश्चात् अमृत नामक मेघ के सात दिनों तक लगातार बरसने से वनस्पति के अंकुर प्रस्फुटित हुए। बाद में पुन. सात दिन तक आकाश स्वच्छ रहा, तत्पश्चात् सात दिन पर्यन्त रस नामक मेघ की निरंतर वर्षा होने से वनस्पति में तीक्ष्ण, कटुक, काषायिक, अम्ल एवं मधुर रूप—पाँचो प्रकार के रस के साथ शक्तिदायक तत्त्वों का संचार हुआ और इस तरह धान्य, वनस्पति फल-फूल आदि

मानव के भोग योग्य बन गए। इस प्रकार दूसरे आरे के प्रारम्भ से ५०वें दिन आकाश के स्वच्छ होने पर बिलों में रहने वाले मानव जब बाहर निकले और भूमि को हरी-भरी देखी, तरुगणो को फूल फलो से लदे हुए देखे तो वे हर्ष विभोर हो गए। इस तरह यह प्रसग चातुर्मास प्रारम्भ से ४९वे, ५०वे दिन के लगभग प्राप्त होता है। आषाढी पूर्णिमा के बाद का यह ४९वां, ५०वां दिन ज्ञानियों की दृष्टि मे विशेष महत्त्व का विदित हुआ और आत्म-शुद्धि के लिये सवत्सरी पर्व की आराधना चतुर्विध सघ के लिये निर्देशित हुई। इसी आराधना को गणधरों एवं बाद के आचार्यो ने उपयुक्त समझा तथा आराधना करते आए। तदनुसार निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के क्रान्तिकारी महान् क्रियोद्धारक पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. से लेकर आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. तक आराधना होती रही। आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. की उपस्थिति मे ही अजमेर वृहत् साधु सम्मेलन वि. सं. १९९० में भी एतद् विषयक लम्बी चर्चाओ के पश्चात् यही निर्णय रहा कि चातुर्मास के प्रारम्भ से ४९वे, ५०वें दिन संवत्सरी पर्व की आराधना की जाए। तदनुसार आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. पश्चात् भी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय सहित भारत की प्राय: सभी स्थानकवासी बाईस सम्प्रदाये (ऐतिहासिक-दृष्टि से साधुमार्गी परम्परा) आराधना करती रही। अजमेर सम्मेलन के समय एतद्विषयक निर्णय में सम्मिलित एकाध सम्प्रदाय बाद में ४९वें, ५०वे दिन के अनुरूप आराधना करने में सक्षम नही हो पाई।

वृहत् साधु सम्मेलन सादड़ी मे भी उक्त नियम की पुष्टि करते हुए सगठन की दृष्टि से अल्प सख्यकों को मिलाने हेतु अत्यधिक बहुल पक्ष ने परिवर्तन कर भादवा की सवत्सरी रखी, पर यह कहा गया कि "आगे गुजरात, सौराष्ट्र आदि को सम्मिलित करते वक्त यदि सवत्सरी की आराधना मे फेरफार करना पड़े, यानि ४९वें, ५०वे दिन को करने का प्रसग आवे तो अल्प सख्यक सहित समग्र सत-सती वर्ग को ४९वे, ५०वें दिन संवत्सरी करने मे तत्पर रहना चाहिये।" आदि आशय के भावों को व्यक्त करते हुए सवत्सरी का परिवर्तन हुआ। सवत्सरी से एक सप्ताह पूर्व इस पर्युषण पर्व का प्रारम्भ होता है। पर्युषण पर्व के अतिम दिन साधना परिपूर्ण हो, इस दृष्टि से पूर्व के सात दिन साधना के अभ्यास के लिये पूर्वाचार्यो ने नियत किये है। इसे अष्टान्हिक पर्व भी कहते है।

उक्त सैद्धान्तिक विवेचन से ज्ञात होता है कि यह संवत्सरी का दिवस शान्ति का पर्व है। सकल सृष्टि की दृष्टि से भी यह शांति का दिन है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह शांति का ही दिन है। अत: इस दिन को शाति के पर्व के रूप में मनाना है। केवलज्ञानियो के ज्ञान में क्या स्थिति किस रूप

मे रही हुई है, यह छद्मस्थ अपूर्ण व्यक्ति नही जान सकता। लेकिन सवत्सरी पर्व को चातुर्मास लगने के ५०वें दिन मनाने का विधान व्यावहारिक दृष्टि से भी उपयोगी प्रतीत होता है, क्योंकि तब तक प्रायः गृहस्थ लोग अपने-अपने कार्यों से निवृत्त हो जाते है, जिससे साधना में विशेष प्रगति कर सके। जो व्यक्ति संवत्सरी के रोज अपनी आत्मा के राग-द्वेष, विषय-कषाय के कलिमल को निकालकर उसे समत्वानुरंजित कर लेता है तो उसकी आत्मा मे शाति का अमृतमय निर्झर फूट पड़ता है। कषायों को, मनमुटाव को धोकर आत्मा को सरल बनाने पर ही यह स्थिति बन सकती है।

संवत्सरी पर्व मानव के लिये ही नही सम्पूर्ण प्राणी जगत् के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि तिर्यच मे बहुत से प्राणी तथा देव-नारकी इसे नहीं मना सकते, लेकिन जो मानव अन्तर्मुखी बन इस दिन साधना में लगकर सबको अभयदान दे देते है तो उनके द्वारा होने वाली उन जीवों की मानसिक, वाचिक और कायिक हिसा रुक जाती है अर्थात् उनका संरक्षण हो जाता है।

यह आत्मा आज से नही, कल से नही, इस जन्म से, पर जन्म से नही, पर अनतानत जन्मों से अपने स्वभाव को भूलकर विभाव में जकड़ी, कर्मो के परतत्र हो, जीती चली आ रही है। उसे स्वभाव में लाने के लिये, कर्मो को तोडने के लिये इस पर्व का सही ढंग से ज्ञान प्राप्त कर आचरण में सम्यक् मोड़ लाना होगा। जिस प्रकार मनुष्य कैदखाने में खाना-पीना मिलने पर भी सुखी नही रह सकता, क्योकि वहाँ स्वतंत्रता नही है। उसी प्रकार जब तक आत्मा कर्मो से स्वतत्र नही हो जाती, तब तक ससार भी उसके लिये कैदखाना है, ऐसे ससार मे वह भौतिक ऐश्वर्य कितना ही प्राप्त कर ले, पर शाश्वत सुख की अवस्था प्राप्त नही कर सकती। जो विषय कषायों से विरक्त होती है वही आत्मा सदा-सदा के लिये शाश्वत शाति को वर सकती है। वह शाति "कषाय मुक्ति किल मुक्तिरेव" से ही होती है। अर्थात् जिन आत्माओं की कषाय से मुक्ति हो गयी है, क्रोध, मान, माया, लोभ कम पड़ गये है अथवा सर्वथा नष्ट हो गये है। वह आत्मा सारे संसार के बंधनों को तोड़कर सदा-सदा के लिये स्वतन्त्र-स्वावलम्बी हो जाती है, सदा-सदा के लिये आजाद हो जाती है—"कषाय मुक्ति किल मुक्तिरेव" के स्थान पर यह कहा जा सकता है कि—"मोह मुक्ति किल मुक्तिरेव" अर्थात् जहाँ आत्मा का मोह बधन टूटता है, वहाँ मुक्ति होती है और मोह नही टूटता है तो मुक्ति नही होती है। कषाय मुक्ति की सूक्ति भी मोह मुक्ति से जुडी है। संवत्सरी के प्रसग से भव्य जन उपस्थित हुए है। हिन्दुस्तान मे और विदेशों मे भी विभिन्न स्थानो पर सवत्सरी की आराधना की जा रही है और की जाती है।

आज एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से प्रकट होता है कि जब सवत्सरी

आध्यात्मिक साधना का प्रतीक है और आत्मा के मौलिक स्वरूप में कोई अन्तर नही है, तो सभी साधक एक ही रोज इस पर्व को क्यों नही मनाते ? शास्त्रीय दृष्टि से विचार करें तो यह स्पष्ट है कि संवत्सरी पर्व मनाने के लिये आगमों मे कही पर भी सावन-भादव मास का कोई उल्लेख नही है। वहाँ तो स्पष्ट बतलाया है कि चातुर्मास प्रारम्भ से पचासवे दिन सवत्सरी मनाई जाए, ताकि सतर दिन अवशेष रह सकें। जो व्यक्ति इस सिद्धान्त को न मानकर भादव मास में सवत्सरी मनाने का आग्रह रखते है, उनके सिद्धान्त पक्ष मे दोनों तरफ से खंडित होने का प्रसंग आ जाता है। जब श्रावण मास दो आ जाते है, तव भादव मास में संवत्सरी मनाने वाले का पहला सिद्धान्त-पक्ष, जो कि संवत्सरी को ५०वें दिन मनाने का है, वह टूट जाता है। क्योंकि दो श्रावण होने से पचासवे दिन संवत्सरी न आकर, तीस दिन बढ जाने से लगभग अस्सीवें दिन सवत्सरी आती है और जव दो आसोज आ जाते है, तब भाद्रपद में संवत्सरी मानने वाले वर्ग का दूसरा सिद्धान्त पक्ष, जो ७० दिन अवशेष रहने का है। वह निभ नही पाता है। क्योंकि आसोज के दो होने से चातुर्मास के ७० के स्थान पर १०० दिन अवशेष रह जाते है। अत: दोनों सिद्धान्त पक्ष खण्डित हो जाते है। पर जो वर्ग, महीने कोई भी बढे-घटे, पर जो पचासवें दिन संवत्सरी मनाकर चलते है, उनके यह नियम तो बराबर निभता ही है। अत: दोनों नियम न टूटकर एक नियम सुरक्षित रहता है। इस विषय मे अजमेर साधु सम्मेलन में भी विचार-विनिमय हुआ था।

आज जैनागमों में गणित सुरक्षित नहीं रहने पर ही यह विवाद की स्थिति बन रही है। क्योंकि चातुर्मास बिठाने-उठाने के सब कार्य लगभग व्यावहारिक पंचाग से किये जाते है। उसी से ही विवाद की स्थिति सामने आ रही है। जहाँ सवत्सरी पर्व कषायों का शमन करने का विशिष्ट पर्व है, वहाँ कषाय बढ़ने का प्रसंग आ जाता है। जैनो का संवत्सरी पर्व तो कम-से-कम एक होना ही चाहिये। इसे एक करने मे किसी का कुछ नही जाता। आवश्यकता है अपनी-अपनी पकड़ छोड़ने की, जब तक अपनी-अपनी पकड़ रहेगी, एकता आ नहीं सकती। और तो और ! जब परिवार में भी कोई एक पारिवारिक सदस्य अपनी पकड लेकर चलता है तो उनमे भी एकता नही रह पाती, तो सामाजिक स्तर पर एकता कैसे रह सकती है। अत: संवत्सरी पर्व को तो सभी को एक रूप मे मनाने का प्रयास करना चाहिये।

इस आशय के भावों से संवत्सरी के विषय में सादड़ी–सम्मेलन में कुछ उल्लेख हुआ। उसके वाद भीनासर प्रतिनिधि मण्डल वनाया गया, सवसे सम्पर्क सावने के लिये, पर फिर दो श्रावण आ गये। तव गुजरात और सौराष्ट्र के मुनियों व श्रावकों ने मिलकर सोचा कि जो सर्वानुमति का मार्ग १९९०

का हमारे सामने पड़ा है, उसमे उथल-पुथल करने को आवश्यकता नही। फिर भी कइयों ने दूसरे श्रावण में संवत्सरी मनायी। संवत्सरी के सम्बन्ध मे मैंने और आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने संयुक्त निवेदन दिया ही है, उसका भाव यह है कि यदि सारी जैन समाज एक होकर कोई भी तिथि निश्चित करके बतला दे तो हम उस तिथि को बिना हिचक के संवत्सरी मनाने के लिये तैयार हैं। वास्तव में भीतर का दुराग्रह नही छूटेगा, तब तक आत्म शुद्धि कैसे हो सकती है ?[1] आत्म शुद्धि के लिये अनाग्रह भाव से विचार करना होगा।

मैने भारत महा मण्डल के सदस्यो के सामने जोधपुर में एवं अन्यो के सामने भी यह सुझाव रखा था कि जैसे विक्रम सम्वत् अपनाया है वैसे ही शक सम्वत् अपना लें, तो ये सारी दुविधायें समाप्त हो सकती है। उन्होंने इस सुझाव को सुनकर प्रशंसित अवश्य किया, पर आगे कार्यक्रम नही बनाया, मै तो अपनी मर्यादा में कह देता हूँ। क्या करना, कैसे करना—यह श्रावकों का दायित्व है।

सज्जनो ! विचार करिये, सवत्सरी महापर्व वर्ष मे एक दिन आता है। अगर वह भी सही ढंग से नही मनाया तो जो समय एक बार बीत गया, वह फिर से नही आने वाला है। एक ज्योतिषी का उदाहरण है। एक ज्योतिषी ने ज्योतिषी-विद्या का गहन अध्ययन किया। पर उसकी धर्मपत्नी प्रतिदिन उससे झगडा करती हुई कहती रहती कि तुम तो पोथियाँ पढते रहते हो, कमाई तो कुछ करते ही नही। ज्योतिषि ने कहा—'मै ऐसा मुहूर्त निकालूँगा, जब ज्वार से मोती बन जायेगे।" पत्नी को उस पर विश्वास नही था, अत: वह कहने लगी कि तुम तो केवल गप्पे हाकना जानते हो, करते–कराते कुछन ही। क्या ज्वार के भी कभी मोती बन सकते है ? संयोग से आकाश मे नक्षत्रों के योग का वैसा प्रसग आया। उस पडित ने गणित द्वारा समय का निर्धारण किया। उसने अपनी पत्नी से कहा कि देखो ! अब मै साधना करता हूँ, तुम ज्वार लेकर बैठना और चूल्हे पर गर्म पानी का बर्तन चढा देना। जिस समय मै "हूँ" कहूँ, उसी क्षण ज्वार के दाने गर्म जल के बर्तन में डाल देना। थोडी ही देर में ज्वार के मोती बन जायेगे। पत्नी को उसकी बात पर विश्वास तो नही था, फिर भी

---

१. कई भाई ऐसी भी प्रक्रिया करने वाले मिलते है कि "नानालालजी ने कहा कि सारी जैन समाज एक होकर सवत्सरी पर्व की तिथि निश्चित कर दे, तो मै भी उसी दिन मना लूँगा पर ऐसा होने वाला नही है। अत· उनका कहने मे क्या जाता है ?" ऐसा कहने वाले भाइयों से मेरा यही सुझाव है कि वे प्रतिक्रिया न कर खुद भी ऐसा अनाग्रह भाव अपना ले तो फिर सवत्सरी की एकता मे दूरी कहाँ ? लेकिन वे अपना आग्रह तो छोडना नही चाहते और जो छोड़ते है, उनकी प्रतिक्रिया करना जानते है। यह आत्म पवित्रता मे सहायक नही है। —सम्पादक

वह कहने लगी कि घर में एक समय का खाना भी नहीं है, ज्वार कहाँ से लाऊँ ? पंडित ने कहा—पड़ोस में सेठानी रहती है, उससे उधार ले आओ। पत्नी पड़ोसन के पास गयी और बोली कि—"सेठानीजी ! मुझे दस सेर ज्वार उधार दे दीजिये", सेठानी ने सहज भाव से पूछ लिया—"क्यो बाई ! ऐसी क्या आवश्यकता पड गयी, जो ज्वार उधार माग रही हो ?" उस पडित की पत्नी ने कहा—"मेरे पति कहते है कि ऐसा मुहूर्त आने वाला है जब ज्वार को चूल्हे पर चढ़े हुए गर्म पानी के बर्तन में डाल देने पर वह मोती रूप में बदल जायेगी।" सेठानी को उस विद्वान् ज्योतिषि पर विश्वास था, वह मन ही मन प्रसन्न हुई और उसने २० सेर ज्वार दे दी।

सेठानी ने सोचा—नक्षत्रों का योग तो आकाश में होगा। पंडितजी के घर में नही। अतः यदि ऐसा योग आने वाला है तो जैसे पंडितजी के घर में आयेगा, वैसा ही मेरे घर में भी आएगा। उनके यहाँ उस समय में ज्वार के मोती बन सकते है, तो मेरे घर क्यों नहीं बनेगे ? उसने शीघ्र सीगड़ी तैयार करके गर्म पानी का बर्तन उस पर रख दिया। बीस सेर ज्वार पास मे रखकर दीवार के पास बैठ गयी। उसके कान दीवार पर लगे हुए थे। उधर उस विद्वान् की पत्नी भी पानी उबालकर ज्वार पास में लेकर बैठ गयी। विद्वान् ने आराधना शुरू की। जैसे ही उसने "हूँ" कहा, सेठानी ने तो ज्वार पानी में डाल दी। किन्तु उस विद्वान् की पत्नी ने "हूँ" शब्द सुनकर कहा—"क्या मै ज्वार डाल दूँ ?"

समय बहुत सूक्ष्म होता है। वह शुभ योग निकल गया, पंडित ने माथा धूना। उसने कहा—मैने पहले ही समझा दिया था कि हूँ कहते ही ज्वार डाल देना। पूछने की क्या आवश्यकता थी ? इस मूर्खा ने सुअवसर गवा दिया, उसकी पत्नी ने वह योग निकल जाने पर ज्वार पानी मे डाली तो वह घूघरी बन गयी। उसने क्रोधित होकर कहा—यह क्या हुआ ? यह ज्वार तो घूघरी बन गयी। बड़े चले थे ज्वार से मोती बनाने। अब मैं पड़ोसन को २० सेर ज्वार कहाँ से लाकर दूँगी ? उसको इतना क्रोध आया कि उसने वह बर्तन लाकर पति के सामने पटक दिया और सारी घूघरी बिखर गयी। पतिदेव माथे पर हाथ रखकर चिन्तन करने लगे कि मैने मुहूर्त्त निकाला, किन्तु इसने साधा नही और अब मुझे दोष दे रही है। उधर पड़ोसन सेठानी ने बर्तन का ढक्कन खोला तो उसमे मोती के दाने चमक रहे थे। उसने कमरे में उडेल दिया तो कमरा प्रकाश से जगमगा उठा। २० सेर ज्वार मोती के रूप मे परिणत हो गयी। सेठानी ने सोचा—पंडित की पत्नी ने अज्ञानता वश समय नही साधा और अब उन्हे दोष दे रही है। उनकी कृपा से मुझे यह अनहोना लाभ मिल रहा है। अतः अब मुझे इसमे से कुछ मोती पंडितजी को भेंट करना चाहिये,

तभी उस दोष की निवृत्ति होगी। इधर पत्नी वड़वड़ा रही थी, पडितजी चितन कर रहे थे, इतने में ही पड़ोसिन सेठानी पडितजी के घर आई और उनके सामने मोती के दाने रखे और बोली—पंडितजी ! यह आपकी अन्तर दृष्टि एवं आपकी कृपा का परिणाम है। आपके वताये हुए मुहूर्त को आपकी पत्नी से मैने जाना और (आपके इशारे पर) आपके वताये हुए मुहूर्त पर मैंने ज्वार पानी में डाल दी जिसके ये मोती वन गये। उसके उपलक्ष्य में यह तुच्छ भेंट आपको समर्पित करने आयी हूँ। यह सुनकर विद्वान् पंडित को अपनी विद्या पर और अधिक विश्वास हुआ। वह अपनी पत्नी से बोला, तुमने मुहूर्त चुका दिया। पड़ोसिन सेठानी ने मुहूर्त साध लिया तो वह निहाल हो गई। यह सुनकर पत्नी के नेत्र खुले और वह रोने लगी, अपनी अज्ञान दशा पर पश्चाताप करती हुई पडितजी के पैरों में गिरकर कहने लगी, एक बार और वही मुहूर्त ले आओ। पडितजी ने कहा ऐसा दुर्लभ संयोग बार-बार नही आया करता, जो उसका लाभ उठा लेता है वह निहाल हो जाता है और जो उसे गंवा देता है, वह रोता रह जाता है।

वन्धुओ ! यह तो एक रूपक है, इसको पहचानिये। इस रूपक से प्रत्येक भव्यजनों को चितन करना चाहिये कि एक ज्योतिषी के मुहूर्त पर आज दुनिया इतनी विश्वास करती है तो ये ज्योतिषी बड़े या वीतराग देव बड़े। सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग देव ने अपने केवलालोक में देखकर आत्म-शुद्धि का पर्व निर्धारित किया। इस मुहूर्त मे शोरगुल नही करते हुए अन्तर की शुद्धि को परिमार्जित कर जवारी के मोती वनाने के तुल्य इस आत्मा को परमात्मा बनाने का प्रयत्न करना चाहिये पर बनावें किस विधि से ? चारित्र की गरिमा के साथ ध्यान साधना, मौन साधना, अंतर की पवित्रता नही सधे, तब तक संवत्सरी पर्व का यह मुहूर्त नही सध सकता। भगवान् के समय साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इस मुहूर्त को साधते थे और अपने जीवन में चितामणि, सूर्यकान्तमणि रत्न से भी बढकर सवत्सरी को समझते हुए साधना में लग जाते थे।

महाप्रभु महावीर की योग पद्धति जनता में तो थी ही पर शासकीय स्तर पर जो सम्राट् होते थे, उनमें भी कई राज्य में ही आसक्त नही होते थे, वे भी सर्वोपरि आध्यात्मिक धर्म को जीवन में स्थान देते थे। जनता से ऊँचे पोस्ट पर रहते हुए भी कैसी आध्यात्मिक साधना करते थे। इसका भी उल्लेख ज्ञानीजनों ने किया है। उस उल्लेख का प्रसंग आज की स्थिति से मै यदा-कदा कर देता हूँ। आज के युग में कॉलेजों की शिक्षा है, डिग्रियाँ प्राप्त है, अक्षरीय ज्ञान की स्थिति बढ़ी चढ़ी है। कमी है तो आज आध्यात्मिक जीवन की है। आज के चितक बाह्य दृष्टि को लेकर अधिक चलते है। अन्तर प्रवेश नही कर पाते। इसलिए शांति का अनुभव नही कर पाते। वे सोचते हैं कि हमने तो अमुक-

अमुक डिग्री हासिल करली। अब इस प्रकार सीधी–सादी पोशाक में साधना करना अर्थात् सामायिक की पोशाक, मुँहपत्ती लगाकर चुपचाप मौन साधना करना तो हमारे पोजीशन के विपरीत-खिलाफ है। ऐसे कई महानुभाव अपने जीवन में "जवारी के मोती" बनाने से वचित रह जाते है। पर विचार करिये डॉ. राधा कृष्णन, जाकिर हुसैनादि भी राष्ट्रपति पद पर आसीन होते हुए भी धर्म को नही भूले। वे एक घटे के लिये भी प्रतिदिन जैसी उनकी मान्यता थी, उसके अनुसार नित्यनियम करते थे। मेरे वंधुगण क्या सोच रहे है ? यह जीवन तो गया सो गया और अशाति भरकर आगे के जीवन को भी क्यों वेकार करना चाहते हैं ? यदि जो जीवन जवारी का मोती बनाने का है, उसे भी ऐसे ही गमावेगे तो फिर शांति कहाँ मिलने वाली है ?

राजनैतिक स्थल पर रहने वाले सम्राट् उदायन अपने पोजीशन को, अपने मान-सम्मान को मुख्यता नही देते थे, वे वीतराग धर्म को मुख्यता देते थे। वे धर्मनीति के साथ राजकीय नीति का पालन करते थे। चद्रप्रद्योतन ने कुटिलता-पूर्वक उदायन महाराज की एक दासी स्वर्ण गुटिका का अपहरण कर अपनी रानी बनाना चाहा। उदायन महाराज को जब मालूम हुआ तो उन्होने विचार किया कि मै धर्म नीति के साथ राजकीय नीति का भी व्यवहार कर रहा हूँ। वे मेरे बराबर के सम्राट् है। वे चाहते तो मै हर्षपूर्वक दासी भेंट कर देता। पर यह चोरी का कार्य मानव के लिए कलंक है तो फिर राजा के लिये तो कहना ही क्या ? मै अनीति का प्रतिकार नही करूँगा तो वीतराग धर्म के प्रति दुनिया की उपेक्षा होगी कि वीतराग का धर्म दुनिया को कायरता सिखाता है। वीत-राग देव के सिद्धान्त इतने व्यापक व विशाल है कि उन्हे एक झोपड़ी में रहने वाला मजदूर भी अपना सकता है।

श्रावक होते हुए भी अन्याय के प्रतिकार के लिये उन्होने युद्ध करना उचित समझा। उदायन ने उज्जयिनी पर आक्रमण कर दिया। उन्होने केवल चण्डप्रद्योत को हराया ही नही अपितु उसे वदी भी बना लिया। जब वे वापस अपने राज्य की ओर सेना एव बदियों को लेकर लौट रहे थे तो मार्ग मे संवत्सरी महापर्व का अवसर आ गया। ख्याल आया कि ससार का कारोवार तो चलता ही रहता है पर मुझे आध्यात्मिक पर्व को नही भूलना है। युद्ध सामग्री वाहरी राजनीति के साथ वे आत्मा की नीति को नही भूलते थे। युद्ध में जाते समय अन्य युद्ध की सामग्रियो के साथ आत्मा को पोपण देने वाली सामायिक, पौषधादि के उपकरण भी अपने साथ रखते थे। रास्ते में दशपुर जिसे आज मदसौर कहते है, वहाँ तक पहुँचे और ज्ञात हुआ कि समग्र विश्व के प्राणियो को, छोटी सी छोटी आत्मा के लिए हितकारी सवत्सरो पर्व आ गया है। अत: सवसे वैर-विरोध मिटाना-खमत खामणा करना है, वह सवत्सरी पर्व पर ही हो सकता है। सेनापति को आदेश दिया—सैन्य विहार स्थगित कर दिया

जाय और यही पर पडाव डाल दिया जाय। वहाँ पौषध शाला के योग्य मकान नहीं है। अत: एक सफेद वस्त्र का टेंट लगाया जाय। क्योंकि १८ पापो से निवृत्त हो पूर्व के पापों की आलोचना व प्रायश्चित के लिए आज प्रतिपूर्ण पौषध करने का प्रसंग है। जो वास्तव में १८ पापों से अपने दिल को साफ कर लेता है, उसी का जीवन ऊँचा उठता है और वही वीतराग देव का सच्चा अनुयायी है। यही सोचकर महाराज उदायन ने अपनी साधना में बैठने के पूर्व की तैयारी की और अनीति का प्रतिकार करने के लिये यदि चंद्रप्रद्योतन के साथ संग्राम किया, तथापि उसके साथ घृणा का व्यवहार नही किया, यहाँ तक कि जब भोजन करते थे तब भी स्वयं की थाली में एक साथ बैठकर भोजन करते थे। संवत्सरी के प्रसंग से वे सोचने लगे कि आरम्भ–समारम्भ आदि १८ पापों का त्याग करना है।

मनुष्य के प्राणो को सुरक्षित रखने के लिए भोजन आवश्यक है किन्तु इस भोजन को बनाने के लिए षट्कायिक जीवों की हिसा करनी पड़ती है, पर पौषध व्रत में इस आरम्भ–समारम्भ का त्याग होता है। मै पेट को खुराक नही देना चाहता। आज वीतराग देव की परम संस्कृति का दिन है, यदि खाने-पीने राग-रंग, मौज-शौक में पड़ जाता हूँ तो यह शुभ मुहूर्त चला जाता है। दुनिया भर की हिसा का कार्य मै आज के प्रसग से नही करना चाहता। १८ पापों मे बड़ा पाप हिसा का है पर वैसे मिथ्या दर्शन कहा जाता है। जो १८ पापो से लिप्त अपने हृदय को खाली करता है वही सच्चा सम्यक्दृष्टि है। आज संवत्सरी के प्रसंग से आपको सोचना है कि इस २४ घंटों की साधु-साधना मे बैठकर अपनी आत्म-आलोचना करके प्रतिपूर्ण पौषध करना है, पर वे सम्राट् ये नही भूले की मेरे आश्रित चंद्रप्रद्योतन है। इसके भोजन का बदोबस्त करना है।

आज आपको भी चितन करना है कि घर में रोगी है या वृद्ध है, वे पौषध नही कर सकते। पुत्र पौषध करना चाहता है तो वह यह सोचे कि पहले मै माता-पिता का बदोबस्त तथा उनकी व्यवस्था करके पौषध करूँ। उन वृद्ध माता-पिता या जिनको कोई खिलाने वाला नही है उनकी बिना व्यवस्था किये पौषध करता है तो मूल व्रत मे दोष लगता है। जो गर्भवती बहिन हो या बच्चा स्तनपान करता हो, उसे भी तपश्चर्या का विशेष विवेक रखना चाहिये। वे ब्रह्मचर्य का पालन भी कर सकती है पर जिससे इसका पालन न हो तो कम-से-कम पचेन्द्रिय प्राणी की घात होती हो ऐसा प्रयास तो न करे।

महाराज उदायन सोचते है कि आत्मीयता के नाते ये मेरे भाई है। मै वीतराग की आज्ञा में २४ घटों के लिये समर्पित होऊँगा। उस समय मुझे कुछ भी मत पूछना और जब मै पौषध पालकर पूर्व की स्थिति में आ जाऊँ तब

आपके साथ पूर्ववत् व्यवहार करूँगा। चंद्रप्रद्योतन शंका करने लगे कि ये पौषध का बहाना करके २४ घंटे आहार–पानी का त्याग कर रहे है। पर हो सकता है मुझे मारने की दृष्टि से आज कही भोजन में पोइजन मिला दिया गया तो मेरा तो जीवन ही समाप्त हो जाएँगा। उसने भी ऊपरी दिल से, चाहता तो नहीं था पर किसी से पूछा कि ये पौषध क्या होता है? ये वीतराग की बातें चद्रप्रद्योतन ने सुनी कि मैने अनैतिकता से दासी चुराई, मेरे मस्तक पर जो चिह्न है, यह मरण से भी अधिक है। ये साथी समझा रहे है कि महाराज के साथ कोई पौषध में लगते है तो उसके जीवन मे चार चांद लग सकते है। चद्रप्रद्योतन ने कहा—महाराज! आज आप वीतराग देव की परम पावन संस्कृति में रहते हुए २४ घंटे के लिए पौषध कर रहे है तो मै भी आपके साथ पौषध करना चाहता हूँ। उदायन सम्राट् ने कहा—अवश्य करिये। शत्रु और मित्र के एक होने का प्रसग है तो चलो मेरे साथ पौषध कर सकते हो।

बन्धुओ! पहले के श्रावको का आचार देखिये। अपने साथ ही अन्यों के लिए धार्मिक साधनो को रखकर चलते थे। वे जानते थे कि सभी भाई–बहिन सामायिक का समान साथ नही लाते पर सामायिक या पौषध की भावना रखते है। तो मेरा सामान उनके भी काम आ सकता है। इसलिए महाराज ने एक्स्ट्रा उपकरण रख रखे थे। वे मंगवाये और उस चद्रप्रद्योतन को दे दिये।

बन्धुओ! आप ये सांसारिक पोषाक तो २४ घंटे रखते है, १ घंटे के लिये भी इस पोषाक को नही उतारते है तो आपकी इस बाहरी पोषाक का भी प्रभाव पड़ता है। सामायिकादि मे दर्जी के सिले हुए कपडे न रहे। इन्हे उतार-कर अलग रख देना चाहिये। सारे मोह ममत्व का त्याग करके बैठना चाहिये। सामायिक पौषध की विधि के अनुसार चद्रप्रद्योतन ने भी उतार दिया और महाराज की देखादेख पौषध की आराधना की। ये संवत्सरी पर्व की आराधना कैसे, क्या हो? इसका ज्ञान नही करेंगे तो ऐसे हर साल सवत्सरी आती है और जाती है, वैसे यह भी चली जायेगी।

"खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झ न केणई॥"

ये वीतराग देव के वाक्य कब चरितार्थ होंगे, जब कि पौषध व्रत मे किसी भी जीव की हिंसा का उपमर्दन नही करेंगे, तो ही सच्चे अर्थो में क्षमा याचना होगी। 'कषाय-मुक्ति किल मुक्तिरेव' की स्थिति से किससे क्षमा याचना करेंगे? सबसे पहले महाराज से क्षमा कर लेंगे, पर सच्ची क्षमा किससे करनी है कि जिनके साथ मन मुटाव हुआ है। जिनके कलेजे में चोट पहुँचायी है उनसे क्षमा याचना करके उनके हृदय को ठारना चाहिये। शास्त्रकार फरमाते है—

"जे उवसमइ तस्स होई आराहणा ।
जे नो उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा ।।"

चाहे साधु हो या श्रावक, जो कषायों को, क्लेशो को उपशमाता है वही आराधक है, जो नही उपशमता वह आराधक नही है । यहाँ तक कि जो जिदगी भर नही खमाता है, तो मिथ्यात्व में चला जाता है ।

"उवसम-सारं खलु सामण्ण ।"

सयम चाहे सर्व संयम हो अथवा देश संयम हो, सयम का सार उपशम है, वैर-विरोध, क्लेश-कषायों का उपशमन करना ही सयम है । आज के इस महान् पर्व का एक मात्र दिव्य संदेश है उपशम ! स्वय शांत वनिये और दूसरों को भी शाति दीजिये । मैत्री भाव को स्थापित करिये ।

"खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्भ न केणइ ।।"

आत्मा के अन्दर से यही नाद प्रकट होना चाहिये कि मै सब जीवो को क्षमा प्रदान करता हूँ और सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करे । संसार के किसी भी प्राणी के साथ मेरा वैर नही है, प्राणी मात्र के साथ मेरी मैत्री रहे । यह अन्तर्नाद जब आत्मा से स्फुरित होता है, वाणी द्वारा प्रकट होता है, आचरण में आता है तो आत्मा निर्मल हो जाती है, शल्य रहित हो जाती है और कर्मभार से हल्की होकर परम शांति का अनुभव करती है । उदायन महाराज कहने लगे—मैं वीतराग देव की संस्कृति मे हूँ । मै भी आपके साथ वीतराग देव की आज्ञा में समर्पित होकर क्षमा का आदान-प्रदान करता हूँ । उन्होंने क्षमा का आदान-प्रदान किया, पर चंद्रप्रद्योतन कहने लगे कि एक वात कांटे की तरह चुभ रही है । मेरे मस्तक पर यह दासीपति का पट जब तक रहेगा, तब तक मानसिक रोग बना रहेगा । उदायन ने कहा कि अभी मै वीतराग के शासन में समर्पित हूँ, अतः इस पर्चे को हटाना ये पौषध सामायिक व्रत में नही किया जाता, अभी तो खमतखामणा करलो, जब मै गृहस्थ पर्याय अर्थात् पौषध पारलूँ तब सारा कार्य हो जायेगा । सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के बाद जब क्षमा याचना का प्रसग आया तो उदायन महाराज ने चंद्रप्रद्योतन से हार्दिक क्षमायाचना की । वे अपराधी को क्षमा करने के लिए तत्पर थे बशर्ते कि अपराधी अपना अपराध स्वीकार करले । चंद्रप्रद्योतन ने इसे छुटकारे का अवसर मानकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया । उदायन महाराज ने सवत्सरी का पौषध पूर्ण होने पर उसे न केवल क्षमादान ही किया, अपितु उसका राज्य भी लौटा दिया । इतना ही नही जिसके लिये उन्हें संग्राम करना पड़ा वह स्वर्ण गुटिका दासी भी उसे उपहार रूप में दे दी । इसे कहते है वास्तविक क्षमा ।

आत्म शुद्धि का भव्य प्रसंग आज सभी के सामने उपस्थित है। मै अति संक्षिप्त में यह सार कह गया हूँ। समय की अधिकता से मै आपके अन्य कार्यक्रम में हस्तक्षेप नही करता। जो आत्मार्थी होते है वे चुपचाप होकर साधना में तन्मय हो जाते है। घाटकोपर सघ की पद्धति से कई महानुभावों के दिल में विचार भेद हो सकता है पर मनोभेद न हो अर्थात् मेरी मूछ ऊँची रहे यह अंतर की ऐठ रहेगी तो आत्म-शुद्धि नही हो पायेगी। संसार का झगड़ा तो ससार के साथ है पर बातों का झगड़ा न मिटा सकते हो तो वह मुझे वहरादो। मै भी एक भिक्षुक हूँ। कार्यकर्ताओ मे कोई मन मुटाव हो तो मै यहाँ बैठा-बैठा ही भिक्षा माग लेता हूँ। भिक्षुक होने के नाते मै भी आपसे भिक्षा मांगता हूँ। वैसे तो संत अपनी स्थिति से आप लोगो के घरों मे से यथासमय-यथावसर भिक्षा लाते ही है पर आपके पास जो राग-द्वेष, वैर-विरोध की ग्रंथियाँ है, कषायों का कर्दम है, ये सारो बाते मेरी झोली मे डालकर उदायन महाराज की प्रक्रिया को अपना कर अपना शुद्धिकरण करें। संध्या के प्रतिक्रमण में षट्कायिक जीवो की विराधना न हो, इसके लिए (माईक आदि) का उपयोग किसी साधक को नही करना चाहिये। यह निर्णय सारी बम्बई मे लागू हो। क्योकि माईकादि का प्रयोग वीतराग देव की सस्कृति को घात पहुँचाने वाला है। उनको जान ले और जानकारी न हो तो कम से कम संस्कृति को नीचे तो न गिरायें। अन्यथा स्वयं का जीवन तो बिगड़ेगा ही पर अनत तीर्थकरो की अशातना का प्रसग भी उपस्थित हो जायेगा। जहाँ एक जीव की अशातना के लिए माफी मांगते है तो वीतराग देव की अशातना की माफी कैसे मांग सकेंगे? मै नही चाहता कि छोटी से छोटी आत्मा को चोट पहुँचाऊँ पर प्रतिक्रमण के बाद खमतखामणा का प्रसग तो आता ही है। पर मै षट्कायिक जीवों के साथ, वीतराग सस्कृति के साथ मेरे द्वारा वीतराग देव की, सिद्धान्त के प्रतिकूल एक इच के अनन्त वे भाग भी कुछ प्रतिपादन हुआ हो तो मै तीर्थकर देवो की और पूर्व के महापुरुषो ने जो यह जीवन दिया उन सबकी अशातना मेरे द्वारा हो गई हो तो मै खमतखामणा कर लेता हूँ और साथ ही चतुर्विध सघ से भी आत्मा की पवित्रता के साथ खमतखामणा करके अपने विषय को समाप्त करता हूँ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२०-८-८५
मंगलवार

५१ तप से सिंचित करो जीवन को

धर्म-स्थान में मानव समुदाय के उपस्थित होने का उद्देश्य रहा हुआ है। कारण स्पष्ट है। स्थान बहुतेरे होते हैं, लेकिन धर्म-स्थान की विशेषता रही हुई है कि वे वहाँ पहुँच कर जिनेश्वर की भक्ति कर सकते है, प्रभु की सेवा कर सकते हैं और वास्तविक जीवन को सुखी व समृद्धिशाली बना सकते है। चतुर व्यक्ति इसी उद्देश्य को लेकर धर्म-स्थान मे पहुँचते हैं। प्रभु भक्ति, प्रार्थना, उनकी सेवा बाहरी सेवा नहीं है। पिता की पुत्र जैसे सेवा करता है, वैसी सेवा नहीं है। वह सेवा आन्तरिक जीवन से विशेष फलित होती है। वह अन्तर में झांकता है। अन्तर जीवन में प्रवेश पाता है, बहुत गहराई में चला जाता है तो प्रभु की सेवा उसे वहाँ प्राप्त होती है।

ज्ञानीजनों ने प्रभु को अन्तरयामी कहा है। वे अन्तर की बात को जान सकते हैं। स्वयं अन्तर में परमात्म शक्ति रहते हुए भी यह शरीर, ५ इंद्रियाँ उस परमात्मा को जान नहीं पाती। मानव अपनी आदत के अनुसार प्रवृत्ति करता है, उसी में अपनी जिन्दगी को समाप्त कर देता है। यदि उसे यह विज्ञान हो जाय कि मैं ५ इन्द्रियाँ और मन से जो कार्य कर रहा हूँ उसमें मेरी ममता अहमता जुड़ी है, तब तक अन्यान्य उपलब्धियाँ नहीं पा सकता। साथ ही तब तक शरीर में रहे हुए अन्तर ज्ञानी प्रभु को भी पा नही सकता। इस अहंता और ममता को छोड़कर ५ इन्द्रिय और मन को परमात्म भक्ति में लगाऊँ तो मेरे अन्तर में परमात्मा प्रकट हो सकेंगे। ऐसी भावना उसे आगे बढ़ा सकती है। ऐसी दृढ़ आस्था वस्तुतः तत्वज्ञानी में ही उत्पन्न हो सकती है। जो तत्व-ज्ञानी नही है, वे अपने आचार और व्यवहार को अन्य स्थल पर समर्पित करके चलते है। जहाँ समर्पित करना चाहिए वहाँ नहीं करते है। एक तत्वज्ञानी साधक गंगा तट पर मस्ती के साथ भ्रमण कर रहे थे, वहाँ देखा – कुछ मुमुक्षु गगा तट पर झुक कर पानी भरते है और सूर्य की तरफ मुँह करके पानी उडेलते हैं और सोचते है कि हमने सूर्य को अर्पणा दी। उस तत्वज्ञानी ने भक्तजनों की यह स्थिति देखी तो पूछने लगा आप यह क्या कर रहे है तो उन्होने कहा—हम सूर्य को पानी दे रहे है, अर्चना कर रहे है। यह सुनकर वह साधक गगा मे झुक कर पानी भर कर पश्चिम की ओर मुँह करके पानी उडेलने लगा। भक्तो ने देखा और सोचा यह क्या कर रहा है। पूर्व की ओर पानी समर्पित करना तो भक्तो

का काम है पर यह तो पश्चिम की ओर पानी समर्पित कर रहा है। ऐसा देख उनसे रहा नही गया और आश्चर्यान्वित हो उस साधक के पास जाकर कहा कि आप साधक है, भगवत् भक्ति के लिए निकले है। पर यह उल्टी प्रक्रिया कैसे अपनाई ? सीधी प्रक्रिया तो हम कर रहे है, यह उल्टी प्रक्रिया तुम कैसे अपना रहे हो ? उसने कहा—भाई ! तुम सूर्य को पानी अर्पित कर रहे हो, पर मै मेरे देश को पानी अर्पित कर रहा हूँ, मेरा देश पश्चिम की तरफ है। वहाँ पानी की कमी है, फसले सूख रही है। गगा मे बहुत पानी है इसलिए उस ओर देखकर गंगा का थोड़ा पानी दे रहा हूँ जिससे वह वहाँ तक पहुँच जाय और फसल अच्छी हो। यह सुनकर वे ठहाका मारकर हसने लगे कि क्या तुम तत्वज्ञानी हो और तत्वज्ञान का यही परिणाम है। कहाँ तुम्हारा देश, कहाँ फसले और कहाँ पानी अर्पित कर रहे हो ? तुम्हारा पानी क्या तुम्हारे खेत तक पहुँच जाएगा ? इस तरह तुम क्या सोचकर क्या कर रहे हो ? तब साधक ने बडी गम्भीरता के साथ उत्तर दिया कि यदि आपका पानी सूर्य तक पहुँच सकता है तो निश्चित ही यह पानी भी मेरे देश में, मेरे खेतों तक पहुँच सकता है। भक्त चिन्तन करने लगे कि वास्तव में कहाँ सूर्य और कहाँ हम ? हमने अपनी कृत्रिम सन्तुष्टि के लिए पानी को उधर उडेल दिया। यह बात सही है। जब हमारा पानी सूर्य तक नही पहुँच सकता तो, उनका पानी खेतों तक कैसे पहुँच सकेगा ?

बन्धुओ, कहने का मतलब यह है कि कुछ भी प्रक्रिया करो, इन्द्रियो का व्यापार करो कि शरीर की शक्ति कही भी लगाओ पर काम वही करो जहाँ आवश्यकता हो। भगवान् की भक्ति करना है, सेवा शुश्रुषा करना है तो भगवान् कहाँ है, कहाँ उनकी भक्ति है यह जानो। जहाँ रोग है, इलाज उसी का होगा। रोग तो है मस्तिष्क का, इलाज हो रहा है शरीर का तो कैसे रोग शान्त होगा ?

आप शान्ति पाना चाहते है और क्रिया भी करते है पर तत्वज्ञानी के अभाव में सारी प्रक्रियाएँ जिस स्थान पर होनी चाहिये उस स्थान पर न होकर अन्य स्थान पर हो रही है। उन मुमुक्षुओं की जिज्ञासा बढ़ी और पूछने लगे कि हमे वह उपाय बताओ ? साधक ने उसे समझाया कि तुम को यदि भगवान् पाना है, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र व समस्त विश्व से सितारे पाने है तो जब तक आँखे फाडकर देखते रहोगे तब तक पा नही सकोगे, यदि पाना है तो केवल एक भगवान् को पा लो, उन्हे पाने के बाद फिर ये सब कुछ प्राप्त हो जायेंगे, वास्तव मे भगवत् भक्ति करनी है तो अपने अन्दर की अनादिकालीन वृत्तियो को देखना होगा और उन्हे देखकर उन अशुभ प्रवृत्तियो को बदलो और सद् चित् आनन्द रूप आत्मा को जगाओ। उसी मे सच्ची भक्ति है। इसीलिए कवि ने कहा—

ढाल तलवार नी सोहली-दोहली ।
चदहवा जिण-तणी चरण सेवा ।।

तलवार की धार पर चलना कठिन है, कदाचित् कोई बाजीगर तलवार की धार पर चल सके और देव वैक्रिय लब्धि से चल सकते हैं पर तत्वज्ञान की दृष्टि से परमात्मा की उपासना करना उस धार से भी तीक्ष्ण है। उस पर तो विरले व्यक्ति ही चल सकते हैं। सबसे पहले ५ इन्द्रियो के विषयों से विरक्त होना पडता है किन्तु मानव दृश्य पदार्थो को देखकर उसे ही सब कुछ मान रहा है पर आवश्यकता है भीतर मे जो चैतन्य देव हैं, उसे जगाने के लिए महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाने की। वैज्ञानिक प्रक्रिया के कुछेक आदर्श इतनी लम्बी तपस्या के रूप मे सामने आ रहे है। अजनाजी के ३० उपवास है और पहले पुष्प मुनिजी ने ४४ किये। वैसे ही अन्य-अन्य तपस्याएँ भी चल रही है। अन्न-पानी का त्याग क्या है ? इससे प्रभु भक्ति की स्थिति कैसे क्या सध सकती है ? श्रद्धा भक्ति से किसी बात को मान लेना एक बात है, और तत्व ज्ञान से समझ लेना दूसरी बात है। आज विज्ञान का युग है। आप उस तरीके से सोचे कि हमे अपना प्रयत्न अन्तर की ओर करना है। अहमता और ममता के हेतु जो बाधक तत्व है उनको जब तक नही तोड़ा जाएगा तब तक अह नही हटेगा। वह अन्तर मे झाक भी नही सकेगा। इन्सान सोचता है अन्न छोड़ दूँगा तो मै दुर्बल हो जाऊँगा, कमजोर हो जाऊँगा, रूप विद्रूप हो जायेगा। इस भावना से वह तपस्या कर नही पाता। कई भाई तो उपवास मे भी इस प्रकार की ही कल्पना करते है। जब शरीर पर, इन्द्रियो पर ममत्व है, अहता का पोषण है तो इन सबल किलो को तोड़े बिना मनुष्य भीतर में प्रवेश नही कर सकता। इसके लिये शक्ति के अनुसार तपस्या भी करनी चाहिए। तपश्चर्या से जीवन में बहुत कुछ उपलब्धि हो सकती है, वह इस जीवन के बाद मिलेगी इस बात को गौण करिये। बाद में तो मिलेगी ही, वर्तमान में भी मिलती है। वर्तमान में व्यक्ति जिन अशांत परिस्थितियों मे जी रहे है। वह अशांति भी समाप्त हो सकती है इस तप के माध्यम से, बशर्ते कि तप की जो विधि है उस विधि से तप किया जाय। आप व्यापारी है। कई बार ऐसी समस्या आ जाती है उसका हल खोज नही पाते। व्यापार मे उलझ जाते है, इसी प्रकार विद्यार्थी स्वय अध्ययन कर रहा है पर गणित के सवाल को सुलझा नही पाता। इनमें अनेक कारणो के साथ अधिक खान-पान में आने वाली विकृति भी एक कारण बन जाती है। इसी प्रकार अन्य भी कई मानव सोच नही पाते। कारण स्पष्ट है कि यह शरीर है और शरीर को दी जाने वाली खुराक कुछ अधिक खाने में आ जाय तो सोचने की क्षमता कम पड़ जाती है। अन्दर की प्रक्रिया जो चलती है वह सीमित है। और वह अपनी शक्ति अनुसार कार्य करती है। मनुष्य खाने का इतना आदी है कि भूख हो या न हो तो भी खाना तो खाना ही है। यह एक प्रवृत्ति सी बन गयी है। ज्यादा खाने से पहले का भोजन पच नही पाता है और नया ऊपर से डाल दिया जाता है तो अन्दर की शक्ति उसे इधर-उधर डालना चाहती है तो उस समय वात, पित्त, कफ, ये तीन रोग उत्पन्न होते है। वात का

प्रकोप हो जाता है तो मनुष्य का मस्तिष्क घूमने लगता है, पित्त का प्रकोप बढता है तो तेजाब बढ जाता है। जिससे पेट में जलन होती है। कफ का प्रकोप बढ़ता है तो श्लेषम बढ जाता है।

आयुर्वेद की दृष्टि से बता रहा हूँ कि जब शरीर में रोग बढ जाते है तो स्वय के भीतर में जो अन्तरयामी है उसका भी मनुष्य शांति से चिन्तन नही कर पाता। वह यदि एक रोज का उपवास कर लेता है तो सारी बीमारी नष्ट हो जाती है। जहाँ बडी-बड़ी मशीनों को भी आठ रोज में एक रोज छुट्टी देने का प्रसंग सुना है पर मानव की मशीन ऐसी है कि उसे एक रोज की भी छुट्टी नहीं दी जाती है। मस्तिष्क को भी छुट्टी नही देते है। आप छुट्टी के दिन भी अन्य-अन्य काम में दिमाग को दौडायेगे। बधुओ! इस पाचन क्रिया पर कितना अन्याय और अत्याचार करते है। ऊपर से कहते है बाहर की हिसा नही करते है, उससे बचते है और बचने का उपदेश देते है पर कही स्वय की घात तो नही कर रहे है?

जहाँ मैं थांदला के पहाड़ी एरिया मे विचरण कर रहा था वहाँ भीलो को मामा कहकर बुलाया जाता है। एक कांग्रेसी नेता मेरे पास आया। बोला कि आप हिसा-अहिसा आदि की बात करते है पर भारत की अन्न समस्या कैसे हल होगी? अहिसा से तो होगी नही।

आपका दिमाग। आज शरीर भले ही भारतीय संस्कृति का हो पर मन पाश्चात्य संस्कृति की ओर जा रहा है। मैंने उससे पूछा कि भारत की जनसंख्या कितनी है? उस समय साठ करोड़ के लगभग जनता थी। तब मैने कहा—एक समय मे एक व्यक्ति औसतन कितना खाना खाता है। एक किलो खाता है, उस नेता ने कहा। मैने कहा—जब साठ करोड़ जनता है तो उसमें से पचास करोड जनता सप्ताह मे एक रोज उपवास रखे तो कितना अन्न बच सकता है? बारह महिनो का हिसाब लगाओ। यह आपकी गणित का विषय है। आप हिसाब करिये। इतना अन्न अभावग्रस्त लोगो के काम आ सकता है। जहाँ मनुष्य को भूख नही है तो भी ज्यादा खाता है तो पाचन क्रिया तो बिगड़ती है और अनेक व्याधियाँ पैदा हो जाती है। चूर्ण, नमकीन, भुजिया की कहाँ इस शरीर को आवश्यकता है पर वह जीह्वा के वशीभूत होकर इन चरखी-फरखी चीजो को खाता जाता है। फिर रोग पैदा होता है तब डॉक्टर की शरण मे जाता है और कभी-कभी अपने जीवन को नष्ट भी कर देता है। यदि सादी-सीदी सात्विक भोजन की स्थिति रखे तो कितनी क्या व्यवस्था सुधर सकती है। अन्न के अभाव मे जितने नहीं मरते है उतने ज्यादा खाने से मरते है। भगवान महावीर ने तप का स्वरूप बताया पर आज अधिकांश रूटिन तरीके से तप करते है। तप का जो अध्यात्मिक अर्थ बताया, उसे समझने की आवश्यकता है। आज विदेशी लोग

भी उपवास चिकित्सा में उत्साह ले रहे है और प्राकृतिक चिकित्सक आज इस उपवास चिकित्सा से रोगों को नष्ट करने मे कामयाव हो रहे है। उदयपुर में प्राकृतिक चिकित्सक ने बताया कि एक व्यक्ति रोज इजेक्शन खाता था। इजेक्शन से सारा शरीर वीध गया, डॉक्टर की तरफ से उत्तर मिल गया कि अब तुम्हारा कोई इलाज नही होगा, वैद्य ने भी जवाव दे दिया। तव वह प्राकृतिक चिकित्सा की स्थिति में पहुँचा तो चिकित्सक ने कहा कि उपवास करना पडेगा, रोज एनिमा मे गर्म पानी से सफाई की जाती थी। रोगी ने कहा—कुछ भी नही निकलता है फिर उपवास क्यों करवाया जाता है ? परन्तु ३०वे दिन उसके शरीर से इतना गन्दा मल निकला कि आसपास के लोगो को भी दुर्गन्ध आने लगी। इस प्रकार ४०वें दिन तक यह प्रक्रिया करवाई गयी।

आयुर्वेदिक उपचार में कायाकल्प का सिद्धान्त है। भगवान महावीर ने और अन्य-अन्य महर्षियों ने तप का बहुत महत्त्व बताया है। केवल अनशन ही तप नही बताया, ध्यान, मौन साधना भी तप बतलाया है। ये सारी प्रक्रियाएँ अन्तर तक ले जाने वाली है। अन्तर्चेतना मे प्रवेश कराने वाली, अन्तर बुद्धि को निर्मल वनाने वाली है। एक समय का प्रसग है। एक प्रतिष्ठित परिवार के सेठ के इकलौते पुत्र की शादी कर दी गई। संयोग से पुत्र का स्वर्गवास हो गया। घर मे दो सदस्य ही रह गये—श्वसुर और बहू। सेठ ने सोचा मेरे अन्तर की शुद्धि तप के द्वारा ही हो सकती है। और मै तप का सेवन करूँगा तो बहू भी करेगी, ताकि इसका जीवन भी अच्छा रह सकेगा। सेठ ने आभ्यन्तर तप की स्थिति से पुत्र-वधू से कहा कि ये बढिया भोजन, बढिया दृश्य, मनोरम गायन मुझे गमता नही है अतः मुझे तो अन्तरयामी की तरफ जाना है इसलिए मेरे लिए सीधा-सादा भोजन तैयार करना और तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो। बहू ने विचार किया कि ऐसा कैसे हो सकता है, उसने भी सादा भोजन, सादी वेशभूषा में रहना शुरू कर दिया। सादा जीवन जीने लगी। "इच्छानिरोधो तपः" इच्छाओ का निरोध-संशोधन करना भी तप है। कुछ दिवस अनन्तर बहू के पीहर से आमन्त्रण आया कि तुम्हे वहुत वर्ष हो गये है, यहाँ आये को। भाई का विवाह है, तुम आ जाओ। माता-पिता का ममत्व बड़ा अजीब का होता है पर उस बहू मे एक विशेषता थी कि श्वसुर को बिना पूछे कार्य नही करती। पत्र ले जाकर श्वसुर को दिया। श्वसुर ने देखा और सोचा कि पिता ने इसे जन्म दिया पर जीवन की सर्जना नही की। कर्मो की विडम्बना विचित्र है। पुत्र चला गया। उसे वैधव्य जीवन मे आना पड़ा पर इसे विवाह में जाने से कैसे रोका जाय ? ५ इन्द्रियों की विषय विकार की स्थिति ऐसे प्रसंगों में अधिक उपस्थित होती है, पनपती है। सेठ ने कहा—तुम वहाँ जाकर क्या करोगी ? उसने कहा— मै तो जाऊँगी। सेठ ने छुट्टी दे दी। वह पीहर पहुँची। सादी सीधी पोशाक देखकर माँ कहने लगी कि अरे ! तेरा शरीर कितना दुर्बल हो गया, कितनी कृश हो गयी, कैसा कजूस है

तेरा श्वसुर जो पहनने को अच्छे वस्त्र और खाने को अच्छा भोजन भी नही देता है। उसके सभी सादे सीधे वस्त्र उतरवाकर उसे अच्छे नये वस्त्रा भूषणों से सुसज्जित कर दिया। जो कुछ उसकी अन्तर्यामी की ओर मुड़ने की भावना थी, उस पर पर्दा पड गया। १५ दिनों में तो कुछ का कुछ हो गया। जब वह ससुराल आई और अच्छा भोजन तैयार कर सेठ के सामने रखा तो सेठ ने कहा कि मेरा जवान लड़का चला गया। उसके अभाव में मै तो ऐसा भोजन नही करूँगा। तुम करलो।

उसके पीहर रह जाने से सारी वृत्तियों में तामसिक वृत्तियाँ आ गई थी। वह सोचने लगी कि मुझे तो पुनर्विवाह करना है। उसने अपनी भावना श्वसुर के सामने रखी। देखिये! सेठ बड़े मनोवैज्ञानिक थे। कहा कि मैं तो वृद्ध हो गया। मेरे घर की, परिवार की, प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला कोई हो, ऐसा विचार मैं कई दिनों से कर रहा था। पर तुम्हारी तरफ से कुछ भी संकेत नही मिला। तुम चिन्ता मत करो, आराम से खाओ-पीओ, मैं तुम्हारे योग्य वर तलाश करता हूँ। दूसरे दिन सेठ दिन भर साधना मे लग गये। सेठ ने भोजन नही किया तो वहू ने सोचा कि अहो! मेरे श्वसुर कितने दयालु हैं। मेरे वर की खोज में खाना भी नही खाया। २४ घण्टे तक सेठ ने भोजन नही किया तो उसने भी नहीं किया। दूसरे रोज पारणे की सामग्री तैयार की और श्वसुर से पारणे के लिए कहा तो सेठ ने कहा—नही मैने तो जो प्रण किया है, जब तक उसकी पूर्ति नहीं होगी मै तब तक भोजन नही करूँगा। आज मैने एक लिस्ट उतारी है योग्य लड़को की और खोज करने पर पता चला कि कोई इन्द्रियलोलुपी है तो कोई चरित्रहीन है। मेरे कुल के योग्य एक भी लड़का नही मिला, अतः मै भोजन नही करूँगा।

बेला हो गया। इधर वह भी सोचती है कि वर मिलेगा जब मिलेगा मै अभी तो इन गहनों के भार से हल्की हो जाऊँ और ये सुन्दर वस्त्र भी उतार दूँ क्योंकि तपस्या में यह भी भारभूत लगते है। जब वर आयेगा तब इन सबको पुनः धारण कर लूँगी। तीसरे दिन पारणे की तैयारी कर श्वसुर से कहने लगी। अब तो आप पारणा करिये। तब सेठ ने कहा - बेटी अभी कमी रह गयी है, आधा काम तो हो गया है, थोड़ी खोज और करनी है, खोज जारी है। तुम तो पारणा कर लो। कार्य पूर्ण होने पर मै भी कर लूँगा। तब वह सोचने लगी कि पिताजी मेरे लिए ३ दिन से भूखे है तो मैं कैसे भोजन कर लूँ? तीसरी रात होने पर विचारो मे शुद्धता आई, बुद्धि में निर्मलता आई। क्या मै पशु तुल्य जीवन बीता रही हूँ? हाय मेरा जीवन पशु तुल्य बन गया। मेरे पतिदेव चले गये पर मुझे एक निष्ठ होकर रहना चाहिए। अब मुझे अपने भगवान को ही अपना पति मानकर चलना चाहिए। मै इन विषयों में इतनी आसक्त बन गयी कि मैंने अपने पिता तुल्य श्वसुर के सामने पुनर्विवाह की बात रख दी। चौथे दिन सादा भोजन बना कर श्वसुर को पारणा के लिए कहती है तो श्वसुर कहते है कि अभी

थोड़ा काम बाकी है वह पूरा होने दो । तब वह कहती है कि आप जिस वर की तलाश कर रहे थे वह वर मुझे मिल गया है । अब आप पधारिये । आप तो पधारिये वर मिल गया । मैं पीहर गई वहाँ वासना मे भटक गई, मुझे इन्द्रियों का विषय वहाँ देखने को नही मिलता तो ऐसी भावना नही आती । अब मुझे किसी पुरुष की आवश्यकता नही, अब तो मुझे इच्छित वस्तु मिल गयी ।

वन्धुओ ! जहाँ रस का त्याग करते है, प्रतिसंलीनता तप की स्थिति बनती है और परमात्मा से अन्तरसूत्र जोड़ लेते है तो सभी विकार शान्त हो जाते है और एक दिन परमात्मा के दर्शन हो जाते है । आत्म शुद्धि और परमात्मा का साक्षात्कार करने का पावन मार्ग तप है । आज इसका प्रसग चल रहा है । शास्त्रीजी ने जब प्रधानमन्त्री थे देश को यह नारा दिया कि सप्ताह में एक दिन उपवास करना चाहिए । आपको याद हो या न हो पर मुझे याद है, शास्त्रीय बात की पुष्टि के लिए याद रखनी है । वन्धुओ ! इसका कितना महत्त्व है । अभी तो मैं इतना ही कहना चाह रहा हूँ कि श्रावण मास के प्रसंग पर तपश्चर्या हुई और हो रही है । विदुषी शासन प्रभाविका श्री इन्द्रकुँवरजी म० सा० ने भी ११ उपवास किये थे । परम विदुषी इन्द्रकुँवरजी म० सा० भी कैसे शासन की सेवा कर रही है । महासती श्री अंजनाश्री जी म० सा० आदि की ऐसी तपस्या में भाई-बहिन क्या अपनी भागीदारी डालेंगे । ध्यान रखिये इस तपस्या के पावन प्रसंग से अधिक न बन सके तो ·· ···· ············ ······· इन्द्रियों पर काबू लाकर मोह, ममत्व, अहकार तीनों को हटाने का प्रयास करें तो आप धीरे-धीरे अन्तर्यामी की ओर बढेगे और उनका दर्शन तप की वास्तविक पराकाष्ठा पर पहुँचने से ही हो सकता है । जो १२ विध तप द्वारा इस तलवार की धार पर चलता है तो उसका जीवन इस लोक-परलोक के सुखों का वरण कर सकता है । जैसे पश्चिम में पानी उडेलने से खेत तक पानी नही पहुँच सकता उसी प्रकार परमात्मा को देखने के लिए आकाश मे आँखे फाड़-फाड़कर देखने से परमात्मा नहीं मिल सकते है । परमात्मा को पाने के लिए भीतर में दृष्टि डालिये, मोह, ममत्व, अह के किले तोड़ने का रास्ता है तप । उसके माध्यम से भीतर में प्रवेश कर चलेगे तो एक न एक दिन आपका जीवन मंगलमय अवस्था को भी प्राप्त कर पायेगा । इसी भावना के साथ·········· ··········

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२५—८—८५
रविवार

५२ सेवा कैसे की जाय ?

वीतराग देव की परम पाविनी, अंतर जीवन को प्रक्षालन करने वाली यह जिनवाणी भव्यजनो के कल्याणार्थ जो उपदेश दे रही है, उस उपदेश को जीवन में जो मनुष्य उतारता है, वह वास्तव में वीतराग देव की सेवा करता है। आज के युग में सेवा की बात ज्यादा प्रचलित-प्रसरित है। सेवा की बात बहुत होती है, पर सेवा किसकी करनी, किस तरह करनी, उसका स्वरूप क्या है, सेवा से क्या होता है ? इन सारी बातों की जानकारी वीतराग वाणी के श्रवण से हो सकती है। बारह प्रकार के तपों में वैयावच्च भी तप है जो सेवा का ही एक पर्यायवाची शब्द है।

सेवा की वात आध्यात्मिक कवि भी कहते है कि प्रभु की सेवा करनी है। तब प्रश्न सहज ही सामने आयेगा प्रभु है कहाँ ? प्रभु सामने देखने को मिले तो ही उनकी सेवा की जाय। जो प्रत्यक्ष नही है उनकी सेवा किस तरह करें ? जिस मनुष्य के सम्पर्क मे दूसरे मनुष्य आवे और उसे कोई तकलीफ हो तो सेवा का कार्य वह अपने हाथ मे ले सकता है। वृद्ध, रोगी, बुजुर्ग माता-पिता की सेवा का कर्तव्य पुत्र का होता है, और यदि वह पुत्र सेवा न करे तो वह उनके कर्तव्य से गिरता है। शास्त्रकारों ने माता-पिता का ऋण बहुत माना है और यह भी बताया कि अपने वृद्ध रोगी माता-पिता की किस तरह सेवा करने से वह उऋण हो सकता है। हाथ-पैर दबाने से माता-पिता का ऋण नही उतरता है, पर उन्हे भव-भवान्तर में सुखदायी धर्म मे लगाने से उस ऋण से उऋण होया जा सकता है। आज कई मनुष्य वृद्ध , रोगी आदि की सेवा करते है। उन्हे नहलाना-धुलाना, भोजन कराना, औषधी देना आदि कार्य करके सोचें कि बस सेवा हो गयी, मै उऋण हो गया, यह भी सेवा जरूर है, पर ऐसी सेवा तो एक नौकर अनुचर भी कर सकता है। सेवा का विषय गहन है। ऐसी सेवा परिपूर्ण नही है। धर्म संघ में साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की सेवा किस तरह करनी ? इसे भी जानना आवश्यक है। इन चार तीर्थो में जो श्रावक-श्राविका है। धर्म की दृष्टि से श्राविका अन्य श्राविका की सेवा कर सकती है। कई श्राविकाएँ पर्व के दिनो मे पौषध लेकर वैठती है और उस समय उसे कोई रोग हो जाय तो अन्य पौषध वाली श्राविका उनकी हाथ-पैरादि दवाने की सेवा कर सकती है। यहाँ गृहस्थ का नाता नही है। संवर पौषध मे रहने वाले श्रावक

का नियम अलग है। पौषध में रहने वाली श्राविका की सेवा पौषध वाली श्राविका कर सकती है। पर जो खुली है, खुली का तात्पर्य जो संवर, सामायिक या पौषधादि में नही है। वह उसके पैर दबावे या अन्य सेवा करे तो वह कर तो सकती है, पर पौषध में रहने वाली बहन सोचे कि मैं खुली बहन की सेवा न लूँ। यदि इस तरह की सेवा लेने का प्रसंग आता है तो थोड़ा-सा साधना में फर्क पड़ता है। जैसे श्राविका की बात है वैसे ही श्रावक संबंधी जानना चाहिये। कल्पना करिये जैसे—एक श्रावक को पौषध में रहते हुए तकलीफ हो गई तो अन्य पौषध वाला श्रावक आकर सेवा करे, यदि वह दूसरा श्रावक पौषध में सेवा न करे और सोचे कि यह बीमार है, चिल्ला रहा है, चिल्लाने दो, मै क्यों सेवा करूँ तो वह अपने कर्तव्य से गिरता है। जैसे—श्रावक-श्राविका की बात है वैसे ही साधु-साध्वी की बात है। साध्वी समाज जो साध्वी पर्याय में रहकर पाँच समिति, तीन गुप्ति की आराधना करके चल रही है, उसे कोई तकलीफ हो जाय तो साध्वी की सेवा साध्वी ही कर सकती है। वह गृहस्थ से सेवा नही करवा सकती। क्योकि गृहस्थ महाव्रतधारी नही है, वे केवल प्रासुक औषधि आदि की दलाली कर जैन भाई की दुकान बता सकते है, साथ में जा सकते है। पर कोई ऐसी बीमारी है या जैन की कोई दुकान नही है और गृहस्थ के घर भी औषधि स्वाभाविक रूप से नही मिल रही है, तो वह गृहस्थ कह सकता है कि ज्ञान, दर्शन व चारित्र की आराधना मे सहायक यह शरीर है। इसकी परिपालना मे भगवान् महावीर ने छः कारण से आहार लेना, छः कारण से आहार छोड़ने का विधान बताया है। आपके अभी संथारा की स्थिति नही है, रोगोत्पत्ति है, बाजार की लाई हुई औषध ले लें। क्योंकि कदाचित् वह आर्तध्यान की स्थिति में चला जाय तो उसे अगले भव की आयु बध हो जाय तो अगला भव भी बिगड़ जाता है, अतः बाजार से दवाई लाकर भी दे सकता है, पर साधु स्वस्थ होने पर उसका प्रायश्चित ले लें। इस प्रकार सेवा के स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। जहाँ तक शरीर से ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि हो, तब तक शरीर की रक्षा करना भी आवश्यक है। परन्तु जब श्रावक-श्राविका अपनी सीमा में रहते हुए साधु साध्वी को सीमा में रखकर सेवा करते है तो वास्तव में वीतराग देव की आज्ञा का पालन करते है। जो सेवा साधु साध्वी को लेने की नही है और वे लेते है तो संयमी जीवन में दोष का प्रसग उपस्थित करते है। अगर वह दवा दोषयुक्त है, खरीदी है तो श्रावक भी स्पष्ट कह दे, ताकि प्रायश्चित लेकर साधु शुद्धिकरण कर सके। स्थानांग सूत्र के तृतीय ठाणे मे बताया कि जीव हिंसा करके, झूठ बोलकर गृहस्थ आहार औषधि आदि देता है तो अगले जन्म में अल्पायु बाँधता है। पुण्यवानी तो बँधेगी पर आयु अल्प बंधेगी। जैसे—उच्च कुल मे जन्म तो ले लिया पर छः वर्ष या दो वर्ष के बाद ही मर गया। अनेषणीय आहार देता है तो अगले जन्म की अल्पायु बधती है। भगवान् की बताई विधि के अनुसार यदि साधु-साध्वी ने आपको शास्त्रीय दृष्टि से पूछ लिया और आप पर विश्वास

कर उस चीज को ग्रहण की और आप झूठ बोल गये तब वे तो अपनी स्थिति से निर्दोष रहेंगे पर श्रावक के अल्पायु का बंध हो जायेगा ।

उदाहरण के रूप मे एक साधु गृहस्थ के यहाँ गया, उसने अपनी अन्तरात्मा को नही ठगा । शास्त्रीय विधि से गवेषणा करता हुआ अतिम विधि जो गृहस्थ को झूठ बोलने का त्याग करवाकर पूछने की है, वह भी पूरी कर लेता है । फिर भी गृहस्थ दुगुना झूठ बोलता है तो वह गृहस्थ अल्पायु बाँधता है । वहाँ केवली भगवान् विराजते हो तो अपने ज्ञान में देख लेते है कि ये वस्तु-औषधी, आहार, पानी साधु-साध्वी वीतराग देव की बताई विधि से परिपूर्ण गवेषणा कर ग्रहण कर रहे है और इस गृहस्थ ने ठगकर इन्हें दोषयुक्त औषधि या आहार बहराया तो इनके लिए तो निर्दोष है । मै तो नही लूँगा पर साथ ही वे साधु को ना नही करते । क्योकि उस साधु के पास श्रुत अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान है और इसने शास्त्रीय ज्ञान से गवेषणा करली, पर मै अपने ज्ञान से दोषयुक्त कह दूँगा तो आगे के साधु शंकाशील होकर संयम नही पाल सकेंगे ।

बंधुओ ! मै सेवा की बात बोल रहा हूँ । सेवा की स्थिति से वीतराग देव के सिद्धान्तों को समझना जरूरी है । कई लोग झूठ बोलकर, साधु को धोखा देकर कितना पाप उपार्जन कर लेते है । गृहस्थ को गृहस्थ के सामने भी झूठ नही बोलना है तो साधु-साध्वी के सामने तो झूठ बोलना ही नही चाहिये । आप यदि अगले जन्म की अल्पायु का बध न करना चाहें तो भगवान् की विधि के अनुसार चलें । आज भाई-बहिन कहते है कि महाराज ! आपके साधु, साधु की और साध्वी, साध्वी की तो आपस मे एक दूसरे की सेवा करते है, पर थोड़ी हम भी कर दे तो क्या हर्ज है ? तो साधु उससे सेवा नही करा सकता । किसी भी प्रकार से शरीर का स्पर्श करके अन्य सेवा नही करा सकता । इसी प्रकार जैसे— यह पाटा है, कई भाई भावुकतावश कह देते है कि महाराज ! हम पाटा बिछा देते है । भावना अच्छी है पर गृहस्थ को साधु का पाटा नही उठाना चाहिये । वहाँ सेवा का काम यह कर सकते है कि सहायता के लिये दूसरे साधुओ को बुलाकर ला सकते है । पर गृहस्थ द्वारा सेवा करते-करते कभी अन्य अनेक दोपो की उद्भावना भी हो जाती है । यदि कोई गृहस्थ साधु के हाथ-पैर दबावे या वहिन साध्वी के दबावे तो यह सेवा करना नही, वरन् उनके जीवन-दोप लगाना है, वीतराग देव की आज्ञा की अवहेलना करना है । कई भाई-वहिन टिफिन लेकर आते है कि महाराज कहाँ-कहाँ गोचरी के लिए फिरते रहेगे । इस तरह साधु की मर्यादा का अतिक्रमण करके आप आहार आदि यही (उपाश्रय मे) ले आयेंगे तो वह साधु जीवन के लिये अहितकर हो जायेगा । कवि ने कहा है—

"धार तलवार नी सोयली दोयली, चवदमां जिन तणी चरण सेवा"

तलवार की धार पर चलना कठिन है पर कदाचित् किसी के लिये सरल

भी हो जाय परन्तु प्रभु की चरण सेवा उससे भी कठिन है। यदि सेवा इतनी सस्ती होती तो उसे तलवार की धार के समान कठिन नही कहते। आज जिन भगवान् हमारे समक्ष नही है, पर प्रकारान्तर से जिन भगवान् की सेवा भी हम कर सकते है। उनके तीर्थ की सेवा और सुरक्षा रखना यह भी एक सेवा है।

बधुओ ! रोज-रोज प्रवचन सुनने से शास्त्रीय बातो का कुछ न कुछ रहस्य समझ में आ सकता है। चितन-मनन करके जो बात समझ में न आवे, उसे आप पूछ सकते है। मैं जो कहता हूँ उसे ही सही न मानले। इस प्रकार सेवा का धर्म सही विधि से अपनायेगे तो आप अधिक साधना कर सकेगे। जहाँ अभी कत्लखाने की बात वज्जू भाई ने कही। लगता है भारत के मानवो का हृदय जो पुष्प की पखुडी के समान था, वहाँ पुष्प की पंखुड़ी तो कुम्हला गयी पर हृदय पत्थर समान हो गया। स्वय की आत्मा तुल्य उस आत्मा का घात करता है, वह तो हिसक है ही पर जो नही करता पर करवाता व अनुमोदता है तो भी वह उस हिसा का भागीदार होता है और इन कत्लखानो से माँस की वृद्धि हो रही है, जिससे आज के युवकों के सस्कार भी विगड रहे है। आज कॉलेज जाने वाले युवक क्या-क्या खाते व पीते है। जो धार्मिक स्थान पर आते है वे तो सत-सती का उपदेश सुनकर जीवन को परिवर्तित कर सकते है। घर-घर में जाने की स्थिति तो संतों की रहती नही। जो नही आते है, उनके माता-पिता का कर्तव्य है उन्हे यहाँ आने की प्रेरणा दें या घर मे ही अपने बच्चों को सुसंस्कार दें। तभी वीतराग देव की सेवा का प्रसग भव्य तरह से उपस्थित हो सकता है। कत्लखाने की यह दर्दनाक स्थिति जो आज आपके सामने आ रही है। आज के व्यक्ति जो भारतीय सस्कृति मे पले पोषे है, ये कान मे तेल डालकर प्रगाढ निद्रा में सोये हुए न रहें। जगने का अवसर है, जगना चाहिये।

एक लोटे मे यदि भग पड़े तो वहाँ से तो आसानी से हटाई जा सकती है, पर जब सारे कुए, तालाब, समुद्र व टकी में ही भग पड़ जाय तो उसके लिये क्या उपाय हो सकता है। इस भारत भूमि मे ऐसा प्रसग उपस्थित हो रहा है। किन्तु सभी भारतीयो को जागृत होकर इन सभी जीवो की रक्षा के लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह भी बहुत बड़ी सेवा है। इस प्रकार सेवा के स्वरूप को समझकर जो विधि के अनुसार सेवा का लाभ लेता है तो वह अपने जीवन को अवश्य आगे बढाता है।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर (वम्बई)

२७–८–८५
मंगलवार

□ □ □